than nothing and accordingly I took up the work and finished it anyhow.

I little expected that a translation by a man like me not at all fit for the work would be so liked by the people. But some of the Hindi papers praised the work very much and without any further advertisement the book was disposed off within 8 or 12 months. And why was this reception given to my book ? I think all this was due to the Divine Providence helping me. All that I do is through His grace.

The demand for "*Vairagya Shatak*" and the high praise that it commanded encouraged me much. My esteemed readers wrote to me for publishing on the same lines "*Niti*" and "*Shringar Shatak*," that is why I have translated "*Niti Shatak*" and "*Shringar Shatak*" also.

I have followed the same plan in translating "*Niti*" and "*Shringar Shat*... [illegible] ...id in "*Vairagya Shatak*." In "*V*... [illegible] ...was first the original shloka, [illegible] ...he explanation and finally Eng... [illegible] same is the case in "*Niti Sha*... [illegible] ...eciality that I have freely quo... [illegible] places the sayings of many an Easte[rn] and Western scholars. Hundreds of mottos, choice couplets or sayings of English authors and poets have been incorporated in it. I have also put down my own ideas at several places, I hope and trust that all these will have some effect ou the mind of the gentle reader.

There is hardly any moral quotation or saying which is frequently used in the every day life that does not find place in this book. This book is named "Hundred Moral Principles" but in reality it comprises the whole Science of Ethics. That is why this book has gone up to 400 to 500 pages, although it could have been finished in 40 or 50 pages only.

I have consulted the works of Ustad Zauq, Mahakavi Ghalib and Dagh the great poet, and Gulistan, Mahabbarat, Kumarsambhav, Kiratarjuniya, Raghubansha, Hitopdesh, Panchtantra and several other works. I am much indebted to my learned friend Pandit Jwala Dutt Sharma, Kisraul, Moradabad, for my quotations from Ustad Zauq and Dagh and other great poets. In fact, the book of my learned friend were a great help to me and the materials they supplied give a flavour to this book which the public very much relish. As he is my intimate friend, I can claim a right in his works and there is no need of thanking him much for this. To praise an intimate friend too much is to put a discount on the friendship.

But before I finish, I must gratefully and heartily thank onr late Viceroy, His Excellency Lord Chelmsford and also the Honourable Mr. Gourlay M. A., C. I. E., I. C. S., Private Secretary to His Excellency The Governor of Bengal. It was due to their kindness and generosity that I was able to finish this work. If they had not extended their sympathetic look towards me most probably the two parts of "Chikitsa Chandrodaya" and "*Vairagya Shatak*" would have been my last publications. May Providence shower His choicest blessings on His Excellency Lord Chelmsford and Honourable Mr. Gourlay and may they live long is the humble prayer of the author.

I hope my gentle reader will extend the same sympathetic support to this work as they did to "*Vairagya Shatak.*" If they encourage me, I hope to place in their hands shortly the translation of "*Shringar Shatak*" also.

HARIDAS VAIDYA.

भूमिका

एक आलङ्कारिकका कथन है,—"सत्काव्य यशस्कर, अर्थकर, व्यवहार-ज्ञानदाता और अमङ्गलहर होते हैं। सत्कविता साध्वी वनिताकी भाँति परम शान्तिदायिनी और हितोपदेशिनी होती है।"

कविका यह वाक्य संस्कृतके चाहे जिस काव्यकी प्रशंसामें निकला हो; पर यह महाराज भर्तृहरिकृत "नीति-शतक" पर पूर्णरूपसे घटित होता है; क्योंकि उसके पढ़नेसे मनुष्य एक अच्छा नीतिमान् हो जाता है और नीतिमान् व्यक्ति हो कीर्त्ति, धन और प्रशंसाके अधिकारी होते हैं।

नीति-शतक सचमुच ही एक अपूर्व ग्रन्थ है। हम जब कभी ध्यानके साथ उसका पारायण करने बैठते हैं, तभी ऐसा मालूम होता है, मानो संसारमें जो कुछ भी महान् है, जो कुछ भी सुन्दर है और जो कुछ भी नवीन, निष्पाप, निर्मल और मनोहर है, वह सब एकत्र संकलन करके, जिस स्थानपर जिसका समावेश करनेसे उसकी सुन्दरता और निर्मलता और भी बढ़ जा सकती है, वह उसी स्थानपर उसी ढंगसे बैठाया गया है।

"नीति-शतक" में यद्यपि सौ श्लोक हैं, किन्तु इन सौ श्लोकोंमें जो कुछ भी कहा गया है, उसकी तुलना अन्य देशोंके सौ नीति-ग्रन्थ भी नहीं कर सकते।

संसारमें रहकर, जीवनमें जय पानेके लिये, नीतिमान् बननेकी नितान्त आवश्यकता है। नीतिसे हम, अकेले होनेपर भी, अनन्त सेनाको परास्त कर सकते हैं और एक स्थानपर बैठे-बैठे समस्त भूमण्डलपर शासन कर सकते हैं। जो व्यक्ति जितना ही अच्छा नीतिज्ञ है, वह उतना ही दुर्जय है। सारांश यह कि, संसारकी जटिल-से-जटिल समस्याओंका निराकरण एकमात्र नीति द्वारा ही हो सकता है। महात्मा शुक्रने बहुत ही ठीक कहा है, व्याकरणसे शब्द और अर्थका ज्ञान होता है, न्याय और तर्कशास्त्रसे जगत्के पदार्थोंका ज्ञान होता है; और वेदान्तसे संसारकी असारता और देहकी अनित्यताका ज्ञान होता है; किन्तु लौकिक व्यवहारमें इन शास्त्रोंसे कुछ भी प्रयोजन नहीं निकलता। सांसारिक कार्य्य-व्यवहार-निर्वाह करने और सुख पूर्वक जीवन यापन करनेके लिये जिस चीज़की आवश्यकता है, वह "नीतिशास्त्र" है। इस शास्त्रका ज्ञान महलोंमें रहनेवाले राजासे लेकर कुटीर-निवासी क्षुद्र मनुष्य तकके लिये समान भावसे होना जरूरी है। अतः कहना चाहिये, कि नीतिका अपूर्व माहात्म्य है।

संस्कृत-साहित्यमें प्रधानतः शुक्र, भर्तृहरि, बिदुर और

चाणक्यकी नीतियोंका ही विशेष आदर है। उनमें भी पण्डित लोग जितना आदर भर्तृहरिकी नीतिका करते हैं, उतना अन्य किसीकी नीतिका नहीं। इसीसे हमने इसे अपूर्व्व नीतिग्रन्थ कहा है। अस्तु।

सन् १६१५ ई० में, हमारे यहांसे इसी "नीति-शतक" का अनुवाद छपकर प्रकाशित हुआ था। वह अनुवाद पाण्डेय लोचनप्रसाद शर्म्मा और पण्डित सखाराम दुबे बी० ए०, बी० एल० ने किया था। अनुवाद सर्वाङ्ग सुन्दर होनेपर भी, कोरा अनुवाद ही था। उसमें बहुत-सी कारीगरियोंकी कमी थी। हमने अनुवादक महाशयोंमेंसे एकसे टीका-टिप्पणी सहित सुविस्तृत अनुवाद करनेके लिये प्रार्थना भी की थी, पर उन्होंने किसी वजहसे हमारी बातपर ध्यान नहीं दिया। मजबूरन हमको वह अनुवाद प्रकाशित करना पड़ा। तभी हमारे दिलमें यह इच्छा पैदा हुई थी, कि यद्यपि हम उतने योग्य नहीं, तथापि हम भी चेष्टा क्यों न करें? किन्तु अवकाश न होनेकी वजहसे, हम उस समय अपनी इच्छाको कार्य्यमें परिणत न कर सके।

गत वर्ष, हमपर ऐसी भीषण विपत्ति आई, कि हमें इस जीवनमें कुछ भी लिखनेकी आशा न रही। उस निराशताके समयमें, हमने कोई दो हफ्तोंमें "वैराग्य-शतक" का अनुवाद करके प्रकाशित कर दिया। उन दिनों ईर्ष्या-द्वेषका बाज़ार खूब गर्म था। प्रायः सभी परिचित, मित्र और नातेदार हमसे नाराज़-से हो रहे थे। इसलिये हमें मनुष्योंसे पशुओंका संग

और नगरसे वन अच्छा लगता था। एक तरह हमें संसारसे विरक्ति-सी हो गई थी। उन दिनों हम अक्सर "वैराग्य-शतक" को पढ़ा करते थे। इसीसे हमें उसीके अनुवादकी सूझ गई। यद्यपि मनमें ख़याल होता था कि, तुम्हारे जैसे मामूली आदमीका अनुवाद किसीको पसन्द न आयेगा, तुम्हारा ऐसा प्रयास करना बौनेके चाँद छूनेकी चेष्टाके समान होगा; पर हमने "अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः—"के न्यायानुसार, उसमें हाथ लगा ही तो दिया और बुरा-भला जैसा बना उसे पूरा कर दिया।

यद्यपि आशा नहीं थी कि, हमारे जैसे अयोग्य व्यक्तिका किया अनुवाद कोई पसन्द करेगा; पर हिन्दीके कितने ही समाचारपत्रोंने उसकी दिल खोलकर प्रशंसा की और बिना किसी प्रकारकी विज्ञापनबाज़ीके वह कोई ८।१० मास में ही हाथों-हाथ बिक गया। यह सब क्यों हुआ ? यह अनाथनाथ भगवान् कृष्णचन्द्रकी कृपाके कारणसे हुआ। क्योंकि अपने किये हुए किसी भी कामको हम अपना किया हुआ नहीं समझते। हम तो यही समझते हैं,—जो कुछ वह कराते हैं, हम वही करते हैं।

"वैराग्य-शतक" की भूरि-भूरि प्रशंसा होने और पबलिकके बड़ी चाहके साथ ख़रीद लेनेसे हमारा उत्साह बढ़ा। उधर क़दरदान पाठकोंने लिखा, कि आप "नीति-शतक" और "शृंगार-शतक" का भी ऐसा ही अनुवाद क्यों नहीं करते ? इससे हमने "नीति-शतक" और "शृङ्गार-शतक" का भी अनुवाद कर डाला।

"वैराग्य-शतक" का अनुवाद हमने जिस ढंगसे किया था,

प्रायः उसी ढंगसे इन दोनों शतकोंका भी अनुवाद किया है। सच तो यह है, हमने "वैराग्य-शतक"की अपेक्षा "नीति-शतक"में बहुत ज़ियादा परिश्रम किया है। "वैराग्य-शतक"में पहले मूल श्लोक, उसके नीचे भावार्थ, भावार्थके नीचे व्याख्या, व्याख्याके अन्तमें अङ्गरेज़ी अनुवाद दिया है। "नीति-शतक"में भी यही सब काम किये गये हैं। इतनी विशेषता है, कि इसमें मौक़े-मौक़ेपर पूरब-पच्छमके अनेक नीतिकारोंकी नीत भी लिख दी है। अङ्गरेज़ विद्वानोंके सैकड़ों बहुमूल्य वचन, कहावतें और मोटो प्रभृति दी हैं। साथ ही अनेक स्थलोंमें हमने अपना अनुभव भी लिखा है। इससे पाठकोंके चित्तपर और भी जल्दी असर होगा।

मनुष्य-जीवनमें नित्यप्रति काममें आनेवाले बहुत ही कम ऐसे नीति-वाक्य होंगे, जो इस पुस्तकमें पाठकोंको न मिलें। हमने इसका नाम "नीति-शतक" रक्खा है, पर असलमें यह संसारकी नीतिका सार है। इसीसे ४०।५० पृष्ठोंमें ख़तम होनेवाला ग्रन्थ कोई ५०० पृष्ठोंमें ख़तम हुआ है।

इन ग्रन्थके लिखनेमें हमें उस्दाद ज़ौक़, महाकवि ग़ालिब, महाकवि दाग़, गुलिस्ताँ, महाभारत, कुमारसंभव, किराताज्जुर्नीय, रघुवंश, हितोपदेश, पञ्चतन्त्र प्रभृति अनेक ग्रन्थोंसे सहायता लेनी पड़ी है। उस्ताद ज़ौक़ और महाकवि दाग़ प्रभृतिसे हमें जो कुछ मदद मिली है, उसके लिये हम अपने माननीय मित्र परिडतवर ज्वालादत्तजी शर्म्मा, किसरौल, मुरादाबादके अत्यन्त

कृतज्ञ हैं। पण्डितजीकी पुस्तकोंकी साम सि एक नवीन प्रकारकी खूबसूरती आ जाती है, जिसे पबलिक खूब पसन्द करती है। पण्डितजीकी चीजको हम अपनी ही समझते हैं, अतः धन्यवाद देनेकी ज़रूरत नहीं। अपने घनिष्ट मित्रोंको बारम्बार धन्यवाद देना मैत्रीका मूल्य घटाना है।

सबसे अधिक धन्यवाद हम लार्ड चेम्सफर्ड महोदय, भूत-पूर्व वायसराय और मिष्टर गोरले एम० ए०, सी० आई० ई०, आई० सी० एस०, प्राईवेट सेक्रेटरी टू हिज़ एक्सेलेन्सी दी गवर्नर आव् बङ्गालको देते हैं, जिनकी असीम दयालुता और सहानुभूति बिना हम इस ग्रन्थको लिख ही न सकते थे; क्योंकि उक्त दोनों परम दयालु सज्जन यदि हमपर दयादृष्टि न करते, तो "चिकित्सा-चन्द्रोदय"के दो भाग और "वैराग्य-शतक"का अनुवाद ही इस जगत्में हमारे आख़िरी ग्रन्थ होते। भगवान् श्रीमान् लार्ड चेम्स-फर्ड और मिष्टर गोरले महोदयको शतायु करें और उन्हें अपनी बेशक़ीमत-से-बेशक़ीमत न्यामतें बख़शें!

आशा है, पाठक "वैराग्य-शतक"की तरह हमारे "नीति-शतक"के अनुवादको भी पसन्द करेंगे। उनकी कृपा रही, तो चन्द रोज़में "शृंगार-शतक" भी इसी सजधजके साथ छपकर उनके करकमलोंमें पहुँचेगा।

कलकत्ता
अगस्त, सन् १९२० ई०

विनीत—
हरिदास।

निवेदन ।

जगदाधार, जगदात्मा जगदीशकी असीम कृपासे ही आज हम "नीति-शतक" का दूसरा संस्करण देख रहे हैं। हमने इसके दो तरहके संस्करण छपाये थेः—(१) राज संस्करण, और (२) साधारण संस्करण। राज संस्करण आर्ट पेपरपर, तीन रंगोंमें, छपा था। लोगोंका कहना है कि, हिन्दीमें आजतक वैसी सजधजसे कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। वैसी छपाईमें ख़र्च बेतहाशा बैठता है। हमने वह संस्करण शौक़से निकाला था, क्योंकि हमें उत्तम छपाईका हमेशासे शौक़ है। उस समय उसका मूल्य ७॥) देखकर कई प्रकाशकोंने कहा था, कि हिन्दीमें इतने मूल्यकी पुस्तक न बिकेगी। पर हमें परीक्षासे मालूम हुआ कि, हिन्दीमें अच्छी चीज़के क़दरदाँ यद्यपि बहुत नहीं हैं, तो भी हैं ज़रूर। इसीसे हमारी, राज संस्करण और साधारण संस्करण, दोनों ही तरहकी पुस्तकें शीघ्र ही बिक गईं। इसे हम जगदीशकी दया और क़दरदाँ पबलिककी क़दरदानीके सिवा क्या समझें?

पर अफ़सोस है, नीति-शतकके इस संस्करणके समय घरका प्रेस न रहा। विगत वर्ष अपने इकलौते पुत्रकी मृत्यु हो जाने और हमारे स्वयं घोर रोग-ग्रस्त हो जानेकी वजहसे, हमने अपना नरसिंह प्रेस एक सज्जनके हाथ बेचकर झंझट मिटा दिया। प्रेस अलग कर देनेसे झंझट अवश्य कम हो गया, शान्ति भी मिली, पर छपाईके लिये पहला-सा आराम न रहा—इसीसे इस बार, तीनों ही शतकोंके राज संस्करणकी मांग होनेपर भी, हम "नीति-शतक" का साधारण संस्करण ही छपा सके हैं। अगर जगदीशकी इच्छा हुई और वे हमारे अनुकूल रहे, तो कुछ दिनोंमें हम फिर काम चलाऊ निजी प्रेसका इन्तजाम करके तीनों शतकोंके ही "राज-संस्करण" निकालेंगे।

इस बार साधारण संस्करणमें भी काग़ज़ तो पहलेसे अच्छा लगाया गया है, पर अफ़सोस है कि अनवकाशकी वजहसे, इच्छा होनेपर भी, हम इसे बढ़ा न सके। "वैराग्य-शतक" का दूसरा संस्करण अभी ही हुआ है और शृङ्गारका पहला संस्करण ही अभी चल रहा है। आशा है, हमारे जैसे नगण्य लेखककी लिखी इन तीनों पुस्तकोंको जनता पहलेकी तरह ही अपनाकर हमें उत्साहित करेगी। हमने अब तक बुरा भला जो कुछ भी लिखा है, वह जनताके उत्साह-बर्द्धनसे ही लिखा है। इस समय तक हम "चिकित्सा-चन्द्रोदय" के पाँच भाग लिखकर प्रकाशित कर चुके हैं और वह ग्रन्थ जनताने खूब पसन्द किया है; अतः हम पहले उसे ही पूरा करनेकी चेष्टामें हैं। यदि जगदीशकी

कृपा रही और यम-सदनसे कुछ दिन और वारण्ट न आया, तो "चिकित्सा-चन्द्रोदय" को पूरा करके, हम नीति और वैराग्यपर, इन हज़ार सफ़ोंके दोनों ग्रन्थोंसे भी बढ़कर, एक और ग्रन्थ लिखनेका विचार रखते हैं, जो लासानी होगा। पर फिर कहना पड़ता है, कि इस विचारका कार्यमें परिणत होना ईश्वरकी कृपा और पबलिककी क़दरदानीपर ही मुनहसिर है। आशा है, इहलोक-परित्यागसे बहुत पहले ही हमारी इच्छा पूरी हो जायगी।

कलकत्ता
जनवरी, सन् १९२६ ई०

विनीत—
अनुवादक।

तीसरे संस्करण पर दो-चार बातें ।

जगदीश जगदात्मा परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द-कन्दको लाख-लाख धन्यवाद हैं, जिनकी असीम दया और अनुकम्पासे हम अपने लिखे ग्रन्थोंके संस्करण-पर-संस्करण देख रहे हैं। भर्तृहरि कृत तीनों शतकोंके अनुवादको सर्वसाधारणने खूब पसन्द किया, तभी तो हम आज अपनी इन आँखोंसे "नीति-शतक" का तीसरा संस्करण देख रहे हैं और आशा है कि "वैराग्य-शतक" का चौथा संस्करण भी देख लेंगे, क्योंकि अब तीसरा ख़ात्मेपर है ।

हमारे लिखे "चिकित्सा-चन्द्रोदय" ७ भागकी पबलिकने खूब क़द्र की। उसका मूल्य ४०॥) होनेपर भी उसे बड़े शौक़से ख़रीदा, इसीसे उसके कई भागोंके दूसरे और तीसरे संस्करण हो गये। इसे हम ईश्वरकी असीम अनुकम्पा और अपना सौभाग्य न कहें तो क्या कहें ? आशा है, जनता भविष्यमें भी हमपर ऐसी ही कृपा करती रहेगी ।

कलकत्ता
सितम्बर, १९३१ ई०

विनीत—
हरिदास।

चौथे संस्करण पर दो चार शब्द ।

भगवान् भक्तवत्सल आनन्द-कन्द श्रीकृष्णचन्द्रजीकी इस तुच्छ लेखकपर विशेष दया रहती है । उन्हींकी विशेष कृपाका नतीजा है कि, इन पंक्तियोंके लेखककी लिखी कृतियोंकी हिन्दी-भाषा-भाषी संसारमें हदसे ज़ियादा क़द्र हुई । भारतमें इन शतकोंके सैकड़ों अनुवाद होनेपर भी, इस अनुवादकके अनुवाद किये हुए शतक ही "सर्वश्रेष्ठ" ठहराये गये । पबलिक और समाचार-पत्रोंने, इन अनुवादोंकी, दिल खोलकर तारीफें कीं । अमीरोंने आठ रुपयोंका केवल नीति-शतकका राज-संस्करण हाथों-हाथ ख़रीद लिया । फिर वैसा संस्करण, अपना प्रेस न रहनेकी वजहसे, न छप सका । अब अगर कभी घरका प्रेस हुआ, तो वैसा तिरंगा संस्करण छपेगा । पबलिक उसको दूनी कीमतमें भी ख़रीदनेको तैयार है । राज-संस्करणके बाद साधारण संस्करण ही छपते रहे, और लोगोंको वे भी खूब पसन्द आये । भगवान् कृष्णकी अनुकम्पासे "वैराग्य-शतक" और "शृंगार-शतक" की माँग

"नीति-शतक" से भी ज़ियादा हुई। संसारसे कुछ उदासीन और वयस प्राप्त या उम्ररसीदा लोगोंने "वैराग्य-शतक" को और नौजवानों ने "शृंगार-शतक" को खूब पसन्द किया। हमने भी उनमें हर तरहसे वृद्धि और छपाई-सफ़ाईमें भी तरक्की कर दी। हमने ऐसा एक भी पढ़ा-लिखा नहीं देखा, जिसने हमारे तीनों शतक हाथोंमें आने और देखने-पर न ख़रीदे हों। यही वजह है कि, इनके चार-चार और पाँच-पाँच संस्करण दो-दो तीन-तीन हज़ारी हो गये।

सन् १९३४ में, एक विद्वान् सज्जन नेहरू ख़ान्दानके पण्डित मोहनलालजी नेहरू महोदयने, इन ग्रन्थोंमें जहाँ-तहाँ स्त्री-निन्दा पढ़ कर हमपर ज़ोरदार हमला किया। हमारी ओरसे भी कई विद्वान् ग्रेजुएटों और हिन्दीके लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकोंने मुँहतोड़ जवाब दिये। क्योंकि हम वास्तवमें स्त्री-निन्दक नहीं थे और न हैं। हम मातृ-जातिको आदर-इज़्ज़तकी निगाहसे देखते हैं और मर्दोंसे औरतोंको किसी भी बातमें कम नहीं समझते। बहुत-सी बातोंमें तो औरतोंको मर्दोंसे भी अच्छी समझते हैं। अगर औरतोंमें चरित्र-हीनता वग़ैरः दोष पाये जाते हैं, तो मर्दोंमें भी वे उनसे कम नहीं देखे जाते। बुरे-भले दोनोंमें ही हैं। प्राचीन कालके शास्त्रकारोंके हाथोंमें क़लम थी, उन्होंने पुरुष-जातिके साथ पक्षपात किया और नारी-निन्दा ग्रन्थोंमें कूट-कूटकर भर दी। बेचारी औरतें असहाय थीं, क्या कर सकती थीं? महाराज भर्तृ-हरिकी रानी पिंगलाने जो दुष्कर्म किया उसका महाराजाके दिलपर बुरा असर हुआ, और होना ही था। वे उसे अपनी जानसे भी ज़ियादा प्यारी समझते थे। इसीसे अपने हाथमें आया हुआ अमरफल आप न खाया,

उसे दे दिया। उसने अपने एक यारको दे दिया। राजाको पता लग गया। उन्हें संसारसे विरक्ति होगई। वे राज-पाट त्यागकर गुरु गोरख-नाथके चेले होकर वनवासी तपसी होगये। उन्होंने तीन शतक लिखे, उनमें जहाँ भी औरतोंका ज़िक्र आया उनकी घोर निन्दा की। हमने अनुवाद किया; और अनेक हिन्दू-शास्त्रोंसे वैसे ही स्त्री-निन्दा-व्यञ्जक श्लोक खोज-खोजकर उनके कथनोंकी पुष्टि की। हमारा वहाँ यही कर्त्तव्य था। लेकिन हम ख़ुद स्त्री-निन्दाके ख़िलाफ़ हैं। हमारी रायमें औरत और मर्द दोनोंहीमें बुरे पाये जाते हैं। अतः उस दोष—स्त्री-निंदाके दोषी हम नहीं। महाराजा भर्तृहरि भी नहीं। क्योंकि उन्होंने जो लिखा है, अपने ऊपर बीता हुआ लिखा है। और अनेक ग्रन्थोंका उनपर प्रभाव भी था, जो उनसे हज़ारों वर्ष पहले लिखे गये थे और जिनमें स्त्रियोंको पापों का भाण्डार तक कहा गया है। ख़ैर, अब ज़मानेने पलटा खाया है। स्त्रियाँ ख़ुद अपने लिए हर तरहकी कोशिशें कर रही हैं। उधर न्यायशील पुरुष भी पैदा होने लगे हैं, जो स्त्रियोंको शास्त्रोंमें लिखे हुए दोषों या कलङ्कोंसे मुक्त करना चाहते हैं। भगवान् ऐसा ही करे।

हम इस ग्रन्थके चौथे संस्करणको देख रहे हैं। अगर जगदीशने कृपा की और संसारमें हम और कुछ दिन रहे, तो इस ग्रन्थका पाँचवाँ संस्करण भी देखेंगे। हम इस जगत्में रहें या न रहें, भरोसा है, क़द्रदान जनता इन अनुवादोंकी, आज-कलकी तरह ही, क़द्र करती रहेगी।

मथुरा,
२२-६-१९३५

निवेदक—
हरिदास वैद्य।

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१ महाराजा भर्तृहरिका परिचय	...	१—३७

नीति-शतक ।

२ अज्ञ-प्रशंसा	... ...	१
३ विद्वानोंकी प्रशंसा	... ...	५४
४ मान-शौर्य्य प्रशंसा	... ...	१६१
५ धन-महिमा	... ...	१८१
६ दुर्जनोंकी निन्दा	... ...	२३१
७ सज्जन-प्रशंसा	... ...	२६६
८ परोपकारियोंकी प्रशंसा	... ...	३०३
६ धैर्य्य-प्रशंसा	... ...	३४७
१० दैव-प्रशंसा	... ...	३६६
११ कर्म-प्रशंसा	... ...	४१६—४८६

चित्र-सूची।

महाराजा भर्तृहरिकी जीवनी।

चित्र		पृष्ठ
१ तपस्वी ब्राह्मण और अमरफल	...	२६
२ महाराजा भर्तृहरि और तपस्वी	...	२८
३ महाराजा भर्तृहरि और पिंगला	...	२९
४ दारोग़ा और रानी पिंगला ...	...	३१
५ दारोग़ा और वेश्या ...	...	३२
६ वेश्या और महाराजा भर्तृहरि	...	३३
७ महाराजाका वैराग्य ...	...	३५

नीति-शतक।

८ शिवजी और गंगा ...	...	२७
९ सिंह भूखा होनेपर भी घास नहीं खाता	...	१६१

चित्र		पृष्ठ
१०	कुत्ता और सिंह	१६३
११	कुत्ता और गजराज	१६५
१२	मैनाक और इन्द्रवज्र	१७६
१३	सूर्य्यकान्तमणि	१७८
१४	धनी और निर्धन	१८६
१५	घड़ेमें कूप और समन्दरसे समान जल आता है	२२४
१६	सत्पुरुषोंकी नम्रता	३०४
१७	समुद्रकी अपूर्व्व सहनशीलता ...	३३४
१८	समुद्र-मथन	३४८
१९	कार्य्यार्थी पुरुषकी ६ अवस्थायें ...	३४९
२०	सर्पका बन्धन और मुक्ति	३५७
२१	गंजेका मस्तक फटना	४०७
२२	देवता कर्म-बन्धनमें	४१८
२३	अनुवादकके ऊपर रेलवे ट्रेन ...	४२५
२४	शिकारी और हिरनी	४२७
२५	शिकारी और कबूतरका जोड़ा ...	४२८
२६	कर्म प्राणीका पीछा नहीं छोड़ते (कर्म और जीवात्मा)	४४१

॥ श्रीः ॥

महाराजा भर्तृहरि।

कहते हैं, कोई दो हज़ार वर्ष पहले, राजपूतानेके मालवा प्रान्तकी उज्जयिनी नगरीमें,—जिसे आजकल उज्जैन कहते हैं,—एक उच्च श्रेणीके विद्वान्, नीतिकुशल, न्यायपरायण, प्रजा-वत्सल सर्वगुणसम्पन्न नृपति राज करते थे। आपका शुभ नाम महाराज भर्तृहरि था। आप अपनी प्रजाको निज सन्तानसे भी अधिक चाहते थे और उसीकी हितचिन्तनामें दिनरात मशगूल रहते थे। आपकी न्यायप्रियता और प्रजाहितैषिताकी चर्चा सारे भारतमें फैल गई थी, इसलिये अन्य राज्योंकी भी बहु-संख्यक प्रजा अपना देश छोड़कर आपके राज्यमें आकर बस गई थी; इससे उज्जयिनीकी शोभा-समृद्धि आजकलके कलकत्ते-बम्बईके समान हो गई थी। राजाके धर्मपरायण होनेके कारण प्रजा भी

धर्मात्मा थी। सभी अपने-अपने वर्णाश्रम धर्मका पालन करते थे। ठौर-ठौर यज्ञ और हवन होते थे। मेघ समयपर यथेष्ट जल बरसाते थे। मालवा प्रान्तमें लोग अकालका नाम तक भूल गये थे। राजा-प्रजाके भण्डार सदा धन-धान्यसे पूर्ण रहते थे। ग़रीब दोनों समय पेट भर अन्न खाते थे। प्रजाको किसी बातका दुःख, क्लेश और अभाव नहीं था। चोरी, ज़ोरी, लूट-मार और डकैती एवं अत्याचार, अनाचार और व्यभिचार प्रभृतिका नाम ही उठ गया था। कभी ही कोई ऐसा केस राजदरबारमें आता था। इन जुर्मोंके मुजरिमोंको महाराज सख़्त सज़ा देते थे। न्याय, नीति और धर्मपर चलनेवालोंके लिये महाराज जैसे दयालु थे; दुष्ट और अन्यायियोंके लिए वैसे ही कठोर थे। सारांश यह कि, महाराजको सभी उत्तमोत्तम राजोचित गुण विधाताने दिये थे। आपके राज्यमें शेर-बकरी एक घाट पानी पीते थे। कोई किसीकी ओर आँख उठाकर नहीं देख सकता था। निर्बल और सबल सभी अपनी-अपनी खालमें मस्त थे। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत चरितार्थ न होती थी। सच तो यह है, कि मालवा प्रान्तकी प्रजा फिरसे राम-राज्यका सुख लूटती हुई, हृदयसे महाराजकी मङ्गल-कामना और उनके दीर्घजीवनके लिए जगदीशसे करजोड़ प्रार्थना करती थी। उस समय प्रजाको कोई राजभक्तिका पाठ ज़बर्दस्ती नहीं पढ़ाता था। सुखी होनेके कारण, प्रजा आपही राजाको पिताकी तरह मानती थी और उसमें अचल-अटल भक्ति रखती थी।

महाराजके एक छोटे भाई भी थे। उनका नाम राजकुमार विक्रम था। विक्रम भी बड़े भाईकी तरह ही विद्वान्, न्यायपरायण, धर्मात्मा और राजनीतिकुशल थे। यह राजकुमार विक्रम ही हमारे सुप्रसिद्ध प्रतापशाली महाराजधिराज वीर विक्रमादित्य थे, जिन्होंने भयंकर युद्धोंमें विदेशी आक्रमणकारियोंको परास्त कर, भारतकी रक्षा की और उन्हें इस देशसे निकाल बाहर कर, अपने नामसे संवत् चलाया, जो आज तक विक्रम-संवत्के नामसे पुकारा जाता है। आपहीका चलाया संवत् अब तक पञ्चाङ्गों, जन्त्रियों और साहूकारोंके बही-खातोंमें लिखा जाता है। यद्यपि कालकी कुटिल गति, ज़मानेके फेर या देशके दुर्भाग्यसे आजकल ईस्वी सन्की तूती बोल रही है। लोग चिट्ठी-पत्रियों एवं अन्यान्य काग़ज़ और दस्तावेज़ोंमें, आपके संवत्को छोड़कर, ईस्वी सन्को लिखनेकी मूर्खता करते हैं; पर बहुतसे सज्जन अपनी भूलको सुधार कर, फिर महाराजके संवत्से ही काम लेने लगे हैं। आशा है, सभी भूले हुए राहपर आजायेंगे और संवत्के कारणसे महाराजका शुभ नाम यावत् चन्द्र-दिवाकर इस लोकमें अमर रहेगा।

महाराज विक्रमके समयमें बौद्ध-धर्म बड़े ज़ोरोंपर था। ब्राह्मण-धर्मकी नींव खोखली होगई थी। आपने ही बौद्धोंको मार भगाया और ब्राह्मण-धर्मकी फिरसे स्थापना की। आप अपने ज़मानेमें भारतके सर्व्वश्रेष्ठ नृपति समझे जाते थे; प्रायः सभी राजे-महाराजे आपको अपना सम्राट् या नेता मानते थे। सभी

आपके इशारोंपर नाचते थे। आप कहनेको तो उज्जैनके राजा कहलाते थे, पर आपके राज्यकी सीमा बड़ी लम्बी-चौड़ी थी। अतुल धन-वैभव और सुविस्तृत राज्यके अधीश्वर होनेपर भी, आपमें अभिमान नामको भी न था। आप छोटे-बड़े सभीसे मिलते और बातें करते थे। आप एक चटाईपर सोया करते और अपने पीनेके लिये क्षिप्रा नदीसे एक तूम्बा जल स्वयं अपने हाथोंसे भर लाते थे। आप आजकलके राजाओंकी तरह प्रजाके पैसेसे ऐश-आराम नहीं करते थे। आपका सारा समय प्रजाकी भलाईमें ही व्यतीत होता था। आप अधिकसे अधिक तीन चार घण्टे सोते थे। रातके समय भेष बदलकर, आप अक्सर शहरमें ग़श्त लगाया करते थे और इस बातकी खोज किया करते थे, कि मेरी किस प्रजाको कौनसा दुःख है। आप जिसे दुःखी देखते थे, उसका दुःख या अभाव किसी न किसी तरह अवश्य ही दूर कर देते थे। अनेक मौक़ोंपर तो आपने अपनी बेशक़ीमत जानको ख़तरेमें डालकर भी, प्रजाका दुःख दूर किया था। इसीसे प्रजा आपको "परदुःखभंजन" कहती थी। भारतमें अब तक हज़ारों-लाखों राजा-महाराजा हो गये होंगे। पर आपके सिवा और किसीको भी यह महामूल्य उपाधि नसीब नहीं हुई। हाँ, ईरानके ख़लीफ़ा हारूँ-उर-रशीदके सम्बन्धमें भी ऐसी ही बातें सुनी जाती हैं। ख़लीफ़ा हारूँ रशीद भी, महाराज विक्रमकी तरह, रातको भेष बदलकर घूमा करते और दीन-दुःखियोंका पता लगाकर, उनके कष्ट मोचन किया करते थे। इस पृथ्वीपर आज

तक न जाने कितने एक-से-एक बढ़कर राजा-महाराजा होगये, जिनकी हुङ्कारसे पृथ्वी काँपती थी, जिनके पास असंख्य सेना-सामन्त और अतुल धन-भण्डार था, पर आज उनका नाम भी कोई नहीं लेता; पर ऐसे प्रजावत्सल, परोपकारी, न्यायी और प्रजाकष्ट मोचन करनेवाले महीपालोंका नाम, जब तक पृथ्वी रहेगी, लोगोंकी ज़बानपर रहेगा। इस जगत्में जिनकी कीर्त्ति है, वह मर जानेपर भी अमर हैं। कीर्त्तिमान् मृतक नहीं समझा जाता। मृतक वही है, जिसकी कीर्त्ति या सुनाम नहीं है। महाराजा विक्रम, ख़लीफ़ा हारूँ रशीद, नौशेरवाँ और सम्राट् अकबर प्रभृति आज इस नापायेदार दुनियाँमें नहीं हैं, पर उनका सुनाम लोगोंकी ज़बानपर है; अतः वे सशरीर न रहनेपर भी अमर हैं। धन्य हैं ऐसे नरपाल ! ऐसे भूपालोंसे ही महीकी शोभा है !

हमें यहाँ महाराजा विक्रमादित्यके सम्बन्धमें नहीं लिखना है। लिखना है—महाराजा भर्तृहरिके सम्बन्धमें। प्रसंगवश हम महाराजा विक्रमादित्यके विषयमें इतना लिख गये। अब फिर असली मुक़ामपर आते हैं। सुनिये, प्रातःस्मरणीय महाराजा विक्रम छोटे थे और महाराजा भर्तृहरि बड़े होनेके कारण राज करते थे। महाराजा विक्रम बड़े भाईके प्रधान मन्त्रीका काम करते थे। दोनों भाइयोंमें बड़ा प्रेम और सद्भाव था। राम-लक्ष्मणकी सी जोड़ी थी। राम, लक्ष्मणको जिस तरह चाहते थे, उसी तरह महाराजा भर्तृहरि भाई विक्रमको प्यार करते थे। लक्ष्मण, राममें जैसी श्रद्धा और भक्ति रखते थे, वैसी ही श्रद्धा और भक्ति

विक्रमादित्य महाराज भर्तृहरिमें रखते थे। दोनों ही दोनोंके लिये जी-जानसे चाहते थे। बड़े भाई छोटेको निज पुत्रवत् समझते थे और छोटे बड़ेको पितृवत् मानते थे। महाराजा भर्तृहरि यद्यपि निरालसी और राजकार्य्यदक्ष थे; तथापि उन्होंने राजकाजका विशेष भार विक्रमपर ही छोड़ रक्खा था। पिता जिस तरह सुपुत्रपर गृहस्थीका सारा भार छोड़कर एक तरह निश्चिन्त हो जाता है, उसी तरह महाराजा भर्तृहरि विक्रमपर राजकाजका भार छोड़ निश्चिन्त हो गये थे। महाराज विक्रम भी अपनी कुशाग्रबुद्धि और राज-नीतिज्ञतासे सारे काम सुचारु रूपसे चलाते थे और राजकाजकी जटिल समस्याओंके सुलझानेमें महाराजके दाहिने हाथ बने हुए थे। प्रजा सब तरह सुखी और प्रसन्न थी। राज्यमें आनन्दकी बाँसुरी बज रही थी; पर परमात्माकी इच्छा या होनहारके कारण आगे चलकर एक विषवृक्ष पैदा हो गया। उसने इन दोनों भाइयोंमें मनोमालिन्य करा दिया। इतना ही नहीं, दोनोंको एक दूसरेसे जुदा करा दिया। जिसका लोगोंको स्वप्नमें भी ख़याल नहीं था, जिसका होना लोग असम्भव समझते थे, वही हुआ। सच है, भावी बड़ी बलवती है—होनी होकर रहती है।

महाराजा भर्तृहरिकी दो या तीन शादियाँ हो चुकी थीं। फिर भी; आपने किसी देशकी अपूर्व रूप-लावण्यसम्पन्ना, परम-सुन्दरी, रतिमानमर्दिनी, मुनिमनमोहिनी अप्सराओंको भी शर्माने-वाली एक राजकुमारीसे शादी करली। नयी महारानीका नाम पिंगला था। महारानी पिंगलाके असाधारण रूपवती होनेके

कारण, महाराज उनके रूपपर ऐसे मोहित हुए, कि अपनी विद्या-बुद्धि, विवेक और विचार प्रभृतिको ताक़पर रखकर, उनके हाथों बिक गये—उनके क्रीतदास हो गये। ठीक शाहन्शाह जहाँगीर और बेगम नूरजहाँका सा हाल हुआ। जिस तरह नूरजहाँके बिना दिल्लीश्वर जहाँगीरको एक क्षण भी कल न पड़ती थी, उसी तरह महाराज भर्तृहरिको भी महारानी पिंगला बिना चैन नहीं था। जिस तरह जहाँगीरकी नकेल नूरजहाँके हाथोंमें थी; उसी तरह महाराज भर्तृहरिकी नकेल पिंगलाके हाथोंमें थी। जिस तरह जहाँगीर बादशाह नूरजहाँके हाथोंकी कठपुतली थे; उसी तरह महाराज भर्तृहरि भी पिंगलाके हाथोंकी कठपुतली थे। बादशाह जहाँगीर नामके बादशाह थे; नूरजहाँ ही बादशाहतकी असल सञ्चालिका थी। वह जो चाहती थी सो करती थी। बादशाह सिर्फ़ दस्तख़त और मुहर भर कर देते थे। महाराज भर्तृहरिकी भी वही दशा थी। महारानी पिंगला जो चाहती थीं, वही महाराजसे करा लेती थीं। महाराज बिना कुछ सोचे-समझे, बिना आगा-पीछा देखे, आँखें बन्द करके, रानी पिंगलाकी इच्छानुसार चलते थे। उन दिनों महाराज सच्चे स्त्रैण हो गये थे। रानी पिंगलाने ऐसा जादू कर दिया था, कि महाराज अपने होश-हवास खोकर पूरे तौरसे उनके ज़रख़रीद गुलाम हो गये थे।

स्त्रैण होना अच्छा नहीं, स्त्रीका गुलाम होना उचित नहीं, स्त्रीके वशमें होना सर्व्वनाशका बीज बोना है; पर इन मोहिनियोंके आगे प्रायः सभीकी सिट्टी गुम हो जाती है। हम महाराजको ही

दोषी क्यों ठहरावें, जब कि बड़े-बड़े योगीश्वर मोहिनियोंके रूपजालमें फँसकर अपनी बुद्धि खो बैठे ? इन जोगिजनमनोहरा कामनियोंने किसका मन हरण नहीं किया ? इन मोहिनियोंकी मोहनी शक्तिके आगे किसने हार नहीं मानी ? इनके मोहनमंत्रसे कौन पागल नहीं हुआ ? इनकी मोहनी मायामें कौन नहीं फँसा ? शिव जैसे परम योगीश्वर मोहनीकी रूपच्छटा, चटक-मटक और नाज़-नख़रोंपर पागल हो गये। विश्वामित्र जैसे महामुनि मेनकाके रूपजालमें फँसकर अपना तप भङ्ग कर बैठे। मरीचि और शृंगी जैसे महर्षि इनकी मनोमुग्धकर रूप-माधुरीपर सुधबुध खोकर तपस्या छोड़ बैठे; तब साधारण मनुष्योंकी कौन बात है ? बड़े-बड़े शूरवीर जो जगत्को परास्त कर सकते हैं, वे भी इनके सामने कायर हो जाते हैं। किसी कविने कहा है—

व्याकीर्ण केशर करालमुखा मृगेन्द्रा,
नागाश्च भूरिमदराजिविराजमानाः।
मेधाविनश्च पुरुषाः समरेषु शूराः,
स्त्रीसन्निधौ परमकापुरुषा भवन्ति॥

गर्दनपर बिखरे हुए बालोंवाला करालमुखी सिंह, अत्यन्त मदवाला हाथी और बुद्धिमान समरशूर पुरुष भी स्त्रियोंके आगे परम कायर हो जाते हैं।

परमात्माने भी स्त्रियोंके साथ पक्षपात किया है। उसने इन्हें अपूर्व क्षमता प्रदान की है। उसी क्षमतासे ये पुरुषोंको उसी तरह

अपने अधीन कर लेती हैं; जिस तरह मनुष्य गाय बैल घोड़े घोड़ी प्रभृति पशुओंको अपने अधीन कर लेते हैं। जो काम बड़े-बड़े धनुर्धारी अपनी बाणविद्यासे सिद्ध नहीं कर सकते, उसे ये अपने एक कटाक्षसे सिद्ध कर लेती हैं। इनके कटाक्षबाणोंके लगनेसे बड़े-बड़े युद्धोंको जीतनेवाले, कभी भी हार न खानेवाले योद्धा सुन्न हो जाते हैं—भेड़-बकरीकी तरह इनके वशमें हो जाते हैं। ये मोहिनी नज़रोंमें मार लेती हैं; मधुर-मधुर बोलनेसे चित्तको चुरा लेती हैं; हाव-भाव या नाज़-नख़रोंसे हृदयको मोह लेती हैं। मामूली आदमियोंका तो ज़िक्र ही क्या—ये हवा और राख खाकर ज़िन्दगी बसर करनेवाले महात्माओंको भी मोहित कर लेती हैं; इसीसे लोग इन्हें मुनिमनमोहिनी भी कहते हैं।

स्त्रियाँ आशिक़ रूपी हिरनोंके बाँधनेके लिये मज़बूत रस्सी और हृदय-रूपी मदमत्त गजराजको बन्धनमें फँसा रखनेके लिये ज़बरदस्त ज़ञ्जीर हैं। ये अबला होनेपर भी सबला हैं, गौ होनेपर भी बाघ हैं; कोमलाङ्गी होनेपर भी वज्राङ्गी हैं और निर्मला होनेपर भी कुमला हैं। ये अपने ऊपर अनुरक्त हुए अपने पति या आशिक़को अपने वशमें कर लेती हैं। जब वह इनके वशमें हो जाता है, तब उसका ज्ञान काफ़ूर हो जाता है। ज्ञान-विहीन अज्ञानी पति अपनी स्त्रीके सामने मूक पशुवत् हो जाता है। वह अपनी स्त्रीकी हाँ-में-हाँ मिलाता है, उसके कुकर्म देखकर भी नहीं बोलता; क्योंकि स्त्रियाँ अपने चाहनेवालोंको ऐसा ही बना लेनेकी सामर्थ्य रखती हैं। किसीने कहा है:—

अलक्तको यथा रक्तो निष्पीड्य पुरुषस्तथा ।
अबलाभिर्बलाद्रक्तः पादमूले निपात्यते ॥

जिस तरह स्त्रियाँ लाखके रंगको ज़ोरसे दबाकर अपने चरणोंमें लगाती हैं; उसी तरह वे अपने अनुरागी या चाहनेवालोंको अपने चरणोंमें डाल लेती हैं ।

पर इन मोहिनियोंपर जी-जानसे लट्टू होनेवालों, इनपर सम्पूर्ण रूपसे विश्वास कर लेनेवालों और इनकी अन्धभक्ति करनेवालोंको अन्तमें दुःख पाना, धोखा खाना और पछताना पड़ता है, इसमें ज़रा भी शक नहीं; अतः इनको मध्य अवस्थासे सेवन करना चाहिये; क्योंकि यदि पुरुष इनसे दूर रहे, तो फल नहीं मिलता और एकदम इनका हो ले, तो ये सर्व्वनाशका कारण हो जाती हैं । जो पुरुष स्त्रैण या स्त्रीके गुलाम हो जाते हैं, जो इनको सिरपर चढ़ा लेते हैं, जो इनके ही मतपर चलते हैं, उनको दुःख भोगने पड़ते हैं और ये उन्हें खूब नाच नचाती और स्वयं स्वतन्त्र होकर मन-माने दुष्कर्म करती हैं । कहा है:—

तासां वाक्यानि कृत्यानि स्वल्पानि सुगुरूण्यपि ।
करोति यः कृती लोके लघुत्वं याति सर्वतः ॥

नाति प्रसंगः प्रमदासु कार्य्यो नेच्छेदबलं स्त्रीषु विवर्द्धमानम् ।
अति प्रसक्तैः पुरुषैर्युतास्ताः क्रीडन्ति काकैरिव लूनपक्षैः ॥

जो कृती पुरुष स्त्रियोंकी छोटी-बड़ी या थोड़ी-बहुत बातोंको मानता है, वह सब तरहसे नीचा देखता है ।

स्त्रियोंसे अति प्रसंग न करना चाहिये; क्योंकि अति आसक्त हुए पुरुषोंसे वह पंख-नुचे हुए कौवेके समान खेल करती हैं।

अनुभवी विद्वान् और त्रिकालज्ञ ऋषि-मुनियोंने जो कहा है, वह अक्षर-अक्षर सत्य है। जो शास्त्रकारोंके अमूल्य उपदेशोंपर ध्यान नहीं देते, उन्हें दुःखके गहरे गड्ढेमें गिरकर कष्ट उठाना ही पड़ता है। हमारे महाराज भर्तृहरि यद्यपि असाधारण विद्वान् और बुद्धिमान थे, पर भावीके वश होनेके कारण, उन्होंने शास्त्रोपदेशपर ध्यान न देकर महारानी पिंगलाको सिरपर चढ़ा लिया। उसकी प्रत्येक बात मानने और हरेक काम उसकी इच्छानुसार करने लगे। नतीजा यह हुआ, कि उसने महाराजको अपने ऊपर पूर्णरूपसे अनुरक्त पा, उनको खेलका पचीसा जान लिया और उन्हें अपनी इच्छानुसार नचाने लगी। साथ ही निर्भय होकर कुकर्म करनेपर उतारू हो गई। वह क्या कुकर्म करने लगी, उसका क्या नतीजा हुआ, ये सब बातें पाठकोंको आगे चलकर मालूम हो जायँगी। यहाँ हमें यही विचारना है, कि महाराज भर्तृहरि जैसे चतुरचूड़ामणि और विद्वान् राजाने ऐसा मौक़ा क्यों दिया?

पाठक ! जैसी भावी होती है, मनुष्यकी बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है। अगर भावीके अनुसार बुद्धि न हो जाय, तो भावी कैसे हो? दशरथनन्दन महाराज रामचन्द्र तो विष्णुके अवतार माने जाते हैं; वे कुटियामें सीताको छोड़कर, सोनेके हिरनके पीछे तीर कमान लेकर क्यों भागे? साधारण आदमी भी समझ सकता है, कि सोनेका हिरन नहीं हो सकता—सुवर्ण मृगका

होना असम्भव है। पर भगवान् रामचन्द्रजीको इतना भी ख़याल न हुआ! हो कैसे? होनी तो कुछ और ही थी। जैसी होनी थी, वैसी ही बुद्धि रामचन्द्रजीकी हो गई। उनके और लक्ष्मणजीके सीताको सूनी छोड़ जानेसे, रावणको मौक़ा मिला और वह यतिका भेष धरकर सीताको लंकामें ले गया। परिणाममें घोर युद्ध हुआ और रावण मारा गया।

हमारे प्रातःस्मरणीय महाराज भर्तृहरिकी बुद्धि यदि नहीं मारी जाती, वे पिंगलाके हाथकी कठपुतली न हो जाते; तो पिंगलाको व्यभिचारिणी होनेका मौक़ा कैसे मिलता? प्राणप्यारे भाई विक्रमसे वियोग कैसे होता? शेषमें अपनी प्राणप्रियाके कुकर्मका हाल जानकर, महाराजको विरक्ति कैसे होती और वे राजपाट त्यागकर आदर्श योगिराज कैसे होते? कहते हैं, संसारमें एक पत्ता भी बिना परमेश्वरकी मरजीके नहीं हिलता। इस जगत्में जो कुछ होता है, वह जगदीशकी इच्छासे होता है, जगदीश जो चाहते हैं सो करते हैं। पर जगदीश जो करते हैं, वह प्राणीकी भलाईके लिए करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। जगदीशकी इच्छासे ही कई रानियोंके होते हुए भी, महाराजने पिंगलाका पाणिग्रहण किया। जगदीशकी इच्छासे ही, वह सब विद्या-बुद्धि बिसराकर रानीके क्रीतदास हुए। इससे महाराजका बड़ा उपकार हुआ। ऐसा भला हुआ, जिसकी तुलना नहीं। उनको संसारसे विरक्ति न होती, तो क्या आज उनका नाम इह जगत्में अमर रहता? उनकी कीर्त्ति अचल होती? उन्होंने जिस महोच्च

पद—परमपद—की प्राप्ति करली, उसकी प्राप्ति कर सकते ? हरगिज़ नहीं। इसीसे कहना पड़ता है, कि महाराज और गोस्वामी तुलसीदासजी दोनोंके, आरम्भमें, परले सिरेके विषयी और स्त्रैण होनेसे ही उन्हें वैराग्य हुआ। बुराईसे भलाई हुई और परमात्मा जो करता है, वह मनुष्यकी भलाईके लिये ही करता है, यह बात सत्य प्रमाणित हुई। विषवृक्षसे अमृत-फलकी उत्पति हुई। ठीक गोस्वामी तुलसीदासजीकी-सी घटना घटी। गुसाईंजीको भी स्त्रीके ही कारणसे वैराग्य हुआ और हमारे महाराजको भी स्त्रीके ही कारणसे। हाँ, घटनाक्रममें थोड़ा अन्तर अवश्य है।

स्त्रियोंके स्वभावकी कोई बात समझमें नहीं आती। ये अपने व्याहता, सुन्दर-खूबसूरत, नौजवान, बलवान, वीर्य्यवान, चतुर और कामकलाकुशल पतिको त्यागकर, एक नीच-कुलोत्पन्न गँवार, बदसूरत काले-कलूटे, अधेड़ और बूढ़ेपर मरने लगती हैं। ये पुरुषमात्रको भोगनेकी इच्छा रखती हैं। इन्हें वयस और रूप-कुरूपसे कोई मतलब नहीं। इन्हें न कोई प्यारा है न कुप्यारा। जिस तरह गाय नयी-नयी घास पसन्द करती है; उसी तरह ये नित नये पुरुषोंको चाहती हैं। जबतक इन्हें कोई चाहनेवाला नहीं मिलता या मौक़ा हाथ नहीं आता, तभी तक ये सती बनी रहती हैं। ये अपने सच्चे प्रेमीको नहीं चाहतीं, उससे घृणा करती हैं अथवा उदासीन रहती हैं; किन्तु जो इन्हें नहीं चाहता, जो इनके साथ चालें चलता है, जो परले सिरेका धूर्त और दग़ाबाज

होता है, जो दुर्गुणोंकी मूर्त्ति और दुष्टताकी खान होता है, उसके लिये ये अत्यातुर रहती हैं।

जो पुरुष स्त्रियोंको सद्‌गुणशालिनी और उत्तम स्वभाववाली समझते हैं, वे बड़ी ग़लती करते हैं। ये इतनी चालाक और मायाविनी होती हैं, कि अच्छे-से-अच्छे चालाकको भी अपने कुकर्मोंका पता नहीं लगने देतीं। ये किसीकी भी बातको जान-सुनकर पेटमें नहीं पचा सकतीं, पर अपनी बातको छिपाना ये ख़ूब जानती हैं। जब ये कुकर्मोंपर उतर पड़ती हैं, तब इन्हें लोक-लाज, लोकनिन्दा प्रभृतिकी परवा नहीं रहती। दुनियाँ बुराई करे करो; माता-पिता, भाई और जेठ ससुर प्रभृतिकी नक-कटाई हो तो हो—यहाँ तक कि, इनके जीवनमें सन्देह हो जाय, तो हो जाय; पर ये जिस बातको धार लेती हैं, उससे पीछे क़दम नहीं रखतीं। ये देखनेमें पुष्पवत् कोमल दीखती हैं, पर हृदय इनका वज्रवत् कठोर होता है। इनको किसीपर दया-मया नहीं। इन्हें तो अपनी कुवासना पूरी करनेसे मतलब। अपनी कुवासना पूरी करनेके लिये, ये सब सुखोंके देनेवाले पतिके प्राण नाश कर देती हैं, अपने जेठ ससुरको मरवा डालती हैं। यहाँ तक कि अपनी पेटकी औलाद तककी हत्यापर उतारू हो जाती हैं। कहा है—

आस्तां तावत्किमन्येन दौरात्म्येनेह योषिताम्।
विधृतं स्वोदरेणापि घ्नन्ति पुत्रं स्वकं रुषा॥

स्त्रियोंके दौरात्म्यकी बात कहाँ तक कहें ? ये क्रोधमें आकर अपने पेटके पुत्रको भी मार डालती हैं।

महारानी पिङ्गलापर महाराज भर्तृहरि जान देते थे, अष्ट पहर चौंसठ घड़ी उसीका ध्यान रखते थे। महारानी रातको दिन और दिनको रात कहती, तो महाराज भी वैसा ही कहते। हर तरह उसीकी आज्ञा पालन करने और हाँ में हाँ मिलानेको तैयार रहते थे। महाराजमें कोई दोष भी न था। आप पूर्ण विद्वान्, बलवान्, वीर्य्यवान् और सर्व्वकला-कुशल पुरुष थे; पर महारानी ऊपरसे आपके चाहनेका ढोंग करती थी, और भीतरसे आपसे उदासीन रहकर एक नीचको चाहती थी। महारानी जैसी रूपवती थी, वैसी ही चालाक, मक्कारा और दुश्चरित्रा थी। ऊपरसे गोरी और भीतरसे काली, प्रत्यक्षमें सुन्दर और अप्रत्यक्षमें असुन्दर, प्रकटमें सती और अप्रकटमें असती थी। उसने लोक-निन्दा और कुलकी कानकी परवा न करके, एक नीच नमक-हराम अस्तबलके दारोग़ासे आशनाई कर ली। यह बात उसने बहुत दिनोंतक महाराजसे छिपाई। महाराज जब महलोंमें आते, तब वह अपने हाव-भाव और नाज़-नख़रोंसे महाराजका मन हाथोंमें कर लेती। उनसे ऐसी-ऐसी बातें करती, जिनसे महाराज यही समझते, कि मेरी रानी सच्ची सती-साध्वी है। इस ज़मानेकी दूसरी सावित्री है। पर उनके पीठ फेरते ही वह दारोग़ाको बुलवाकर उसके साथ ऐश-आराम करती। महाराज बेचारे इस त्रिया-चरित्रको समझ न सकते थे। किसीने ठीक ही कहा है:—

नृपस्य चित्तं कृपणस्य वित्तं मनोरथं दुर्जन मानवानां।
स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः॥

राजाके चित्तको, कृपणके धनको, दुष्टोंके मनोरथको, स्त्रियोंके चरित्रको और पुरुषके भाग्यको देवता भी नहीं जानते, मनुष्य कौन चीज़ है ?

बहुत दिनों तक यह कलंक-कथा छिपी रही। मनुष्य अपने पापोंको कितना ही छिपावे, पर एक न एक दिन वे प्रकट हो ही जाते हैं, एक न एक दिन संसार उनको जान ही जाता है। मनुष्य, मनुष्यके गुप्त कामोंको नहीं देख सकता; मनुष्य मनुष्यके दिलका हाल नहीं जान सकता; पर परमात्मासे कुछ नहीं छिपता। उसकी नज़र हर जगह पहुँचती है। वह सात कोठोंके अन्दर भी मनुष्यके कुकर्मोंको देख लेता है। वह घट-घट निवासी अन्तर्य्यामी मनुष्यमात्रके हृदयके भीतरकी बातको जानता है। जब तक उसकी इच्छा नहीं होती, मनुष्यके कुकर्म छिपे रहते हैं; उसकी इच्छा होते ही उन्हें जगत् जान जाता है। मनुष्य, मनुष्यकी आँखोंमें धूल झोंक सकता है; पर परमात्माकी आँखोंमें धूल नहीं झोंक सकता है। जब तक समय नहीं आया, महारानीकी पाप-लीला छिपी रही। समय आते ही, पहले-पहल वह गुप्त रहस्य राजकुमार विक्रमको मालूम हुआ। महारानीके कुकर्मकी बात उनके कानों तक पहुँच गई। हाँ, महाराज अँधेरे हीमें रहे।

भौजाईके पर-पुरुषरता होनेकी बातसे राजकुमार विक्रमको असह्य मनोवेदना हुई। उनका खाना-पीना, सोना-बैठना सब छूट

गया। सोते-जागते हरदम वही ख़याल उनके नेत्रोंके सामने चक्कर लगाने लगा। अपने सुप्रसिद्ध उच्च कुलमें दाग़ लगने और पूज्य भाईके अनिष्टकी आशंकासे उन्हें नींद हराम हो गई। करवटें बदलते और छतकी कड़ियाँ गिनते रातोंपर रातें गुज़रने लगीं। उन्होंने अनेक बार महाराजसे यह बात कहनेका विचार किया; पर महाराजका महारानीपर निश्चल विश्वास और अटल प्रेम देखकर साहस न हुआ। शेषमें, एक दिन मौक़ा पाकर, एकान्तमें उनसे बात छेड़ ही तो दी। वे बोले,—"पूज्य अग्रज ! आप मेरे पिताके समान ज्येष्ठ भ्राता हैं। आप सब तरहसे चतुर होशियार और परले सिरेके बुद्धिमान् हैं; पर एक जगह आप धोखा खा रहे हैं। मेरा ऐसा कहना, छोटे मुँह बड़ी बात करना है। इच्छा तो नहीं होती कि, आपसे अर्ज़ करूँ। मेरी साँप छछूँदरकीसी गति हो रही है; कहूँ तो ख़राबी, न कहूँ तो ख़राबी। न कहनेसे कुलमें दाग़ लगता है, बदनामी होती है और आपके जीवनमें सन्देह होता है; कहनेसे आपका भय लगता है। आशा नहीं कि, आप मेरी सच्ची बातपर विश्वास करें। दिलको बहुत रोका, बहुत समझाया पर आज वह न माना, तब मजबूर होकर आपसे अर्ज़ करनेका मन्सूबा किया। कहिये, क्या आप अपने प्यारे छोटे भाई और अपने तुच्छातितुच्छ सेवककी बातपर कान दीजियेगा ?

"सुनिये, भाई साहब ! क्या कहूँ, कहा नहीं जाता, गला रुका आता है, ज़बान लड़खड़ाती है; पर लाचारीसे कहना पड़ता है।

मैंने भाभीके सम्बन्धमें एक कलङ्कपूर्ण बात सुनी है। सुनकर ही मैंने उसे ठीक नहीं मान लिया; उसकी पूरी तरहसे पोशीदा तौरपर तहक़ीक़ात भी की। जाँचमें बातके सच्ची उतरनेपर, मैंने आपसे कहनेका दृढ़ संकल्प किया है। आपसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि, आप सावधान होकर चलें; अत्यधिक विश्वास अच्छा नहीं। शास्त्रकारोंने कहा है—

'नदीनांच नखीनांच शृङ्गीणां शस्त्रपाणिनां।
विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥'

"यह राई-रत्ती सच है। इसमें ज़रा भी झूठ नहीं। यह महावाक्य बड़े भारी अनुभवके बाद कहा गया है। महाराज—आप भाभीकी मायामें भूल रहे हैं। स्त्रियोंका जो विश्वास करते हैं, उनको सती-साध्वी समझे रहते हैं, उनपर सन्देह भी नहीं करते, वे बड़ी भूल करते हैं। किसी विद्वान्ने ठीक ही कहा है—

'यदि स्यात्पावकः शीतः प्रोष्णो वा शशलांछनः।
स्त्रीणां तदा सतीत्वं स्याद्यदि स्याद् दुर्जनो हितः॥'

"अगर आग शीतल हो जाय, चन्द्रमा गर्म हो जाय, दुर्जन हितकारी हो जाय; तो स्त्रियोंके सतीत्वका विश्वास हो। महाराज स्त्रियोंकी मीठी बातोंमें न भूलना चाहिये। इनकी बातें जैसी हैं, वैसा दिल नहीं है। कहा है—

'सुमुखेन वदन्ति वल्गुना प्रहरन्त्येव शितेन चेतसा।
मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदये हालाहलं महद्विषम्॥'

"स्त्रियाँ सुन्दर मुँहसे मनोहर-मनोहर बातें करती हैं और तीक्ष्ण चित्तसे प्रहार करती हैं। इनकी बातोंमें मधु और हृदयमें हलाहल विष रहता है।"

राजकुमार विक्रमकी सारी बातें चुपचाप सुनकर महाराजने कहा,—"भाई तुमको भ्रम हुआ है। तुम्हारी बुद्धि विकृत हो गई है; तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है। महारानी पिङ्गला आदर्श सती हैं। इस समय उनके जैसी सती विरला हैं। वह रात-दिन मेरे लिये प्राण देती हैं, मेरा ही जप-तप और ध्यान करती हैं, मेरे सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी रही हैं। ऐसी सतीको असती कहकर, उनपर कलंक-कालिमा पोतकर तुम अच्छा नहीं करते। खैर, जो हुआ सो हुआ। तुम छोटे भाई हो, इससे क्षमा करता हूँ; अगर और कोई होता, तो अभी शूलीपर चढ़वा देता। आज तो कहा सो कहा, किन्तु भविष्यमें फिर कभी ऐसी बेहूदा बात ज़बानसे न निकालना।"

राजकुमारने, महाराजके इतना कहनेपर भी, उन्हें बहुत-कुछ समझाया; कुछ प्रमाण भी दिये; पर पिङ्गलाके रंगमें रँगे हुए महाराजपर कुछ भी असर न हुआ। अन्तमें जब राजकुमारने इससे सुफलकी सम्भावना न देखी, तब मनमें यह समझकर कि, समय आये बिना कोई काम नहीं होता, समय आनेपर भाईकी आँखें आप ही खुल जायँगी; उस समय चुप रह जाना ही उचित समझा।

कह चुके हैं, कि महारानी पिङ्गला बड़ी चालाक़ थीं। उन्हें यह बात पहले ही मालूम हो गई, कि मेरे कुकर्मकी बात—मेरे

पापकर्मका रहस्य—राजकुमार जान गये हैं। इसलिये उन्होंने पहलेसे ही चाल चलनी शुरू कर दी। वे महाराजके प्रति पहलेसे भी अधिक प्रेम-भाव दिखाने लगीं। जब उन्हें अच्छी तरहसे मालूम हो गया, कि महाराजके दिलमें उनकी ओरसे ज़रा भी वहम नहीं है, उनका उनपर सोलह आने विश्वास है, उन्होंने एक दिन उन्हें .खूब ही राज़ी करके, राजकुमारके विरुद्ध उनके कान भर दिये। कह दिया,—"आप बुरा न मानियेगा; आपके छोटे भाईकी नीयत बड़ी ख़राब है। मैं उनकी माताके समान हूँ; पर वे इस बातको न समझकर मुझे बुरी दृष्टिसे देखते हैं। और कोई होती, तो उनके फन्देमें फँस जाती; पर मुझपर उनका फन्दा कोई काम नहीं कर सकता। परमात्मा ऐसे कुकर्मीका मुँह न दिखावे। मैंने सुना है कि, वह अपने नगर-सेठकी पुत्र-बधूपर भी आशिक़ हैं। उसके पीछे उन्होंने बहुत दिनोंसे दूतियाँ लगा रक्खी हैं। उस बेचारीको अनेक प्रकारसे फुसलाया, तरह-तरहके लालच दिये; पर वह भी मेरी तरह सच्ची पतिव्रता है, इसलिये आजतक उनके जालमें न फँसी। अब सुनती हूँ, उन्होंने नगर-सेठको धमकी दी है। नहीं जानती, यह बात, कहाँ तक सच है। वे आपके सुनाममें बट्टा लगाते हैं। अतः मेरी विनीत प्रार्थना है, कि आप उनपर नज़र रक्खें—उनसे सावधान रहें।"

महारानीकी इन बातोंको सुनकर महाराज सन्न हो गये, मुँह सूख गया, चेहरा तमतमा आया, आँखें लाल हो गईं। उनक

मन कभी कहता थाः—"नहीं नहीं, ये सब नितान्त अमूलक बातें हैं। तुम्हारा भाई विक्रम ऐसा नहीं है। वह पण्डित है, वह पर-स्त्रियोंको अपनी निज जननीके समान समझता है।" कभी उनका मन कहता था,—"हो सकता है, विक्रमका चरित्र ख़राब हो। पिंगला सी सती नारी मिथ्या दोष नहीं लगा सकती। इसे उससे क्या वैर है? हाय! भर्तृहरिका भाई और ऐसा दुराचारी!" इस तरह उधेड़-बुन करते-करते, ताना-बाना बिनते-बिनते, कभी इधर कभी उधर भटकते-भटकते, शेषमें महाराजाका मन महारानी पिङ्गलाकी बातोंपर ही ठहर गया। उन्हें विश्वास हो गया, कामिल यक़ीन हो गया, कि विक्रम सचमुच ही दुराचारी और व्यभिचारी है; पर इतनेपर भी, उन्होंने प्रकाश्यमें भाईसे कुछ न कहा।

इधर तो रानीने महाराजको यही पट्टी पढ़ायी; उधर नगर-सेठको बुलवाकर उससे कहलवाया कि, तुमसे कहूँ सो करो; नहीं तो तुम्हारी जानकी खैर नहीं। राजा मेरी मुट्ठीमें हैं। मैं तुम्हारे बच्चे-बच्चेको कोल्हूमें पिलवाकर तुम्हारा सर्वस्व अपहरण करा लूँगी।

नगर-सेठ ही क्यों—सारा नगर जानता था, कि महाराज पिंगलाके हाथकी कठपुतली हैं। वह जो नाच नचाती है महाराज वही नाच नाचते हैं। इसलिये सेठजीने हाथ जोड़कर कहलवाया—"महारानीजी! आप इतनी बातें क्यों कहती हैं

दास तो आपकी आज्ञासे बाहर नहीं। आपका हुक्म सर-आँखोंपर। जो हुक्म कीजिये, गुलाम वही करनेको तैयार है।

सेठकी यह बात सुनकर रानीने कहलवाया—"आप जानते ही हैं, कि राजकुमार विक्रम कैसे अत्याचारी हैं। प्रजाको कितना कष्ट देते हैं। महाराज स्वयं तो राजकाज देखते नहीं, सारा काम राजकुमार ही चलाते हैं। मैं नहीं चाहती, कि वह प्रजाको कष्ट दें। इस वास्ते किसी तरह महाराजका मन ख़राब करके, उन्हें यहाँसे नौ-दो ग्यारह करवाना चाहती हूँ। यह काम आपकी सहायतासे बड़ी आसानीसे हो जायगा। आप कल राज-सभामें जाकर पुकार कीजिये, कि महाराज! आपके छोटे भाई साहब बहुत ही अत्याचारी, अनाचारी और व्यभिचारी हो गये हैं। वे बहुत दिनोंसे मेरी पुत्र-बधूको अपनी प्रणयिनी बनानेकी चेष्टा कर रहे हैं। उन्होंने उसके फँसानेके लिये बड़े-बड़े जाल फैलाये, पर मेरी सती-सावित्री सी पुत्र-बधू उनके जालमें न फँसी; इसीसे मेरी इज्जत-आबरू अबतक बची हुई है। आप यदि न सुनेंगे, तो मैं आपका राज्य छोड़कर किसी और राजाके राज्यमें चला जाऊँगा।"

नगर-सेठ रानीकी बातोंपर राज़ी हो गया। दूसरे ही दिन, जब कि महाराजकी सभा लगी हुई थी, हाली-मुहाली, कामदार, मुसाहिब, मंत्री, सेनापति प्रभृति सब बैठे हुए थे; नगर-सेठ, दरवाज़ेसे ही, कानोंके पर्दे फाड़नेवाला "फरियाद है" "फरियाद है" का शोर मचाता हुआ, राज-सभामें पहुँचा। महाराजने उसे सामने

बुलाकर उसकी फरियाद सुनो। उसने रानीकी सिखाई हुई सारी बातें ज्योंकी त्यों महाराजको कह सुनाईं। महाराजके दिलमें रानीने पहले ही ये बातें बैठा दी थीं। अब सेठकी शिकायतसे उन्हें कोई सन्देह न रह गया। रानीकी कही हुई सारी बातें उनके नेत्रोंके सामने नाचने लगीं। उनका चेहरा क्रोधके मारे लाल हो गया।

राजकुमार उस वक्त सभामें ही बैठे थे। वे इस बातको सुन-कर, मनमें समझ गये, कि यह षड्यन्त्र पिङ्गलाका रचा हुआ है। उन्होंने सेठसे कहा,—"सेठजी! भगवान्का भय करो, मनुष्यसे मत डरो। इस बुढ़ापेमें स्वार्थके लिये झूँठ बोलकर क्यों पापकी गठरी बाँधते हो? परमात्मा सब देखता है। उसकी नज़रोंसे कुछ भी नहीं छिपा है। मैं तुम्हारी पुत्र-बधूको जानता भी नहीं। मैं नहीं जानता, वह काली है या गोरी, भली है या बुरी। मेरी तो वह माताके समान है। मैं पर-स्त्रियोंको अपनी जननीके समान समझता हूँ। जिसमें आपका पुत्र तो मेरा मित्र है। मित्रकी स्त्री तो सच्ची माता ही होती है। कहा है:—

राजपत्नी गुरोःपत्नी मित्रपत्नी तथैव च।
पत्नीमाता स्वमाता च पंचैता मातरःस्मृताः॥

"राजाकी स्त्री, गुरुकी स्त्री, मित्रकी स्त्री, स्त्रीकी माता और अपनी माँ—ये पाँच माता कहलाती हैं। इसके सिवा, मैं अपनी विवाहिता स्त्रीको छोड़कर, जगत्की सभी नारियोंको माता समझता हूँ, क्योंकि जो पराई स्त्रियोंको माताके समान नहीं

मानता, वह महा मूर्ख है। उसके पापका प्रायश्चित्त नहीं। पर-स्त्री-गामीको नरकोंकी असह्य यंत्रणा सहनी पड़ती है। शास्त्रोंमें कहा है—

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति सपश्यति॥

"पर-स्त्रियोंको माताके समान, पराये धनको मिट्टीके ढेलेके समान और सब प्राणियोंको अपने समान समझता है, वही देखता है और तो अन्धे या अज्ञानी हैं।"

आप धर्मसे डरिये; धर्मके सिवा कोई सच्चा साथी नहीं है। और सब जीतेजीके साथी हैं, मरनेपर कोई साथ न देगा। आप मुझपर वृथा दोषारोप करके यदि अपना मतलब बना लोगे, तो क्या होगा? पार्थिव धन-वैभव आपके साथ न जायँगे। धन-वैभवका क्या ठिकाना? आज है, कल नष्ट हो जाय। कहा है:—

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

शरीर अनित्य है, ऐश्वर्य्य अनित्य हैं, और मृत्यु सदैव पास है, इसलिये धर्म करो।

और भी कहा है—

चलालक्ष्मीश्चलाः प्राणश्चले जीवितमन्दिरे।
चलाचले च संसारे धर्म एकोहि निश्चला॥

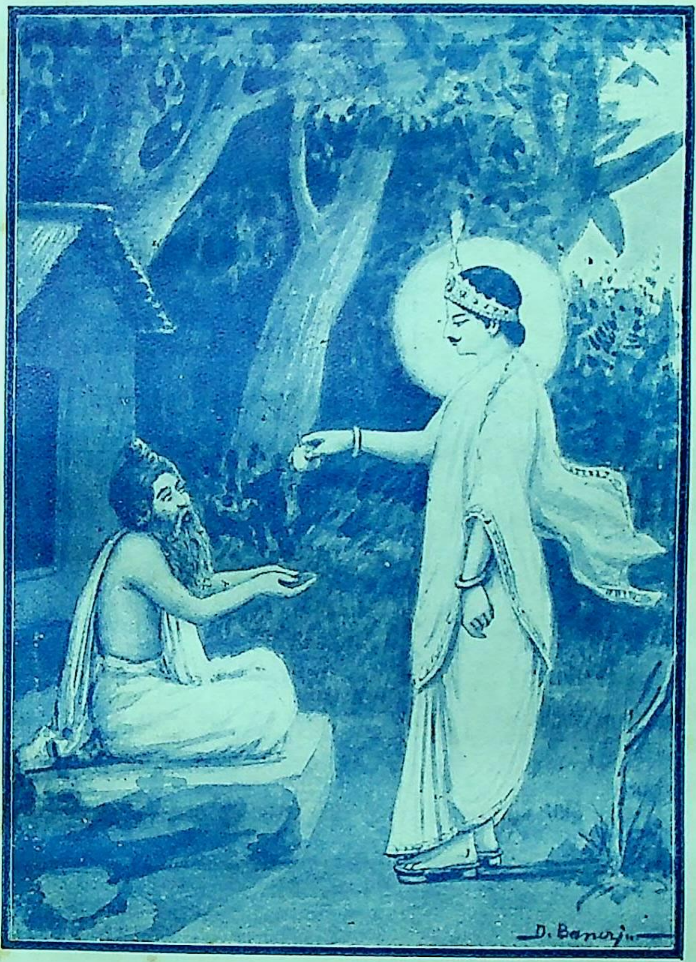
"इस चराचर जगत्में धन-प्राण सभी चलायमान हैं; केवल धर्म ही निश्चल है। अतः सेठजी! धर्मको न छोड़ो। धर्मसे डर-कर, आप अपनी बातको वापिस लीजिये। आप किसीके बहकानेसे मुझपर मिथ्या दोष लगा रहे हैं। जब इस बातकी जाँच की जायगी, तब सारा भण्डा फूट जायगा—आपका जाल खुल जायगा। उस समय आपकी क्या दशा होगी, जानते हो?"

राजकुमार की ये बातें सुनते ही, महाराज भर्तृहरि लाल-पीली आँखें करके बोले—"अरे कुलाङ्गार! नीच! अधम! पापी! तू मेरे सामने ज़ियादा बातें न बना। मैं तेरे सब हालोंको जानता हूँ। अब तेरी चालाकी और मक्कारी न चलेगी। यदि अपनी जीवन-रक्षा चाहता है; तो इसी क्षण मेरे नगरसे निकल जा! शीघ्र काला मुंह कर! मैं तेरा यह काला मुँह देखना पसन्द नहीं करता! शीघ्र ही मेरी नज़रके सामनेसे हट जा, नहीं तो तुझे अभी शूलीपर चढ़वा दूँगा! राजा पिता है; प्रजा पुत्र समान है। राजा ही यदि ऐसा अन्याय करे, तो प्रजा किसके पास जाय? मैं प्रजाके सुखसे सुखी और प्रजाके दुःखसे दुःखी रहता हूँ। दूर हो मेरे सामनेसे! दूर हो!!"

भाईकी ये बातें सुनकर राजकुमार विक्रमने कहा—"भाई! मैं तो अभी—इसी क्षण चला जाऊँगा। आपके राजमें जल भी न पीऊँगा। पर आप क्रोधान्ध होकर क्या कर रहे हैं! आपको कम-से-कम इस मुक़दमेकी जाँच तो करनी थी। इस तरह इक-

तरफा फैसला देना, किसी भी राजा या विचारकको शोभा नहीं देता। अगर आप इसी तरह न्याय करेंगे, तो आपकी प्राणप्यारी प्रजाका नाश हो जायगा, वह आपसे दुःखी होकर और राज्योंमें जा बसेगी। आप जिसके हाथकी कठपुतली बन रहे हैं, वह आपके साथ छल कर रही है। उसके सुखमें मैं ही एक काँटा हूँ; इसलिये वह मुझे निकलवानेकी ग़रज़से ही ये जाल रच रही है। खैर, मैं तो जाता हूँ; पर आपके अनिष्टकी आशंका अब भी मेरे हृदयमें खलबली मचाती है। आपको एक दिन पछताना होगा। आपका हृदय मुझे याद करके रोयेगा। परमात्मा आपका मंगल करे, आपकी आंख भी मैली न हो।" यह कहकर राजकुमार फौरन सभा-भवनसे निकल वनको चले गये। महाराज सिरपर हाथ धरकर कुछ सोचमें पड़ गये। इसके बाद कई वर्ष निकल गये। कोई नई घटना न घटी।

नगरीका एक दरिद्र ब्राह्मण, अपनी इष्ट-सिद्धिके लिये वनमें जाकर किसी देवताकी घोर तपस्या करता था। उसे तप करते हुए अनेक वर्ष बीत गये। तपःकष्टसे जब उसका शरीर एकदम कृश हो गया; तब देवताका आसन हिला। उसने ब्राह्मणके सामने सशरीर आकर उससे कहा—"ब्राह्मण! मैं तेरी तपस्यासे अतीव संतुष्ट हुआ हूँ, इसलिये तुझे यह "फल" देता हूँ। यह फल मामूली फल नहीं है। इसका नाम "अमरफल" है। इसके खानेवालेपर मौतका ज़ोर नहीं चलता। मृत्यु उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकती। तू इसे खाकर पृथिवीपर अमर रह और



देवता ब्राह्मणकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उसे अमरफल प्रदान कर रहे हैं।

सुखपूर्वक अपनी ज़िन्दगी बसर कर !" यह कहकर और फल देकर देवता अन्तर्द्धान हो गया।

ब्राह्मण उस "अमरफल"को लेकर अपने घर आया और अपनी स्त्रीको उस फलका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। ब्राह्मणी उस फलकी बात सुनकर सन्तुष्ट नहीं, वरन् असन्तुष्ट हुई। उसने कहा—"नाथ! देवताने आपको 'अमरफल' दिया है; पर इससे अपना कष्ट घटनेके बजाय उल्टा बढ़ेगा। अगर वह धन देते तो हमारा भला होता। हम लोग जन्मसे दरिद्र हैं। हमारे घरमें प्रत्येक वस्तुका अभाव है। आजकल धन बिना सुख कहाँ? धन बिना समाजमें प्रतिष्ठा कहाँ? जिसके पास धन है, वही सुखी है। निर्धनको इस जगत्में सुख नहीं। दरिद्रसे भाई-बन्धु लजाते हैं; उसे अपना कहनेमें भी उन्हें शर्म आती है; इसलिये वे लोग अपना रिश्ता या सम्बन्ध तक छिपाते हैं। दरिद्र विपत्तियोंका घर है। यह मरणका दूसरा पर्य्याय है। नाथ! दरिद्र देहधारियोंको परम दुःख और अपमान है। दरिद्रको नाते-रिश्तेदार नाश हुआ ही समझते हैं। शौचसे शेष रही मिट्टीकी क़ीमत है, पर दरिद्रकी क़ीमत नहीं; निर्धन उस मिट्टीसे भी निकम्मा है। हम लोग दरिद्रके मारे यों ही इस ज़िन्दगीसे आरी आ रहे हैं, अब तो अपना कष्ट और भी बढ़ जायगा। अब तक यह आशा तो थी, कि कभी मृत्यु आकर हमारे कष्टोंका अन्त कर देगी, पर जब यह फल खा लिया जायगा, तब तो अनन्त काल तक महादारिद्रय-कष्ट भोगना

पड़ेगा। सारी ज़िन्दगी, जिसका ओर-छोर नहीं, दरिद्रावस्थामें ही व्यतीत करनी पड़ेगी। यह फल तो उनके लिये अच्छा है, जिन्हें परमात्माने धन-रत्न-राजपाट प्रभृति सभी संसारी सुख दिये हैं। आप यदि मेरी सलाह मानें, तो इसे महाराजा भर्तृहरिको दीजिए और उनसे बदलेमें धन लेकर सुखसे शेष जीवन व्यतीत कीजिये।"

बहुत कुछ तर्क-वितर्क और सोच-विचारके बाद ब्राह्मण देवता भी इसी बातपर जम गये। उन्हें ब्राह्मणीकी बात ही सोलह आने ठीक जँची। इसलिये वह कपड़े पहन, फल हाथमें ले, महाराजकी सभामें पहुँचे। चोबदारने ख़बर दी। महाराजने उस ब्राह्मणको अपने निकट बुला लिया और पूछा—"देवता! क्या चाहते हो? आज्ञा कीजिये; इसी क्षण आपकी आज्ञा पालन की जायगी।" ब्राह्मणने उस अमरफलकी सारी कहानी सुनाकर, वह फल राजाके हाथमें दे दिया। राजाने उसे खुशीसे ले लिया और ब्राह्मणको कई लक्ष सुवर्ण मुद्रा देनेका हुक्म दिया। ब्राह्मण अशरफियाँ लेकर हँसता-हँसता अपने घर आया।

अब महाराज मन-ही-मन विचार करने लगे—"वास्तवमें यह फल परमात्माने ही दया करकेमेरे पास भिजवाया है। पर अब यह समझमें नहीं आता, कि इस फलको मैं खाऊँ या अपनी प्राण-प्रतिमा, प्राणाधिका, प्राणप्रदा रानी पिङ्गलाको खिलाऊँ। अगर मैं इसे खाऊँगा, तो सदा अमर रहूँगा; मेरा रूप-यौवन सदा स्थिर रहेगा, दुःखदायी बुढ़ापा पास न आवेगा; पर मेरी



तपस्वी ब्राह्मण महाराजाधिराज भर्तृहरिको "अमरफल" दे रहा है।



महाराजाधिराज भर्तृहरि "अमरफल" जैसे दुर्लभ फलको आप न खाकर, अपनी प्यारी रानी पिंगलाको देते हैं।

प्यारी पिङ्गला, मेरे सुखोंकी मूल पिङ्गला तो कुछ दिन बाद ही बूढ़ी हो जायगी—उसका यह रूप-लावण्य नष्ट हो जायगा। उस दशामें, मैं किसके साथ सुख उपभोग करूँगा ? इसलिये मैं इसे पिङ्गलाको ही खिलाऊँगा। वह यदि अमर रहेगी, वह यदि बूढ़ी न होगी, यदि उसकी सौन्दर्य-प्रभा ज्योंकी त्यों बनी रहेगी; तो मैं उसीके साथ संसारी सुखोंका आनन्द उपभोग करूँगा। यह सोच और इस विचारपर दृढ़ हो, महाराजा फलको हाथमें लेकर रनवासको चल दिये।

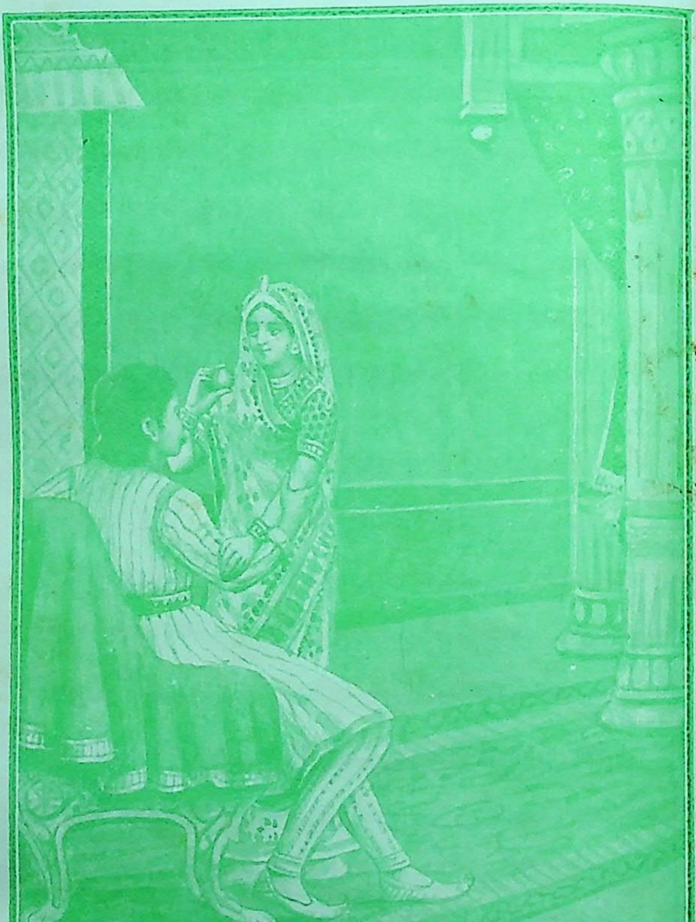
महाराजके महलके द्वारपर पहुँचते ही दासियोंने जाकर महारानीको महाराजके आगमनकी सूचना दी। पिङ्गला शीघ्र ही तैयार हो उन्हें लेनेके लिये द्वार तक आई और उनके गलेमें हाथ डाल उन्हें अन्दर लिवा ले गई। उन्हें एक परमोत्कृष्ट आसन-पर बिठा, आप भी उनकी बग़लमें बैठ गई और अपने हाव-भाव और नाज़ो-नख़रोंसे उनका मन अपने हाथोंमें करने लगी। शेषमें पूछा—"महाराज ! आज असमयमें इस दासीपर कैसे कृपा की ?" महाराजने कहा—"प्रिये ! आज एक अपूर्व फल मेरे हाथ लगा है। उसीको लेकर तुम्हारे पास आया हूँ।"

रानीने कहा—"महाराज ! वह फल मुझे दिखाइये और यह भी बताइये, कि उसमें ऐसा कौनसा गुण है, जिससे आप उसकी इतनी लम्बी-चौड़ी तारीफ़ करते हैं ?"

राजाने कहा—"रानी यह फल, जिसे आप मेरे हाथमें देख रही हैं, "अमरफल" है। इसे एक देवताने एक ब्राह्मणको उसके

तपसे सन्तुष्ट होकर दिया था। ब्राह्मणने इसे मुझे दिया। इसमें यह गुण है, कि इसका खानेवाला न कभी बूढ़ा होता है और न कभी मरता है; सदा नौजवान बना रहता है। मैं चाहता हूँ कि, इस फलको तुम खाओ, जिससे तुम सदा नवयुवती बनी रहो—तुम्हारा रूप-लावण्य सदा आज जैसा ही बना रहे।" यह कहकर राजाने वह अमरफल रानीके हाथमें दे दिया।

रानी उस फलको हाथमें लेकर कहने लगी,—"नहीं प्राणनाथ! आप ही इस फलको खायँ; क्योंकि आप ही मेरी माँगके सिन्दूर हैं, आपहीसे मेरा सौभाग्य है, आपही मेरे सूर्य और चाँद हैं, आपहीसे मुझे जगत्में उजियाला है। परमात्मा सदा आपको अजर-अमर रखे, इसीमें मेरा सुख-सौभाग्य है।" रानीकी ये बातें बनावटी थीं। मुँहमें राम और बग़लमें छुरीवाली बात थी। उसके पेटमें कपटकी कतरनी चल रही थी। राजा उसके जालमें पूर्णरूपसे फँसे हुये थे, इसलिये वह उसके फरेबोंको कैसे समझ सकते थे? उन्होंने फिर कहा,—"नहीं, यह फल तुमको ही खाना होगा। तुम्हारे फल खानेसे ही मुझे सन्तोष होगा।" रानी तो यह चाहती ही थी, फलको राजा न खावे और वह मेरे हाथमें रहे; इसलिये शेषमें वह राज़ी हो गई और कहने लगी—"आपकी आज्ञाको मैं उल्लङ्घन नहीं कर सकती। जिसमें आप राज़ी, उसीमें मैं राज़ी हूँ। आपके ही सन्तोषमें मुझे सन्तोष है। आपका जब यही हुक्म है, तो मैं ही इस फलको खाऊँगी; पर यह देवताका दिया हुआ है, इसलिये इसे अशुद्ध अवस्थामें न



महाराजाधिराज भर्तृहरिकी परमप्यारी रानी पिङ्गला, महाराजका दिया हुआ 'अमरफल' अपने यार दारोग़ाको दे रही है।

खाऊँगी। स्नान-ध्यान पूजा-पाठ करके खाऊँगी।" राजा उस मक्काराकी बातपर राज़ी हो गये और फल देकर सभामें लौट आये।

राजाके पीठ फेरते ही, रानीने दासी भेजकर, अपने उप-पति अस्तबलके दारोग़ाको बुला भेजा। वह शैतान सन्देशा पाते ही दौड़ा चला आया। रानी उसे लेनेको दरवाज़ेपर पहुँची और उसके गलेमें हाथ डालकर महलमें ले आई। उसे मख़मली पलँगपर बैठाकर, आप उसकी गोदमें पड़ गई और उसे प्यार करने लगी।

दारोग़ाने पूछा—"रानी साहिबा, आज यह ग़ुलाम अस-मयमें ही क्यों याद किया गया? क्या बात है?"

रानी—प्यारे! आज महाराजने मुझे एक फल दिया है। उसके खानेसे मनुष्य अमर बना रहता है, जवानी सदा स्थिर रहती है, बुढ़ापा कभी नहीं आता। राजा साहब मुझसे उस फलके खानेको कह गये हैं। मैंने उनसे वादा भी कर लिया है। पर प्राणाधार! संसारमें मुझे आपसे अधिक कोई प्रिय नहीं, आप ही मेरे सुखके कारण हो, आप ही से मेरा आनन्द है; इसलिये मैं चाहती हूँ, कि आप ही उस फलको खावें।

दारोग़ा—अच्छा प्यारी! आपकी आज्ञा सर आँखों पर। मैं ही इसे खाऊँगा। पर वह देव-दत्त वस्तु है, इसलिये पवित्र होकर खानी चाहिये। मैं अभी जाकर क्षिप्रामें स्नान करूँगा और उसे खा लूँगा।

यह सुनते ही रानीने दारोग़ाको वह फल दे दिया। वह भी फल लेकर चलता हुआ। रानी उसे द्वार तक पहुँचा आई। दारोग़ा

जाते-जाते राहमें सोचने लगा—"उस रण्डीको मैंने अच्छा चकमा दिया। मैं इस फलको खाऊँगा, तो क्या फ़ायदा होगा? यदि मैं अपनी आशनाको खिलाऊँगा, तो सचमुच ही बड़ा लाभ होगा। मेरी प्राणप्यारी इसके खानेसे सदा आज जैसी ही रूप-लावण्य-सम्पन्ना नवयुवती बनी रहेगी और मैं सदा उसके साथ आनन्द उपभोग करूँगा।" यह सोचता हुआ वह अपनी आशना—वेश्याके मकानपर जा पहुँचा। उस समय वह वेश्या एक तकियेके सहारे बैठी हुई थी। उसके चन्द यार उसकी सेवामें बैठे थे। दारोग़ा साहबको वेश्याने आदरसे सामने बिठाया और आनेका कारण पूछा।

दारोग़ाने कहा—"प्रिये! आज मुझे एक अद्भुत फल मिला है। इसको खानेवाला कभी बूढ़ा नहीं होता और मृत्यु उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकती। मैं चाहता हूँ, इस फलको तुम खाओ। तुम्हारे सदा-सर्वदा आज जैसी नवयुवती बनी रहनेसे मेरी ज़िन्दगी सुखसे कटेगी।"

वेश्याने कहा—"अच्छा प्यारे! आपकी आज्ञा मैं टाल नहीं सकती। मैं स्नान करके इस फलको खा लूँगी।"

वेश्याकी यह बात सुनते ही दारोग़ाने वह अमरफल उसे दे दिया और आप अपने डेरेको चला आया। उसके जाते ही वेश्या सोचने लगी—"मुझे सारी उम्र पाप कमाते बीती। न जाने इतने पापोंका ही मुझे क्या-क्या दण्ड भोगना होगा? यदि मैं इस फल



नमकहराम दारोग़ा साहब दुराचारिणी असती रानीके दिये हुए अमरफलको अपनी प्रणयिनी वेश्याको दे रहे हैं।



दारोग़ाकी प्यारी वेश्या उसी 'अमरफल' को लेकर महाराजा भर्तृहरिके सामने खड़ी है। वह उस फलको महाराजको देना चाहती है।

को खाऊँगी, तो अनन्तकाल तक इस तरह पापोंकी गठरियाँ बटोरती रहूँगी, अतः मुझे यह फल खाना हरगिज़ मुनासिब नहीं। इसे तो मेरे प्यारे महाराज भर्तृहरि खायँ तो अच्छा। उनके अजर अमर रहनेसे मेरी आत्माको सन्तोष होगा। ऐसे राजाके राज्यमें प्रजा सदा सुखी रहेगी। हमारे महाराज आदर्श राजा हैं। ऐसे राजा बहुत कम हैं।" यह सोचकर, वह कपड़े-लत्तोंसे टिचन हो, फल लेकर राजसभाकी ओर चली। सभामें पहुँचते ही चोपदारने महाराजको ख़बर दी, कि बाईजी साहिबा तशरीफ लाई हैं। महाराजने वेश्याको सामने बुलाया और उसके बेवक्त आनेका सबब पूछा।

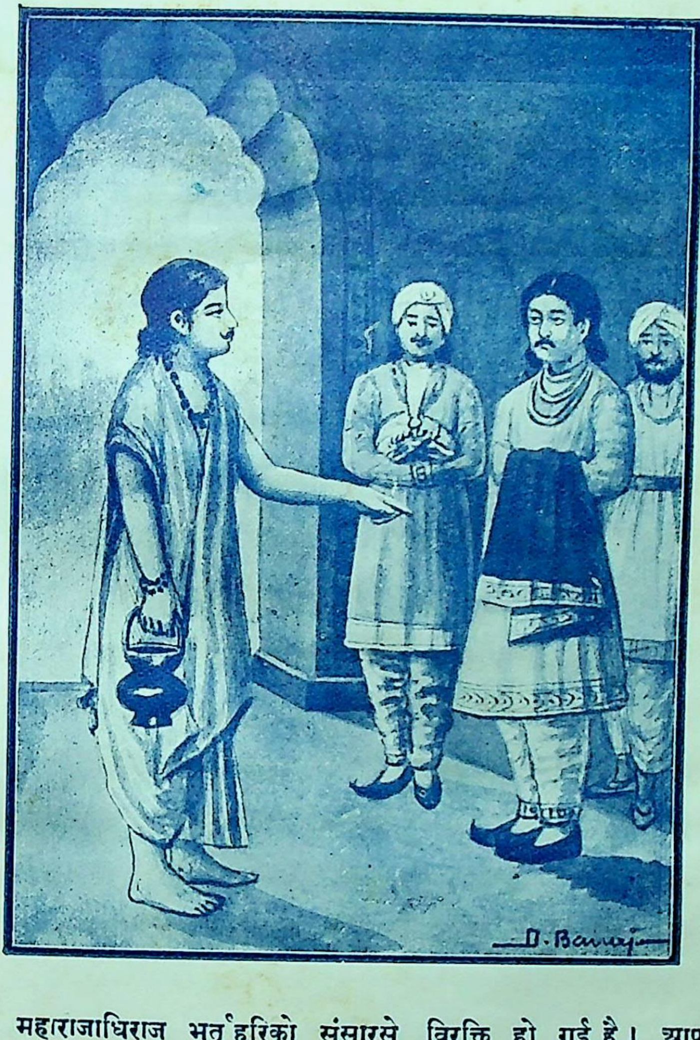
वेश्याने कहा,—"महाराज! आज मुझे एक अपूर्व फल मिला है। यह फल अजीब तासीर रखता है। इसके खानेवाला सदा अमर रहता है। मैं इस फलको खाऊँगी, तो सदा पाप कमाऊँगी; इसलिये यह फल आपहीके खाने योग्य है। आप अजर अमर रहेंगे, तो पृथ्वी सुखी रहेगी।"

वेश्याके हाथमें उस फलको देख तथा उसकी बातें सुनकर महाराजके चेहरेका रंग उड़ गया। वह आश्चर्य्य चकित हो गये। ऊपरका साँस ऊपर और नीचेका साँस नीचे रह गया। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो सोचमें पड़ गये। शेषमें; होश-हवाश ठिकाने आनेपर, उन्होंने वह फल वेश्याके हाथसे ले लिया और धोकर खा गये।

परमात्माकी इच्छासे ही वह फल घूम-घामकर फिर राजाके पास पहुँचा। राजाने अनुसन्धान द्वारा सारा भेद जान लिया। उन्हें पिङ्गलाके छल-युक्त कपट व्यवहारपर बड़ी घृणा उत्पन्न हो गई। उन्हें अपनी सबसे अधिक प्यारी रानीके दुर्व्यवहार और विश्वासघातसे बड़ा दुःख हुआ। उनके दिलपर सख्त चोट लगी। उन्हें मालूम हो गया, कि स्त्रियोंकी प्रीतिमें सार नहीं; स्त्री-जातिकी मुहब्बतका कोई ठिकाना नहीं। उन्हें संसारसे विरक्ति हो गई। उन्हें संसार और विषय-भोगोंसे एकदम नफ़रत हो गई। उन्होंने समझ लिया, संसारमें कोई किसीका नहीं है। यह मिथ्या जाल है। इसमें फँसकर लोग अपना दुष्प्राप्य जीवन वृथा खोते हैं। उन्होंने अपने तईं धिक्कारते हुए कहा—

"यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता।
साप्यन्यमिच्छति जनं सजनोऽन्यसक्तः॥
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या।
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च॥"

मैं जिसको सदा चाहता हूँ, वह (मेरी रानी पिंगला) मुझे नहीं चाहती; वह दूसरे पुरुषको चाहती है ! वह पुरुष (दारोग़ा) रानीको नहीं चाहता; वह दूसरी ही स्त्रीपर मरता है ! वह स्त्री जिसे रानीका यार दारोग़ा चाहता है, वह मुझे चाहती है ! इसलिये रानीको धिक्कार है ! उस दारोग़ाको धिक्कार है ! उस वेश्याको धिक्कार है ! मुझको धिक्कार है और उस कामदेवको धिक्कार है, जो ये सब काण्ड कराता है।



महाराजाधिराज भर्तृहरिको संसारसे विरक्ति हो गई है। आप राजपाट, धनदौलत प्रभृतिको तृणवत् परित्याग कर वनको जा रहे हैं।

इस घटनासे संसार महाराजके लिये बिल्कुल ही बुरा मालूम होने लगा। आपने प्रधान मंत्रीको सामने बुला, राजका सारा काम उसे सम्हला, अपनी राजसी पोशाक उतारकर उसे दे दी और

"भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम्।
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्॥
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयम्।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥"
"अहौ व हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा।
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा॥
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यांतु दिवसाः।
क्वचित्पुण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः॥"

"स्त्रियोंके भोगनेमें रोगोंका भय है, कुलमें दोष होनेका भय है, धनमें राजाका भय है, चुप रहनेमें दीनताका भय है, बलमें शत्रुओंका भय है, सौन्दर्यमें बुढ़ापेका भय है, गुणोंमें दुष्टोंका भय है, शरीरमें मौतका भय है, संसारकी सभी चीज़ोंमें मनुष्योंको भय है, केवल "वैराग्य"में किसी प्रकारका भय नहीं है।"

"हे परमात्मन्! मेरे शेष दिन किसी पवित्र वनमें शिव-शिव रटते बीतें; सर्प और पुष्पहार, बलवान् शत्रु और मित्र, कोमल पुष्प-शय्या और पत्थरकी शिला, मणि और पत्थर, तिनका और

सुन्दरी कामिनियोंके समूहमें मेरी दृष्टि एक सी हो जाय—यही मेरी इच्छा है।"

यह कहते हुए आपने सारा राज-पाट धन-दौलत प्रभृति एक क्षणमें त्यागकर वनका रास्ता लिया। चलते समय उन्होंने मन्त्रीसे और भी कहा,–"मैंने अपने धर्मात्मा और सत्यवादी सहोदर भाई विक्रमके साथ बड़ा अन्याय किया! उस समय मेरी अक्लपर पर्दा पड़ा हुआ था। मुझे उचित-अनुचितका ज़रा भी ज्ञान नहीं रहा था। उस कुलटाने मुझपर जादू-सा कर दिया था। मैं अब संसारके लोगोंको सलाह देता हूँ कि, वे अगर सुखसे जीवन बिताना चाहें, तो स्त्रियोंका विश्वास न करें और जो परमपदके अभिलाषी हों, वे तो उनका नाम भी न लें। मन्त्रीवर! आप विक्रमका पता लगाना। यदि वह मिल जाय, तो उसे राज-गद्दीपर बिठा देना।"

यदि महाराज भर्तृहरि चाहते, तो रानी पिंगलाको जीती ही ज़मीनमें गड़वा देते, उस दरोग़ाको तोपके मुँहसे बँधवाकर उड़वा देते तथा और शादी कर लेते; पर आपको तो निर्मल ज्ञान हो गया था, आप संसारकी असलियतको समझ गये थे, इसीसे आपको संसारसे घृणा हो गई। आपने उपभोग, वस्त्र, चन्दन, वनिता, रत्न और राज-पाट सबको तृणके समान समझकर एक क्षणमें त्याग दिया। ऐसा सब किसीसे नहीं हो सकता। ऐसा उनसे ही होता है, जिनपर जगदीशकी दया होती है या पूर्व्व संचित पुण्योंका उदय होता है। मनुष्यसे फूटे-टूटे हाँड़ी

बर्तन और गुदड़े ही नहीं छोड़े जाते, कोरी इच्छाओंका भी त्याग नहीं होता, तब राज-पाट और धन-दौलतका छोड़ना तो बड़ी बात है।

महाराजा भर्तृहरि भूपालोंमें आदर्श भूपाल हो गये हैं। उन्होंने जो किया है वह शायद ही कोई भूपाल उनके बाद कर सका हो। जब तक सूर्य्य चन्द्रमा रहेंगे, जब तक यह दुनियाँ रहेगी, तब तक महाराजका प्रातःस्मरणीय पुण्यश्लोक नाम लोगोंकी ज़बानपर रहेगा।

हमने महाराजा भर्तृहरि और महाराजा विक्रमादित्यके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है, वह एक थियेट्रिकल कम्पनीके तमाशे और एक पुरानी पुस्तकके आधारपर लिखा है, जो हमने, कोई २५ साल पहले, एक पल्टनकी लाइब्रेरीमें अङ्गरेज़ी और हिन्दीमें देखी थी। हमें जो याद था वही लिखा है। इस समय न तो हमारे पास वह पुस्तक ही है और न हमें उसका नाम ही याद है।



* श्रीः *

भर्तृहरिकृत

नीति-शतक

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्त्तये ।
स्वानुभूत्येकसाराय नमः शान्ताय तेजसे ॥१॥

दशों दिशाओं और तीनों कालोंमें परिपूर्ण, अनन्त और चैतन्यस्वरूप, अपने ही अनुभवसे प्रत्यक्ष होने योग्य, शान्त और तेजोरूप परब्रह्मको नमस्कार है ॥१॥

भारतीय कवि या ग्रन्थकार, अक्सर, अपने ग्रन्थके बिना विघ्न-बाधा सुखसे समाप्त होनेके लिये, ग्रन्थके आदि, मध्य और अन्तमें, मङ्गलाचरण किया करते हैं। इस "नीति-शतक" के कर्त्ता, योगिराज राजर्षि भर्तृहरि महोदय भी अनन्त, अविनाशी और आत्मज्ञानसे प्रत्यक्ष होने योग्य परब्रह्म परमात्माकी वन्दना करके ग्रन्थारम्भ करते हैं।

सोरठा—सर्व दिशा सब काल, पूरि रह्यो चैतन्य धन ।
सदा एकरस चाल, बन्दन वा परब्रह्मको ॥१॥

1. To one unlimited by time or space, to the Boundless, to Him Who is all consciousness, to One Who is the essence of self-contemplation and to the Supreme Peace and Light, I bow down in prayer.

यांचिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साप्यन्यमिच्छति जनं सजनोऽन्यसक्तः ।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या,
धिक् तां च तं च मदनंच इमां च मां च ॥२॥

मैं जिसके प्रेममें रात-दिन डूबा रहता हूँ—किसी क्षण भी जिसे नहीं भूलता, वह मुझे नहीं चाहती; किन्तु किसी और ही पुरुषको चाहती है ! वह पुरुष किसी और स्त्रीको चाहता है ! इसी तरह वह स्त्री मुझे प्यार करती है ! इसलिये उस स्त्रीको, मेरी प्यारीके यारको, प्यारीको, मुझको और उस कामदेवको, जिसकी प्रेरणासे ऐसे-ऐसे काम होते हैं, अनेक धिक्कार हैं ! ॥२॥

इस श्लोकमें, महाराज अपनी प्यारी रानी पिङ्गलापर इशारा करते हैं । यद्यपि महाराजा पूर्ण विद्वान् और चतुर नरेश थे, तथापि इस रानीके एकदम वशीभूत हो गये थे । स्त्रियाँ जितेन्द्रिय मुनियोंको भी वशीभूत करके विषयाभिलाषी बना देती हैं, तब अजितात्माओंका तो कहना ही क्या ? कहते

हैं—धनी होकर किसने गर्व नहीं किया? किस विषयीकी आपत्ति नाश हुई? राजाका प्यारा कौन हुआ? कालसे किसका नाश न हुआ? किस माँगनेवालेका मान रहा? दुष्टोंकी सङ्गतिसे किसकी कुशल हुई और स्त्रियोंसे किसका मन खण्डित न हुआ? स्त्रियोंके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें लिखा है:—

स्त्री किसीके साथ बात करती है, किसीको विलास-पूर्वक देखती है और दिलमें किसीका विचार करती है। स्त्रियोंका प्यारा कोई नहीं। जब तक स्त्री पुरुषको अपने ऊपर मोहित नहीं कर लेती, तब तक उसे हर तरहसे प्रसन्न करती और मधुर भाषण करती है; ज्योंही उसे कामके वशीभूत देखती है, त्योंही उसे मांस ग्रहण करनेवाली मछलीकी तरह उठा लेती है। जब पुरुष उसके वशमें हो जाता है,—जब उसका बल बढ़ जाता है, तब वह पंख-नुचे हुए कव्वेकी तरह उससे खेल करती है।

स्त्रियाँ मुँहसे मनोहर बातें कहती हैं और तीक्ष्ण नेत्रोंसे चोट करती हैं। इनके सामने करालमुख सिंह, मदमत्त गजराज और बुद्धिमान समरशूर भी कायर हो जाते हैं।

स्त्रियाँ शम्बरकी माया, नमुचिकी माया तथा बलि और कुम्भीनसकी मायाको जानती हैं। जिन शास्त्रोंको वृहस्पति और शुक्र जानते हैं, उन्हें ये स्वभावसे ही जानती हैं।

स्त्रियाँ मोहित करतीं, मद पैदा करतीं, प्रसन्न करतीं, घुड़कियाँ देतीं, रमण करतीं, विषाद करतीं, हँसतेके साथ हँसतीं, रोतेके साथ रोतीं, समय-योगसे अनुरक्तको प्यारी-प्यारी बातोंसे ग्रहण कर लेतीं एवं असत्यको सत्य और सत्यको असत्य करती हैं—इनकी माया अपरम्पार है। झूठ, साहस, माया, मूर्खता, अतिलोभ, अपवित्रता और निर्दयता ये तो इनके स्वाभाविक दोष हैं।

अपना पति कैसा ही बलवान और रूपवान हो, वह हर तरहसे प्यार करता हो; दासकी तरह आज्ञा पालन करता हो, घरमें सब तरहके सुखैश्वर्य्यके सामान हों; पर असती स्त्री इन सबको तिनकेके समान समझती है। अगर उसे एकान्तमें नीच, लँगड़ा, लूला और कोढ़ी भी मिल जाय, तो वह अपने सुन्दर पतिको न भजकर उस नीचको ही चाहती है। कुलटाको अपने कुलकी हीनता, लोक-निन्दा और अपने बन्धन प्रभृतिकी कोई परवा नहीं रहती। और तो और; वह अपने प्राणनाशकी भी परवा नहीं करती।

स्त्रियोंको कोई अगम्य नहीं; बूढ़े और जवान, कुरूप और सुरूप, धनी और निर्धन, नीच और ऊँचका कोई ख़याल नहीं—ये तो पुरुषमात्रको भजती हैं। कुलटायें गायकी तरह होती हैं। जिस तरह गाय नई-नई घास खाना चाहती है, उसी तरह ये नये-नये पुरुषोंको चाहती हैं। ये दण्ड, शस्त्र, दान और स्तुति किसीसे भी वशमें नहीं रहतीं।

अगर इन्हें मौक़ा नहीं मिलता या चाहनेवाला नहीं मिलता—तब तो ये सती बनी रहती हैं। कहा है—एकान्त नहीं, अवकाश नहीं और प्रार्थी नहीं; हे नारद, इसीसे सतीका सतीत्व रहता है। जो कोई स्त्रीसे प्रार्थना करता है, उसके पास जाता है और थोड़ी भी सेवा करता है, स्त्री उसीकी हो जाती है। आगकी काठसे, सागरकी नदियोंसे, कालकी प्राणियोंसे और स्त्रीकी पुरुषोंसे तृप्ति नहीं होती। जो पुरुष अज्ञानसे यह जानता है, कि यह स्त्री मुझे प्यार करती है वह, स्त्रीके वशीभूत होकर, खेलके पक्षीकी तरह हो जाता है। जो स्त्रीके कहनेमें चलता है और उसका विश्वास करता है, उसका अवश्य अनिष्ट होता है। स्त्रियोंके मोह-जालमें फँसकर पुरुष उसी तरह नष्ट होता है; जिस तरह दीपककी ज्योतिपर भूलकर पतङ्ग नष्ट होता है। किसीने ख़ूब कहा है:—

> काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं
> सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्तिः।
> क्लीबे धैर्य्यं मद्यपे तत्त्वचिन्ता
> राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ?॥

कव्वेमें पवित्रता, जूएमें सत्य, सर्पमें सहनशीलता, स्त्रियोंमें कामशान्ति, नपुंसकमें धीरज, शराबीमें तत्वचिन्ता और राजामें मैत्री किसने देखी या सुनी ?

इन सब बातोंको जानकर भी, हमारे प्रातःस्मरणीय योगिराज रानी पिंगलाके मोहजालमें फँस गये। भाई विक्रमके समझानेसे भी न समझे। जब वेश्याके हाथसे उन्हें अमर-फल मिला—तब उनके होश ठिकाने आ गये, आँखें खुल गई। उन्हें मालूम हो गया, कि शास्त्रोंमें स्त्रियोंके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है, वह राई-रत्ती सच है—वह लाखों-करोड़ों वर्षोंके अनुभवका निचोड़ है।

राजा अपनी प्यारी रानीका कुलटापन देखकर मन-ही-मन कहने लगे—"संसारमें कोई किसीको नहीं चाहता—यहाँ किसीको किसीसे प्रेम और मुहब्बत नहीं। मैं झूठे मोहसे अन्धा हो रहा था; परमात्माकी दया और पूर्वजन्मके सुकर्मोंके प्रभावसे, मेरी आँखोंके आगेसे पर्दा हट गया। जितना जीवन वृथा नष्ट हुआ, सो तो हो ही गया। गया समय तो हाथ आनेवाला नहीं; अब मुझे आगेको सम्हलना चाहिये और शेष जीवनको परमात्माकी भक्तिमें लगाना चाहिये। ये राजपाट, धन-दौलत प्रभृति चिरस्थायी नहीं—ये सब असार और मिथ्या हैं। धिक्कार है उस वेश्याको, जो अपने यारको न चाहकर मुझे प्यार करती है! धिक्कार है उस रानीके यारको, जो रानीको न चाहकर वेश्यासे प्रेम करता है! धिक्कार है मेरी प्यारी रानीको, जो मुझसे विरक्त होकर, दूसरेको प्यार करती है! धिक्कार है मुझे, जो मैं इस कुलटाको सती और अपनी अनुरागिन समझे हुए था और धिक्कार है

उस कामदेवको जो इतने प्रपञ्च कराता है!" यह कहते हुए महाराजने, अपने राज-वस्त्र और मुकुट प्रभृति मन्त्रीको सौंपकर, बनकी राह ली। महाराजने जो आदर्श संसारके सामने रक्खा है, उससे भारतका मस्तक उन्नत होता है। संसारके इतिहासमें ऐसे आदर्श अति विरले हैं।

नोट—स्त्रियोंकी मायाके सम्बन्धमें और भी अधिक जाननेकी इच्छा हो, तो हमारा अनुवाद किया हुआ "शृंगार शतक" देखिये।

छप्पय—जाकी मेरे चाह, वह मोसों विरक्त मन।
और पुरुषसों प्रीति, पुरुष वह चहत और धन॥
मेरे कृतपर रीझ रही, कोऊ इक औरहि।
यह विचित्र गति देख, चित्र ज्यों तजत न ठौरहि॥
सब भाँति राजपत्नी सुधिक्, जार पुरुषको परमधिक्!
धिक् काम, याहि धिक्, मोहि धिक्, अब व्रजनिधिकी शरण इक॥२॥

2. The woman I constantly adore does not care for me. She has given her heart to another man and that other man has some other sweetheart. I again am the object of affection for a third woman. Fie on her and him and Cupid and this woman and me!

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि च तं नरं न रंजयति॥३॥

हिताहितज्ञानशून्य नासमझको समझाना बहुत आसान है, उचित और अनुचितको जाननेवाले ज्ञानवानको राज़ी करना

और भी आसान है; किन्तु थोड़ेसे ज्ञानसे अपने तईं पण्डित समझनेवालेको स्वयं विधाता भी सन्तुष्ट नहीं कर सकता ॥३॥

संसारमें तीन तरहके मनुष्य होते हैं—(१) अज्ञ, (२) सुज्ञ, और (३) अल्पज्ञ। जिसे अपने बुरे-भलेका ज्ञान नहीं होता, जो निरा मूर्ख होता है, उसे "अज्ञ" कहते हैं। जिसे युक्तायुक्त, उचित और अनुचितका ज्ञान होता है, उसे "सुज्ञ" कहते हैं। जो अज्ञ और सुज्ञके बीचका होता है, जिसे थोड़ासा ज्ञान होता है, न वह पूरा पण्डित ही होता है और न निरा मूर्ख ही, उसे "अल्पज्ञ" कहते हैं। अल्पज्ञको बहुत थोड़ा ज्ञान होता है, पर वह अपने तईं बड़ा भारी पण्डित समझता और इस नशेमें चूर रहता है—थोड़ेसे ज्ञानसे उसका सिर घूम जाता है। इसीसे कहते हैं—"कम इल्म बुरा।" शुक्रने भी कहा है—"ज्ञानलवदौर्विदग्ध्यादज्ञता प्रवरमता" अर्थात् अल्पज्ञतासे मूर्खता भली।

कोरा अज्ञानी अपनी अज्ञानता—मूर्खताको समझता है। उसे अपनी पण्डिताईका घमण्ड नहीं होता, इसीसे वह विद्वानोंकी बात कान देकर सुनता और उनके उपदेशोंको ग्रहण करके राहपर आजाता है। युक्तायुक्तका जाननेवाला विद्वान् उचित अनुचितको समझता है—युक्ति और तर्कको मानता है; इसलिये वह और भी आसानी से अपनेसे अधिक बुद्धिमानकी बातको मान लेता है;

परन्तु जिसे ज़रासे ज्ञानसे घमण्ड हो जाता है, उसे मनुष्य तो क्या चीज़ है, उसके और संसारके रचनेवाला ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता ।

सब अनर्थोंकी जड़ ख़ुदी या अहङ्कार है। अहङ्कार मनुष्यको ऊँचा होने नहीं देता । अहङ्कारके कारणसे ही मूर्ख मूर्ख रह जाता है। मनुष्यके बड़प्पन और सच्चे सुखमें अहङ्कार ही बाधक है। जो अहंकारको जीत लेता है, वह निश्चय ही एक न एक दिन सच्चे सुख और महत् पदका अधिकारी होता है । अल्पज्ञोंमें अक्सर घमण्ड होता ही है; इसीसे वे पराया उत्तम-से-उत्तम उपदेश भी नहीं मानते । अपनी शानमें बट्टा लगनेके ख़यालसे, वे जिस बातको नहीं जानते, उसे किसीसे पूछते भी नहीं; इसीसे उनकी उन्नति नहीं होती। दुनियामें जो अपने तईं सबसे छोटा और तुच्छ समझते हैं एवं जो वास्तवमें बुद्धि रखते हैं—वे अवश्य चतुर-चूड़ामणि हो जाते हैं। मूर्ख और घमण्डी किसीका उपदेश ग्रहण नहीं करते । कहा है:—

उपदेशनको धारिवे, बुद्धिमन्त जड़ नाहिं ।
जों पुहुपनकी गन्धकों, तिल धारें जव नाहिं ॥

दोहा—सुखकर मूढ़ रिझाइये, अति सुख पण्डित लोग ।
स्वल्पज्ञानगर्विष्टको, विधिहु न रिझवन योग ॥ ३ ॥

3. An ignorant person is easy to please. It is still easier to please a man of learning, but even the God Brahma can not please a man stained with the possession of partial talents.

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्राङ्कुरात्,
समुद्रमपि संतरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।
भुजंगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारये-
न्नतु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ४ ॥

यदि मनुष्य चाहे तो मगरकी दाढ़ोंकी नोकमेंसे मणि निकाल लेनेका उद्योग भले ही करे, यदि चाहे तो चञ्चल लहरोंसे उथल-पुथल समुद्रको अपनी भुजाओंसे तैरकर पार हो जानेकी चेष्टा भले ही करे; क्रोधसे भरे हुए सर्पको पुष्पहारकी तरह सिरपर धारण करनेका साहस करे तो भले ही करे; परन्तु हठपर चढ़े हुए मूर्ख मनुष्यके चित्तको असत् मार्गसे सत्मार्गपर लानेकी हिम्मत हरगिज़ न करे ॥ ४ ॥

मगरकी दाढ़ोंमेंसे बलपूर्वक रत्नको निकाल लेना मनुष्यके लिये असम्भव है। इसमें भारी संकट और जान-जोखिम है! आज तक ऐसा कोई मनुष्य कर भी नहीं सका। फिर भी; कोई बलवान् ऐसा करनेकी चेष्टा करे तो कर सकता है; कदाचित् सफलता हो जाय। चञ्चल लहरोंसे व्याकुल समुद्रको अपनी भुजाओंके बलसे तैरकर पार कर लेना असम्भव है। फिर भी; कोई तैराक ऐसा करनेका

प्रयत्न करे तो कर सकता है; शायद कामयाबी हो जाय। कुपित भयानक सर्पको मालाकी तरह मस्तकपर धारण करना महा कठिन काम है। कोई तेजस्वी पुरुष, शिवजीकी तरह, सर्पको सिरपर धारण करनेका उद्योग करे, तो भले ही करे; कदाचित् वह सर्पको मस्तकपर रख सके। कोई भी मनुष्य इन तीनों कामोंको कर नहीं सकता; पर कदाचित् कोई पुरुष इन अघटित—असम्भवोंको सम्भव करनेमें समर्थ हो जाय। लेकिन दुराग्रही—अपनी हठपर चढ़े हुए मूर्ख मनुष्यके चित्तको अपने क़ाबूमें करनेकी कोई भी चेष्टा न करे—भूलकर भी इस बातका वृथा प्रयास न करे।

सारांश यह, ज़िद्पर चढ़ा हुआ मूर्ख किसीके भी समझाये नहीं समझता। वह जिस बातपर जम जाता है, उससे नहीं हटता। मिस्टर लोवैल नामक एक यूरोपीय विद्वान् कहते हैं*—"केवल मूर्ख और मृतक अपनी राय नहीं बदलते।" लेवेटर नामक एक विद्वान्ने कहा है†—"जो सख़्श किसी बातपर जमे हुए मनुष्यके चित्तको युक्ति और तर्कसे अपने क़ाबूमें करनेकी आशा रखता है, वह मानव-जातिके

* The foolish and the dead alone never change their opinion.—*Lowell*.

† He knows very little of mankind who expects, by fact of reasoning, to convince a determined party-man. *Lavator*.

सम्बन्धमें बहुत कम ज्ञान रखता है।" निस्सन्देह हठपर चढ़ा हुआ मूर्ख विधाताके समझाये भी नहीं समझता।

दुर्योधनने अन्याय और अनीतिसे पाण्डवोंका सारा राज्य छीन लिया; उनके ऊपर अनगिन्ती अत्याचार किये। विदुर, भीष्म और सञ्जय प्रभृति राजके सच्चे शुभचिन्तकोंने उसे बहुत समझाया, पर वह किसीकी भी बातसे टस-से-मस न हुआ। शेषमें सर्वशक्तिमान् त्रिलोकीनाथ कृष्ण, लोकरीति पूरी करनेके लिये, उसे समझाने गये; पर वह उनकी भी नीतिपूर्ण और दोनों पक्षोंके लिये भली बातोंसे न पसीजा। अज्ञानी उल्टा उनका ही अपमान करनेपर उतारू हो गया; तब कृष्ण भगवान् वापिस लौट आये। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है और बहुत ही ठीक कहा है—

जो मूरख उपदेशके, होते योग जहान।
दुर्जोधन कहँ बोध किन, आये श्याम सुजान॥

4. It is possible to tear off a gem sticking in the roots of a crocodile's teeth. It is possible to swim across the ocean made impassable by a series of tossing currents. It is even possible to adorn one's head with an angry snake as if it were a flower, but it is very difficult to please the heart of a bigoted and ignorant person.

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्,
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।

**कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेन्न
तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ५ ॥**

कदाचित् कोई किसी तरकीबसे बालूमेंसे भी तेल निकाल ले; कदाचित् कोई प्यासा मृगतृष्णाके जलसे भी अपनी प्यास शान्त कर ले; कदाचित् कोई पृथ्वीपर घूमते-घूमते ख़रगोशका सींग भी खोज ले; परन्तु हठपर चढ़े हुए मूर्ख मनुष्यके चित्तको कोई भी अपने क़ाबूमें नहीं कर सकता ॥५॥

बालूके दानोंमें तेल नहीं होता, पर कदाचित् कोई बार-बार प्रयत्न करनेसे बालूके कणोंसे भी तेल निकालनेमें सफल हो जाय। मृगमरीचिकामें जल नहीं होता, पर कदाचित् कोई प्यासा खोज लगाकर वहाँ भी जल पा जाय; ख़रगोशके सींग नहीं होते, पर कदाचित् कोई चतुर पर्यटक पृथ्वीपर भ्रमण करते-करते कहीं ख़रगोशके सींगोंका भी पता लगा ले—इन असम्भवोंके सम्भव करनेमें जो परिश्रम किया जाय, शायद वह सफल हो जाय; पर ज़िदपर चढ़े—अपनी ही बातपर अड़े हुए मूर्खका चित्त किसी भी उपायसे वशमें नहीं हो सकता।

मूर्खोंका स्वभाव ही ऐसा होता है, कि वे जिस बातपर जम जाते हैं, जिस बातकी ज़िद कर लेते हैं, उसे किसीके भी कहनेसे नहीं त्यागते। यद्यपि ऐसे दुराग्रही घोर दुःख

भोगते हैं, पर किसीका उपदेश ग्रहण नहीं करते। रावणको मारीचने बहुत कुछ समझाया, पर उसने उसकी एक न मानी; यतीका वेश धरकर सीताको ले ही गया। परिणाम यह हुआ कि, उसका कुटुम्ब-सहित नाश हुआ; बाल बन्दरको ताराने अनीतिका नतीजा समझाया, पर उसने उसकी एक न सुनी; अन्तमें अपनी ज़िन्दगीसे हाथ ही धोये। इन्द्रपुत्र जयन्तने किसीकी न मान, सीताजीके साथ छेड़खानी की। शेषमें; त्रिलोकीमें मारा-मारा फिरा, पर कोई शरणदाता न मिला। जो लोग हठ करते हैं—किसीकी सीख नहीं मानते, उनका अन्तमें बुरा होता है। तुलसीदासजीने कहा है:—

साहस ही सिख कोपवश, किये कठिन परिपाक।
शठ संकटभाजन भये, हठि कुयति कपि काक॥

छप्पय—*निकसत बारू तेल, जतन कर काढ़त कोऊ।*
मृगतृष्णा कौ नीर, पिये प्यासौ है सोऊ।
लहत शशाको शृंग, ग्राहमुखतें मणि काढ़त।
होत जलधिके पार, लहर वाकी जब बाढ़त॥
रिसभरे सर्पको पहुप-ज्यों, अपने सिरपै धर सकत।
हठभरे महासठ नरनको, कोऊ बस नहिं कर सकत॥४॥५॥

5. A man may get oil out of sand by strenuously squeezing the latter. A thirsty person will perhaps drink water out of mirage. It is just possible that a man in his wanderings may come across the horns of a hare, but it is extremely difficult to please the heart of a bigoted and ignorant person.

व्यालं बालमृणालतंतुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते,
छेत्तुं वज्रमणीञ्छिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते ।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते,
नेतुंवाञ्छतियःखलान्पथिसतांसूक्तैः सुधास्यन्दिभिः॥६॥

जो मनुष्य अपने अमृतमय उपदेशोंसे दुष्टको सुराहपर लानेकी इच्छा करता है, वह उसके समान अनुचित काम करता है, जो कोमल कमलकी डंडीके सूतसे ही मतवाले हाथीको बाँधना चाहता है, सिरसके नाजुक फूलकी पंखड़ीसे हीरेको छेदना चाहता है अथवा एक बूँद मधुसे खारी महासागरको मीठा करना चाहता है ॥६॥

हाथी जैसा बलवान जानवर रस्सोंसे भी नहीं बँध सकता, जो मनुष्य उसे कोमल कमलकी डंडीके सूतसे बाँधनेकी चेष्टा करता है, वह मूर्ख है। हीरेमें बड़े-बड़े घनोंकी चोटसे भी कुछ नहीं होता, पर जो मनुष्य सिरसकेसे नाजुक फूलकी पंखड़ीसे उसमें छेद करना चाहता है, वह निश्चय ही मूर्ख है। समुद्र सारी पृथ्वीके मधु और चीनी-शक्कर प्रभृतिसे भी मीठा नहीं हो सकता, पर जो मनुष्य उस महा-

सागरका खारापन एक बूँद शहदसे मिटाना चाहता है, वह निश्चय ही मूर्ख है। ये तीनों काम करनेवाले जिस तरह मूर्ख हैं; उसी तरह वह भी मूर्ख है, जो अपने उत्तमोत्तम अमृतोपम उपदेशोंसे दुष्टको, कुराहसे हटाकर, सुराहपर लानेकी अभिलाषा करता है। सारांश यह—दुष्टको उपदेश देकर भला आदमी बनाना मूर्खतासे ख़ाली नहीं। गधेको उपदेश देनेवाला भी गधा ही समझा जाता है।

अच्छी मिट्टीमें बोनेसे बीज उगता है। अच्छे लोहेपर पालिश करनेसे ही चमक आती है। जिसे ईश्वर योग्यता देता है, उसीपर सुशिक्षाका फल होता है। जिसमें स्वयं बुद्धि होती है, उसीको सदुपदेश और शास्त्रसे लाभ होता है। सुपात्रको दिया दान फलता है और कुपात्रको दिया दान वृथा जाता है। यही हाल सुशिक्षाका है। कुपात्रमें कोई भी क्रिया फलवती नहीं होती। हज़ारों तरहके उपाय करनेसे भी बगुला तोतेकी तरह पढ़ाया नहीं जा सकता। शेख़ सादीने कहा है—

अब्र गर आबे ज़िन्दगी बारद।
हर्गिज़ अज़ शाख़े बेद बर न खुरी॥

बादलका पानीकी जगह अमृत बरसाना मुमकिन हो सकता है, पर बेतकी शाख़ोंमें कभी फल नहीं लग सकते। दूषित जड़से छायादार वृक्ष नहीं हो सकता। नालायक़को

नसीहत देना गुम्बदपर अख़रोट फेंकना है। कमीनेके पीछे अपना समय नष्ट करना अच्छा नहीं; क्योंकि नरकुलसे कभी चीनी नहीं निकल सकती। कुत्तेकी पूँछको कोई कितना ही तेल प्रभृतिसे मलकर और बाँधकर, बारह वर्ष तक भी, क्यों न रखे, खुलनेपर वह वैसी-की-वैसी ही रहेगी। कवियोंने कहा है:—

फूले फले न बेत, यदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरख-हृदय न चेत, जो गुरु मिलें विरंचि-सम॥ तुलसी।
बिगर्यो होय कुसंग जिहि, कौन सकै समुझाय ?।
लसन बसाये बसन कौं, कैसे सकै बसाय ?॥ वृन्द।

छप्पय—*कमलतन्तुसों बाँधि, गजहि बसकरन उमाहत।*
सिरस-पुहुप के तार, बज्रकों बेध्यो चाहत॥
बूँद सहतकी डार, उदधि को खार मिटावत।
ये बातें विपरीति होहिं बरु, यह श्रुति गावत॥
पर अमृतमयी निज बैनसों, सतपथ में खैंचन चहै।
जो कोउ, कटु, खल जननकों, इहै एक अचरज अहै!॥६॥

6. He attempts to bind an elephant with the fibres of a young lotus stalk or to make a bore in a diamond with the help of the point of a Shrish flower or to make the water of the ocean sweet by adding to it a single drop of honey, who tries to make evil-minded persons walk in the path of virtuous men by his nectarlike precepts.

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा,
विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः ।
विशेषतः सर्वविदां समाजे,
विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ॥ ७ ॥

मूर्खोंको अपनी मूर्खता छिपानेके लिये ब्रह्माने "मौन धारण करना" अच्छा उपाय बता दिया है और वह उनके अधीन भी कर दिया है । मौन मूर्खताका ढक्कन है । इतना ही नहीं, वह विद्वानोंकी मण्डलीमें उनका आभूषण भी है ॥७॥

संसारमें मौन रहने या चुप साध लेनेके समान मूर्खताके छिपानेका दूसरा और उपाय नहीं है । अँगरेज़ीमें एक कहावत है—"जबकि मूर्ख मौन साधे रहता है, तब वह बुद्धिमान समझा जाता है* ।" एक और विद्वान्‌ने कहा है—"जिसे आत्म-विश्वास नहीं है, उस मनुष्यके लिये मौन सर्वोत्तम निरापद पथ है§ ।" बोनार्ड नामक विद्वान्‌ने कहा है—"मौन मूर्खोंकी बुद्धिमत्ता और बुद्धिमानोंका एक गुण है‡ ।" बर्न नामक

* A fool when he is silent is wise.—*Pr.*

§ Silence is the safest course for the man who is diffident of himself.—*La Roche.*

‡ Silence is the wit of fools, and one of the virtues of the wise men.—*Bonard.*

विद्वान्ने कहा है—"चुप रहनेकी आदत सीखो और इसे अपना मॉटो (Motto) मानो*। कहाँ तक लिखें ? मौनकी सभी देशोंके शास्त्रोंमें बड़ी प्रशंसा लिखी है। महात्मा रैलेने कहा है—"सुनो बहुत और बोलो कम; क्योंकि संसारमें सबसे बड़ी भलाई और सबसे बड़ी बुराई इस ज़बानसे ही होती है‡।"

चुप रहनेसे मनुष्य मिथ्याभाषण और परनिन्दाके पापसे बचता है। जो ज़ियादा बोलता है, उसके मुँहसे कोई न कोई बुरी बात भी निकल ही जाती है और शत्रुकी नज़र सदा बुरी बातोंपर ही रहती है। जब तक मनुष्य नहीं बोलता, उसके ऐब और हुनर छिपे रहते हैं—बोलते ही सब भेद खुल जाता है। कव्वे और कोयल दोनों काले होते हैं। जब तक वे नहीं बोलते, यह तमीज़ करना कठिन हो जाता है, कि कौन कव्वा और कौन कोयल है। शेख़ सादीने भी कहा है—

ता गर्दं सुखन न गुफ्ता बाशद।
ऐबो हुनरस न हुफ्ता बाशद॥

---

* Learn taciturnity; let that be your Motto—*Burne.*

‡ Hear much and speak little; for the tongue is the instrument of the greatest good and the greatest evil that is done in this world.—*Releigh.*

जब तक कोई बात-चीत नहीं करता, तब तक उसकी भलाई-बुराई नहीं मालूम होती।

हमारे चाणक्य महाराजने भी कहा है—

मूर्खोऽपि शोभते तावत् सभायां वस्त्रवेष्टितः।
तावच्च शोभते मूर्खो यावत् किंचिन्न भाषते॥

सभामें मूर्ख वस्त्र पहने हुए उस समय तक अच्छा दीखता है, जब तक कुछ नहीं बोलता। बोलते ही सारी क़लई खुल जाती है। इसलिये मूर्खोंको, अपनी मूर्खता छिपाये रखनेके लिये, मौनावलम्बन करना ही अच्छा है। "गुलिस्ताँ" में एक कहानी है—

एक बुद्धिमान नौजवान, जिसने विद्या और धर्म-कार्योंमें खूब उन्नति की थी, विद्वानोंकी समाजमें अक्सर कुछ न बोला करता था। एक दिन उसके पिताने कहा—"पुत्र! तुम जो जानते हो, उसे कहते क्यों नहीं?" पुत्रने जवाब दिया—"पिताजी! मैं इस बातसे डरता हूँ कि, वे लोग मुझसे कोई ऐसी बात न पूछ बैठें, जिसे मैं न जानता होऊँ और उसके कारण मुझे लज्जित होना पड़े। क्या आपने उस सूफीकी बात नहीं सुनी, जो अपनी खड़ाउँओंमें कील ठोक रहा था? कीलें ठोंकते देखकर, एक हाकिमने उसकी आस्तीन पकड़ ली और उससे कहा—'चलो, मेरे घोड़ेके पैरोंमें नाल बाँध दो।' जब तुम चुप रहोगे, तब तुम्हें कोई

न छेड़ेगा। अगर बोलोगे, तो सुबूत लेकर तैयार रहना पड़ेगा। ख़ुदाने मनुष्यको कान दो और जीभ एक, इसी ग़रज़से दी है कि, वह सुने बहुत और बोले कम। जिसमें मूर्खकी प्रतिष्ठा-रक्षा तो मौन धारण करनेमें ही है।" कहा है—

कम खाना और कम बोलना अक़्लमन्दी है।
बहुत खाना और बहुत बोलना बेवक़ूफ़ी है॥

दो०—*मूरखता के ढकन कों, रच्यो विधाता मौन।*
ज्ञानि-सभा महँ आभरण, अज्ञहि गुणको भौन॥ ७॥

7. Silence which is within one's own power and which has numerous other facilities, has been made by the Creator to serve as a cover for ignorance. Especially in an assembly of learned men it is the best ornament of those who are ignorant.

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित्किञ्चिद्बुधजनसकाशादवगतं,
तदामूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥८॥

जब मैं कुछ थोड़ा-सा जानता था, तब मैं, मदोन्मत्त हाथीकी तरह, घमण्डसे अन्धा होकर, अपने तईं सर्वज्ञ समझता था। लेकिन ज्योंही मैंने विद्वानोंकी संगतिसे कुछ जाना और

सीखा, त्योंही मुझे मालूम हो गया कि, मैं तो निरा मूर्ख हूँ। उस समय मेरा मद ज्वरकी तरह उतर गया ॥ ८ ॥

कहावत है—"अल्पविद्यो महागर्वी।" थोड़ी विद्यावाला बड़ा अभिमानी होता है। अल्पज्ञ अपने सिवा सारे संसारको मूर्ख समझता है। जब तक वह विद्वानोंकी सुहबत नहीं करता—अनेक प्रकारके ग्रन्थोंको नहीं देखता, तब तक वह अपने तईं सर्वज्ञ समझता है और उतनी सी विद्याके घमण्डसे मतवाला रहता है, लेकिन ज्योंही वह पण्डितोंकी संगति करता है, उनसे कुछ सीखता है, उसकी आँखें खुल जाती हैं—उसका सारा नशा किरकिरा हो जाता है—उसका मद-ज्वर फौरन उतर जाता है।

अल्पज्ञकी दशा कूपमण्डूककी सी होती है। कूएका मैंडक सदा कूएमें रहता है और कूएके सिवा और किसी जलाशयको नहीं देखता। उस दशामें, वह उस कूएको ही सर्वश्रेष्ठ जलाशय समझता है। लेकिन जब वह सरोवरों, नदियों अथवा सागरको देखता है, तब उसकी आँखें खुल जाती हैं। उसी तरह जो लोग थोड़ा-सा इल्म रखते हैं; अनेक विषयोंसे अनजान रहते हैं, वे अपने साधारण ज्ञानको ही सर्वश्रेष्ठ समझते हैं और उसपर अभिमान करते हैं; किन्तु जब वे विद्वानोंकी संगतिसे कुछ और देखते और जानते हैं, तब उनको होश होता है, तब वे समझते

हैं कि, हमतो कुछ भी नहीं जानते। उस्ताद ज़ौक़ने कहा है:—

हम जानते थे, इल्मसे कुछ जानेंगे।
जाना तो यह जाना, कि न जाना कुछ भी॥

वाल्टेयर§ नामक विद्वान्ने भी ठीक यही बात कही है;—"जितना ही अधिक हमने पढ़ा, जितना ही अधिक हमने सीखा, जितना ही अधिक हमने चिन्तन किया, उतना ही हमारा दृढ़ निश्चय हुआ, कि हम तो कुछ भी नहीं जानते; अर्थात् अधिकाधिक पढ़ने, सीखने और विचार करनेसे हमारी यह धारणा हो गई, कि हम तो अज्ञ हैं।"

मनुष्य ज्यों-ज्यों देशाटन करता है, त्यों-त्यों उसकी देश देखनेकी इच्छा होती है और वह समझने लगता है कि, जिस गाँवमें मैं रहता हूँ, पृथ्वी उतनी ही नहीं है—पृथ्वी बहुत बड़ी है, मैंने अभी कुछ भी नहीं देखा है। इसी तरह ज्यों-ज्यों मनुष्य विद्वानोंकी सुहबत करता है, ज्यों-ज्यों नये-नये शास्त्र देखता है, त्यों-त्यों उसे मालूम होता है, कि मैं जितना जानता हूँ, उतना कुछ भी नहीं है—अभी मेरे सीखनेके लिये बहुत पड़ा है—अगर सारी उम्र सीखता रहूँगा तो-भी विद्याका अन्त न आवेगा। इस विचारपर पहुँचनेसे

§ The more we have read, the more we have learned, the more we have meditated, the better conditioned we are to affirm that we know nothing-*Voltaire.*

उसे अभिमान नहीं रहता और वह दिन-दिन उन्नति करके, एक दिन सचमुच ही आदर्श विद्वान् हो जाता है। जो मनुष्य अपनी त्रुटियों—अपनी कमज़ोरियोंको जानता है, जो अपने तईं सबसे छोटा समझता है, वह निश्चय ही विद्वान् और गुणवान् हो जाता है; किन्तु वह मनुष्य जो अपने तईं सर्वज्ञ समझता है, अपने सर्वज्ञ होनेमें सन्देह भी नहीं करता, अपनी नाममात्रकी विद्या-बुद्धिके घमण्डमें चूर रहता है, वह जहाँका तहाँ ही पड़ा रहता है—उसकी मूर्खता कभी नहीं जाती। मूर्ख ही अपने तईं बुद्धिमान समझता है। बुद्धिमान तो सदा अपने तईं मूर्ख समझता है।

छप्पय—*जब हौं समझो नेक, तबहिं सर्वज्ञ भयो हौं।*
जैसे गज मदमत्त, अंधता छाय गयो हौं।
जब सतसंगाति पाय, कछुक हौं समझन लाग्यौ।
तबहिं भयो अति गूढ़, गर्व गुण कौ सब भाग्यौ॥
ज्वर चढ़त-चढ़त अति ताप ज्यों, उतरत सीतल होत तन।
त्योंही मनकौ मद उतरिगौ, लियो शील सन्तोष पन॥८॥

8. When I knew but little, I was blind with madness like an elephant and my mind was full of vanity with the idea that I knew all. Now that I have learnt a little by keeping company with wise men, my vanity has vanished like fever with the idea that I know nothing at all.

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगर्हिजुगुप्सितं,
निरुपमरसं प्रीत्या खादन्नरास्थिनिरामिषम् ।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शंकते,
नहि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफलगुताम् ॥९॥

जिस तरह कीड़ोंसे भरे हुए, लारयुक्त, दुर्गन्धित, रस-मांस-हीन मनुष्यके घृणित हाड़को आनन्दसे खाता हुआ कुत्ता, पास खड़े हुए इन्द्रकी भी शंका नहीं करता; उसी तरह क्षुद्र जीव जिसको ग्रहण कर लेता है, उसकी तुच्छतापर ध्यान नहीं देता ॥९॥

नीचोंका स्वभाव कुत्तेका-सा होता है । जिस तरह कुत्ता बुरी-से-बुरी चीजको आनन्दसे खाता है; उसी तरह नीच और स्वार्थी लोग बुरे-से-बुरे कर्म करने अथवा निन्द्य-से-निन्द्य उपायोंसे जीविका उपार्जन करके पेट भरनेमें किसीकी शंका नहीं करते । अगर कोई उनके सौ-सौ जूतियाँ मारकर और हज़ारों गालियाँ देकर भी उन्हें टुकड़ा देता है, तो भी वे बड़े खुश रहते हैं। ऐसे लोग भी संसारमें देखनेमें आते हैं, जो लुच्चे-बदमाश, भंगी-चमार, चोर-लुटेरे प्रभृतिके पीकदान, नरककी मूल, वेश्याके बुरे-से-बुरे काम करते हैं; उससे पिट कुटकर और दुत्कार सुनकर, उसकी जूठी दो रोटियाँ पानेसे ही आनन्दित हो जाते हैं। नीच और स्वार्थियोंका स्वभाव ही ऐसा होता है, कि वे बुरेसे बुरा काम करनेमें नहीं लजाते और जिस निन्द्य कर्मको

करने लगते हैं, जिस बुरी आदतको अख़त्यार कर लेते हैं, उसे नहीं छोड़ते। न वे लोकनिन्दाकी परवा करते हैं और न परमात्मासे भय खाते हैं।

कुण्डलिया—कूकर शिर कारा परै, गिरै बदन तें लार।
बुरी बास बिकराल तन, बुरौ हाल बीमार॥
बुरौ हाल बीमार, हाड़ सूखेकों चाबत।
लखि इन्द्रहुकों निकट, कछू उर शंक न लावत॥
निठुर महा मनमाँहि, देख घुर्रावत हूकर।
तैसेही नर नीच, निलज डोलै ज्यों कूकर॥६॥

9. A dog while eating a human bone which is covered over by whole families of germs and is dripping with saliva and full of vicious smell such as can not be likened to anything good, and which is devoid of all flavour and has not an iota of flesh sticking to it, feels no shame even if he sees the God Indra standing by his side. So a degenerate person does not care for the propriety or other-wise of any action that he sets himself to.

शिरः शार्वं स्वर्गात्पतति शिरसस्तत्क्षितिधरं,
महीध्रादुत्तुंगादवनिमवनेश्चापिजलधिम्।
अधोऽधोगंगेयं पदमुपगता स्तोकमथवा,
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः॥१०॥

गंगा पहले स्वर्गसे शिवके मस्तकपर गिरी, उनके मस्तकसे हिमालय पर्वतपर गिरी, वहाँसे पृथ्वीपर गिरी, और पृथ्वीसे बहती-बहती समुद्रमें जा गिरी। इस तरह ऊपरसे नीचे गिरना आरम्भ होनेपर, गंगा नीचे-ही-नीचे गिरी और स्वल्प होती गई। गंगाकीसी ही दशा उन लोगोंकी होती है, जो विवेक-भ्रष्ट हो जाते हैं, उनका भी अधःपतन गंगाकी ही तरह सौ-सौ तरह होता है ॥ १० ॥

गङ्गा जैसी पतितपावनी सुरनदी, अभिमानके कारण, विष्णुचरणोंमें लोप हुई। वहाँसे शिवके मस्तकपर गिरी। वहाँसे भी हिमालयकी चोटीपर आई। हिमालयकी चोटीसे पृथ्वीपर आई। पीछे हरिद्वार, प्रयाग, काशी, पटना प्रभृति स्थानोंमें बहती-बहती गङ्गासागरके पास समुद्रमें जा गिरी। जो गङ्गा एक दिन सर्व्वोच्च स्थान—स्वर्ग—में थी, वही ज्ञानमार्गसे भ्रष्ट होनेके कारण, बार-बार नीचे ही गिरती-गिरती, सबसे नीचे स्थान समुद्रमें जा गिरी। वहाँ पहुँचकर उसका अस्तित्व ही लोप हो गया—नाम ही मिट गया। इतना अधःपतन क्यों हुआ? केवल विवेक—विचार-शक्तिसे काम न लेने या विवेकके खो देनेसे। जो संसारी लोग विवेक या विचार-शक्तिसे काम नहीं लेते, जो कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विचार खो बैठते हैं, उनकी भी दशा गङ्गाकी-सी होती है। उनपर नाना प्रकारकी विपत्तियाँ

पड़ती हैं। जिस तरह एक बार अधःपतन आरम्भ होकर गङ्गा फिर ऊँची न उठ सकी, उसी तरह वे भी जब नीचे गिरने लगते हैं, तब ऊँचे नहीं उठते और एक दिन मिट्टीमें ही मिल जाते हैं।

विचार-शक्ति ही हमारी सच्ची रक्षिका और मार्ग-प्रदर्शिका है। जो लोग प्रत्येक बुरे और भले काममें इसकी सलाह नहीं लेते अथवा इसका कहना नहीं मानते, उनकी दुर्गति निश्चय ही होती है। स्वयं विष्णु भगवान्ने भले और बुरे कामका विचार न करके, जलन्धरकी स्त्री वृन्दाका सतीत्व भंग किया। इसका परिणाम यह हुआ कि, आपको नीचा देखना पड़ा और अब सदा उसे तुलसीके रूपमें सिरपर धारण करना पड़ता है। आपने बौनेका रूप धरकर राजा बलिको छला। नतीजा यह हुआ कि, आपको उनके दरवाजेका दरबान होना पड़ा। राजा बलिने विवेकसे काम न लेकर सर्वस्व दान कर दिया। परिणाम यह हुआ कि, आप बाँधकर पाताल पठाये गये। चन्द्रवंशी राजा नहुष को, विवेक-भ्रष्ट होनेसे, महामुनि अगस्तके शापसे, दस हज़ार वर्ष तक, सर्प बनकर रहना पड़ा। लंकेशने, विवेक-भ्रष्ट होकर, जगज्जननी सीतापर मन डिगाया और उन्हें, रामचन्द्रजीको धोखा देकर, लङ्काको ले गया। इसी कारणसे उसे सकुल नाश होना पड़ा। कहाँ तक दृष्टान्त दें? जिसने भी विचार-शक्तिसे काम न लिया, उसका अधःपतन ही हुआ।

दुनियाँमें रोज़ ही देखते हैं कि, जो लोग विचारकर काम नहीं करते, वे अहर्निश नीचे-ही-नीचे गिरते चले जाते हैं। अज्ञानी लोग पहले तो परिणामका विचार न करके खलोंकी संगति करते हैं। दुष्ट लोग उन्हें गाना-बजाना सुनानेके बहाने वेश्याओंके यहाँ ले पहुँचते हैं। गाना सुनते-सुनते वे वेश्या-प्रेमी हो जाते हैं; फिर उन्हें उसके बिना चैन नहीं पड़ता; उसे ही अपनी आराध्य देवी समझकर रात-दिन उसीकी आराधनामें लगे रहते हैं। सोते-बैठते खाते-पीते उसीका ध्यान रखते हैं; अपना धन, यौवन और स्वास्थ्य सब उस जगत्‌की जूठन और चोर बदमाशोंके पीकदानपर न्यौछावर कर देते हैं; उसकी संगतिमें धीरे-धीरे शराबी और मांसाहारी हो जाते हैं एवं कोकीन प्रभृति प्राणहारक विषैले पदार्थोंको सेवन करने लगते हैं। जब तक पैसा पास रहता है, उसे देते हैं और जब पैसा चुक जाता है, तब बाप-दादेकी जायदाद बेच-बेचकर उसकी भेंट करते हैं। जब कुछ भी नहीं रहता, ऋण-भार सिरपर चढ़ाते हैं। जब क़र्ज़ भी नहीं मिलता, तब जूआ खेलते और चोरी-डकैती करते हैं। किसी न किसी दिन पकड़े जाते हैं, तो जेलकी हवा खाने भेज दिये जाते हैं। वहाँ उनका चरित्र नीच क़ैदियोंकी सुहबतसे और भी बिगड़ जाता है। जब मियाद पूरी होनेपर छूटकर आते हैं, तब पहलेसे भी अधिक बुरे कर्म करने लगते हैं, क्योंकि उन्हें उस समय न किसीसे शर्म आती है और न किसी तरहका

भय रहता है। अगर कुछ भी नहीं होता है, तो उसी वेश्याके जूठे बर्तन मलते हैं, उसके गन्दे कपड़े धोते हैं एवं मार और गालियाँ खाते हुए उसकी जूठनपर गुज़ारा करते हैं; यह दशा नामी-ग्रामी करोड़पतियोंकी, विवेकहीन होनेसे, होती देखी जाती है। एक बार ज़रासा अधःपतन आरम्भ होनेसे ही मनुष्य इस हीन दशाको पहुँच जाता है; क्योंकि बुरी आदतें बढ़ती ही चली जाती हैं। ड्राइडनने कहा है, जिस तरह पहले छोटे-छोटे नाले बनते हैं, फिर वे ही नाले दरिया हो जाते हैं और एक दिन समुद्रका रूप धारण करते हैं; उसी तरह हमारी बुरी आदतें पहले नालोंके रूपमें रहती हैं, पीछे वे ही नदियों और समुद्रका रूप धारण करके बेतहाशा बढ़ती चली जाती हैं। इस तरह हमारा अधःपतन अहर्निश होता ही रहता है। लेकिन जो बुद्धिमान प्रत्येक काममें विवेकसे काम लेते हैं, ज्ञानमार्गसे ज़रा भी विचलित नहीं होते, प्रत्येक बुरे और भले कामके आरम्भ करनेमें खूब ग़ौर करते हैं, परिणाम या नतीजेको सोचते हैं, उनका अधःपतन हरगिज़ नहीं होता—उन्हें संसारमें दुःख-भोग नहीं करना पड़ता। संसारमें विवेक-भ्रष्ट—अपरिणामदर्शी लोग ही दुःख पाते और अपनी हँसी कराते हैं।

दोहा—ईशशशी दिविशैल तजि, भू तजि गिरी समुद्र।
यथा गंग तिमि ज्ञान बिनु, नीचहि गिरते क्षुद्र ॥१०॥



गंगाके दृष्टान्तसे मालूम होता है कि, विवेकभ्रष्टोंका पद-पदपर सैकड़ों तरहसे पतन होता है ।

(पृष्ठ २७)

10. Look how the great Ganges has fallen lower and lower from her high pedestal, from the Swarga down on to the head of the God Shiva, thence to the summit of the mountain, from the mountain to the plain earth below and thence down to the sea, similar is the fate of men, devoid of discrimination, who undergo a downfall in hundreds of ways.

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो-
नागेन्द्रोनिशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्द्धभौ ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहश्चविविधमन्त्रप्रयोगैर्विषं,
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्यनास्त्यौषधम् ।११

पानीसे आगको बुझा सकते हैं; छातेसे धूपको रोक सकते हैं; तेज़ अंकुशसे श्रेष्ठ हाथीको वशमें रख सकते हैं; डण्डेके ज़ोरसे दुष्ट बैल और गधेको क़ाबूमें रख सकते हैं; नाना प्रकारकी औषधियोंसे रोगोंको नष्ट कर सकते हैं; विविध प्रकारके मन्त्रोंसे विषको उतार सकते हैं; शास्त्रमें सबका इलाज है, पर मूर्खका इलाज नहीं है ॥ ११ ॥

योगिराजकी टक्करका ही एक श्लोक और किसी विद्वान्ने कहा है । पाठक ! आपके मनोरञ्जनार्थ हम उसे भी यहाँ उद्धृत किये देते हैं:—

पोतो दुस्तर वारिराशि तरणे दीपो अन्धकारागमे,
निर्वाते व्यजनं मदान्ध करिणां दर्पोपशान्त्यै सृणिः ॥

इत्थं तद्भुवि नास्ति यस्य विधिना नोपाय चिन्ताकृता,
मन्ये दुर्जन चित्तवृत्ति हरणे धातापि भग्नद्योमः ॥

दुस्तर महासागरसे पार होनेके लिये नाव है; अन्धकार नाश करनेके लिये दीपक है; हवा करनेके लिये पंखा है; मदमत्त गजराजके घमण्डको नाश करनेके लिये अंकुश है। पृथ्वीपर ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसके उपायकी विधाताने फ़िक्र न की हो। इसके मानते हुए भी यह कहना पड़ता है कि, दुष्टकी चित्तवृत्तिको हरण करनेके उपायमें, विधाताका भी उद्योग निष्फल हुआ; अर्थात् दुष्ट या मूर्खकी दवा स्वयं ब्रह्मा भी न निकाल सका।

जिस विधाताकी चातुरी और कारीगरीको देखकर मनुष्य चकित हो जाता है, जिसने पृथ्वी, आकाश, सूर्य्य और चाँद तथा अगणित तारागणोंकी सृष्टि की, जिसने मनुष्य, पशु-पक्षी, जलचर, थलचर और नभचर नाना प्रकारके जीव-जन्तुओंकी रचना की, जो अनन्त और सर्वशक्तिमान् है, वह विधाता भी मूर्खकी औषधि न निकाल सका, यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है। यहाँ आकर उसका भी दिमाग़ चक्कर खा गया, तब मनुष्यकी क्या सामर्थ्य है, जो ज़िदपर चढ़े हुए, अपने तईं बुद्धिमान् समझनेवाले मूर्खकी चित्त-वृत्तिको सुधार सके—उसे किसी तरह समझा-बुझाकर राहपर ला सके ? मूर्ख किसीकी नहीं मानता और बुद्धिमान् दूसरेकी उचित बातको फौरन मान लेता है।

इसका मुख्य कारण मूर्खका अपने तईं मूर्ख न समझना है। शेक्सपियरके 'ऐज़ यू लाइक इट' में एक जगह लिखा है†—"मूर्ख अपने तईं बुद्धिमान् समझता है; किन्तु बुद्धिमान् अपने तईं मूर्ख मानता है।" मूर्खका अपनी मूर्खता न समझना, अपनी ही बातको सर्व्वश्रेष्ठ समझना, और अपनी निकम्मी अक़्लपर घमण्ड करना ही उसके सदा-सर्वदा मूर्ख रहनेका ख़ास कारण है। परमात्मा दुराग्रही मूर्खसे पाला न पटके। बुद्धिमानोंको चाहिये, कि ऐसे हठीलोंसे माथापच्ची करके अपना समय वर्बाद न करें, क्योंकि उन्हें हरगिज़ कामयाबी न होगी। जो ऐसोंको राहपर लानेकी उम्मीद करता है, वह अपने हाथों अपनी मौतको आह्वान करता है। अक़्लमन्द उसे भी मूर्ख ही समझते हैं। भामिनी विलासमें लिखा है:—

हालाहलं खलु पिपासति कौतुकेन,
कालानलं परिचुम्बिषति प्रकामम्।
व्यालाधिपञ्च यतते परिरब्धुमद्धा,
यो दुर्जनं वशयितुं कुरुते मनीषाम्॥

जो मनुष्य दुष्टको वशमें करनेका यत्न करना चाहता है, वह हलाहल विषको पीने, कालाग्निको चूमने और भयंकर नागेन्द्रको आलिङ्गन करनेकी इच्छा करता है।

---

† The fool doth think he is wise, but the wise man knows himself to be a fool.—*As you like it.*

छप्पय—मिटै छत्रसों धूप, और जल अग्नि बुझावै।
तीखे अंकुश मार, मत्त गज बसमें लावै।
दण्ड दिये तें दुष्ट बैल, अरु गदहा मूरख।
औषधि विविध प्रदान, ब्याधि खोवै, चित तू रख॥
अरु लिखे अनेकन मन्त्र जिमि, हरहिं जु बिषता सबनकी।
पै इक नाहिं औषधि जगतमें, दहै मूर्खता कुजनकी ॥११॥

11. Fire can be put down by water; protection from the sun can be effected by an umbrella; an elephant can be curbed by a sharp-pointed Ankusha weapon; a head-strong bull or an ass can be controlled by a stick; a disease can be cured by medicines or various preventive measures and the effects of poison can be nullified by the chanting of Mantras. There is a special remedy for everything given in the Shastras, but there is no remedy for an ignorant person.

साहित्यसंगीतकलाविहीनः,
साक्षात्पशुःपुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमान
स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥ १२ ॥

जो मनुष्य साहित्य और संगीतकलासे विहीन है; यानी जो साहित्य और संगीतशास्त्रका ज़रा भी ज्ञान नहीं रखता या इनमें अनुराग नहीं रखता, वह बिना पूँछ और सींगका साक्षात् पशु

है। वह घास नहीं खाता और जीता है, यह इतर पशुओंका परम सौभाग्य है।

जो मनुष्य काव्य, अलंकार और न्याय प्रभृतिका ज्ञान नहीं रखता—इनसे अनुराग नहीं रखता; गानविद्यामें रुचि नहीं रखता, उसका मर्म्म नहीं जानता, वह मनुष्य होनेपर भी मनुष्य नहीं; किन्तु बिना दुम और सींगका जानवर है। वह घास नहीं खाता और जीता है, यह अन्य पशुओंका सौभाग्य है। अगर वह भी कहीं घास खाता होता, तो बेचारे पशुओंको अपना पेट भरना कठिन हो जाता—बेचारे घास बिना भूखों मर जाते।

जन्म लेनेके समय मनुष्यके बच्चे और पशुके बच्चेमें कोई फ़र्क़ नहीं होता। दोनों ही ज्ञानहीन पशु होते हैं। केवल रूप, रङ्ग और आकृतिमें फ़र्क़ रहता है, सो यह भेद तो पशुओंमें भी रहता है। पशु भी अनेक प्रकारके होते हैं। उनमें ही, मनुष्य भी एक प्रकारका पशु ही होता है। मनुष्य जब विद्यार्ज्जन करता है, नाना प्रकारके ग्रन्थ पढ़ता है, विद्वानोंकी संगति करता है, तब उसे ज्ञान होता है, वह हिताहित और कर्त्तव्याकर्त्तव्यको समझने लगता है, तभी वह पशुसे मनुष्य बनता है। मनुष्य और पशुमें इतना ही भेद होता है, कि मनुष्यमें ज्ञान और विवेक होता है; पर पशुओंमें यह नहीं होता। अगर मनुष्य भी अज्ञानी और निरक्षर हो, तो वह मनुष्य कहलानेका अधिकारी नहीं। कहा है—

आहार निद्रा भय मैथुनं च
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणां ।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

मनुष्य खाते-पीते हैं, पशु भी खाते-पीते हैं, मनुष्य सोते हैं, पशु भी सोते हैं, मनुष्य डरते हैं, पशु भी डरते हैं, मनुष्य मैथुन करते हैं, पशु भी मैथुन करते हैं। ये चारों काम मनुष्य और पशु समान रूपसे करते हैं। फिर; मनुष्य और पशुओंमें भेद क्या ? बस, भेद यही है, कि मनुष्योंमें धर्म-ज्ञान होता है; किन्तु पशुओंमें वह नहीं होता। धर्म-ज्ञानसे ही मनुष्य—मनुष्य कहलाता है और धर्म-ज्ञानके अभावसे पशु—पशु कहलाता है। स्विन्नाक नामक एक पाश्चात्य विद्वान्ने भी यही बात कही है। आप कहते हैं,—"विद्या मनुष्यका गुणोत्कर्ष है, जिससे वह साधारण रूपसे इतर पशुओंसे विभिन्न समझा जाता है।"

अँगरेजीमें और हमारे यहाँ भी एक कहावत है—"कोई भी मनुष्य माँके पेटसे बुद्धिमान् और विद्वान् नहीं पैदा होता।" सभी पढ़-लिखकर और अनुभव प्राप्त करके विद्वान् और बुद्धिमान् हो जाते हैं। मनुष्यको इस संसारमें जीवनका बेड़ा सुखसे पार करनेके लिये, आगेकी यात्राके लिये अच्छी-अच्छी तैयारियाँ करनेके लिये, साहित्य

(Literature) और संगीत-शास्त्र (Music) में जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। साहित्यावलोकनसे मनुष्यके ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं, उनपर पड़ा हुआ पर्दा हट जाता है। वह स्वार्थ और परमार्थ दोनोंकी सिद्धिमें सफलता लाभ करता है, इस लोकमें सुखसे ज़िन्दगी बसर करता और मरनेपर स्वर्गमें जाकर देवताओंके समान आनन्द करता है अथवा जन्म-मरणके बन्धनसे छुटकारा पाकर नित्य सुख भोगता है।

एक दिन हमारे देशमें सङ्गीत-शास्त्र—गान-विद्या या स्वरशिक्षाका बड़ा आदर था। लोग इस कलामें अच्छी निपुणता लाभ करते थे। कोई ३०० साल हुए, अकबरके ज़मानेमें ही, तानसेन जैसे सङ्गीत-कला मर्म्मज्ञ हो गये हैं। सुनते हैं, उन्होंने 'दीपक राग'से दीपक जला दिये थे। रावणने अपनी स्वर-विद्यासे ही शिवजीको मोहित करके मनमाने वर लाभ किये थे। "पञ्चतंत्र"में लिखा है—

नान्यद्गीतात्प्रियं लोके देवानामपि दृश्यते।
शुष्क स्नायु स्वराह्लादात्त्र्यक्षं जग्राह रावणः॥

संसारमें गीतसे अधिक प्यारी चीज़ और नहीं है। तपस्याके कारणसे इन्द्रियोंके सूख जानेपर भी, रावणने "स्वर" से ही शिवजीको अपने वशीभूत किया था।

हमारे नारदजी इस कलामें कैसे निपुण हैं, इसे कौन नहीं जानता ? श्रीकृष्णकी बाँसुरीकी ध्वनिसे ब्रजबालायें अपने पतियोंको सोते छोड़कर, अपने प्राणप्यारे बालकोंको विसारकर, कृष्ण भगवान्‌की सेवामें पहुँचती थीं। भगवान्‌की बाँसुरीकी रसीली ध्वनिसे एक दिन जमुनाका बहना और चन्द्रमाका चलना बन्द हो गया था। इसपर पशु भी मुग्ध हो जाते हैं। हिरन बंसीकी ध्वनिसे व्याधाके बन्धनमें पड़कर प्राण दे देता है। सर्प जैसा भयङ्कर जन्तु भी मदारीकी पुङ्गीकी ध्वनिपर नाचने लगता है; तब मनुष्योंका क्या कहना ?

पाश्चात्य विद्वानोंने भी इस विद्याकी कम तारीफ नहीं की है। जगद्‌विजयी सम्राट्‌कुलतिलक नेपोलियनने कहा है—"सङ्गीतका, सब विद्याओंकी अपेक्षा, मनुष्यके चित्तपर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है, इसलिये आईन बनानेवालेको इसे सबसे अधिक प्रोत्साहन देना चाहिये।" लूथर महोदय कहते हैं—"सङ्गीत मनुष्योंको अधिक भव्य, सभ्य, विनीत, नम्र तथा विवेकी और न्यायी बनाता है।" एडीसन महोदय कहते हैं—"सङ्गीत ही एकमात्र इन्द्रियोंको आनन्दित करनेवाला विषय है, जिसे मनुष्य यदि अधिकतासे भी उपभोग करे, तो भी उससे उसके नैतिक और धार्मिक विचारोंको हानि नहीं होती।" बीथोविन साहब कहते हैं—"सङ्गीत आत्मिक और दैहिक जीवनका

मध्यस्थ है।" बोवी महाशय कहते हैं—"संगीत हमारी चार बड़ी ज़रूरियातोंमेंसे एक है—पहली ज़रूरियात भोजन है; दूसरी पोशाक है; तीसरी आश्रय-स्थान है और चौथी संगीत या गानवाद्य कला है।" लूथर महाशय और भी कहते हैं—"सङ्गीत भविष्यवक्ताओंकी विद्या है। इस एकमात्र विद्यासे ही अशान्त या उद्विग्न आत्माको शान्ति मिल सकती है।" एक महाशय कहते हैं—"सङ्गीतमें वह जादू है, जो निष्ठुर पशुवत् हृदयोंको भी शान्त कर सकता है।" कहिये पाठक! अब तो आपने सङ्गीत-विद्याकी गुणावलि समझी? यह वह विद्या है, जिसपर मत्त होकर सिपाही रणभूमिमें हँसता हुआ अपने प्राण दे देता है।

सारांश यह है, कि साहित्य और सङ्गीत विद्या दोनों ही मनुष्यको मनुष्य बनानेवाली और मानव जीवनके लिये परमावश्यक हैं। जो इन दोनोंसे कोरे हैं, वे निस्सन्देह पशु हैं। मनुष्यमात्रको इन दोनोंसे अनुराग रखना चाहिये। काम-धन्धोंसे जो समय मिले—उसे सोने, कलह करने या ताश-चौपड़में न गँवाकर, इनमें लगाना चाहिये। इनमें जो आनन्द है, उसे हम लिखकर बता नहीं सकते। बुद्धिमानोंका समय इनमें ही जाता है। कहा है—

काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

काव्य और शास्त्रके आनन्दमें ही बुद्धिमानोंका समय बीतता है। मूर्खोंका समय व्यसन, निद्रा और लड़ने-झगड़नेमें जाता है।

दोहा—गीत कला साहित्यहूं, नहिं सीख्यो नर जौन।
सींग पूँछ बिन पशू पर, तृण नहिं खाते तौन ॥१२॥

12. A man destitute of literary or musical attainments is a very beast minus tail and horns. He does not eat grass but still lives on and so is a very remarkable member of the beast family.

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ १३ ॥

जिन्होंने न विद्या पढ़ी है, न तप ही किया है, न दान ही दिया है, न ज्ञान ही उपार्ज्जन किया है, न सच्चरित्रोंका सा आचरण ही किया है, न गुण ही सीखा है, न धर्मका अनुष्ठान ही किया है—वे इस लोकमें वृथा पृथ्वीका बोझा बढ़ानेवाले, मनुष्यकी सूरत-शकलमें, मृगोंकी तरह पशु हैं।

जिन्होंने न्याय, नीति, वेदान्त आदि शास्त्रोंका अध्ययन नहीं किया है, जिन्होंने मधुसूदनकी भक्ति नहीं की है, जिन्होंने समाधि लगाकर मुकुन्दके चरणकमलोंका ध्यान नहीं किया है, जिन्होंने सत्पात्रोंको दान नहीं दिया है,

जिन्होंने ग़रीब और मुहताजोंके कष्ट निवारण नहीं किये हैं, जिन्होंने शास्त्रीय और लौकिक ज्ञान सम्पादन नहीं किया है, जिन्होंने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यका ज्ञान लाभ नहीं किया है, जिन्होंने भले आदमियोंका-सा आचरण नहीं किया है, जिन्होंने शीलव्रत धारण नहीं किया है, जिन्होंने गुणोंका उपार्ज्जन नहीं किया है, जिन्होंने धर्म-कार्य नहीं किये हैं—उन्होंने इस दुनियामें, वृथा पृथ्वीका भार बढ़ानेके लिये, पशुओंकी तरह जन्म लिया है। वे सूरत-शकल या आकृतिसे मनुष्य हैं, पर वास्तवमें जानवर हैं। "हितोपदेश" में लिखा है—

दाने तपसि शौर्य्ये च यस्य न प्रथितं यशः।
विद्यायामर्थलाभे च मातुरुच्चार एव सः॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥

दान, तप, बहादुरी, विद्या और धनार्ज्जनमें जिसने नाम नहीं कमाया है, वह महतारीके मलमूत्रके समान है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इनमेंसे जिसे एककी भी प्राप्ति नहीं हुई, उसका जन्म लेना बकरीके गलेके स्तनोंकी भाँति वृथा ही है। परम नीतिज्ञ महात्मा शेख़ सादीने भी कहा है—

चूँ इन्साँरा न बाशद फ़ज़लो ऐहसाँ।
चे फ़र्क़ज़ आदमी ता नक़्श दीवार॥

हाजी ते नेस्ती शुतरस्त अज़ बराये आँके ।
बेचारा ख़ार मी ख़ुरद वा बार मी बरद ॥

यदि मनुष्यमें गुण सम्पादन करने और परोपकार करनेकी इच्छा न हो, तो उसमें और दीवारपर खिंचे चित्रमें क्या अन्तर है ? जिस हाजीमें दया आदि सद्गुण नहीं हैं, उससे वह ऊँट अच्छा जो काँटे खाकर बोझ उठाता है ।

और भी कहा है—पूर्णवयस्क वही मनुष्य है, जो सांसारिक वासनाओंसे मन हटाकर, ईश्वरके प्रसन्न करनेके उद्योगमें लगा रहता है । जिसमें यह बात नहीं, उसे विद्वान् पूर्णवयस्क—जवान नहीं समझते । पानीकी एक बूँदने चालीस दिन तक माँके पेटमें रहकर मनुष्यका रूप प्राप्त किया । अगर किसी पूरी उम्रके आदमीमें समझ, ज्ञान और सच्चरित्रता या शील न हो, तो उसे "मनुष्य" न कहना चाहिये ।

दोहा—विद्या दान न ज्ञान तप, शील धर्म गुण हीन ।
बिचराहिं ते नररूप पशु, भूमि-भार अति दीन ॥१३॥

13. Those who neither possess knowledge nor perform penances, who do not cultivate habits of charity and selfrealisation, and who have neither politeness nor capability nor a sense of duty, are only a burden of this earth and roam over it like beasts in the shape of men.

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।
नं मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥१४॥

सिंह व्याघ्र प्रभृति वनपशुओंके साथ घूमना अच्छा; पर मूर्खका सहवास इन्द्रभवनमें भी भला नहीं।

मनुष्यके न पहुँच सकने योग्य दुर्गम पहाड़ों और भयानक घोर जङ्गलोंमें सिंह, व्याघ्र आदि हिंसा करनेवाले जानवरोंमें रहकर ज़िन्दगीको ख़तरेमें डालना कहीं अच्छा, पर मूर्खके साथ मेलजोल, दोस्ती और परिचय करके स्वर्ग-समान सुखोंका भोगना किसी दशामें भी भला नहीं। दरिद्रताका जीवन यापन करना भला, पर मूर्ख या दुष्टके साथ अमीरीके सुख भोगना भला नहीं।

किसी और महापुरुषने भी कहा हैः—

वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्ट वृषभो
वरं वेश्या पत्नी न पुनरविनीता कुलवधूः।
वरं वासोऽरण्ये न पुनरविवेकाधिप पुरे
वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः॥

सूनी ग्वाड़ भली, पर दुष्ट बैल अच्छा नहीं; वेश्या-पत्नी अच्छी, पर दुश्चरित्रा कुलबधू भली नहीं; वनमें बसना अच्छा, पर अविवेकी—अविचारवान्के राज्यमें रहना भला नहीं; मर जाना भला, पर नीचका सङ्ग करना अच्छा नहीं।

ईसाइयोंकी "इञ्जील" में लिखा है—"बुद्धिमानोंकी झिड़कियाँ सुनना भला, पर मूर्खोंके गीत सुनना अच्छा नहीं।" † और भी कहा है—"जो बुद्धिमानोंकी संगति करता है, वह निश्चय ही बुद्धिमान हो जायगा। किन्तु मूर्खोंके साथ रहनेवाला अवश्य ही नष्ट हो जायगा।" ‡

"हितोपदेश" में कहा है:—

त्यज दुर्जन संसर्गं, भज साधु समागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं, स्मरन्नित्यमनित्यताम्॥

दुर्जनोंका संसर्ग त्याग, सज्जनोंका सङ्गकर और सदा संसारकी अनित्यताका ध्यान रखकर, दिन-रात पुण्य संचय कर।

और भी कहा है:—

न स्थातव्यं न गन्तव्यं दुर्जनेन समं क्वचित्।
काक संगाद्धतो हंसस्तिष्ठन् गच्छंश्च वर्तकः॥

दुष्टके साथ न रहना चाहिये और न उसके साथ चलना चाहिये। कव्वेके साथ रहनेसे हंस और साथ चलनेसे बटेर मारा गया।

---

† It is better to hear the rebuke of the wise than for a man to hear the song of fools.—*Bible.*

‡ He that walketh with wise man shall be wise; but a companion of fools shall be destroyed.—*Bible.*

शेखसादीने भी कहा है—"जो दुष्टकी सङ्गति करता है, वह भला आदमी नहीं बनता। फरिश्ता यदि देवोंकी संगति करता है, तो चोरी और धूर्त्तता ही सीखता है।"

मनुष्य जैसेकी संगति करता है, वैसा ही हो जाता है। हीनकी संगतिसे हीन, समानकी संगतिसे समान और उच्चकी संगतिसे उच्च हो जाता है। जो मूर्ख और दुष्टोंकी संगति करता है, वह स्वयं मूर्ख हो जाता और अपनी तथा अपने मूर्ख साथियोंकी संगतिसे विविध प्रकारके क्लेश और दुःख भोग करता है; इसीलिये मूर्ख और दुष्टोंके संग रहने-सहने, चलने-फिरने और बोलने-चालने तककी मनाही की है; क्योंकि दुष्ट अपने अच्छे-से-अच्छे साथीको अपना जैसा बना लेते हैं।

कुसंग सर्वथा परित्याज्य है। कुसंगके समान सर्व्वनाशक और कुछ भी नहीं है। जिन लोगोंका अधःपतन हुआ है उनसे पूछिये, तो उनमेंसे प्रायः सभी अपने अधःपतनका कारण कुसंग ही बतावेंगे। संसारमें कुपथगामियोंकी संख्या बहुत है। ये लोग भले आदमियोंको ख़राब-ख़राब क़िस्से-कहानियाँ सुनाकर, लण्डनरहस्य, छबीली भटियारी, तोता-मैनाके क़िस्से प्रभृति पुस्तकोंके पढ़नेका चसका लगाकर, रण्डियोंके यहाँ ले जाकर, थियेटरके तमाशे दिखाकर—अनेक प्रकारके आचरण करके और प्रलोभन देकर बेदाग़ आदमियोंको भी ख़राब कर देते हैं। मूर्खोंके साथ रहकर

मनुष्य लड़ना-भिड़ना, जूआ खेलना, चोरी करना, शराब पीना और ऐयाशी करना—ऐसे-ऐसे ही गन्दे काम सीखता है।

मूर्ख और दुष्टोंके साथ रहनेसे काम, क्रोध, लोभ, मोहकी उत्पत्ति होती है और स्मृति तथा बुद्धिका नाश होता है। नीचोंके दृष्टान्तसे, उनके साथ कुसंगीत सुनने और ख़राब पुस्तकें पढ़नेसे, मनुष्यके दिलमें, स्वभावसे ही, कामकी उत्पत्ति होती है—भोग-लालसा बलवती होती है और जब भोगेच्छाकी परितृप्ति नहीं होती, उसमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित होती है, तब क्रोधका उद्रेक होता है। क्रोधसे मोहकी उत्पत्ति होती है। उस समय मनुष्यका चित्त अन्धकारावृत हो जाता है। चित्तमें अँधेरा होते ही स्मृतिभ्रम होता है अर्थात् जो कुछ ज्ञान सञ्चय हुआ था, दृष्टान्त देखकर या शास्त्र पढ़कर जो सत्पथानुरागी होनेकी इच्छा हुई थी, वह सर्वथा नाश हो जाती है। इस तरह स्मृति-विभ्रम होनेसे ही बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धि नाश होनेसे मनुष्यकी वैसी ही दशा होती है, जैसी कि नावका पाल टूट जानेसे नावकी होती है। बहुत क्या कहें, बुद्धिके नाशसे सर्वनाश ही हो जाता है। मूर्ख और नीचोंके संग रहनेसे उस बुद्धिका ही नाश हो जाता है, जिसके बिना मनुष्य इस जगत्में एक क्षण भी स्थित नहीं रह सकता; इसीसे महापुरुषोंने मूर्खोंकी संगतिसे वन्य पशुओंकी संगति अच्छी कही है।

उनके साथ रहकर मनुष्य कदाचित् जीवन-रक्षा कर भी ले; पर इनके साथ मनुष्यकी ख़ैर नहीं। उनके खा जानेसे तो मनुष्यका जीवन ही नाश होता है—परलोक नहीं बिगड़ता; पर इनकी संगतिसे पद-पदपर विपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं, लोग थू-थू करते हैं और प्राण नाश होनेपर परलोक बिगड़ जाता है। कहाँ तक कहें, मूर्खोंके संगसे सिंह प्रभृति भयानक जन्तुओंका संग लाख दर्जे सुखदायी है।

लंकेश रावण नीतिशास्त्रका धुरन्धर पण्डित था; पर सूर्पणखा जैसी मूर्खाने उसकी मति क्षणभरमें बिगाड़ दी—उसको जनकनन्दनीके अलौकिक रूप-लावण्यकी बात सुनाकर, पागल कर दिया। सूर्पणखाकी बातोंसे ही उसके चित्तमें कामकी उत्पत्ति हुई। भय तो उसे किसीका था ही नहीं, कामातुर होनेसे वह पूरा निर्लज्ज बन गया। चुपचाप आकर, यतिका भेष धरकर, जगज्जननी सीता माताको ज़बरदस्ती उठा ले गया। रामचन्द्रजीने अपने मित्र सुग्रीव और हनुमान प्रभृतिकी सहायतासे बानर-दल लेकर लंकापर चढ़ाई की। जब रावणको अपनी भोग-लालसामें बाधा उपस्थित होती दिखाई दी; वह एकदमसे क्रोधान्ध हो गया। क्रोधान्ध होनेसे उसका चित्त भी अन्धकाराच्छन्न हो गया। शास्त्र और नीतिको पढ़कर जो अपूर्व ज्ञान उसने सञ्चय किया था, वह सब नाश हो गया।

रही-सही बुद्धि भी नष्ट होगई। इसीसे विभीषण, कुम्भकर्ण, मन्दोदरी प्रभृति हितचिन्तकोंके समझानेसे भी वह न माना और जगत्पति रामचन्द्रजीसे लड़नेको तैयार हो गया। परिणाम जो हुआ, उसे संसारमें कौन नहीं जानता है? जिसके घरमें एक लाख पूत और सवा लाख नाती थे, उसके घरमें दिया जलानेवाला भी न रहा! यह सब क्यों हुआ? एकमात्र मूर्खा सूर्पणखाकी कुसंगति और कुमन्त्रणासे। कहते हैं, दुष्टका पड़ोस भी बुरा। रावणके पड़ोसमें बसनेसे बेचारा समुद्र वृथा ही बाँधा गया। अगर वह रावण जैसे नीचके पड़ोसमें न होता, तो उसकी दुर्गति क्यों होती? दुष्ट जो कुकर्म करते हैं, उनका फल भले आदमियोंको भी भोगना पड़ता है। "हितोपदेश"में लिखा है:—

खलः करोति दुर्वृत्तं, नूनं फलति साधुषु।
दशाननोऽहरत्सीतां, बन्धनंस्यान्महोदधेः॥

खल—दुष्ट जो दुष्कर्म्म करता है, उसका फल साधुओंको निश्चय ही भोगना होता है। रावणने सीताहरण किया और समुद्र बेचारा बाँधा गया।

अगर हम मूर्ख-संसर्गके दोषोंको इसी तरह समझाते चले जायेंगे, तो एक इसी विषयसे बड़ा पोथा तैयार हो जायगा। यह हमारा अभीष्ट नहीं, इसलिये मूर्खकी परिभाषा समझाकर ही, हम इस विषयको समाप्त करेंगे।

क्योंकि नासमझ और नातजुर्बेकार लोग केवल अपढ़—निरक्षरोंको ही मूर्ख समझते हैं; पर मूर्ख पढ़े-लिखे भी होते हैं और विना पढ़े भी। जर्मनोंमें एक कहावत है—"पढ़े-लिखे मूर्ख सब मूर्खोंसे ख़तरनाक होते हैं"। मनुष्यकी अपढ़ मूर्खोंसे जितनी बुराई होती है, उसकी अपेक्षा पढ़े-लिखे मूर्खोंसे बहुत अधिक होती है। निरक्षर मूर्ख साधारण सर्पोंके समान होते हैं; किन्तु साक्षर—पढ़े-लिखे मूर्ख मणिधारी काल़सर्पके समान भयंकर होते हैं।

असल बात यह है, जो मनुष्य मूर्खोंकेसे काम करे, वही मूर्ख है; चाहे वह पढ़ा-लिखा हो और चाहे अपढ़ हो। शेख़सादीने यही बात कही है:—

इल्म चन्दाँ कि बेश्तर ख़ानी।
च अमल नेस्त दर तो नादानी॥
न मुहक्क़िक़ बुवद न दानिशमन्द।
चारपाये बरो किताबे चन्द॥

जो पढ़े-लिखे मनुष्य मूर्खोंकेसे काम करते हैं, वे पढ़े-लिखे मूर्ख हैं। किसी गधेपर यदि कुछ ग्रन्थ लाद दिये जायँ, तो क्या वह उनसे विद्वान् या बुद्धिमान बन सकता है ?

चन्दनका भार उठानेवाला गधा केवल भारकी बात जानता है, वह चन्दन और उसके गुणोंको नहीं जानता;

इसी तरह जो लोग अनेक शास्त्रोंको पढ़ तो लेते हैं, पर शास्त्रोंके उपदेशानुसार नहीं चलते—वे मूर्ख गधे ही हैं। ऐसोंको ख़ाली अहङ्कार हो जाता है। इससे उनकी मूर्खता और भी भयङ्कर हो जाती है। अँगरेज़ीमें एक कहावत है—"विद्यासे मनुष्य बुद्धिमान हो जाता है; किन्तु मूर्ख उससे और भी मूर्ख हो जाता है।" "गुलिस्ताँ"में लिखा है—"निकम्मे लोहेसे कोई भी अच्छी तलवार नहीं बना सकता। अक़्लमन्दो ! सुनो, बदज़ात नालायक़को नेक बनाना असम्भव है। मेह—क्या बाग़ीचा और क्या ऊसर ज़मीन—सर्वत्र यकसाँ जल बरसाता है, पर बाग़ीचोंमें लाला फूलते हैं और ऊसरमें घास उपजती है। ऊसर ज़मीनमें कभी सम्बुल नहीं लगता।" इसका यही मतलब है, कि जिनमें स्वाभाविक योग्यता होती है, वे ही विद्यासे बुद्धिमान बन जाते हैं।

वकिल नामक एक विद्वान् कहते हैं—"विषयोंसे परिचित होना यथार्थ विद्या नहीं है; किन्तु विषयोंका प्रयोग करना यथार्थ विद्या है। उससे मनुष्य ख़ाली अहंकारी बनता है और इससे दार्शनिक पण्डित होता है।" हमारे भारतके भूतपूर्व स्टेट सेक्रेटरी जॉन मारलेने भी कहा है—"यह समझना बड़ी ग़लती है, कि हमने अमुक उच्च श्रेणीके ग्रन्थको एक, दो या दस बार पढ़ लिया। बस, अब हो गया······तुम्हें अपनी रोज़ाना ज़िन्दगीमें, उसे अपना साथी

बनाना चाहिये।" बात यह है, जो पढ़ो उसपर विचार करो और उसे अपने जीवनमें प्रयोग करके अनुभव प्राप्त करो।

बहुत ही कम लोग ऐसा करते हैं। लोग पढ़ते हैं, सो करते नहीं; उत्तमोत्तम सारपूर्ण निबन्ध लिखते हैं; परमोत्तम कवितायें करते हैं; पर आप स्वयं वैसे उत्तम कर्म नहीं करते। मैंने स्वयं अनेक लोग ऐसे देखे हैं, जो सचमुच ही लिखनेमें कमाल करते हैं। विद्याबुद्धिके कारण उनकी सुख्याति भी बहुत है। पर जब मैंने उनके भीतरी चरित्रोंपर निगाह दौड़ाई, तो मालूम हुआ, कि उन जैसे नीच, निर्दयी, कपटी, अहंकारी बहुत कम लोग हैं। उनसे निरक्षर ग्रामीण लाखों दर्जे उत्तम हैं। वे पढ़े-लिखे मूर्ख, अपनी सामान्य विद्याके कारण, मदोन्मत्त हाथीसे भी अधिक मतवाले रहते हैं। उनके अहंकारकी सीमा नहीं। जिनमें अहंकार है, उन्हें विद्वान् कौन कह सकता है? जो अहंकारी है, उसमें कौनसा दुर्गुण नहीं? विद्याका फल अहंकारका नाश होना है। जिनमें अहंकार है, वे तो मूर्खोंके राजा हैं। बक़ौल शेख़सादी, उस बर्रके समान हैं, जो डङ्क तो मारती है, किन्तु मधु नहीं देती। उनसे मनुष्योंको कष्ट ही होता है।

अब बहुत हो गया। समझदारोंको सब तरहके मूर्खोंसे सदा अलग रहना चाहिये। मूर्खोंकी छाया भी भली

नहीं। दुष्टोंका ज़रासा संसर्ग भी बुरा। एक बार, एक कारख़ानेके स्वामी मेरे यहाँ आकर ठहरे। मैंने उन्हें ऊँचे दर्जेका आदमी समझकर, उनकी बड़ी आव-तवाज़ा की। उनके लिये नाना प्रकारके षट्रस भोजन बनवाये और चाँदी-सोनेके बर्तनोंमें परोसकर खिलाये। और भी सब तरहसे उनकी ख़ातिर की। नतीजा यह हुआ, कि वे कुढ़ गये और मेरे सर्वनाशकी बन्दिशें बाँधने लगे। उनसे जो बना, उसमें उन्होंने घाटा न रखा; पर परमात्माकी दयासे मेरा बाल भी बाँका न हुआ। महामुनि वशिष्ठजीने, महाराज विश्वामित्रको अपने आश्रममें टिकाकर, क्या-क्या आफ़तें नहीं उठाईं ? इसीसे कहा है:—

वक्रैः क्रूरतरैर्लुब्धैर्न कुर्य्यात्प्रीति संगतिम्।
वशिष्ठस्याहरद्धेनुं विश्वामित्रो निमन्त्रितः॥

दोहा—कुटिल कूर लोभी जो नर, करै न संगति ताहि।
ऋषि वशिष्ठ-धेनू हरी, विश्वामित्र जु चाहि॥

पर ऐसे दुष्टोंका पहचानना सहज नहीं। आप किसीकी विद्या-बुद्धिका हाल कदाचित् एक ही दिनमें जान लें, पर उसके मानसिक दोषोंका पता आपको वर्षोंमें भी नहीं लग सकता। इसलिये शीघ्र ही किसीपर विश्वास न कर लेना चाहिये—शीघ्र ही उसे अपना साथी न बना लेना चाहिये; चाहे वह कैसा ही विद्वान् और हँसमुख क्यों न

हो। अगर किसी मूर्खसे पाला पड़ गया, तो आपको दिनमें तारे दीख जायँगे। गोल्डस्मिथने कहा है:—"मूर्खोंकी संगति, आरम्भमें, यदि हमें हँसा भी दे, तोभी, अन्तमें, वह हमें ग़मगीन बनाये बिना न रहेगी।"*

चाणक्यने कहा है:—

> **मूर्खस्तु परिहर्त्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः।**
> **भिनत्ति वाक्यशल्येन, अदृशं कंटको यथा॥**

मूर्खसे दूर रहना ही उचित है; क्योंकि वह देखनेमें मनुष्य है, पर यथार्थमें दो पाँवका पशु है। जिस तरह अन्धेको काँटा वेधता है; उसी तरह वह अपने वाक्य-रूपी शल्यसे मनुष्यके हृदयमें छेद कर देता है।

दोहा—बनचर सँग रहवो सुखद, बन-पर्वत के माहिं।
पै मूरख-सँग स्वर्गहू, दुखयुत संशय नाहिं॥१४॥

14. It is better to wander over hills or forests in the company of wild animals rather than to live in the society of ignorant men in the palace of Indra (the God of Paradise).

---

* The company of fools may at first make us smile, but at last never fails of rendering us melancholy—*Goldsmith.*

विद्वानोंकी प्रशंसा ।

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमा-
विख्याता कवयो वसन्ति विषयेयस्यप्रभोर्निर्धनाः
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य कवयोह्यर्थं बिनापीश्वराः,
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः॥ १५

जिन कवियोंकी वाणी शास्त्राध्ययनकी वजहसे शुद्ध और सुन्दर है, जिनमें शिष्योंके पढ़ानेकी योग्यता है, जो अपनी विद्याके लिये सुप्रसिद्ध हैं—ऐसे विद्वान् जिस राजाके राज्यमें निर्धन रहते हैं, वह राजा निस्सन्देह मूर्ख है। कविजन तो बिना धनके भी श्रेष्ठ ही होते हैं। रत्नपारखी यदि किसी बहुमूल्य रत्नका मोल घटा दे, तो रत्नका मूल्य कम न हो जायगा। रत्नका मूल्य तो जितना है उतना ही बना रहेगा; हाँ, मूल्य घटानेवाला अनाड़ी समझा जायगा॥ १५॥

जो राजा शुद्ध और मधुर वाणी बोलनेवाले, शिष्योंको सम्पूर्ण शास्त्रोंकी शिक्षा देनेकी योग्यता रखनेवाले सुप्रसिद्ध विद्वानोंकी क़दर नहीं करता, उनसे राजकाजमें सलाह नहीं लेता, उनको उनकी योग्यतानुसार पद देकर उनका धनाभाव नहीं मिटाता,—वह राजा निस्सन्देह मूर्ख है—वह स्वयं विद्वान् नहीं है। अगर उसने स्वयं विद्याध्ययन किया होता, तो निश्चय ही पण्डितोंकी क़दर करता। राजाकी बेक़दरीसे

विद्वानोंकी योग्यता नहीं घट जाती, किन्तु राजाकी मूर्खता ही प्रकट होती है। यदि कोई मूर्ख हीरेको पाकर फैंक दे, तो क्या हीरेकी क़ीमत कम हो जायगी? जंगलोंमें भील कोल आदि जंगली लोग गजमोतियोंको पाकर भी फैंक देते हैं। क्या उनके फैंक देनेसे मोतियोंका मूल्य घट जाता है? जब वे सच्चे जौहरियोंके हाथ पड़ जाते हैं, तब उनका यथार्थ आदर होता ही है। गुणी लोग ही गुणवानोंकी क़दर करते हैं—वे ही उनसे सन्तुष्ट होते हैं। निर्गुणियोंको गुणियोंसे कभी भी प्रसन्नता नहीं होती। भौंरे दूरसे भी आकर कमलका मधुपान करते हैं; पर मैंडक रात-दिन पास रहकर भी उनका मज़ा नहीं लेते। मैंडकोंकी अजानकारी या बेक़दरीसे कमलोंका क्या घट जाता है?

शेख़सादीने कहा है:—

आलिम अन्दर मयाने जाहिल रा।
मस्ले गुफ्तह अन्द सद्दीक़ाँ॥
शाहिदे दर मयाने कोरानस्त।
मसहफ़े दर मयाने 'ज़िन्दीक़ाँ॥

विद्वानोंकी क़दर विद्वान् ही करते हैं। मूर्खोंमें विद्वानोंकी वही दशा होती है, जो किसी सुन्दरीकी अन्धोंमें और धर्म-पुस्तककी नास्तिकोंमें।

और भी कहा है:—

पण्डित-जनको श्रम-मरम, जानत जे मत-धीर।
कबहूँ बाँझ न जानही, तन प्रसूतकी पीर॥
मूरख गुण समझे नहीं, तो न गुणीमें चूक।
कहा भयो दिनको बिभो ? देखी जो न उलूक॥
विरले नर पंडित गुनी, विरले बूझनहार।
दुखखण्डन विरले पुरुष, ते उत्तम संसार॥

पण्डितोंको राजाओं या अमीरोंकी बेक़दरीसे मनमें दुःखित न होना चाहिये। उनके पास यदि उत्तम विद्या है, तो क्या घाटा है ? विद्या स्वयं अक्षय धन है। एक मूर्खकी अवज्ञासे क्या होगा ? कोई न कोई गुणग्राही मिल ही जायगा। उनके दुःखित चित्तके सन्तोष-विधानार्थ हम "भामिनी विलास"की एक अन्योक्ति यहाँ उद्धृत कर देना उचित समझते हैं:—

कमलिनी मलिनी करोषि चेतः
किमिति बकैरवहेलिताऽनभिज्ञैः।
परिणतमकरन्द मार्मिकास्ते
जगति भवन्तु चिरायुषो मिलिन्दाः॥

हे कमलिनी ! अगर तेरे मकरन्दके मर्मको समझनेवाले भौंरे संसारमें जीते हैं, तो तू मूर्ख बगुलोंकी अवज्ञासे अपने मनको क्यों दुखी करती है ?

छप्पय—सब ग्रन्थनको ज्ञान, मधुर बाणी जिनके मुख ।
नित-प्रति विद्या देत, सुयशको पूर रह्यो सुख ।
ऐसे कवि जिहिं देश, बसत निर्धनता लहि अति ।
राजा नाहिं प्रवीन, भई याही तें यह गति ॥
वे हैं विवेक सम्पति सहित, सब पुरुषनमें अतिहि वर ।
घट कियो रतनको मोल जिन, तेइ जौहरी कूरनर ॥१५॥

15. If the poets of reputed fame whose speech is beautified by elegant expressions derived out of the sacred bore of Shastras and whose knowledge is fit for being imparted to their disciples, live in the territory of a King in a state of poverty, the fault lies at the door of the King himself; otherwise the poets are the Lords of all even without the possession of wealth. It is the unworthy jewellers who are to blame if they have reduced the price of precious gems (through their want of knowledge in setting the price of those gems.)

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा,
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम् ।
कल्पांतेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं,
येषां तान्प्रति मानमुज्झतनृपाः कस्तैःसह स्पर्द्धते ॥१६॥

हे राजाओ ! जिन महापुरुषोंके पास असाधारण विद्या-रूपी गुप्त धन है, उनसे आप हरगिज़ भी अभिमान न करें ।

उस धनको चोर देख नहीं सकते, उससे सदा सुखकी ही वृद्धि होती है, याचकोंको देनेसे भी वह सदा बढ़ता ही रहता है और कल्पान्त या प्रलय-कालमें भी उसका नाश नहीं होता। जिनके पास ऐसा धन है, उनकी बराबरी कौन कर सकता है।

जो राजा या धनी लोग अपने धन-वैभवके कारणसे विद्वानोंके सामने अभिमान करते हैं, उनको अपने मुक़ाबिलेमें तुच्छ समझते हैं,—उनका मान मर्दन करनेके लिये राजर्षि भर्तृहरिजी कहते हैं—"हे धनियो ! आपका धन चोर-चकोर, लुटेरे और डाकू सबकी नज़रोंमें रहता है। इसे आप छिपा कर भी छिपा नहीं सकते, इसलिये इसके जानेका सदा भय रहता है। आपके धनसे आपको वास्तविक सुख कभी नहीं मिलता। इसके कमानेमें दुःख, इसकी रक्षामें दुःख और इसके नाशमें दुःख है। ज्यों-ज्यों यह बढ़ता है, त्यों-त्यों चिन्ता और तृष्णा बढ़ती है। धनियोंका जीवन सदा ख़तरेमें रहता है। अगर यह धन माँगनेवालोंको दिया जाता है या और तरह ख़र्च किया जाता है, तो घटता ही जाता है, देनेसे बढ़ता नहीं। आपका यह धन चन्दरोज़ा है; सदा-सर्वदा नहीं रहता। अब विद्या-धनकी महिमा सुनिये,—वह धन सचमुच ही गुप्त धन है। वह किसीको भी नहीं दीखता, इसीसे उसे चोर चुरा नहीं सकते; डाकू लूट

नहीं सकते ; उसके रखनेवालोंका सदा भला ही होता है। वह चिन्ता और शोक घटाता और मनको प्रफुल्लित करके सुखको बढ़ाता है। उसकी रक्षाकी चिन्ता नहीं, जानेका खटका नहीं। वह ज्यों-ज्यों दिया जाता है, त्यों-त्यों उल्टा बढ़ता है और जन्मजन्मान्तर क्या कल्पान्तमें भी नाश नहीं होता—मनुष्यके हर बार जन्म लेनेपर साथ रहता है। उस असाधारण अक्षय धनकी बराबरी क्या आपका यह तुच्छ, साधारण और क्षणभंगुर धन कर सकता है? जिनके पास असाधारण गुणोंवाला विद्या-धन है, वे सचमुच ही महापुरुष हैं। उनकी समता संसारके राजा-महाराजा और धनी कदापि नहीं कर सकते। जो मूर्ख और ना-समझ हैं, वे ही विद्वानोंके सामने ऐंठते और अभिमान करते हैं; जिनमें कुछ भी अक्ल है, वे विद्वानोंके सामने अपने धनैश्वर्य्यका घमण्ड नहीं करते। महामूर्ख ही इस तुच्छ और सदा दुःखदायी धनसे फूलते और अपने तईं सुखी मानते हैं।

छप्पय—चोर सकत नहिं चोर, भोर-निशि पुष्ट करत हित।
अर्थिन हूँ कों देत, होत क्षण-क्षणमें अगणित।
कबहूँ बिनसत नाहिं, लसत विद्या सु गुप्त धन।
जिनके ये सुख-साज, सदा तिनको प्रसन्न मन॥
राजाधिराज प्रभु छत्रपाति, ये एतौ अधिकार लहि।
उनको निहार दृग फेरिबो, यह तुमको है उचित नहिं॥१६॥

16. Knowledge is a thing incapable of being stolen by thieves. It is always beneficial to everybody. Imparted to those who seek for it, it invariably finds something added to it. It is not destroyed even at the end of a Kalpa. O Kings, give up your pride in respect to those to whom this knowledge is their sole internal wealth. Who would behave improperly towards them ?

अधिगत परमार्थान् पण्डितान्मावमंस्था-
स्तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि ।
अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां,
न भवति विसतन्तुर्वारणं वारणानाम् ॥१७॥

हे राजाओ ! जिन्हें परमार्थ-साधनकी कुञ्जी मिल गई है, जिन्हें आत्मज्ञान हो गया है, उनका आप लोग अपमान न कीजिये; क्योंकि उनको तुम्हारी तिनके-जैसी तुच्छ लक्ष्मी उसी तरह नहीं रोक सकती, जिस तरह नवीन मदकी धारासे सुशोभित श्याम मस्तकवाले मदोन्मत्त गजेन्द्रको कमलकी डंडीका सूत नहीं रोक सकता ।

जिनका ईश्वरमें सच्चा प्रेम हो जाता है, जो उसके अनन्य भक्त हो जाते हैं, जिनका उसपर सच्चा विश्वास हो जाता है अथवा जो आत्मा और ब्रह्मको जान जाते हैं, वे केवल ईश्वर या अपनी आत्मामें ही मस्त रहते हैं। उन्हें संसारी धन-वैभव तो क्या, त्रिलोकीका आधिपत्य भी तुच्छा-

तितुच्छ जँचता है। वे धनके लोभसे संसारी राजा महाराजाओं और धनियोंकी खुशामद क्यों करने लगे ? जो आत्मानन्दमें मग्न रहते हैं या अपनी अचल भक्तिसे ईश्वरको अपना बना लेते हैं, उन्हें किस बातका अभाव रहता है ? अष्ट सिद्धि नव निधि उनके सामने हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। महाकवि दाग़ने कहा है:—

तेरी बन्दा नवाज़ी, हफ्त किशवर वख्फा देती है।
जो तू मेरा, जहाँ मेरा, अरब मेरा, अजम मेरा॥

तेरी सेवा करनेसे सातों वलायतोंका राज्य मिल जाता है। जब तू अपना हो जाता है, तो सारे संसारके अपना होनेमें क्या सन्देह ?

किसी बादशाहने एक महात्मासे पूछा—"क्या तुम कभी मेरा भी ख़याल करते हो?" महात्माने जवाब दिया—"हाँ, उस समय, जबकि मैं ईश्वरको भूल जाता हूँ।"

शेख़सादीने कहा है:—

हर सु दवद आँकसजे, दरे ख़ेश बर आनद।
वाँरा बख़वानद, व दरे कस न दवानद॥

जिसे ईश्वर अपने द्वारसे भगा देता है, वही घर-घर टुकड़े माँगता फिरता है; परन्तु जिसे वह अपने पास बुला लेता है, उसे किसीके भी द्वारपर जानेकी ज़रूरत नहीं होती; अर्थात् जिनका ईश्वरसे प्रेम हो जाता है, जिन्हें आत्मज्ञान

हो जाता है, वे धन और रोटीके लिये किसीकी खुशामद नहीं करते। अज्ञानी ही जगत्की झूठी मायामें फँसते हैं।

हमें इस मौक़ेपर एक कहानी याद आ गई है। उसे हम अपने पाठकोंके उपकारार्थ नीचे लिखे देते हैं—किसी राजाके एक मेहतर था। मेहतरने एक दिन राजभण्डारमें चोरी करनेका विचार किया। आधी रातके समय, वह राजाके शयनागारके पास ही सेंध लगाने लगा। ठीक उसी समय रानीने राजासे कहा—"मैं कितने दिनोंसे कहती हूँ, पर तुम बड़ी पुत्रीकी शादी नहीं करते।" राजाने कहा—"उपयुक्त वर मिले बिना, मैं किसके हाथ कन्या समर्पण करूँ ?" जब रानीने बहुत कहा-सुनी की, तो राजाने मजबूर होकर कहा—"अच्छा, कल सवेरे ही मैं पासके तपोवनमें जाऊँगा। वहाँ मुझे, पहलेही, जो योगी मिल जायगा, उसीको अपनी कन्या और आधा राज्य दे दूँगा। मेहतरने राजाका यह संकल्प सुन लिया। वह मन-ही-मन विचार करने लगा—"अब वृथा परिश्रम क्यों करूँ ? चोरी करने आया हूँ। अगर किसीको पता लग गया और मैं पकड़ा गया, तो प्राण-नाश होनेमें भी सन्देह नहीं। जाऊँ, योगीका वेष बनाकर, तपोवनमें बैठ जाऊँ; इस तरह अनायास ही राजकन्या और आधा राज मिल जायगा।" वह ऐसा स्थिर करके अपने घर गया और वहाँ योगी-वेश धारण

करके, रातमें ही, प्रभात न होनेपर भी, राजाके आनेकी राहके किनारे ही, तपोवनमें बैठ गया। गजरदम सवेरे, ज्योंही राजा तपोवनके क़रीब पहुँचे, वह समाधि लगा कर बैठ गया। राजाने देखा, कि योगी गम्भीर ध्यानमें मग्न है। राजा, उसे साष्टांग प्रणाम करके, उसके पास ही बैठ गया। राजाने बहुत देर तक प्रतीक्षा की, पर महात्माका ध्यान भङ्ग न हुआ। अवशेषमें, बहुत देरके बाद, महात्माने आँखें खोलीं। राजाने उसके पैरोंमें गिर कर नगरमें चलनेकी प्रार्थना की। बहुत कुछ ना-नूके बाद, योगिराजने राजाकी बात मानली। राजा उन्हें, बड़े आदरके साथ, आगे करके, ले आया। राजमहलमें आनेपर राजाने, योगिराजको सिंहासनपर बैठाकर, उनके पैर धोये। रानी चँवर ढोरने लगी। कुछ समय बाद, राजा-रानी दोनोंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"भगवन्! हमारे एक परमसुन्दरी कन्या है। आपकी अनुमति पानेसे, हम उस कन्याको और अपने आधे राज्यको श्रीचरणोंमें उत्सर्ग करना चाहते हैं।" मेहतर यह तमाशा देखकर मन-ही-मन विचारने लगा—"मैंने केवल ढोंगसे योगीका वेश धारण किया है—इतनेसे ही राजा-रानी, मेरे पैरोंमें गिर कर, राजकन्या और आधा राज्य देनेके लिये व्याकुल हैं। अगर मैं सच्चा योगी हो जाऊँगा, तो न जाने कितने राजा-रानी मेरे पदानत होंगे—कितनी राजकन्याएँ और कितने राज्य

मुझे मिलेंगे।" इस तरह विचार करते-करते उसका दिल बदल गया। उसने राजा और रानीकी प्रार्थना अस्वीकृत कर दी; और तत्क्षण सिंहासनसे उतर कर, व्याकुलभावसे, भगवान्को पुकारता-पुकारता, बनको चला गया। फिर विषय उसका स्पर्श तक न कर सके। भक्तिका द्वार खुल गया। जीवन सार्थक हो गया। भगवान्की कृपा हो गई—अमावस्याका अन्धकार पूर्णिमाकी रातमें परिणत हो गया। यह तो ज्ञानकी प्रथमावस्थाकी बात है। जिन्हें पूर्ण ज्ञान हो जाता है, उनका तो कहना ही क्या ?

सच है; जिनपर जगदीशकी कृपा हो जाती है, जिनके ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं, जिनका अज्ञानान्धकार दूर हो जाता है, उनको संसारी धन-वैभव तुच्छ-से-तुच्छ जँचते हैं। ऐसे ईश्वरके सच्चे भक्तों और ज्ञानियोंको जो प्रलोभनोंमें फँसाना चाहते हैं, वे उन मूर्खोंके समान ही हैं, जो मदमत्त गजराजको कमलनालसे बाँधनेका वृथा प्रयास करते हैं।

कुण्डलिया—पण्डित परमार्थीनको, नहिं करिये अपमान।
तृण-सम सम्पतको गिनैं, बस नहिं होत सुजान॥
बस नहिं होत सुजान, पटा झरमद है जैसे।
कमलनालके तन्तु-बंधे, रुक रहिहैं कैसे ?॥
तैसे इनको जान, सबहिं मुख शोभा मण्डित।
आदरसों बस होत, मस्त हाथी ज्यों पण्डित॥१७॥

17. Do not treat with disrespect the learned who have the highest objects of life within their reach. Riches which are as worthless as a straw are no deterrent for them. The fibre of a lotus stalk can not restrain an elephant, the upper part of whose trunk is black with the marks of fresh *mada* fluid bespeaking the restiveness of his temper.

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव,
हंसस्य हन्ति नितरांकुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्त्तुमसौ समर्थः ॥१८॥

अगर विधाता हंससे नितान्त ही कुपित हो जाय, तो उसका कमल-वनका निवास और विलास नष्ट कर सकता है; किन्तु उसकी दूध और पानीको अलग-अलग कर देनेकी प्रसिद्ध चतुराईकी कीर्तिको स्वयं विधाता भी नष्ट नहीं कर सकता।

दूध और जलको अलग-अलग कर देनेकी हंसमें स्वाभाविक सामर्थ्य है। इस गुणके लिये हंस सुप्रसिद्ध है। अगर विधाता, किसी वजहसे, हंससे अप्रसन्न हो जाय; तो वह इतना ही कर सकता है, कि उसको कमल-वनके निवास और विलाससे वञ्चित कर दे—उसे सकमल सरोवरमें आनन्द न करने दे; पर उसे उसकी जन्मसिद्ध क्षीर और नीरके

विलगानेकी चतुराईसे रहित नहीं कर सकता। मतलब यही है, कि किसीके स्वाभाविक गुणको नष्ट नहीं कर सकता।

मसल मशहूर है, "गौर रूसे तो अपना सुहाग ले, किसीका भाग्य नहीं ले सकती।" अगर कोई राजा-महाराजा या अमीर-उमरा किसी विद्वान्से नाराज़ हो जाय, तो उसे अपनी नौकरीसे निकाल दे सकता है; बहुत करे तो अपनी दी हुई जागीर और ज़मीन-जायदाद छीन ले सकता है; उसे अपनी दी हुई पदवियोंसे महरूम कर सकता है; पर उसकी विद्या-बुद्धि और स्वाभाविक चतुराई कोई नहीं छीन सकता। दुनियवी राजा-महाराजा तो क्या चीज़ हैं, स्वयं विधाता भी उसकी विद्या-बुद्धिसे उसे वञ्चित नहीं कर सकता। सर्व्वस्व नाश हो जानेपर भी विद्वान्के गुण नष्ट नहीं हो सकते; इसलिये विद्वानोंको राजाओं और धनियोंसे भय करने और मनमें ज़रा भी निराश होनेकी आवश्यकता नहीं। राजाओंको भी, इस बातपर विचार करके, अपने मिज़ाजका पारा ही नीचा रखना चाहिये। विद्वानोंको डराने, धमकाने और उनका अपमान करनेका ख़याल भी दिलमें न लाना चाहिये।

दोहा—*कोपित यदि विधि, हंसको हरत निवास विलास।*
पय पानीको पृथक गुण, तासु सकै नहिं नाश ॥१८॥

18. The God Brahma, if he becomes angry, can only deprive a Hansa-bird of its residence in a wood of

lotus flowers or its enjoyment of the same; but he is powerless to rob that bird of its untainted and world-wide fame in having the power of separating milk from water when these two are mixed with one another.

केयूरा न विभूषयंति पुरुषं, हारा न चंद्रोज्ज्वला ।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं, नालंकृता मूर्द्धजाः ॥
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं, या संस्कृताधार्यते ।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं, वाग्भूषणंभूषणम् ॥१६॥

बाजूबन्द, चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मोतियोंके हार, स्नान, चन्दनादिके लेपन, फूलोंके शृङ्गार और सँवारे हुए बालोंसे पुरुषकी शोभा नहीं होती; पुरुषकी शोभा केवल संस्कार की हुई सुन्दर वाणीसे है; क्योंकि और सब भूषण निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं, किन्तु वाणी रूप भूषण सदा वर्त्तमान रहता है ॥१६॥

तात्पर्य्य यह है, कि और सब भूषण नाशमान हैं; किन्तु वाणी-रूप भूषण नाशमान नहीं; इसलिये और भूषण वाणी-रूप भूषणकी बराबरी नहीं कर सकते। वाणी रूपी भूषण सब भूषणोंसे उत्तम है।

और सब जेवर अमीरीके चोचले हैं; जब तक धन रहता है ये रहते हैं; जहाँ धन गया और ये भी गये। धनका क्या भरोसा ? इस क्षण है, अगले क्षण न रहे। धन बिजलीकी चमक और बादलकी छायाके समान चञ्चल है। जिन्होंने

विद्यार्ज्जन करके, अपनी वाणीको विशुद्ध और सुन्दर कर लिया है, वे वास्तवमें रूपवान् हैं। उनका रूप सदा यकसाँ रहेगा। जो लोग पढ़-लिख कर वाणीको विशुद्ध नहीं करते, तमीज़ और तहज़ीब नहीं सीखते ; वे चाहे जितने गहने लाद लें, चाहे जितने ख़ूबसूरत बन लें, पर निकम्मे हैं।

छप्पय—कंकन छबि नहिं देत, हार उज्ज्वल नहिं सोहैं।
कर उबटन अस्नान, कुसुम नहिं मनको मोहैं॥
केतिक कसे सँभार, नाहिं शोभा दें ऐसी।
वाणी मनहर लसै, एक सुन्दर मुख जैसी॥
जग और अभूषण सब गिरें, टूटें बिनसें हैं सही।
पै वाणी जो है एक रस, शुभ भूषण बिगड़ै नहीं॥१६॥

19. It is neither armlets nor (pearl) necklaces, bright as the moon, nor bathing, nor (sandal-wood) plastering (of limbs), nor flowers, nor finely dressed hair that can add to the beauty of a man but it is only chastened speech that does so. All the other adornments are destructible, but the ornament of speech is the real ornament.

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं, प्रच्छन्नगुप्तंधनं।
विद्या भोगकरी, यशःसुखकरी, विद्या गुरूणांगुरुः॥
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने, विद्या परं दैवतं।
विद्या राजसुपूज्यते नहि धनं, विद्याविहीनः पशुः॥२०॥

विद्या मनुष्यका सच्चा रूप और छिपा हुआ धन है; विद्या मनुष्यको भोग, सुख और सुयशकी देनेवाली है; विद्या गुरुओंकी भी गुरु है; परदेशमें विद्या ही बन्धुका काम करती है; विद्या ही परम देवता है; राजाओंमें विद्याका ही मान है, धनका नहीं। जिसमें विद्या नहीं, वह पशुके समान है ॥२०॥

निस्सन्देह विद्या मनुष्यका सर्वोपरि रूप है। विद्या कुरूपोंको भी रूपवान करनेवाली है। मनुष्य कैसा ही ख़ूबसूरत और नौजवान क्यों न हो, पर विद्या बिना उसकी ख़ूबसूरती पलाशके फूलकी तरह वृथा और निकम्मी है।

विद्या मनुष्यका गुप्त धन है, उसे चोर चुरा नहीं सकते, डाकू लूट नहीं सकते, राजा छीन नहीं सकता, भाई-बन्धु और कुटुम्बी बँटा नहीं सकते।

विद्यासे विनयकी, विनयसे सुपात्रताकी और सुपात्रतासे धनकी प्राप्ति होती है। धनको उत्तम कार्य्योंमें लगाने और सत्पात्रोंको देनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है। निस्सन्देह विद्या—धन, धर्म, सुख और सुयशकी देनेवाली है। इसमें यह बड़ा भारी गुण है, कि यह महानीचको भी राजा तक पहुँचाकर, उसे धन और मानसे परिपूर्ण कर देती है।

संसारमें दो विद्या हैं—(१) शस्त्र-विद्या; और (२) शास्त्र-विद्या। पहली जवानीमें ही काम देती है, पर बुढ़ापेमें काम नहीं देती; उस अवस्थामें उल्टी हँसी कराती है;

किन्तु दूसरी—शास्त्र-विद्या, सदा-सर्वदा मनुष्यका कल्याण करती और अन्तकाल तक आदर कराती है।

विद्या उपदेशकोंकी भी उपदेशक और गुरुओंकी भी गुरु है। विद्यासे ही संशयोंका नाश होता है और परोक्ष प्रत्यक्ष होता है। विद्या सबकी आँख है। विद्या-विहीन अन्धा है।

विपद्-मुसीबत और विदेशमें विद्या ही सच्चे बन्धुका काम करती है। आपत्तिकालमें यह सच्चे मित्रकी तरह सलाह और तसल्ली देती है। घोर विपद्में जब मनुष्यको अपने बचनेकी ज़रा भी उम्मीद नहीं रहती, तब यह अपने बलसे अपने साथीका सहजमें छुटकारा करा लेती है। दुर्दिनमें मनुष्यको माता-पिता, भाई-बन्धु और अन्यान्य कुटुम्बी त्याग देते हैं, पर यह नहीं छोड़ती। जब मनुष्यकी आत्मा शोकतापसे जलने लगती है, तब यही सुधावारि सिंचन करके, उसमें शान्तिका संचार करती है। विक्टर ह्यूगोने कहा है:—"संकटके दिनोंमें बुद्धिमान लोग पुस्तकोंसे ही शान्ति लाभ करते हैं।" † बहुत कहाँ तक कहें, विपद्में इसके समान सच्चा मित्र और नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है:—

तुलसी साथी विपतिके, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम-भरोसो एक॥

---

† It is from books that wise men derive consolation in the trouble of life—Victor Huego.

पाश्चात्य विद्वानोंने भी विद्याकी कम प्रशंसा नहीं की है। यङ्ग नामक एक विद्वान्ने कहा है—"विद्या चन्द्र-किरणोंकी तरह उत्तापरहित आलोक प्रदान करती है।" हारवे नामक एक विद्वान् कहते हैं—"जिस तरह सूर्य हमारे पथको आलोकित करता और हमें काम पर लगाता है; विद्या भी, ठीक सूर्यकी तरह, हमारे पथको आलोकित करती और हमें सत्कर्मोंमें प्रवृत्त करती है।" चेष्टरफील्ड महोदय कहते हैं—"बुढ़ापेमें विद्या ही हमारा रक्षास्थल और आश्रयस्थान है।"

इसी तरह सभी देशोंके विद्वानोंने विद्या महारानीका कीर्त्ति-गान किया है। इन पंक्तियोंके लेखकने जीवनमें वहुतसे परिवर्त्तन और उलट-फेर देखे हैं; कितनी ही बार इसने धनियोंके प्रायः सभी सुख उपभोग किये और कितनी ही बार इसके पास जल पीने तकको लोटा भी न रहा; कितनी ही बार अनेक बन्धुबान्धव, इस पर दया करके, इसके साथ रहे और कितनी ही बार सभोने इसे त्याग दिया और यह अकेला निर्जन निर्जल स्थानों और वयाबाँ जङ्गलोंमें भटकता-फिरा। यह अपने अनुभवसे कहता है, कि घोर दुर्दिनमें मनुष्यका विद्यादेवी जैसा साथ देती है, सच्चे मित्रकी तरह उत्तमोत्तम सलाहें देती है, परम गुरुओंकी तरह अच्छे-अच्छे उपदेश देती है, अन्नवस्त्रहीन होनेपर उनकी व्यवस्था करती है, शोक-तापसे जलती हुई आत्माको शान्ति

प्रदान करती है,—वैसा जगत्में कोई भी प्यारे-से-प्यारा नहीं करता। बनी-बनीके सभी साथी रहते हैं, बिगड़ीमें सभी मनुष्यको त्याग देते हैं। उस समय भी विद्या अपने साथीको नहीं त्यागती। सारे संसारके विद्वान् यदि एक साथ मिलकर भी विद्या-देवीकी महिमा बखान करें, तोभी न कर सकेंगे; तब इस क्षुद्रातिक्षुद्र लेखककी क्या सामर्थ्य, जो विद्या देवीके गुणोंका बखान कर सके ?

छप्पय—*विद्या नरको रूप, अधिक विद्या सुगुप्त धन।*
विद्या सुख-यश देत, संग विद्या सुबन्धुजन॥
विद्या सदा सहाय, देवता हू विद्या यह।
विद्या राखत नाम, लसत विद्याही तें गृह॥
सब भाँति सबनसौं अति बड़ी, विद्याको कविजन कहत।
शिव विधि कहँ विद्या बस करत, नृपति न्याय विद्या चहत॥२०॥

20. Knowledge is the greatest beauty of a man and his most hidden treasure. It is the giver of all enjoyments, fame and happiness. It is the teacher of teachers and serves the function of a relative in going to a foreign country. It is the greatest God. It is knowledge that is honoured by kings, not riches. A man without knowledge is like a beast.

क्षान्तिश्चेत्कवचेन किं, किमरिभिः क्रोधोस्तिचेद्देहिनां,
ज्ञातिश्चेदनलेन किं, यदिसुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम्।

किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः, किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि,
व्रीडाचेत्किमुभूषणैः,सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् २१

यदि क्षमा है, तो कवच की क्या आवश्यकता ? यादि क्रोध है, तो शत्रुओंकी क्या ज़रूरत ? यदि स्वजातीय हैं, तो अग्निका क्या प्रयोजन ? यदि सुन्दर हृदयवाले मित्र हैं, तो आशुफलप्रद दिव्य औषधियोंसे क्या लाभ ? यदि दुर्जन हैं, तो सर्पों से क्या ? यदि निर्दोष विद्या है, तो धनसे क्या प्रयोजन ? यदि लज्जा है, तो ज़ेवरों की क्या ज़रूरत ? यदि सुन्दर कविताशक्ति है, तो राज्यवैभवका क्या प्रयोजन ? ॥ २१ ॥

जिस मनुष्यमें क्षमा रूप उत्तम गुण है, उसे अपनी रक्षा की क्या चिन्ता ? क्षमा हज़ार कवचोंका एक कवच है। जो तलवार चलानेवालेके सामने अपनी गर्दन नीची कर देता है, उसे कौन मार सकता है ? क्षमाशीलके आगे सबका सिर नीचा हो जाता है, उसका कोई शत्रु नहीं। जो क्रोधजित् है, उसका सदा मंगल है।

जिस मनुष्यमें क्रोध है, उसे शत्रुओंका क्या अभाव ? क्रोधीको शत्रुओंका घाटा नहीं। क्रोधीका सदा अमङ्गल होता है। क्रोधके वश होकर, मनुष्य अपने विनाशका कारण आप हो जाता है। क्रोधीको कार्य्याकार्य्यका विचार नहीं रहता। क्रोधान्ध मनुष्य गुरुजनके भी प्राणनाश और अपमानपर उतारू हो जाता है। क्रोधी आत्महत्याको भी

घोर पाप नहीं समझता। क्रोधसे क्या-क्या अमङ्गल नहीं होते ? दुर्जय दूरस्थ शत्रुओंके जीतनेसे कोई शूर नहीं हो सकता; जो अन्तःशत्रु क्रोधको जीत ले, वही सच्चा रिपुञ्जय है। जो क्रुद्धके ऊपर क्रोध नहीं करता, वह अपने तईं और दूसरोंके तईं बड़ी भारी विपद्से बचा सकता है। बुद्धिमान मनुष्य बुद्धिबलसे क्रोधके जीतनेमें ही अपनी तेजस्विता समझते हैं। क्रोधके परित्याग करनेमें जो तेजस्विता प्रकट होती है, उसको मूर्ख नहीं समझ सकते। क्रोधविहीन प्रशान्त चित्तके सुखका आस्वादन अशान्त लोग नहीं कर सकते। विधाताने मानव-संहारके लिये ही मनुष्यके मनमें रजोगुण-स्वरूप जिस क्रोधकी सृष्टि की है, केवल उसीके द्वारा जीवोंका संहार होता है। यदि हिंसा करनेसे प्रतिहिंसा करनी पड़े, दुःखित होनेपर दुःख दिया जाय, तो इस प्रणालीसे प्रतिहिंसाकी अनुहिंसामें समस्त जगत् ही नष्ट हो जाय। क्षमाके द्वारा पृथ्वीका जो अभ्युदय हुआ है, वह तब नयनगोचर न होगा। यदि क्षमा गुण न होता, तो भूतधात्री धरित्रीकी भूतसृष्टि ही लोप हो जाती। क्षमासे ही धर्मकी शान्ति होती है। क्षमाविहीन मनुष्य अपने दोनों लोक नष्ट कर देता है। क्षमाशील मनुष्य इहलोक और परलोककी रक्षा करता है। धर्मनन्दन महात्मा युधिष्ठिर, वनवासमें, द्रुपद-तनया महारानी द्रौपदीको, यह उपदेश देकर कहते हैं—"हे साधुशीले ! यदि मुझे स्वधर्म परित्याग करना

पड़े, तोभी, क्षमाको परित्याग करके, क्रोधका आश्रय नहीं लूँगा।" पाठको! क्षमा और क्रोधके सम्बन्धमें धर्मराजने जो अनमोल बातें कही हैं, उन्हें मनुष्यमात्रको अपने हृदय-पटपर अङ्कित कर लेना चाहिये। निस्सन्देह, इस जगत्में, क्षमासे बढ़कर मनुष्यकी रक्षा करनेवाला और क्रोधसे बढ़कर नाश करनेवाला और दूसरा नहीं है। क्रोध और क्षमापर गोस्वामि तुलसीदासजीने केवल चार ही पंक्तियोंमें बहुत-कुछ कह डाला है। पाठक उनकी भी सुधा-समान वाणीका आनन्द लेकर उपदेश ग्रहण करें:—

दुर्जन बदन कमान-सम, वचन विमुञ्चत तीर।
सज्जन उर वेधत नहीं, क्षमा-सनाह शरीर॥
कौरव-पाण्डव जानिबो, क्रोध-क्षमा को सीम।
पाँचहि मारि न सौ सके, सबै निपाते भीम॥

दुष्टोंके मुख कमानकी तरह होते हैं। उनसे वचनरूपी तीर—वाग्बाण छूटा करते हैं; पर वे सज्जनोंके हृदयमें नहीं लगते, क्योंकि सज्जन क्षमारूप कवच पहने रहते हैं।

कौरव और पाण्डव क्रोध और क्षमाकी सीमा थे। दुर्योधनादि क्रोधकी मूर्त्ति और धर्मराज क्षमाके अवतार थे। इसीसे सौ कौरव-भाई मिलकर भी पाँच पाण्डवोंको न मार सके; किन्तु अकेले भीमने सौको मार डाला।

दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण प्रभृति दुष्टोंने पाण्डव-भाइयोंको क्या-क्या कष्ट नहीं दिये ? भीमसेनको विष देकर नदीमें डुबा दिया। लाक्षागृहमें उनके नष्ट करनेको आग लगवादी। ये दुष्ट भरी सभामें पाञ्चालीको चोटी पकड़कर ले आये और उसे नंगी करके उसकी लाज लूटने लगे ; पर लज्जारक्षक भगवान् कृष्णने कृष्णाकी लाज रख ली। कपटके जूएमें उन्होंने पाण्डवोंका सर्व्वस्व हरण कर लिया। भीमको बैल और स्वयं धर्मनन्दनको कायर प्रभृति क्या-क्या घृणित और कठोर वाक्य उन्होंने नहीं कहे ? पर महात्मा युधिष्ठिरने क्रोधको दबा कर, क्षमासे ही काम लिया। इसीका नतीजा था, कि अल्प-संख्यक पाण्डव बहुसंख्यक कौरवोंके मुक़ाबिलेमें विजयी हुए। क्षमाके प्रतापसे ही विजयलक्ष्मीने उनके गलेमें विजयमाल डाली। इसकी वजह यही है, कि क्षमाशीलके साथी स्वयं भगवान् होते हैं। महात्मा कबीरने कहा है और बहुत ही ठीक कहा है—

जहाँ दया तहँ धर्म है, लोभ जहाँ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ क्षमा तहँ आप॥

जनकपुरमें, रामचन्द्रजीके शिव-धनुष तोड़नेपर, क्षत्रिय-कुलनाशक महापराक्रमी परशुरामजीने, क्रोधके परवश हो, रघुकुलतिलक रामचन्द्रजीको क्या-क्या कहनी-अनकहनी नहीं सुनाईं ? पर रामचन्द्रजीने क्षमाके सिवा क्रोधका

नाम भी न लिया। शेषमें; परशुरामजीको ही परास्त हो क्षमा-प्रार्थना करनी पड़ी। क्षमाशीलकी ही सदा जय होती है; इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। महापुरुषोंमें क्षमा स्वभावसे ही होती है।

एपिकटेटस नामक एक पाश्चात्य विद्वान्‌ने भी कहा है—"क्षमा प्रतिशोध—बदलेसे भी कहीं उत्तम है; क्षमा सज्जन-स्वभावका लक्षण है और प्रतिशोध दुर्जनताका।" अँगरेज़ीमें एक कहावत है—"क्षमा सर्वोत्तम प्रतिशोध है।" जर्मनोंमें भी एक कहावत है—"क्षमा किया जानेवाला, क्षमा करनेवालेको कभी नहीं भूलता।" अँगरेज़ोंके धर्म-शास्त्र "बाइबिल"में लिखा है—"क्रोध मूर्खोंके हृदयमें निवास करता है।" बहुत लिखना व्यर्थ है—महात्मा, सज्जन या बड़े आदमियोंमें क्रोध नहीं होता। वे क्रोधसे सदा दूर रहते हैं और सदा क्षमासे अपनी और जनताकी रक्षा करते हैं। क्रोधसे ही कलह होता है और कलहसे नाश होता है। कलहसे ही छप्पन करोड़ यादवोंका नाश हुआ। कलहसे ही भारतको ग़ारत करने वाला महाभारत हुआ। कलहसे ही सन् १९१४ का विश्वव्यापी महासमर हुआ। यदि भूतपूर्व जर्मन-सम्राट् कैसर विलियम और आस्ट्रिया-नरेश क्रोधशत्रुको परित्याग करके क्षमासे काम लेते, तो पृथ्वीका इतना धनजन क्यों क्षय होता ? अपनी अँगुलीपर सारी पृथ्वीको नचानेवाले कैसरको स्वयं छोटेसे राज्य हॉलैण्डकी शरण क्यों लेनी

पड़ती ? हमने अपनी आँखोंसे देखा है, कि कलहके मारे अनेक फलती-फूलती गृहस्थियाँ बात-की-बातमें नेस्तनाबूद हो गईं।

यदि मनुष्य कुछ भी समाज-विरुद्ध या लोक-विरुद्ध काम करता है, तो स्वजन या स्वजातीय लोग उसकी निन्दा करते हैं। उससे मनुष्यके दिलमें दाह और सन्ताप होता है—हृदयमें अहर्निश आग-सी जलती रहती है, इसीसे कहा है, कि स्वजनोंके रहनेपर आगकी क्या जरूरत ?

यदि मनुष्यका सच्चा हितकारी मित्र हो, तो वह सदा सुखी रहता है। मित्र सदा अपने मित्रका हित ही करता है। इस जगत्में मित्रसे बढ़कर मनुष्यका और हितकारी नहीं। माता-पिता और मित्र—ये तीन ही स्वभावसे हितकारी होते हैं, और लोग तो किसी मतलबसे हित करते हैं। मित्र ही दुर्दिनमें मनुष्यकी हर तरहसे सहायता करता है, उसकी विपद्में छायाकी तरह उसके साथ रहता है। जिसके शुद्धचित्त, दाता, सत्यशील, सरल, उदार, अनुरागी, शूर, सुख-दुःख और हर्ष-शोकमें समान रहने वाला मित्र है, वह सच्चा भाग्यवान है। उसे इस जगत्में क्या दुःख है ? वह सदा सुखी और आरोग्य है। उसके रोग, शोक और दुःखोंकी वही अव्यर्थ महौषधि है।

इस जगत्में दुर्जनोंसे बढ़कर मनुष्यको कष्ट देने वाले सर्प भी नहीं हैं। सर्प एकदमसे मनुष्यको मार डालता है; पर दुर्जन छिद्र ढूँढ़कर और घुला-घुलाकर मारते

हैं। हाथी मनुष्यको छूकर मारता है; साँप काटकर या सूँघकर मारता है; पर दुष्ट हँसते-हँसते प्राणनाश कर देता है। हम तो यही कहेंगे, कि दुर्जनसे कभी पाला न पड़े। जिसके पीछे दुर्जन लगे हैं, उसके पीछे भयङ्कर भुजङ्ग लगे हैं। कहा है:—

खलहु सर्प इन दुहुनमें, भलो सर्प खल नाहिं।
सर्प डसत है कालमें, खल जन पद-पद माहिं॥

यदि मनुष्यमें निर्दोष विद्या है, तो धनकी क्या ज़रूरत ? क्योंकि विद्या स्वयं अक्षय और असामान्य धन है। विद्वान्को कहीं किसी तरहका अभाव नहीं। विद्वान् जहाँ भी चला जाता है, वहीं उसका सत्कार होता है। विद्वान्को बयाबाँ जङ्गलमें भी मङ्गल है।

यदि मनुष्यमें सुकविता करनेकी शक्ति है, तो उसे राज्य-वैभवकी आवश्यकता नहीं। कवियोंका राजाओंमें ही मान होता है। राजाओंको भी उनकी सबसे अधिक ज़रूरत रहती है; क्योंकि उनके बिना उनके सुयश-सौरभको दिग्दिगन्तमें कौन फैला सकता है ?

जिसमें लज्जा है, जो असत्यकर्मोंसे लजाता है, वह रूपवान् है और सबका गुरु होने योग्य है। वह महा-तेजस्वी सूर्य्यके समान प्रकाशित है; किन्तु जो बुरे कामोंसे नहीं लजाता, बेहयाईका बुर्क़ा ओढ़ लेता है, वह महा

नीच है। ऐसा कौन है, जिससे कोई न कोई बुरा काम न हो जाय; पर जो अपने किये पर लज्जित होता है, मन-ही-मन अनुताप और पश्चात्ताप करता है, वह निस्सन्देह श्रेष्ठ पुरुष है। ऐसेको परमात्मा निश्चय ही क्षमा कर देता है। लज्जा मनुष्यका सच्चा भूषण है। जिसमें लज्जा है, उसे और ज़ेवरोंकी ज़रूरत नहीं। यूरोपविजयी महावीर नेपोलियनने भी कहा है,—"प्रतिष्ठान्वित जीवनका सर्व्वोत्तम आभूषण लज्जा और नम्रता है……।"

छप्पय—*कवच न चहिये ताहि; क्षमा जो चितमें राखत।*
कहा राज लों ताहि, सुकविता मुख जो भाषत॥
क्रोध भये अरि कहा, जाति नहिं अनलहि चाहत।
औषध तिनको व्यर्थ, जहाँ सन्मित्र निबाहत॥
अरु धन संचय फलहीन, जो विद्या होय अदूषणौ।
लज्जा संयुत जो होय, तेहि कछू न चहिये भूषणौ॥२१॥

21. If there is forgiveness in a man, where is the need for an armour ? If he has an angry temper, he need not (gofar to seek for other) enemies. If there is the pride of caste, where is the need for fire, (as his own pride is sufficient to set fire to his heart in the shape of a feeling of hatred for those inferior to him in caste) ? If one has good friends, he does not stand in need of supernatural drugs. If a man is surrounded by wicked persons, he need not seek for

(more poisonous) snakes. If there is fair and faultless knowledge, what is the use of (any other sort of) wealth ? If a person possesses modesty, why should he seek for (better) ornaments ? If a man is a good poet, he need not wish for a kingdom.

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने,
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जनेष्वार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता,
ये चैवं पुरुषाः कलासुकुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ।।२२।।

जो अपने रिश्तेदारोंके प्रति उदारता, दूसरोंपर दया, दुष्टोंके साथ शठता, सज्जनोंके साथ प्रीति, राज-सभामें नीति, विद्वानोंके आगे नम्रता, शत्रुओंके साथ क्रूरता, गुरुजनोंके साथ सहनशीलता और स्त्रियोंमें धूर्त्तता या चतुरता का बर्ताव करते हैं,—उन्हीं कलाकुशल नरपुंगवोंसे लोकमर्य्यादा या लोक-स्थिति है; अर्थात् जगत् उन्हींपर ठहरा हुआ है ॥२२॥

मनुष्यका कर्त्तव्य है, कि वह अपने बन्धु-बान्धवों और नातेदारोंके प्रति उदार व्यवहार करे—अपनी सामर्थ्य-भर उनका पालन-पोषण करे अथवा समय-समयपर—ज़रूरत होनेसे—उनकी धनधान्यादिसे सहायता करे। जो मनुष्य, समर्थ होनेपर भी, अपने बन्धु-बान्धवोंको मदद नहीं देते, उनके दुःख-दर्दमें आड़े नहीं आते, वे जीते हुए ही मृतकके

६

समान हैं। जिनसे अपने घरवालों और रिश्तेदारोंका ही भला न हो, उनका इस जगत्में जन्म लेना ही वृथा है। "शुक्र-नीति" में लिखा है—"साध्वी स्त्री, पिताकी स्त्री—माता, बालक, पिता, विधवा कन्या, पुत्र-बधू, बहिन, भाई, भौजाई, मौसी, भूआ, नाना, सन्तानहीनगुरु, मामा और भाञ्जा—इन सबका अपनी सामर्थ्यानुसार पालन करना चाहिये।" "महाभारत"में कुटुम्ब-को न पालनेवाला, शत्रुको न दबानेवाला, मिले हुए पदार्थकी रक्षा न करनेवाला, सदा स्त्रियोंके वशमें रहनेवाला, सदैव ऋणग्रस्त रहनेवाला, महा दरिद्र, मँगता, गुणहीन और शत्रुके अधीन रहनेवाला,—ये सब मुर्दे कहे हैं। अपना पेट कौन नहीं भर लेता? अपने पेट तो कव्वे और कुत्ते भी भर लेते हैं। आदमी वही है, जिससे अपने कुटुम्बियों और ग़ैरोंका पालन-पोषण होता हो। महात्मा विदुरने कहा है—"जो दानसे मित्रोंको, पराक्रमसे शत्रुओंको और खान-पान तथा वस्त्र-आभूषण प्रभृतिसे कुटुम्बियोंको जीतता है, उसीका जीना सफल है।" एक अँगरेज़ विद्वान्ने भी कहा है—"जो मनुष्य अपने प्रियजनों के लिये जीता है, उनके लिये परिश्रम करता और कष्ट सहन करता है, वह ईर्षा करने योग्य है।" "हितोपदेश" में भी लिखा है:—

जीविते यस्य जीवन्ति, विप्रा मित्राणि बान्धवाः।
सफलं जीवितं तस्य, आत्मार्थे को न जीवति?॥

जिसके जीनेसे ब्राह्मण, बन्धु-बान्धव और मित्र जीते हैं, उसका ही जीना सार्थक है। अपने लिये कौन नहीं जीता ?

संसारमें दयाके समान और गुण नहीं; दयाके समान और धर्म्म नहीं। किसी प्राणीको कष्ट न देना और उसके दुःखको अपने दुःखके समान समझकर, दुःख दूर करनेकी चेष्टा करना ही दयाकी साधारण परिभाषा है। महात्मा बुद्धने संसारियोंके कष्टसे ही पानी-पानी होकर, लोकोपकारार्थ, युवावस्थामें ही, अपनी युवती स्त्री और शिशु—पुत्र तथा राज-पाटको छोड़, वनमें जाकर, घोर तपश्चर्या करके, अपना शरीर सुखा डाला। उन्होंने ही कहा है—"जो मनुष्य जीवित प्राणियोंको दुःख देता है, वह आर्य्य नहीं है; किन्तु जो समस्त प्राणियोंपर दया-भाव रखता है, वही आर्य्य पुरुष है।" चीनी महात्मा कनफ्यूशियसने कहा है—"मनुष्यको दयालुओंके ही पड़ोसमें बसना चाहिये। जो दयालु और चिन्ता-रहित है, वही श्रेष्ठ पुरुष है।" महात्मा शुक्राचार्यने कहा है—"दया, मित्रता, दान और मधुर वाणी—इन चारोंसे बढ़कर और वशीकरण नहीं है। कीड़े-मकोड़े और चींटियोंपर भी, अपने समान समझकर, दया करनी चाहिये। उपकार-योग्य शत्रुका भी उपकार करना चाहिये। दरिद्रीका दारिद्रय मिटाना चाहिये और शोकार्त्तका शोक दूर करना चाहिये।" किसी महापुरुषने कहा है—"यदि मुक्तिकी इच्छा है, तो विषयोंको विषवत् त्यागो और

सहन-शीलता, सरलता, दया, पवित्रता और सच्चाईको अमृतकी तरह पीओ।" क्या उत्तम उपदेश है ? कबीरदास ने भी कहा है—

> दया-भाव जानै नहीं, ज्ञान कथै बेहद।
> ते नर नर्कहि जायँगे, सुनि सुनि साखी शब्द ॥
> दाया दिलमें राखिये, तू क्यों निरदय होय ?।
> सांई के सब जीव हैं, कीरी कुञ्जर दोय ॥

राज-सभामें मनुष्यको नीतिपूर्वकही बर्तना चाहिये। राजाओंके सारे काम नीतिसे होते हैं। प्रजापालन और दुष्टोंका नाश—इसमें नीतिकीही ज़रूरत है और यही राजाओंका काम है। इसीलिये वहाँ नीतिज्ञोंका मान होता है। इसके सिवा राजाके सामने विनीत भावसे रहना चाहिये।

दुष्टके साथ मनुष्यको शठताका ही व्यवहार करना चाहिये। दुष्टके साथ नम्र व्यवहार करना—दुष्टको सिर चढ़ाकर आफ़त मोल लेना है। सरल व्यवहारवालेको दुष्ट क़दम-क़दमपर तंग करते हैं। तुलसीदासजीने कहा है—

> नीच चंग-सम जानिवो, सुनि लखि तुलसीदास।
> ढील देत महि गिर परत, खैंचत चढ़त अकाश ॥

ते = वे। दाया = दया। निरदय = बेरहम। सांई = मालिक, ईश्वर। कीरी = चींटी। कुंजर = हाथी। दोय = दोनों। चंग = पतङ्ग। महि = ज़मीन।

नीच उस पतङ्गके समान होते हैं, जो ढील देनेसे ज़मीन-पर गिर पड़ती है, और खींचनेसे आकाशमें चढ़ती है। अगर दुष्टोंको खींचे रहोगे, तो वे डरते रहेंगे; अगर उनसे सरल व्यवहार करोगे, तो वे सिरपर चढ़कर अनेक उपद्रव करेंगे।

शेख़सादीने कहा है—"दुष्टोंपर दया करना, सज्जनोंपर अत्याचार करना है। अत्याचारियोंको क्षमा प्रदान करना, अत्याचारपीड़ितोंपर अत्याचार करना है। अगर तुम कमीनोंपर मिहरबानी करोगे, तो वे तुम्हारी हिमायतसे अधिक अपराध करेंगे और तुमको उनके अपराधोंका भागीदार या हिस्सेदार बनना होगा। क्षमा करना बहुत अच्छा है; पर दुर्जनोंके घावोंपर मरहम लगाना भला नहीं। साँपकी जान बचानेवाला नहीं समझता कि, वह आदमकी औलाद—आदमी को हानि पहुँचावेगा।

चाणक्यने कहा है—"उपकारीके प्रति उपकार करना चाहिये। मारनेपर मारना अपराध नहीं और दुष्टता करनेपर दुष्टता करना अनुचित नहीं।"

महात्मा विदुरने कहा है—"जो जैसा हो, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये। दुष्टके साथ दुष्टता और सज्जनके साथ सज्जनता करनी चाहिये।"

"गुलिस्ताँ" में लिखा है—"कमीना अच्छा व्यवहार करनेसे नहीं सम्हलता। ऐसा करनेसे उसका घमण्ड और भी बढ़

ज़ाता है। जो तुमपर दया करे, तुम अपने तईं उसके चरणोंकी धूलि समझो; जो तुम्हारा अपकार करे, उसकी आँखोंमें धूल झोंक दो। धूर्त्तके साथ सभ्यतासे बात न करो, क्योंकि मोर्चा या ज़ङ्ग लगा हुआ लोहा रेतीसे साफ़ नहीं होता।"

सारांश यह, दुष्टके साथ दुष्टता, शठके साथ शठता और कुटिलके साथ कुटिलता करनेमें ही भलाई है। इस जगत्की रीति ही ऐसी है, कि सीधेको सभी खा जाना चाहते हैं। राहु भी पूर्ण चन्द्रको ही ग्रसता है; द्वितीया दूजके टेढ़े चाँदको नहीं ग्रसता। असल बात यह है कि, जैसेके साथ तैसा ही बर्ताव करना चतुराई है। किसी समय इन पंक्तियोंका लेखक सभीके साथ अत्यन्त विनीत व्यवहार करता था। दुर्जन और सज्जन सभी इसके सामने समान थे। इस भयङ्कर भूलसे इसे बड़े-बड़े कष्ट भोगने पड़े। किन्तु जब इसने दुष्टोंके साथ कुटिलताका व्यवहार किया तो, इसका पीछा छूट गया।

जिस तरह दुष्टोंके साथ कुटिलताका बर्ताव करना चाहिये; उसी तरह विद्वानोंके साथ सदा नम्रताका बर्ताव करना चाहिये। उनसे प्रत्येक काममें गर्व्वरहित व्यवहार करना चाहिये। जो बुद्धिमान विद्वानोंका आदर-सत्कार करते हैं, उनके सामने विनीत रहते हैं, तमोज़—तहज़ीब और अदब-क़ायदेसे बोलते-चालते हैं, उनकी हर तरह ख़ातिर-तवाज़ा करते हैं; विद्वान् उनसे सन्तुष्ट रहते हैं और वे उनसे

फ़ायदा उठाते हैं। सच्चे विद्वान् आदर-सम्मान, सिधाई-सच्चाई और नम्रतासे ही वशमें होते हैं, इसमें सन्देह नहीं; पर हमारी पहले लिखी हुई बातको कभी न भूलना चाहिये, कि जो विद्वान् सज्जनोंकेसे काम करें, उनके साथ ही विनीत व्यवहार करना चाहिये; जो विद्वान् दुर्जनोंकेसे काम करें, उनसे भूलकर भी सरल व्यवहार न करना चाहिये।

शत्रुओंके प्रति शूरताका व्यवहार करनेमें ही भलाई है। जो शत्रुओंके मध्यमें पराक्रमसे काम नहीं लेता, उनसे दबता है, उनसे भय खाकर पीछे हटता है, उसे शत्रु मार लेते हैं; अतः शत्रुको सदा दबाना चाहिये, उससे दबना न चाहिये।

प्रीति सदा सज्जनोंके साथ करनी चाहिये। सज्जनोंके साथ प्रीति करनेसे सुख-सम्पत्तिकी वृद्धि होती और शोक-ताप तथा दुःखोंका नाश होता है। सज्जनोंकी प्रीति टूटनेपर भी नहीं टूटती—टूट जानेपर भी, कमल-नालके सूतकी तरह कुछ-न-कुछ सम्बन्ध बना ही रहता है। वे जिसे एक बार अपना कह लेते हैं, उसे दोष होनेपर भी निबाहे ही जाते हैं—वे जिसे अङ्गीकार कर लेते हैं, उसे नहीं त्यागते। शिवजीने विषको और शेषजीने पृथ्वीको आज तक नहीं त्यागा। सज्जन आमके वृक्षके समान होते हैं, जो पत्थर मारनेपर भी

फल देते हैं; अथवा तरुके समान होते हैं, जो अपने काटने-वालेपर भी छाया ही करता है। सज्जनोंकी गाली भी भली और दुर्जनोंकी तारीफ़ भी भली नहीं। श्रवणके पिताने राजा दशरथको श्राप दिया; पर वह आशीर्वादके रूपमें फला। इसीसे कहा गया है, कि प्रीति सज्जनोंके साथ करनी चाहिये। सज्जनोंकी प्रीतिमें जो आनन्द और सुख है, उसे काठकी लेखनीसे लिखकर बताना असम्भव है।

माता-पिता, बड़े भाई और गुरु—इनको गुरुजन कहते हैं। चतुरोंको इनकी कड़वी बातोंको भी अमृतकी तरह पी जाना चाहिये। संसारमें मीठी बातोंके कहनेवाले बहुत; पर मीठी और यथार्थ हितकारी बातके कहने-वाले विरले ही हैं। माँ-बाप और गुरु जो कुछ कहते हैं, वह प्रायः हितकामनासे ही कहते हैं। इसीलिये सभी देशोंके शास्त्रकारोंने गुरुजनोंकी आज्ञा-पालन करनेकी आज्ञा दी है; रामचन्द्रजीने पिताकी आज्ञासे राज्य-वैभव त्यागकर वनवास किया। ऐसा उदाहरण भारतके सिवा और किसी भी देशमें नहीं पाया जाता। परशुरामजीने पिता यम-दग्निकी आज्ञासे माताके प्राण नाश कर दिये। भीष्म पितामहने, अपने पिता शान्तनुके सुखके लिये, सांसारिक सुख जन्मभरके लिये त्यागकर ब्रह्मचर्य्यव्रतका पालन किया। राजा ययातिके छोटे पुत्रने, अपने पिताकी इच्छा पूरी करने

के लिये, अपनी जवानी उन्हें दे दी। हमारे यहाँ ऐसे बहुत दृष्टान्त हैं। महात्मा गोथेने कहा है—"उत्तम उपदेशको ग्रहण करो और वृद्धोंका सबसे अधिक सम्मान करो।" शेक्सपियरके 'किंग लियर' में लिखा है—"माता-पिताकी आज्ञा पालन कर; अपने वचनको पूरा कर; क़सम न खा..............।"

माता-पिताकी आज्ञाका पालन करना सन्तानका परम धर्म है; पर कहीं-कहीं ऐसे मौक़े भी आ जाते हैं, जहाँ इनकी आज्ञाका पालन करना अनुचित हो जाता है। प्रह्लादको अपने पिताकी आज्ञाके विरुद्ध काम करनेमें ही भलाई दीखी और उसकी वह बात स्वयं भगवान्को भी पसन्द आई। अधर्म्मी और अत्याचारी पिताकी आज्ञा उल्लङ्घन करनेमें दोष नहीं। विशेषकर देश और धर्म्म के लिये, पिता-माताकी भी आज्ञा भङ्ग की जा सकती है; पर यह बात, छोटे-छोटे बालकोंको नहीं, जवानोंको लिखी गई है; क्योंकि सभी प्रह्लाद नहीं होते। पूर्णवयस्क हो जाने पर, स्वयं सोच-समझकर ही काम करना चाहिये। अन्ध-भक्तिसे गुरुजनोंकी राय पर चलनेसे बाज़-बाज़ औक़ात भयानक आफ़तोंका सामना करना पड़ता है। इन पंक्तियोंका लेखक, कोई २२ सालकी उम्र तक, अपने पिताकी बात आँख बन्द करके मानता था। सच्ची बात तो यह है, कि यह अपने पूज्यपादका उचितसे अधिक भय करता था।

उन्होंने इसे एक कामपर, इसकी पूर्ण अनिच्छा होनेपर भी, लगा दिया और स्वयं ऐसी आज्ञा और नसीहतें दीं, कि उनकी वजहसे इसने २४ साल तक वह-वह आपदायें भोगीं, जिनके सुननेसे पत्थरका भी कलेजा दहले बिना न रहे। सच तो यह है, इसकी सारी ज़िन्दगी ही ख़राब हो गई। भला हो, महामहिमान्वित् श्रीमान् लार्ड चेम्सफर्ड और आनरेबिल मिष्टर गोरले सी० आई० ई०, आई० सी० एस० का, जिन्होंने, दयासिन्धु दीनबन्धुकी प्रेरणासे, इसका संकट दूर करके, शेष जीवन सुख-शान्तिमय कर दिया। मेरे कहनेका यह मतलब नहीं, कि लड़कोंको अपने गुरुजनोंकी आज्ञा न माननी चाहिये—अवश्य माननी चाहिये; उनकी परमात्माके समान भक्ति और सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये; पर अपनी निजी बातोंमें, पूर्ण वयस होने पर, समझ पक जाने पर, अपनी विचारशक्तिसे भी काम लेना चाहिये। इन कामोंमें अपने कॉन्शैन्स—अपने अन्तरात्माकी बात पर चलना सदा सुखदायी है। मैंने, पिताजीकी आज्ञाके मुक़ाबलेमें, अन्तरात्माकी बात नहीं मानी, इसीसे मुझे घोर विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं।

स्त्रियोंके सम्बन्धमें हम इसी पुस्तकके पृष्ठ ३-७ में लिख आये हैं, कि वे स्वभावसे ही परले सिरेकी चतुरा और मायाविनी होती हैं। यों तो वे चतुर-से-चतुरको भी नाच नचा सकती हैं; पर यदि कोई निरा भोंदू उनके हाथमें आ जाता है,

तब तो वे वह खेल खेलती हैं, जिनका क्या कहना ? जो पुरुष इनकी चाल और चालाकियोंसे जानकारी रखते हैं और इनको परखते रहते हैं एवं समयानुसार यथोचित बर्ताव करते हैं, वे ही संसारमें सुख पाते हैं। महाराजा भर्तृहरि स्वयं पिंगलासे किस तरह ठगे गये, यह "इसी शतक" के आरम्भके पृष्ठ पढ़नेवालोंसे छिपा नहीं है। मेरा भी कुछ अनुभव है; उससे यही कहना पड़ता है, कि इनकी तारीफ़में, इस पुस्तकके दूसरे श्लोकके नीचे, जो शास्त्रकारोंके वचन उद्धृत किये गये हैं, वे नितान्त सच हैं; पर मैं यह हरगिज़ नहीं कहता और न कह ही सकता हूँ, कि सभी देवियाँ वैसी ही होती हैं। लेकिन इसमें शक नहीं, कि चन्दन वन-वनमें नहीं होता और साधु पुरुष सर्वत्र नहीं होते; यानी सती देवियाँ और सज्जन पुरुष कम ही होते हैं, पर होते अवश्य हैं। जिन्होंने पूर्वजन्ममें पुण्य किये हैं, जिन्होंने घोर तपश्चर्या की है, उन्हें ही वे मिलते हैं।

जिन पुरुषरत्नोंमें स्वजनोंमें उदारता, गैरोंमें दयाभाव, दुष्टोंके प्रति कुटिलता, सज्जनोंमें प्रीति प्रभृति उत्तमोत्तम गुण होते हैं, वे ही इस संसारके सच्चे स्तम्भ हैं, उनपर ही यह संसार ठहरा हुआ है। उनके बिना लोक-मर्यादा अथवा स्थिति नहीं। प्रत्येक सुखाभिलाषीको इन उत्तम गुणोंको ग्रहण करना चाहिये।

छप्पय—सज्जनसों हित-रीति, दया परजन सों भाषहु ।
दुर्जन सों शठभाव, प्रीति सन्तन-प्रति राखहु ॥
कपट खलनसों, विनय राखौ बुधजनसों ।
क्षमा गुरुन सों राख, शूरता बैरीगण सों ॥
अरु धूर्त्तता राखि त्रियनसों, जो तू जग बसिवो चहै ।
अतिही कराल कलिकालमें, इन चालनसों सुख लहै ॥२२॥

22. Generosity for one's relatives, kindness for others, rigorous treatment for the wicked, love for the virtuous, judicious behaviour for Kings, respect for the learned, boldness for one's enemies, forgiveness for elders and cleverness for women are the qualities, which, if a man possesses them, make him famous in the world.

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ॥
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्त्तिं
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ? ॥२३॥

सत्संगति बुद्धिकी जड़ताको हरती है, वाणीमें सत्य सींचती है, सन्मानकी वृद्धि करती है, पापोंको दूर करती है, चित्तको प्रसन्न करती है और दशों दिशाओंमें कीर्त्तिको फैलाती है । कहो, सत्संगति मनुष्यमें क्या नहीं करती ? ॥२३॥

इसका खुलासा अर्थ यह है, कि सत्संगतिसे बुद्धिकी मन्दता नाश होती है, बुद्धि तीव्र होती है; सत्य बोलनेमें अनुराग होता है; सम्मान बढ़ता है; पाप नाश होते हैं; चित्त प्रसन्न रहता है और हर तरफ़ सुयश फैलता है। ऐसी कोई बात ही नहीं जो सत्सङ्गतिसे न हो—

हितोपदेशमें लिखा है—

सत्सङ्गः केशवे भक्तिर्गंगाम्भसि निमज्जनम्।
असारे खलु संसारे त्रीणि साराणि भावयेत्॥

सज्जनोंका संग, कृष्णकी भक्ति, निर्मल गङ्गाजलमें स्नान—इस असार संसारमें ये तीन ही सार समझे जाते हैं।

संसारके शोक-तापसे जलनेवालेके लिये स्त्री-पुत्र और सत्संगति ही शान्ति देने वाले हैं। तीर्थ समयपर फल देता है; पर सज्जनोंकी संगतिका फल शीघ्र ही मिलता है। इस मृगतृष्णाके समान मिथ्या संसारको क्षण-विध्वंसी समझकर, धर्म और सुखकी प्राप्तिके लिये, सत्संगति करनी चाहिये। इस संसार रूपी कड़वे वृक्षके दो ही फल हैं:— (१) मधुर भाषण, और (२) सज्जनोंका संग।

सत्संगकी महिमा अपार है। जिस तरह लोह और पारसके मिलनेसे लोह भी सोना हो जाता है; उसी तरह सत्संगसे नीच पुरुष भी महापुरुष हो जाता है। सप्त ऋषियोंके सत्संगसे ही नित्य हत्या करनेवाला व्याध महामुनि हो गया। वाल्मीकिजीका पूर्व्व-वृत्तान्त कौन नहीं जानता ?

मनुष्य नीचोंकी संगतिसे नीच और सज्जनोंकी संगतिसे सज्जन बनता है। मूर्खोंकी संगतिसे बुद्धि मलीन होती है; किन्तु सज्जनोंकी संगतिसे बुद्धिकी मलिनता नाश होकर, बुद्धि निर्मल और तीव्र होती है। कुसंगतिमें पड़कर मनुष्यको मिथ्या भाषणसे अनुराग होता है; सत्संगतिसे वह सत्यभाषणका अनुरागी होता है; कुसंसर्गमें पड़कर मनुष्य निन्दा और घृणित कर्म करता है; इसलिये उससे भले आदमी घृणा करते हैं और उसे अपने पास भी नहीं आने देते, कोई उसका आदर नहीं करता। सत्संगतिके प्रभावसे मनुष्य सुशील होता है, उत्तमोत्तम कर्मोंपर उसकी अभिरुचि होती है, गुणोंकी वृद्धि होती है; इसलिये सर्वत्र उसका सम्मान होता है। दुष्ट संगतिमें पड़कर मनुष्य विविध प्रकारके पाप-कर्म करता है, किन्तु सत्संगतिसे पापोंसे अरुचि या घृणा हो जाती है; इसलिये मनुष्य इस लोकमें सुख पाता और मरनेपर स्वर्ग या मोक्षका अधिकारी होता है। कुसंगतिमें पड़कर मनुष्य बुरे-बुरे काम करता है, इसलिये उसकी अपकीर्त्ति फैलती है। सत्संगतिमें रहकर वह दान, दया, परोपकार प्रभृति उत्तम गुण ग्रहण करता और सदा सत्कर्म करता है; इसलिये उसकी सुकीर्त्ति देश-देशान्तरोंमें फैल जाती है; इसलिये मनुष्यको, कुसंगको दूर ही से नमस्कार करके, सदा सत्संग करना चाहिये। महात्मा विदुरने मनुष्यके लिये छः सुख बताये हैं:—

(१) निरोग रहना, (२) क़र्ज़दार न होना, (३) देशभ्रमण करना, (४) स्वाधीनता-पूर्व्वक धन कमाना, (५) सदा निर्भय रहना, और (६) सज्जनोंका संग करना।

कबीरदासने कहा है—

एक घरी आधी घरी, आधी सों भी आध।
कबिरा संगति साधु की, कटै कोटि अपराध॥
कबिरा संगति साधु की, नित प्रति कीजै जाय।
दुर्मति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय॥

सारांश—सत्संग सर्व्वोपरि है। यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारोंका दाता है। यह दुःख या पापोंका समूह नाश करनेवाला और नित्य सुख बढ़ानेवाला है; इसलिये "सत्संग" करो।

दोहा—जड़ताई मतिकी हरत, पाप निवारत अंग।
कीरति सत्य प्रसन्नता, देत सदा सत्संग॥२३॥

23. Society of good men removes the dullness of a man's reason makes his tongue truthful, enhances his respectability, overcomes his sins, gives pleasantness to his heart and spreads his fame in all directions. Tell me what it does not do for men.

घरी = घड़ी = २४ मिनट। कविरा = कबीरदास। संगति = सुहबत। साधु = सत्पुरुष। दुर्मति = खोटी बुद्धि। सुमति = सुबुद्धि। जड़ताई = भौंटापन।

जयन्ति ते सुकृतिनो, रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये, जरामरणजं भयम् ॥२४॥

जो पुण्यात्मा कविश्रेष्ठ श्रृङ्गार आदि नव रसोंमें सिद्धहस्त हैं, वे धन्य हैं ! उनकी जय हो ! उनकी कीर्त्तिरूप देहको बुढ़ापे और मृत्युका भय नहीं ॥२४॥

जो कवीन्द्र नव रसोंके पूर्ण पण्डित हैं, जो सरस कविता करनेमें सिद्धहस्त हैं, जो नाना प्रकारके काव्य प्रकाशित करते हैं, उनकी पञ्चतत्त्वसे बनी मिट्टीकी देहको ही जरा और मरणका भय है; पर उनकी सुयशमय देहको न जराका भय न मरणका भय । उनकी कीर्त्तिरूप देह सदा-सर्वदा—कल्पान्त तक अजर और अमर रहेगी ।

वाल्मीकि, कालिदास, माघ, भवभूति, सूरदास, तुलसी-दास और बिहारीलाल प्रभृति इस देशके कवीन्द्र और शेक्स-पियर, मिल्टन, बेरन, वर्डस्वर्थ प्रभृति पाश्चात्य देशोंके कवियोंके पाञ्चभौतिक शरीर वृद्ध भी हुए और नष्ट भी हो गये; परन्तु उनके सुयशके शरीर आज तक भी विद्यमान हैं; न उन्हें जराका भय है न मरणका—सदा-सर्व्वदा प्रलयकाल तक इसी तरह रहेंगे। इस ग्रन्थके रचयिता महात्मा भर्तृ-हरिको ही लीजिये; आज उनके पंचतत्वोंसे बने शरीरको नष्ट हुए प्रायः दो हजार साल हो गये, पर उनकी अपूर्व्व रचनाके कारण उनका सुयशमय शरीर आज तक मौजूद

है और सदा इसी तरह रहेगा। जरा और मृत्यु उसका कुछ भी बिगाड़ न सकेंगी।

इस विषयमें उस्ताद ज़ौक़ने भी ख़ूब ही कहा है—

रहता है सख़ुनसे नाम, क़यामत तलक है ज़ौक़।
औलाद से तो है, यही दो पुश्त चार पुश्त॥

सख़ुनसे मनुष्यका नाम प्रलय-काल तक रहता है, पर औलादसे तो दो पीढ़ी और बहुत हुआ तो चार पीढ़ी तक रहता है।

सारांश—उत्तम कवि या ग्रन्थकारोंकी मिट्टीकी देहको बुढ़ापे और मृत्युका भय भले ही हो; पर उनकी कीर्त्तिरूप-देहको न जराका भय न मौतका भय; अर्थात् उनकी सुकीर्त्ति सदा अजर अमर रहती है।

दोहा—सबसे ऊँचे सुकविजन, जानत रसको सोत।
जिनके यशकी देहकों, जरा मरण नहिं होत॥२४॥

24. Triumphant are the poets, the doers of glorious deeds and perfect in the expression of various natural emotions, whose fame is never in fear of decay or death.

सूनुः सच्चरितः सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः,
स्निग्धं मित्रमवञ्चकः परिजनो निःक्लेशलेशंमनः।
आकारो रुचिरः स्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखं
तुष्टे विष्टपहरिणीष्टदहरौ संप्राप्यते देहिना॥२५॥

७

सदाचारपरायण पुत्र, पतिव्रता सती स्त्री, प्रसन्नमुखी स्वामी, स्नेही मित्र, निष्कपट नातेदार, क्लेशरहित मन, सुन्दर आकृति, स्थिर सम्पत्ति और विद्यासे शोभायमान मुख—ये सब उसे मिलते हैं, जिसपर सर्व मनोरथोंके पूर्ण करनेवाले स्वर्गपति कृष्ण भगवान् प्रसन्न होते हैं; अर्थात् विश्वेश लक्ष्मीपति नारायणकी कृपा बिना ये उत्तमोत्तम पदार्थ नहीं मिलते ।

संसारमें प्रायः सभीके पुत्र भी होते हैं, स्त्री भी होती हैं, स्वामी भी होते हैं, मित्र भी होते हैं, नातेदार भी होते हैं एवं मन, आकृति और मुख भी होते हैं; पर वे ऐसे ही हों जैसे कि ऊपर लिखे हैं, तब तो मनुष्यके सुखका क्या ठिकाना ! ऐसे भाग्यवानको पृथ्वीपर ही स्वर्ग है। स्वर्गमें और क्या सुख-आनन्द है ? और यही सब हों, पर ऐसे न हों; यानी लड़का बदचलन हो, स्त्री व्यभिचारिणी हो, स्वामी क्रोधमुखी हो, मित्र स्नेहहीन हों, रिश्तेदार कपटी हों, मन क्लेशपूर्ण हो, सूरत-शकल ख़राब हो, सम्पत्ति अस्थिर हो और मुख विद्या-रहित हो, तो मनुष्यके दुःखोंकी सीमा नहीं, उसे यहीं नरक है। नरकमें इनसे बढ़कर और क्या दुःख है ?

सदाचारी पुत्र या बदचलन बेटा ।

——::o::——

यद्यपि दुनियवी लोग पुत्रके नामसे ही अपनेको धन्य समझते हैं, पुत्रसे पितरोंके पिण्डकी और स्वर्गकी

आशा करके बड़े .खुश होते हैं, पर दुष्टात्मा और दुराचारी पुत्रसे कोई लाभ नहीं; क्योंकि दुराचारी पुत्रसे पिता-माताको कोई सुख नहीं, उल्टा दुःख होता है; क्षण-क्षणमें जी जलता है। वह कानी आँखकी तरह वृथा होता है, जो काम तो कुछ नहीं देती, पर दुखनी आकर तकलीफ़ ज़रूर देती है। पुत्र वही उत्तम है, जिससे वंशकी उन्नति हो, जिससे संसारका भला हो, जिससे जनक-जननीको हर तरह सुख मिले। जिसका पुत्र न दानी है, न तपस्वी है, न वीर है, न विद्वान् है और न धनवान् है, वह पुत्रवान् है तो निपुत्री कौन? ऐसे पुत्रवान् होनेसे निपुत्री होना कहीं भला। जिनका पुत्र आज्ञा पालन करता है, सेवामें आलस्य नहीं करता, छायाकी तरह साथ रहता है, धन कमानेका उद्योग करता है, अपने और पराये सबपर दया-भाव रखता है, दीनोंके दुःख दूर करता है, सज्जनोंका सङ्ग करता है, सत्यभाषणमें अभिरुचि रखता है, पापकर्मोंसे घृणा करता है, सदा प्रसन्न-मुखी रहता है, शोक और हर्षमें समान रहता है, वही माता-पिता सच्चे पुत्रवान् हैं। कंस जैसे दुरात्मा पुत्रसे सिवा दुःखके सुख नहीं। भगवान् किसीको पुत्र दे, तो राम और श्रवण-सा दे।

पतिव्रता या पाक दामन स्त्री।

——::०::——

स्त्री होनेसे ही मनुष्य सुखी नहीं हो सकता। यदि स्त्री सती-साध्वी या पतिव्रता न हो, पतिकी आज्ञा न माननेवाली

कुलटा या व्यभिचारिणी हो, दिन-रात कलह करनेवाली और क्रोधमुखी तथा अप्रिय बोलनेवाली हो, घरके काम-धन्धोंमें अकुशल और फूहड़ एवं कर्कशा हो—तो पुरुषको इस पृथ्वीपर ही नरक है; ऐसी स्त्री, स्त्री नहीं—पुरुषकी साक्षात् मृत्यु है। सच तो यह है, कि ऐसी स्त्रीसे मृत्यु कहीं भली; क्योंकि मृत्यु क्षण-भरमें प्राण नाश कर देती है; पर ऐसी स्त्री जला-जला और घुला-घुलाकर मारती है। जो स्त्री सदा अपने पतिमें अनुराग रखती है, परपुरुषके नाम और छायासे भी दूर रहती है, गृह-कार्य्यमें कुशला, पुत्रवती और सुशीला होती है—वही स्त्री, स्त्री है। जिस पुण्यवान्के ऐसी गुणवती नारी है, वह सचमुच ही भाग्यवान् है। जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री है, उसके घरमें क्या अभाव है? उसके घरमें अष्ट सिद्धि नव निद्धि हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। पतिव्रता दरिद्रमें भी दरिद्र-सा मालूम नहीं होने देती। पतिव्रता रोगी पतिका सच्चा वैद्य है। पतिव्रता विपद्ग्रस्त स्वामीका उद्धार कराने और समय-समयपर अमूल्य मन्त्र-सलाह प्रदान करनेमें सच्ची मित्र है। पतिव्रता कुराहमें जाते हुए पतिको सुपथमें ले आती है। पतिव्रता मरे हुए स्वामीको जिन्दा कर सकती है। पतिव्रता दुष्ट स्वामीका भी उद्धार करके स्वर्गमें ले जाती है। जिसके घरमें पतिव्रता है, वही गृही और सच्चा सुखी है। विद्वानोंने कहा है:—

सा भार्य्या या गृहे दत्ता, सा भार्य्या या प्रजावती।
सा भार्य्या या पतिप्राणा, सा भार्य्या या पतिव्रता॥

वही स्त्री है, जो घरके कामोंमें निपुण है; वही स्त्री है जो सन्तानवाली है; वही स्त्री है जो पतिप्राणा और पतिव्रता है।

किन्तु यदि दुर्भाग्यसे स्त्री सती न हो, तो सुख कहाँ है? कहा है:—

यस्य क्षेत्रं नदी तीरे, भार्य्या च परसंगरता।
ससर्पे च गृहे वासः, कथं स्यात्तस्य निर्वृतिः॥

जिसका खेत नदी-किनारे है, जिसकी स्त्री परपुरुषरता है, जो साँपवाले घरमें रहता है,—उसे सुख कहाँ है?

प्रसन्नमुखी स्वामी या हँसमुख मालिक।

——::०::——

प्रथम तो पराई चाकरी ही महा कठिन काम है! संसारमें पराई चाकरीसे अधिक दुःखदायी और काम ही नहीं है। नौकरी करना और सर्पको खिलाना एक ही बात है। किसी पाश्चात्य विद्वान्ने कहा है—"स्वर्गमें चाकरी करनेसे, नरकमें राज करना कहीं भला है।" पर-सेवकाईमें गुण भी औगुण हो जाते हैं और स्वाधीनता तो नामको भी नहीं रहती। महामूर्ख गधा स्वामी भी अपने चतुर-चूड़ामणि सेवकको मूर्ख और पागल कह देता है। उसके अच्छे-से-अच्छे कामोंमें भी दोष लगा देता है। ज़रा-ज़रा सी बातोंमें सेवकका अपमान करता

है। पराधीनतासे जीविका उपार्जन न करना ही, जन्मकी सफलता है। पराधीन जीविकावाले यदि जीवित हैं, तो मरे कौन हैं ? पर इस पापी पेट और जीभके लिये, विशेषकर स्त्री और बच्चोंके लिये, पूर्वकृत पापोंके फल-स्वरूप, मनुष्यको यह निंद्य कर्म भी करना ही पड़ता है। यदि दुर्भाग्यसे स्वामी क्रोधमुखी और स्वार्थी मिल गया, तब तो जीते जी ही नरक हो गया। यदि पूर्व्वपुण्योंसे स्वामी हँसमुख, सेवकके कष्ट और दुःखसे सहानुभूति रखनेवाला तथा उसका भला चाहनेवाला मिल गया, तब तो किसी प्रकार सुखसे जीवन कट जाता है, उतना दुःख नहीं होता। पर ऐसा स्वामी भगवान् कृष्णकी पूर्ण कृपा बिना नहीं मिलता।

स्नेही मित्र।

—::०::—

इस जगत्में जिनके निष्कपट सच्चे स्नेही मित्र हैं, वे निश्चय ही भाग्यवान् हैं। माता-पिता, स्त्री और सगे भाईमें जो सुख नहीं है, वह सच्चे स्नेही सुहृद्में है। स्वाभाविक मित्रके ऊपर पुरुषोंका जैसा विश्वास होता है; वैसा विश्वास माता, स्त्री और सगे भाईपर भी नहीं होता। सच्चा मित्र, मित्रके सुदिन और दुर्दिनमें यकसाँ स्नेह रखता है; बल्कि दुर्दिनमें अपने स्नेहकी मात्राको और भी बढ़ा देता है। मित्रके बालूके दाने बराबर दुःखको पहाड़के समान समझता है, अपने पहाड़के समान दुःखको भी बालूके दाने जितना समझता है;

समयपर तन-मन और धनसे साहाय्य करता है; छायाके समान साथ रहता है; विपद्से छुटकारा कराता है अथवा अपनी सामर्थ्यभर छुटकारेकी चेष्टा करनेमें कोई कसर नहीं रखता; मित्रके गुणोंको प्रकाशित करता, औगुणोंको छिपाता और प्राणान्त होनेपर भी, मित्रके गुप्त रहस्य प्रकट नहीं करता,—ऐसा मित्र ही मित्र होता है। जिनपर जगदाधार भगवान् कृष्णकी पूर्ण कृपा होती है, उन्हें ही ऐसा मित्र मिलता है। ऐसे मित्र दुर्लभ हैं। आज-कल तो मतलबके यार रह गये हैं। जबतक आपके पास पैसा है, आप खिलाते-पिलाते और पोला हाथ रखते हैं, तबतक आपके मित्र बने रहते हैं; जहाँ आपके पास पैसा न रहा, कि मित्र राम सटके। जबतक अवस्था भली रहती है, तबतक आज-कलके मित्र छायाकी तरह साथ रहते हैं; जहाँ दरिद्रदेव आये, विपद्ने पदार्पण किया, कि मित्रोंने आपको मँझधारमें छोड़ा। आज-कल मित्र कहाँ हैं? हमारे जैसे नासमझ लोग .खुशामदियोंको मित्र समझ लेते हैं; पर .खुशामदीसे बढ़कर दुश्मन इस जगत्में नहीं। जबतक .खुशामदीकी इच्छा पूरी की जाती है, वह .खुशामद और लल्लो-चप्पो करता रहता है; जहाँ मतलबमें बाधा पड़ी और उसने अपने साथीकी घोर-घोर निन्दा आरम्भ की। ऐसे लोग अच्छे समयमें अपने साथी या मित्रके दोषोंपर गहरी नजर रखते हैं और किसी समयके लिये, उन्हें, धनकी तरह, अपने हृदय-बैङ्कमें सुरक्षित

रखते जाते हैं। जबतक बनी रहती है, स्वार्थ सधता रहता है, दोषोंको दबाये रखते हैं; जहाँ स्वार्थमें बाधा पड़ी, कि मित्रके उन्हीं दोषोंसे काम निकालनेकी चेष्टा करते हैं। बेचारेको डराते-धमकाते हैं और अगर उसके पास कुछ होता है, तो उससे येन केन उपायेन ऐंठते हैं, उसको घोर विपद्में देखकर भी उन्हें ज़रा दया नहीं आती। अपने मित्रकी विपद्को शतगुणी बढ़ाते हैं। उसके सर्व्वनाशमें अपनी सारी विद्या-बुद्धि और बल ख़र्च कर देते हैं। हम यह नहीं कहते, कि सत्यस्नेही मित्र आजकल होते ही नहीं; होते होंगे; किसी पुण्यात्माको मिलते होंगे; पर हमने ऐसे मित्र आज तक नहीं देखे। बुद्धिमान् अपनी भूलों और पराई ग़लतियोंसे अनुभव प्राप्त करता है। जिसने अपने जीवनमेंमूर्खताके काम नहीं किये, अनेक ठोकरें नहीं खाईं—वह कदापि बुद्धिमान् नहीं हो सकता। हमें तो देखने और सुननेसे जो अनुभव हुआ है, उससे यही कह सकते हैं—कि जिन्हें मित्र कहते हैं, वे इस कलिकालमें पारस-पत्थर या हुमा-पक्षीकी तरह दुष्प्राप्य हैं; नाममात्र चला जाता है। आशा है हमारे पाठक हमारे अनुभवसे लाभ उठायेंगे—धोखा खानेसे बचेंगे। हमने अपने जीवनमें सुमित्र जैसे रत्नके लिये अपनी शक्ति-भर द्रव्य भी नष्ट किया, तन-मन भी लगाया, खोज भी बहुत की; पर हमें वह रत्न न मिला। संसारमें औरोंसे भी पूछा, पर सबको हमारी तरह शिकायत करते ही पाया। जो

कुछ दिनों तक हमारी बातकी दिल्लगी उड़ाते रहे, हमें पागल समझते रहे, शेषमें एक दिन उनको भी कहना ही पड़ा— "आपका अनुभव ठीक है, हम बड़ी ग़लतीपर थे।" आप किसीको भी दुश्मन न बनाइये, सबसे अच्छा बर्ताव कीजिये, इससे आपको सुख ही मिलेगा; पर झटपट ही, बिना कठिन परीक्षा किये, किसीको अपना मित्र न मान लीजिये, किसीसे भी अपने मनकी बात न कहिये। यदि आपकी अवस्था अच्छी होगी, आपके पास धन-दौलत होगी, तो बहुत लोग आपके अभिन्न मित्र बनेंगे—आपके लिये समयपर जान देने तक की डींग मारेंगे, आपके ऊपर अपना सर्व्वस्व तक स्वाहा कर देनेकी लम्बी-चौड़ी बातें कहेंगे—पर आप इन बातोंमें भूल न जाइयेगा—बिना परीक्षा किये विश्वास न कर लीजियेगा। जहाँतक हमारा अनुभव है, परीक्षाके समय कोई भी मित्र आपकी परीक्षामें उत्तीर्ण न होगा। उस समय आप हमारी बातको सच पाकर ख़ुश होंगे।

मैंने यहाँ जो इतनी पंक्तियाँ लिखी हैं, बहुतसे लोग इन्हें मेरा ख़ब्त समझेंगे। समझा करें; मैंने जो कुछ यहाँ लिखा है, वह निष्कपट भावसे सत्य लिखा है और वह केवल इस उद्देश्यसे लिखा है, कि लोग मेरी तरह धोखा न खायें—तकलीफें न उठायें।

निष्कपट नातेदार।

——::o::——

जिस तरह सच्चे मित्रोंका प्रायः अभाव-सा है; उसी तरह

निष्कपट बन्धु-बान्धव और रिश्तेदारोंका भी प्रायः अभाव है। जबतक आपके पास लक्ष्मी रहेगी, तबतक आपके नातेदार, नातेदार बने रहेंगे। संसारमें लोग साला कहलानेमें बहुत संकोच करते हैं, पर धनवान्‌के साले बननेमें भी सौभाग्य समझते हैं; ग़रीबके लोग बहनोई भी नहीं बनते; किन्तु अमीरके, साले न होनेपर भी, साले बन जाते हैं। इस ज़मानेमें न कोई किसीका बाप है, न बेटा; न कोई बहिन है न भाई—सब पैसेके संगी हैं। निर्धनको स्त्री तक त्याग देती है; तब औरोंका तो कहना ही क्या? आजकल लोग उपकारीके उपकारका बदला भी नहीं देते। बिना उपकार कराये,—किसी रिश्तेदारकी सहायता करना—उसके दुःखमें आड़े आना तो बहुत ही कठिन है। यदि आप धनीसे दरिद्र हो जायें, तो आपके सब नातेदार आपको फौरनसे पहले त्याग देंगे और अगर आप प्रारब्धवश फिर दरिद्रसे धनी हो जायें, तो सब मक्खियोंकी तरह आ-चिपटेंगे। औरोंकी बात जाने दीजिये, स्वयं पैदा करनेवाला पिता और सहोदर भाई ऐसा करते हैं। आजकलके बन्धु-बान्धव और मित्रोंके सम्बन्धमें गोस्वामि तुलसीदासजीने बहुत ही ठीक कहा है और जो कुछ उन्होंने अपने श्रीमुखसे कहा है, वह हमने अपने नेत्रोंसे देख लिया है—

स्वारथके सब ही सगे, बिन स्वारथ कोई नाहिं।
सरस वृक्ष पंछी बसें, निरस भये उड़ जाहिं॥

इस दोहेका यह आशय है, कि संसारमें जितने लोग हैं, सब स्वारथके हैं। अपने-अपने मतलबसे ही सगे-सम्बन्धी और नातेदार बन रहे हैं, बिना स्वारथ कोई किसीका नहीं है। जबतक वृक्षमें फल-फूल रहते हैं, पक्षी उसपर टिके रहते हैं; जहाँ वृक्ष फलहीन हुआ, कि पक्षी उसे छोड़कर नौ दो ग्यारह हुए।

सारांश—किसी ही भाग्यवान्‌को निष्कपट बन्धु-बान्धव मिलते हैं।

क्लेश रहित-मन।

—::०::—

अगर मनुष्यका मन क्लेशरहित—निःक्लेश या स्वस्थ हो, तो उसे दुःख ही क्या है ? उसके समान सुखी कौन है ? उसके समान सौभाग्यवान कौन है ? निस्सन्देह, जगदीशकी पूर्ण दया होनेसे ही मन स्वस्थ रहता है। इस जगत्‌में बहुत ही कम लोग निरोग रहते हैं। यदि किसीको शारीरिक रोग नहीं है, तो मानसिक रोग है। जिसे मानसिक व्याधि नहीं है, ऐसा कोई विरला ही भाग्यवान् है। जिसपर जगदीशकी सोलह आने कृपा होती है उसीका मन क्लेशरहित रहता है। कोई अपने व्यवसायके घाटेके मारे मन-ही-मन दुखी हो रहा है, तो कोई अपने प्रिय पुत्र या प्यारी स्त्री अथवा और किसी प्यारेकी जुदाई या मृत्युसे जल रहा है; कोई दुर्जनोंके वाग्बाणोंसे जर्ज्जरित हो मन-ही-मन

शोक-तापसे भस्म हो रहा है, कोई पराजय या शत्रुकी जयसे पीड़ित हो रहा है, कोई भावी दुःखोंकी कल्पनासे ही चिन्तित हो रहा है। हमने ऐसा कोई नहीं देखा, जिसका मन किसी-न-किसी दुःखसे चिन्तित या क्लेशित न हो। गुरु नानकने सारा संसार खोज डाला, पर उन्हें सच्चा सुखिया कोई न मिला। किसीका मन किसी दुःखसे और किसीका किसी दुःखसे उन्होंने क्लेशित ही पाया; इसलिये उन्होंने कहा—"नानक दुखिया सब संसार।"

ग़रीब और निर्धन लोग राजा-महाराजाओं और अमीर-उमराओंको देखकर मन-ही-मन दुःखित हुआ करते हैं और कहा करते हैं, कि वे लोग स्वर्गका आनन्द भोग रहे हैं; पर वास्तवमें यह बात नहीं है। यह उन लोगोंकी ख़ाम ख़याली है। जो जितने ही धनी हैं, जो जितने ही उच्च पदपर हैं, वे उतने ही चिन्ताग्रस्त और दुःखी हैं। प्रकटमें वे लोग सुखी दीखते हैं, परन्तु उनकी भीतरी दशा बहुत ही दुःख और कष्टपूर्ण है। उनके ऊपर बड़ी-बड़ी ज़िम्मेदारियाँ और चिन्तायें सवार हैं। बड़े लोगोंको रातके समय भी सुखकी नींद नहीं आती। नातजुर्बेकार लोग समझते हैं, कि धनकी वृद्धिसे मनुष्य सुखी होता है, पर हमारी समझमें धन ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, चिन्तायें भी त्यों-त्यों बढ़ती जाती हैं। मनको सदा सुखी रखनेका एक ही उपाय 'आत्म-संयम' है। जिसने अपनी इन्द्रियोंपर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है, जिसकी दृष्टिमें सुख-

दुःख, मान-अपमान, हानि-लाभ, संयोग-वियोग, सम्पद-विपद्, निन्दा-स्तुति समान हैं; यानी जो समदर्शी है, वही सुखी है। जो सुखमें हर्ष नहीं करता और दुःखमें शोक नहीं करता, अपने प्यारे-से-प्यारेके मर जानेपर भी दुःखी नहीं होता—वह निस्सन्देह सुखी है। मनका निःक्लेशित रहना ही सच्चा सुख है। और मन तभी सुखी रह सकता है, जबकि मनुष्य इन्द्रियोंपर अपना पूर्ण अधिकार जमा ले और हर अवस्थामें सन्तुष्ट रहे—त्रिलोकीकी सम्पदा मिल जाय, तोभी सुखी और सर्व्वस्व नष्ट हो जाय तोभी सुखी। यह हालत इन्द्रियविजयी समदर्शी महात्माओंकी होती है। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, क्योंकि वे सुख-दुखको समान और पूर्वजन्मके भले और बुरे कर्मोंका अवश्यंभावी फल समझते हैं। उनकी दशा दर्पणकी सी है, जो पहाड़का अक्स पड़नेसे दब नहीं जाता और समुद्रकी प्रतिच्छाया पड़नेसे भीगता नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

सुख दुख दोनों एक सम, सन्तनके मन माहिं।
मेरु उदधि गत मुकुर जिमि, भार भीजिबो नाहिं॥

अगर यह कठिन काम न हो, तो मनको गोस्वामीजीकी इस उक्तिसे समझाकर ही सुखी और निश्चिन्त रखिये—
"हुइ है वही जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावै साखा ?"
गोस्वामीजीके इस उपदेशमें बड़ा गूढ़ अर्थ भरा हुआ है। मनको सुखी रखनेकी इससे बढ़कर उत्तम औषधि और नहीं

है। सभी जानते हैं, सुगति और दुर्गति हमारे पूर्वजन्मके कर्मोंका ही फल है। सुकर्मोंका फल सुख है। दुष्कर्मोंका फल दुःख है। कोई मनुष्य क्षण-भर भी कर्म-रहित नहीं रह सकता। बुरा और भला जो हमारे सामने आ रहा है, वह सब हमारे ही किये कर्मोंका फल है। कर्म-फल बिना भोगे कोई भी बच नहीं सकता। जो होनहार है, वह अवश्य होगी। जो नहीं होनी है, वह कभी न होगी। हमने जो बोया है, वही हम काटेंगे। आमका वृक्ष लगानेवालोंको आम हैं, बबूलका वृक्ष लगानेवालोंको काँटे हैं। जिस तरह बछड़ा अपनी माताको हज़ारों गायोंमें खोज लेता है, उसी तरह कर्म अपने कर्त्ताको ढूँढ़ लेता है। ईश्वरके नियममें दोष और भूल नहीं; जो कुछ और जैसा जिसने किया है, वह उसे अवश्य लेना होगा। कर्मके फलको विधाता भी मेट नहीं सकता। इन बातोंको विचारकर, मनुष्यको सदा प्रसन्न-चित्त रहना चाहिये। आगेके दुःखोंकी कल्पना करके, वृथा अपनी सुखकी घड़ियोंको भी दुःखमय न करना चाहिये। शोक और चिन्तासे उलटा दुःख बढ़ता है, घटता नहीं। हर हालतमें .खुश रहनेवालेको दुःख भी दुःख-सा मालूम नहीं होता।

पाठको! बहुत लिखनेसे आपका समय नष्ट होगा। इतनेमें ही समझ लीजिये, कि मैंने इन सब नीति-वाक्योंके पढ़ लेनेपर भी, अपनी मूर्खतासे, इसपर अमल न किया। भावी विपद्की कल्पना-ही-कल्पनाओंमें अपने दुष्प्राप्य शरीरको नष्ट

कर दिया, जवानीमें ही बुढ़ापेको बुला लिया। मेरी कल्पनायें मिथ्या निकलीं, और मेरे भावी विचार एकदम झूठे हो गये। जिन दुःखोंकी कल्पनाओंसे मुझे २४ सालमें कभी सुखकी नींद नहीं आई, वे सब योंही मूर्खताकी कल्पनायें निकलीं। अन्तमें मुझे पछताकर कहना पड़ा—"हाय! मैंने इतने वर्ष योंही गँवाये! सुखके दिन भी अपनी नासमझीसे दुःखमय कर दिये! अन्तमें वही हुआ, जो होना था।" दूसरोंके दुःखोंमें लोग इसी तरह समझाया करते हैं, पर खुदपर जब आ पड़ती है, तब प्रायः सभी मेरी तरह ग़लतियाँ करते हैं। पर ऐसा करना, है वृथा मूर्खता करके अपनी ज़िन्दगी ख़राब करना। जो सज्जन दुःखमें नहीं घबराते, भावी दुःखोंकी कल्पनाओंमें ज़िन्दगी बर्बाद नहीं करते—वे सचमुच ही महापुरुष हैं, वे इस जगत्के सच्चे भूषण हैं। पर ऐसे पुरुषरत्न इस जगत्में विरले ही हैं। आशा है, पाठक! मेरी ग़लतियोंसे नफा उठायेंगे और अपने सुखी जीवनका एक क्षण भी वृथा दुःखमय न करेंगे। जो दूसरोंकी ग़लतियोंसे लाभ उठाते हैं, वे ही बुद्धिमान् हैं। दूसरोंके सुखके लिये ही मैं, मौक़े-मौक़ेपर, अपनी बेवकूफ़ियोंको लिख रहा हूँ। आपने अपनी बेवकूफ़ियों और ग़लतियोंके कहनेवाले सिवा गाँधीजीके बहुतही कम देखे-सुने होंगे। आप ऐसा मत समझ लेना, कि ऐसा आदमी एक ग्रन्थ लिखकर हमें क्यों उपदेश दे रहा है? मैं उपदेश देने योग्य नहीं; पर मेरी आन्तरिक इच्छा है, कि

और लोग मेरी तरह कष्टमय जीवन न बितावें; इसलिये अपनी ग़लतियोंकी बात लिख रहा हूँ। भाइयो! महात्मा हे ने कहा है—"जो अपने जीवनमें कभी मूर्ख न था, वह कदापि बुद्धिमान न था।" अरबीमें एक कहावत है—"जो स्वयं बीमार नहीं हुआ, वह उत्तम चिकित्सक हो नहीं सकता।" संसारका प्रत्येक मनुष्य अनेकानेक घटनाओंसे भरा हुआ उपन्यास है। अगर सभी मनुष्य अपनी-अपनी नक़ाबें उलट दें—अपने बुरे-भले काम संसारके सामने रखदें; तो दुनियाके बहुतसे आदमी ठोकरें खाने और खड्डोंमें गिरनेसे बचें, पर लोगोंको तो अपनी शानमें बट्टा लगाना बुरा लगता है, अपने गुणोंका कीर्त्तन ही उन्हें अच्छा लगता है। लोग अपने औगुणों, अपनी ग़लतियों और अपनी बेवकूफ़ियोंपर पर्दा डालते और अपने अच्छे कामोंको अपने मित्रों—अपने ख़ुशामदियों द्वारा संसारके सामने रखते हैं। इससे भी संसारको किसी-न-किसी हद तक लाभ ही होता है, पर अपने दोष और ग़लतियोंको संसारके सामने रखनेसे जितना लाभ हो सकता है, उतना नहीं होता।

सुन्दर आकृति या अच्छी सूरत-शकल।

——::०::——

सुन्दर आकृति परमात्माकी देन है; पर विद्वान् उसे ही सुन्दर आकृतिवाला और ख़ूबसूरत समझते हैं, जो विद्वान् है

पण्डित है; बुद्धिमान है; धर्मात्मा है, परोपकारपरायण है, दीनोंपर दया करता है, ग़रीब और मुहताजोंकी ज़रूरियातोंको मिटाता है, अनाथोंका पालन करता है; संसारके सभी प्राणियोंके कष्टको अपना कष्ट समझता है, जो सदा प्रसन्न-चित्त रहता है, जिसके माथेपर कभी चिन्ता और क्रोधकी सलवटें नहीं पड़तीं, जो मधुरभाषणसे ज़गत्के हृदयको मुग्ध कर लेता है। आँख, नाक और आकारकी सुन्दरता—सुन्दरता नहीं है। अगर सूरत-शकल आकार-प्रकार सुन्दर और निर्दोष हों और साथ ही मनुष्यमें ये खूबियाँ भी हों; तभी आकृतिकी सुन्दरता है। अगर ये खूबियाँ न हों; केवल आकृति सुन्दर हो, तो व्यर्थ है। सारांश यह, उत्तम गुणके साथ आकृति भी सुन्दर होनी चाहिये। सुन्दर आकृतिसे लोगोंका चित्त आकर्षित होता है; पर ऐसा मेल कहीं-कहीं ही मिलता है। बहुधा देखनेमें आता है कि, रूप है तो गुण नहीं, गुण है तो रूप नहीं। वृन्द कविने कहा है,—

जैसो गुण दीनों दई, तैसो रूप निबन्ध।
ये दोनों कहाँ पाइये, सोनो और सुगन्ध ?॥

स्थिर सम्पत्ति।

—::०::—

बहुत दिन तक स्थायी रूपसे रहनेवाली सम्पत्ति ही सुखदायी सम्पत्ति है। आज है और कल नहीं, वह सम्पत्ति किस कामकी ? वैसी सम्पत्तिसे सम्पत्तिका न होना

८

ही भला। पर लक्ष्मीका स्वभाव ही चञ्चल है; वह कभी एक जगह टिककर नहीं रहती। आज इस घरमें है, तो कल उस घरमें। धन पाँवकी धूलके समान है, जो पैरोंमें लगती है और झट झड़ जाती है। बूक्स नामक पाश्चात्य विद्वान्ने कहा है—"धन दुष्ट सेवकोंके समान है, जिनके जूते भागनेवाले चमड़ेके बने होते हैं और जो एक स्वामीके पास बहुत दिन नहीं रहते।"* अर्थात् ख़राब चाकर और धन किसीके पास बहुत दिनों तक नहीं टिकते। एक पाश्चात्य विद्वान्ने कहा है—"हमने किसीके पास दौलत, समान रूपसे, तीन पीढ़ीसे अधिक ठहरती नहीं सुनी।" किसीने कहा है—"दौलतके पङ्ख होते हैं।" सभीने कहा है कि, धन-वैभव सदा स्थायी नहीं रहते। जिस तरह जन्मके साथ मृत्यु, जवानीके साथ बुढ़ापा, संयोगके साथ वियोग प्रभृति लगे हुए हैं; उसी तरह सम्पदके साथ विपद् लगी हुई है। जिनपर जगदीशकी पूर्ण कृपा होती है, उन्हींके यहाँ उनकी उम्रभर धन-ऐश्वर्य्य रहते हैं।

छप्पय—*पुत्र मिलै सचरित, नारीहू सती सुहावन।*
स्वामी हँसमुख मिलै, मित्रहू प्रीति-निबाहन॥
परिजन छलसों हीन, कलह-बिन मन सुखकारी।
आनन सुन्दर मिलै, अचल लक्ष्मीहू भारी॥

---

* Riches are like bad servants, whose shoes are made of running leather, and will never tarry long with one master.

इमि सब शोभाकी खानि, तो विद्या मुखही मंडनौ।
जब होहिं प्रसन्न रमेशजू, कल्मष सकल विखंडनौ ॥२५॥

25. A well-behaved son, a chaste wife, a pleased master, a fond friend, an undeceitful relative, an unafflicted mind, a graceful figure, a stable prosperity and an oratorical vocal organ are only obtainable by those with whom Vishnu, the Lord of Heaven and the giver of all good, is pleased.

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं-
कालेशक्त्याप्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम्।
तृष्णास्रोतोविभंगो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकंपा,
सामान्यः सर्वशः शास्त्रेष्वनुपहतविधिःश्रेयसामेषपंथाः
॥२६॥

जीव-हिंसा न करना, पराया धन हरण करनेसे मनको रोकना, सत्य बोलना, समयपर सामर्थ्यानुसार दान करना, परस्त्रियोंकी चर्चा न करना और न सुनना, तृष्णाके प्रवाहको तोड़ना, गुरुजनोंके आगे नम्र रहना और सब प्राणियोंपर दया करना—सामान्यतया, सब शास्त्रोंके मतसे, ये सब मनुष्यके कल्याणके मार्ग हैं।

जीव-हिंसा न करना।

——::o::——

धर्मशास्त्रोंमें अनेक विषयोंमें परस्पर मतभेद है; पर "अहिंसा परम धर्म है"—इस वाक्यको सभी धर्म एक मतसे

मानते हैं। संसारमें जीवहिंसासे निवृत्त रहनेके समान और धर्म नहीं है। फिर भी; न जाने क्यों अज्ञानी लोग, अपने पेटके लिये, परायी जान लेते हैं? "धर्मपद"में लिखा है,—"सब मनुष्य दण्डसे डरते हैं, सभी मौतसे भीत होते हैं; ध्यान रखो, तुम भी उन्हींके समान हो, इसलिये किसीकी हिंसा न करो और न किसीका संहार होने दो। जो मनुष्य अपनी तरह सुखकी इच्छा रखनेवाले प्राणियोंकी, अपने सुखके लिये, हिंसा करता है, उसे मृत्युके पश्चात् सुख नहीं मिलेगा। जो किसी की भी हिंसा नहीं करते, जो सत्पुरुष इन्द्रियोंका संयम करते हैं, वे अटल निर्वाणको प्राप्त होंगे—वहाँ उन्हें लेशमात्र भी दुःख न होगा।" हमारे ही शास्त्रोंमें कहा है—"जो सब तरहकी हिंसाओंसे निवृत्त हैं, जो कष्टसहिष्णु हैं, जो सब जीवोंको आश्रय देनेवाले हैं—वे ही स्वर्गको जाते हैं। जो मांस खाता है और जिसका मांस खाता है, उन दोनोंका अन्तर देखो! एकको क्षणभरके लिये सुख होता है और दूसरा अपने प्राणसे ही जाता है। शेख़सादीने भी कहा है—

ज़ेरे पायत गर, बिदानी हाले मोर।
हम चो हाले तस्त, ज़ेरे पाये पील॥

तुम्हारे पाँवके नीचे दबी चींटीका वही हाल होता है, जो यदि तुम हाथीके पाँवके नीचे दब जाओ तो तुम्हारा हो।" दूसरेके दुःखकी अपने दुःखसे तुलना किये बिना, हमें पराये दुःखका हाल मालूम नहीं हो सकता। मतलब यह है कि, हमें

सभी जीवोंको अपने समान समझना चाहिये—पराये प्राण भी अपने प्राणोंके समान समझने चाहियें—दूसरोंको कष्ट पहुँचाते समय इस बातका ख़याल रखना चाहिये कि, यदि हमें कोई ऐसा ही कष्ट दे, हमें भी ज़िबह करे, तो हमारा क्या हाल हो ? अगर मनुष्य यह विचार अपने हृदयमें रक्खे, तो उससे कभी किसीकी हत्या न हो और किसी तरहका और भी ज़ुल्म न हो। कबीरदासने कहा है:—

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो बकरीको खात हैं, तिनको कौन हवाल ?॥
मुरग़ी मुल्ला सों कहै, ज़िबह करत है मोहि।
साहब लेखा माँगसी, संकट परिहै तोहि॥
गला काटि कलमा भरै, किया कहै हलाल।
साहब लेखा माँगसी, तब होसी कौन हवाल ?॥

पर-धनपर मन न चलाना।

——::०::——

धन-जैसी ख़राब चीज़ और नहीं। इसके प्राप्त करनेमें दुःख, रखनेमें दुःख और नाशमें दुःख है। धन चिन्ताका आगार और आफ़तोंका भाण्डार है। जिनके पास यह होता है, उनकी चिन्तायें बेतहाशा बढ़ जाती हैं। दिवा-रात वे इसीके फेरमें पड़े रहते हैं और उनकी ज़िन्दगी सदा ख़तरेमें रहती है। और तो क्या—सगे नातेदार और स्वयं पुत्र तक धनीकी मरण-कामना किया करते हैं। ग्रेगरी नामक विद्वान्ने भी कहा है—

"धनकी प्राप्तिसे हमें उतनी खुशी नहीं होती, जितना कि उसके नाशसे हमें दुःख होता है।" प्लूटार्चने कहा है—"जिनके पास धन होता है, उन्हें उससे कष्ट ही अधिक होता है।" ऐसे अनर्थोंके मूल धनको सिवा मूर्ख और अज्ञानियोंके और कौन पसन्द करे ? और यदि इसे किसी तरह संसारके काम चलानेके लिये अच्छा भी समझ लें, तो भी पराया धन चोरी-जोरी या बेईमानीसे हड़प जाना तो महा-अनर्थ और पापका मूल है। पराया धन हरण करना तो बड़ी बात है, उसके हरणका विचार भी मनमें लाना महाअनर्थकारी है। जो ऐसा विचार भी करते हैं, उनके दोनों लोक बिगड़ जाते हैं; यहाँ लोक-निन्दा होती और दण्ड मिलता है। यदि यहाँ (इस दुनियाँमें) किसी तरह बच गये, तो वहाँ (दूसरी दुनियाँमें) तो किसी तरह बच ही नहीं सकते। आपकी बुरी इच्छाओं तकको नोट करनेवाला आपके भीतर ही मौजूद है। वह आपके गुप्त-से-गुप्त कामोंपर नज़र रखता है। विदुरने कहा है—"पराया धन हरण करने, परस्त्रियोंसे व्यभिचार करने और विश्वासी मित्रोंके साथ विश्वासघात करनेसे मनुष्य नष्ट हो जाता है।" "धर्मपद" में लिखा है—"जो हिंसा करता है, मिथ्या भाषण करता है, जो दूसरोंकी चीज़, उनके दिये बिना, अपहरण करता है, वह, इस लोकमें ही, अपने हाथसे अपनी जड़ खोदता है।"

अगर धनकी लालसा ही हो, तो स्वयं उद्योग करना चाहिये। उद्योगी और मिहनतीके पास लक्ष्मी निश्चय ही

दौड़कर आती है। उद्योगी कभी भी दरिद्री नहीं रहता। अगर बहुत धन भाग्यमें न भी लिखा हो, तो भी उद्योगी दरिद्री नहीं रह सकता; इसलिये भूलकर भी पराये धनपर मन न चलाना चाहिये। परद्रव्य लोष्टवत् यानी पर-धन मिट्टीके ढेलेके समान समझना चाहिये।

सच बोलना।

सत्य स्वयं परमात्मा है; सत्यके समान न कोई धर्म है, न तीर्थ। सत्य सब धर्म्मोंसे ऊँचा है। "वाल्मीकि रामायण"के अयोध्याकाण्डमें लिखा है,—"प्राचीन समयमें, स्वयं विधाताने सत्य और अश्वमेध यज्ञको, तराज़ूके पलड़ोंमें रखकर, तोला; तो उन्हें अश्वमेध यज्ञसे सत्य भारी मालूम हुआ।"

सच्चेका सब कोई विश्वास और सम्मान करते हैं। सत्यकी सदा जय होती है, सत्यकी नाव पर्वतपर चलती है, सत्यसे ही पृथ्वी ठहरी हुई है, सत्यसे ही सूर्य्य तपता है, सत्यसे ही हवा चलती है, जो कुछ है वह सत्यपर ही ठहरा हुआ है। यही बात एक पाश्चात्य विद्वान्ने भी कही है—"सत्य और विश्वास संसार-मन्दिरके स्तम्भ—खम्भे हैं। जब ये स्तम्भ टूट जायेंगे, तब भवन गिर पड़ेगा और सब चूरचूर हो जायगा।" टिल्टसन महोदय कहते हैं,—"हमें अपने लक्ष्य-स्थान या मंज़िल मक़सूद तक पहुँचनेके लिये सत्य ही की राह-पर चलना चाहिये। यह राह सीधी और नज़दीकी है; अर्थात् सत्यकी राहपर चलनेसे, हम अपने लक्ष्यपर बहुत जल्दी

पहुँचते हैं।" बॉसट नामक एक विद्वान् कहते हैं—"सत्य एक रानी है, जिसका नित्य-सिंहासन स्वर्गमें है और उसका निवास परमात्माके हृदयमें है।" कहाँ तक कहें, सत्यकी महिमा संसारके सभी विद्वानोंने ख़ूब लिखी है। सत्य ऐसा है, तभी तो धर्मराज युधिष्ठिरने अनेक असहनीय कष्ट भोग किये। पाञ्चालीके बारम्बार रोने-गानेपर भी, भीमार्जुनके उत्तेजित करनेपर भी, उन्होंने सत्यको नहीं त्यागा और सत्यके बलसे ही, अन्तमें, उन्हींकी विजय हुई। सत्यके लिये ही, हरिश्चन्द्रने राज्य, धन और स्त्री-पुत्र तकको त्यागकर, श्मशान-घाटपर, चाण्डालकी सेवा स्वीकार की।

सच्चा मनुष्य ही पूर्ण है। सच्चे स्वामीपर ही नौकरकी श्रद्धा होती है। मनुष्यमात्रको सच्चाईकी ज़रूरत है। प्रकृति स्वयं सच्ची है, प्रकृतिका अर्थ सच्चा है और जिसमें सच्चाई है, उसमें प्रकृतिका हाथ अवश्य है। सत्यको कितना ही छिपाइये, वह छिपेगा नहीं। अगर दब भी जायगा, तो फिर ऊपर आवेगा और आवेगा।

अँगरेज़ीमें एक कहावत है—"सत्य और तेल सदा ऊपर रहते हैं।" सर विलियम हेम्प महोदय कहते हैं—"सत्य बोतलके कागके समान है। आप कागको पानीमें दबा दीजिये, पर वह ऊपर आये बिना न रहेगा।" सत्यका भी यही हाल है, वह दबा देनेपर भी कभी-न-कभी ऊपर आता ही है।

मनुष्यको सदा-सर्वदा सत्य बोलना चाहिये। सच्चा अगर कभी भूलसे या जानकर झूठ भी बोल देता है; तो

उसका वह मिथ्या भी सत्य ही समझा जाता है। जो मिथ्या बोलता है, वह यदि कभी सच भी बोले तो लोग उसे मिथ्या ही समझते हैं। निश्चय ही सच्चा अपनी घोर विपद्के भी पार हो जाता है। कहा हैः—

कृत्यर्थं भोजनं येषां, सन्तानार्थं च मैथुनम्।
वाक् सत्य वचनार्थाय, दुर्गाण्यपि तरन्ति ते॥

जो मनुष्य प्राणरक्षाके लिये खाते हैं, सन्तानके लिये स्त्री-संसर्ग करते हैं और सत्यके लिये बोलते हैं—वे विपद्के पार हो जाते हैं। कबीर साहबने कहा हैः—

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप॥
साँचे शाप न लागई, साँचे काल न खाय।
साँचेको साँचा मिले, साँचे माँहि समाय॥
झूठ बात नहिं बोलिये, जब लगि पार बसाय।
अहो कबीरा! साँच गहु, आवागमन नसाय॥

सारांश—सदा सच बोलो। सच बोलनेवालेका दर्जा सबसे ऊँचा है। सत्यवादी परमात्माका सबसे ज़ियादा प्यारा है। सत्यका परिणाम सदा सुखदाई है।

आप = भगवान्। शाप = बद्दुआ। काल = मौत। साँचे = सच्चे। साँचा = ईश्वर। जबलगि = जबतक। पार बसाय = बस चले। गहु = पकड़। आवागमन = आना-जाना, जन्मना और मरना। नसाय = बन्द हो, मोक्ष हो जाय।

सामर्थ्यानुसार दान करना ।

——::०::——

मनुष्यको अपनी सामर्थ्य—श्रद्धानुसार, समयपर, जरूरतके समय, अवश्य दान करना चाहिये । सामर्थ्यसे अधिक देना अथवा समय चूककर, बिना समय, देना अच्छा नहीं। समयकी एक कौड़ी, बिना समयके रुपयेसे अच्छी है । यौवन, जीवन, वित्त, छाया, लक्ष्मी और प्रभुता ये चञ्चल हैं—आज हैं, कलका भरोसा नहीं । मरनेपर केवल धर्म ही मनुष्यके साथ जाता है; और सब तो शरीरके साथ ही नाश हो जाते हैं; इसलिये मनुष्यको हर दिन कुछ-न-कुछ दान करना चाहिये । कौन जाने किस समय घड़ीके पैण्डूलमका हिलना बन्द हो जाय, दम निकल जाय ? दानीकी इस लोकमें सत्कीर्ति होती और मृत्युके बाद उसे स्वर्ग मिलता है । हरिश्चन्द्र, कर्ण, विक्रम, नौशेरवाँ और हातमताई आज इस असार-नापायेदार दुनियामें नहीं हैं, उनकी हड्डियोंका भी पता नहीं है; पर उनका विमल सुयश आज तक वर्तमान है और प्रलयान्त तक इसी तरह अजर और अमर रहेगा । "हितोपदेश" में लिखा है—

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥

मैं कभी बूढ़ा न हूँगा और न कभी मरूँगा—यह समझकर बुद्धिमान् विद्या और धनकी चिन्ता करे और मेरे बाल

मौतने पकड़ रक्खे हैं—यह समझकर धर्मका अनुष्ठान करे। इसी टक्करकी बात हरडर नामक एक यूरोपियन विद्वान्ने भी कही है—

"Seek knowledge, as if thou wert to be here for ever; virtue as if death already held thee by the bristling hair".

यह समझकर, कि गोया तू सदा ही इस जगत्में रहेगा, विद्यार्जन कर; मौतने तेरे बाल पकड़ रक्खे हैं, यह समझकर, धर्मका अनुष्ठान कर।

भाइयो! इस बातको हरदम याद रक्खो कि, शरीर सदा रहनेवाला नहीं, धन और सम्पत्ति भी सदा रहनेवाले नहीं, मौत सिरपर खड़ी घात देख रही है; इसलिये भला चाहते हो, तो धर्म करो, धर्म करो, दूसरोंका दुःख दूर करो। मरनेपर यही मित्र—धर्म साथ जायगा और सब मित्र जीते जीके हैं। कहा है, परदेशमें विद्या मित्र है, घरमें स्त्री मित्र है, रोगीकी औषधि मित्र है और मरे हुएका एकमात्र धर्म मित्र है।

अज्ञानी लोग समझते हैं—दान-धर्म और भजन-उपासनाका समय बुढ़ापा है। यह उनकी कैसी भयङ्कर नादानी है! रोज़ ही देखते हैं कि, काल न बूढ़ेको देखता है, न जवानको और न बालकको। वह जिसे पाता है, उसे ही उठा ले जाता है। इसलिये बचपनसे ही दान-धर्म और भजन-उपासना करनी चाहिये। ध्रुव और प्रह्लादने, बचपनमें

ही, भगवद्भजन किया था। जो अबतक नहीं चेते हैं, वह अब चेत जायँ। कहा है—

"पहली अवस्थामें विद्या, दूसरीमें धन और तीसरीमें धर्मका सञ्चय नहीं किया, तो चौथीमें क्या करोगे ?

"जब तक शरीर निरोग है, मृत्यु दूर है, तब तक अपनी भलाईके लिये परोपकार-पुण्य सञ्चयकर, प्राण-नाश होनेपर क्या करेगा ?

"हाथ दान-रहित हैं, कान वेदशास्त्रके विरोधी हैं, नेत्रोंने साधु-महात्माओंके दर्शन नहीं किये, अन्यायसे कमाये हुए धनसे पेट भरा है और उससे सिर ऊँचा हो रहा है— रे रे स्यार ! ऐसे निन्दित—घृणित शरीरको शीघ्र त्याग"।

क्या ग़रीबोंको भी दान करना चाहिये ?

——:०:——

दान-धर्ममें ग़रीब-अमीरकी कुछ क़ैद नहीं है। जिसके पास कौड़ी हो, वह कौड़ी ही दान करे; जिसके पास पैसा हो वह पैसा ही दे; जिसके पास रुपये और अशर्फियाँ हों, वह रुपये और अशर्फियाँ ही दान करे। निर्धनकी एक कौड़ी करोड़पतिकी अशर्फियोंसे अधिक फलदायी होती है। राजा भोजने, पूर्व्वजन्ममें, एक अतिथिको एक रोज़ अपना भोजन खिला देनेसे ही, राज्य और अटूट सम्पत्ति पाई थी। सोचिये तो सही; एक-एक पाई रोज़ दान करनेसे एक बरसमें ३६०

पाई, दस वर्षमें ३६०० और पचास वर्षमें सहजमें १८००० पाई जमा हो जाती हैं। विद्या, धन और धर्मके मामलेमें इस बातका .खूब ख़याल रखना चाहिये।

भाइयो! एक-एक ईंटसे महल खड़ा हो जाता है। एक-एक बूँदसे घड़ा भर जाता है। घड़ा ही क्या—एक-एक बूँदसे महासागर और एक-एक छोटे कणसे आपकी यह पृथ्वी बनी है। एक-एक मिनटसे अनन्त युग बन गये हैं। दयापूर्ण छोटे-छोटे काम और प्रेमपूर्ण छोटे-छोटे शब्द हमारी इस पृथ्वीको स्वर्गीय नन्दन कानन बना देते हैं। महात्मा विदुरने कहा है—"जो समर्थ और बलवान होनेपर क्षमा करता है और निर्धन होनेपर दान करता है, वह स्वर्गके भी सिरपर रहता है। जो धनी होकर दान न करे और निर्धन होकर तप न करे, उसे गलेमें पत्थर बाँधकर डुबा देना चाहिये।"

सज्जनोंका स्वभाव होता है, कि वे आप तो दुःख पाते हैं, पर दूसरोंका दुःख दूर करते हैं; उनसे दूसरोंका दुःख देखा ही नहीं जाता। उन्हें एक रोटी मिलती है, तो उसमेंसे आधी अपने भूखे-पड़ौसीको दे देते हैं और ऐसे भी लोग इस संसारमें हैं, जो अपने पास लाखों-करोड़ों होते हुए भी दूसरोंका दुःख देखा करते हैं; पर उन्हें अपने भाइयोंपर दया नहीं आती—उनका पत्थर-समान हृदय ज़रा भी नहीं पसीजता। वे रात-दिन निन्यानवेके फेरमें पड़े रहते हैं। उन्हें रात-दिन धन बढ़ानेकी ही चिन्ता रहती है। दानके

नामसे उनका कलेजा काँप उठता है। याचक उन्हें शत्रु जैसे दीखते हैं; पर यह उनकी नासमझी है। वे धनका स्वभाव नहीं जानते। वे समझते हैं, कि हम और हमारी औलाद सदा-सर्वदा धनी ही बने रहेंगे। दान करनेसे—दूसरोंको देनेसे धन घट जायगा। शेख़सादीने कहा है,—

ज़काते माल बदर कुन, के फ़ज़लेए रज़रा।
चो बाग़बाँ बबुर्द, बेशतर दिहद अंगूर॥

दान करनेसे धन घटता नहीं—बढ़ता है। अंगूरोंकी शाखें काटनेसे और ज़ियादा अंगूर आते हैं।

यद्यपि हमारा भारत अब दरिद्र हो गया है—अब इस देशमें धनकी नदियाँ नहीं बहतीं। फिर भी; इस देशमें थोड़े-बहुत धनी हैं ही; पर आज-कलके धनी प्रायः अशिक्षित और मूर्खराज रहते हैं। यदि वे दान भी करते हैं, तो उनसे जितना उपकार होना चाहिये, उतना उपकार नहीं होता। वे शिक्षित न होनेसे, दान करनेके नियम-क़ायदोंको नहीं जानते—कुपात्र और सुपात्रका विचार नहीं करते। लूथरने कहा है—"हमारा मालिक ख़ुदा मूर्खोंको धन देता है, जिन्हें धनके सिवा और कुछ नहीं देता; अर्थात् जिन्हें धन देता है, उन्हें विद्या, बुद्धि, सज्जनता, उदारता प्रभृति सद्गुणोंसे कोरा रखता है।" इसी वजहसे आजकल धनी या तो दान करते ही नहीं; यदि करते हैं, तो ऐसोंको दान करते हैं, जो सण्डे-

मुसण्डे और नीच कुकर्मियोंके सरदार हैं, जिनके यहाँ लक्ष्मीका अभाव नहीं है, जो दानियोंके धनसे गो-हत्या कराते, वेश्याओंको भोगते और उन्हें नचाते हैं अथवा और विविध प्रकारके कुकर्म करते हैं। बहुतसे दानी उनको दान देते हैं, जो रात-दिन उनकी ख़िदमत और .खुशामद करते हैं, उनके पीछे-पीछे फिरा करते हैं, और जो या तो कुछ-न-कुछ धन रखते हैं, अथवा कमा सकते हैं। कुछ धनी केवल अख़बारोंमें प्रशंसा करानेके लिये ही अपना रुपया बर्बाद करते हैं। इस तरह जो धन नष्ट किया जाता है, उसका फल कुछ नहीं मिलता और बाज़-बाज़ समय उलटे पापका भागी बनना पड़ता है। हमारे पास स्थानका अभाव है, इसलिये हम इन बातोंको और भी बढ़ा-चढ़ाकर लिखनेमें असमर्थ हैं। "अक़्लमन्दाँरा इशारा काफ़ी अस्त।" बुद्धिमान् इशारेमें ही समझ जाते हैं। धन उन्हें देना चाहिये, जो वास्तवमें ग़रीब या मुहताज हैं; चाहे वे राहके भिखारी हों, चाहे सफेदपोश और महलोंके रहनेवाले हों। हज़ारों परिवार धनके अभावसे प्राणत्याग कर देते हैं, पर लज्जाके मारे किसीके दरवाज़े नहीं जाते। अमेरिकन धनकुबेर कारनीगो और रॉकफेलर प्रभृति सदा ऐसे लोगोंका .खूब ध्यान रखते थे—ऐसोंको खोज-खोजकर धन-दान करते थे और उनको हर तरह सुखी बनानेकी फिक्र रखते थे। वजह यह थी, कि वे लोग शिक्षित भी थे और धनी भी थे। बहुत लिखनेसे क्या—धन उन्हें देना

चाहिये, जिनको उसकी सच्ची ज़रूरत हो। जिनके पास है, उन्हें देनेसे कोई लाभ नहीं। कहा है:—

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु, वृथा तृप्तेषु भोजनम्।
वृथा दानं धनाढ्येषु, वृथा दीपो दिवापि च॥
मरुस्थल्यां वृथा वृष्टिः, क्षुधार्ते भोजनं तथा।
दरिद्रे दीयते दानं, सफलं पाण्डुनन्दन!॥
दरिद्रान् भर कौन्तेय! मा प्रयच्छेश्वरे धनं।
व्याथितस्यौषधं पथ्यं, नीरुजस्यकिमौषधैः?॥

समुद्रमें वर्षाका होना वृथा है, अघाये हुएको भोजन कराना वृथा है, धनवान्को धन देना वृथा है और दिनमें दीपक जलाना वृथा है।

मरुभूमिमें वर्षा होनेसे लाभ है; भूखेको भोजन कराना सफल है; उसी तरह, हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर! दरिद्रको दिया दान सार्थक है।

हे कुन्तीपुत्र! दरिद्रोंका भरण-पोषण कर। धनियोंको धन मत दे। रोगीको दवा हितकारी है; निरोगको दवासे क्या लाभ?

वृन्दने भी कहा है:—

दान दीनको दीजिये, मिटै दरिदकी पीर।
औषधि ताको दीजिये, जाके रोग शरीर॥

अघाये हुए = पेट भरे हुए। दीन = निर्धन। दरिद = निधनता। पीर = तकलीफ। जाके = जिसके।

आजकलके दानियोंमें एक और दोष है। वे लोग अपने गँववालों, अपनी जान-पहचानवालों या अपनी लल्लोचप्पो करनेवालोंको ही ज़ियादातर देते हैं; लेकिन यह संकीर्ण-हृदयता है। उदारोंके लिये कोई पराया नहीं; सारा जगत् उनका कुटुम्ब है। कहा है:—

अयं निजः परः वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह अपना है, यह पराया है, ऐसा विचार छोटी समझ-वाले ही करते हैं; उदारचरितोंके लिये तो सारी पृथ्वी ही उनका कुटुम्ब है।

जब सुकरातसे पूछा गया, कि तुम किस देशके निवासी और नागरिक हो, तब उसने जवाब दिया—"सारे संसारका।" सचमुच ही महात्मा पुरुष सारे जगत्को अपना देश, हर नगरको अपना नगर, हर आदमीको अपना नातेदार समझते हैं। जो निर्बुद्धि हैं, जो अज्ञानी हैं, वे ही किसीको अपना और किसीको पराया समझते हैं। महापुरुष सबका ही भला करते हैं और उसमें भी खूबी यह, कि बिना कहे, बिना जाँचे ही परोपकार करते हैं; यानी सत्पुरुष किसीके कहने-सुनने, अनुनय-विनय करने या .खुशामद करनेसे किसीका भला नहीं करते। उनका तो ध्यान ही हर किसीकी भलाईपर रहता है। वृन्द कविने कहा है:—

बिना कहेहुँ सत्पुरुष, परकी पूरैं आस।
कौन कहत है सूरकौं, घर-घर करत प्रकाश॥
जो सब ही को देत है, दाता कहिये सोय।
जलधर बरसत सम-विषम, थल न विचारत कोय॥

सत्पुरुष बिना कहे ही पराया दुःख दूर करते हैं। सूरजसे घर-घरमें प्रकाश करनेको कौन कहता है? जो सभीको देता है वही दाता है। ऐसा दाता मेघ है, क्योंकि वह सम और विषम स्थलका विचार न करके जल बरसाता है।

एक बातका और ध्यान रखना चाहिये। वह यह है कि जिसे कुछ साहाय्य करना हो, उसे उसकी ज़रूरतके वक्त देना चाहिये। समयका दिया हुआ एक पैसा, बिना समयके रुपयेसे अच्छा होता है। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनिका पछिताने॥

परस्त्रियोंकी चर्चा।

—::०::—

परस्त्रियोंकी चर्चा न स्वयं करनी चाहिये और न दूसरोंसे सुननी ही चाहिये। इनकी बातें करने और सुननेसे ही मद छा जाता है और फिर अनर्थोंकी राह खुल जाती है। इसीलिये विद्वानोंने ख़राब किताबों और दुष्टोंकी सङ्गतिसे दूर रहनेकी सलाह दी है। स्त्रियोंके रूप, यौवन और हाव-भावकी वर्णना सुनने और पढ़नेसे मन शीघ्रही विचलित हो जाता है। इस संसारमें ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं, जो कुत्सित रूप-

वर्णना सुनकर, अपने हृदयोंको निर्विकार रख सकें। एक बार हमारा विचार—"Mysteries of the court of London" नामक अङ्गरेज़ी पुस्तकका हिन्दी अनुवाद करके या कराकर प्रकाशित करनेका हुआ। हमने उसकी दो जिल्दें पढ़ीं। पढ़कर हमारे मनकी जो बुरी दशा हुई, उसे लिखकर जता नहीं सकते। उसमें इस तरहकी कुत्सित रूप-वर्णना है, जिसे पढ़कर दिल न बिगड़े, ऐसे पाठक हमें बहुत कम दीखते हैं। उस किताबने यूरोपमें लाखों नवयुवक और नवयुवतियोंको भ्रष्ट कर दिया। मन्द स्त्री-चरित्र सुननेसे पैशाचिक प्रवृत्ति उत्तेजित हो ही जाती है—लोग सत्यानाशी राहमें क़दम धर ही देते हैं; इसीसे हमने उस पुस्तकको प्रकाशित न किया। यद्यपि हमको उससे धन लाभ होता, पर और तो हज़ारों-लाखों घर नष्ट हो जाते—लाखों सती-साध्वी कुलटा हो जातीं—लाखों अपने पतियोंके कुपथगामी हो जानेसे विरह-वेदनामें जलतीं—लाखों नौजवान चरित्रभ्रष्ट होकर दो कौड़ीके हो जाते। ऐसी भ्रष्ट पुस्तकोंके शौकीनोंकी कमी नहीं! पर जिन्हें अपना लोक-परलोक बनाना हो; जिन्हें अपने जीवनका बेड़ा सुखसे पार करना हो, वे ऐसी पुस्तकोंसे सदा काल-भुजङ्गकी तरह दूर रहें। परस्त्रियोंकी रूप-वर्णना सुनकर ही लोग पहले भी नष्ट हुए हैं। इन्द्र अहिल्याकी और रावण सीताकी रूप-वर्णना सुनकर ही उस ओर झुके। परिणाम जो हुआ, सो सभीको मालूम है। न रावण सीताकी रूप-

माधुरीकी बातोंपर कान देता, न उसका पतन होता। पहले मनुष्य परस्त्रीके रूप-लावण्यकी बात सुनता है; पीछे उसका मन उसी ओर खिंच जाता है, उसके बाद वह, न्याय नीति और धर्मको तिलाञ्जलि देकर, उसके प्राप्त करनेकी धुनमें लगकर विविध प्रकारके उपाय करता है। बस, इस तरह उसके सर्व्व-नाशकी राह साफ हो जाती है। "धर्म-पद" में लिखा है—"जो अविचारी परस्त्रीकी अभिलाषा करता है, उसे चार फल मिलते हैं—(१) अपयश, (२) निद्रानाशक चिन्ता, (३) दण्ड, और (४) नरक।"

संसारी जीव अपना सर्व्वनाश न करें, अपने सुखमय जीवनको दुःखमय न करें, इसी ग़रज़से राजर्षि भर्तृहरि बुद्धि-मानोंको परस्त्रीकी चर्चासे ही अलग रहनेकी शिक्षा देते हैं; क्योंकि आफ़तकी जड़ इनकी चर्चा ही है। हम भी पाठकोंको इस उपदेशपर आँख बन्द करके चलनेकी सलाह देते हैं।

तृष्णाका प्रवाह तोड़ना।

——::०::——

तृष्णा सब दुःख और आफ़तोंकी मूल है। जिसे तृष्णा नहीं है, वह निर्धन होनेपर भी राजाओंका राजा और सम्राटोंका सम्राट् है। तृष्णाहीनकी जगत्में कौन बराबरी कर सकता है? तृष्णा ही मनुष्यको नीचे-से-नीचा बनाती है, तृष्णा ही मनुष्यसे पराई चाकरी कराती है, तृष्णा ही मनुष्यसे नीच-से-नीच धनियोंकी खुशामदें कराती है, तृष्णा ही मानका

नाश कराती है; तृष्णाका दास ही अभिमानियोंकी खोटी-खरी सुनता है, क्षुद्र लोगोंको हाथ जोड़ता है और उनके पैर पड़ता है। तृष्णार्त्त क्या कर्म नहीं करता ? तृष्णाका सेवक, तृष्णाके वशमें हो, दुर्गम पर्वत और अगम्य वनोंमें फिरता है; समुद्रमें ग़ोते लगाता है और रात-रात भर श्मशानमें जाप करता है, पर तृष्णा कभी शान्त नहीं होती। तृष्णाका स्वभाव है, कि वह दिन-दिन बढ़ती है। कुछ भी पास न होनेपर, सौ रुपयेकी इच्छा होती है; सौ हो जानेपर हज़ारकी, हज़ार हो जानेपर लाखकी और लाख हो जानेपर करोड़की, करोड़ हो जानेपर राज्यकी, राज्य मिल जानेपर साम्राज्यकी और साम्राज्य मिल जानेपर त्रिलोकीके आधिपत्यकी इच्छा होती है। इन्द्रको स्वर्गराज्य भोगते करोड़ों—क्या अरबों—खरबों वर्ष हो गये, पर अब भी उसकी इच्छा स्वर्गराज्य त्यागनेकी नहीं होती; तब मनुष्य बेचारा किस बाग़की मूली है ?

तृष्णाके फेरमें पड़कर मनुष्य इस लोकमें क्षण-भर भी सुख नहीं पाता; इस दुष्प्राप्य मानव-शरीरको वृथा नष्ट करता और बारम्बार जन्म-मरणके बन्धनमें पड़कर सदा दुःख भोगता है। फिर भी; न जाने मनुष्य क्यों तृष्णाको नहीं त्यागता ? अज्ञानी इतना नहीं समझता कि, जितना मैंने पहले जमा कराया है, उतना मुझे अवश्य मिलेगा। यदि मैं न लूँ, तो भी मुझे जबरदस्ती लेना पड़ेगा और जो मैंने जमा नहीं कराया है, वह मुझे किसी तरह—हज़ार भटकने-भ्रमने और नीच-से-

नीच कर्म करनेपर भी न मिलेगा। सादी साहबने कहा है—"जो तेरे भाग्यमें नहीं है, वह तुझे हरगिज़ न मिलेगा; और जो तेरे भाग्यमें है, वह तुझे जहाँ तू होगा वहीं मिल जायगा। सिकन्दर अमृतकी तृष्णासे अँधेरी दुनियामें गया, किन्तु वहाँ पहुँच जानेपर भी, वह अमृतको न चख सका।" मतलब यही है कि, प्रारब्धका लिखा हर जगह बिना प्रयास-बिना उद्योगके ही मिल जाता है और प्रारब्धमें नहीं है, वह हज़ार-हज़ार चेष्टायें करनेसे भी नहीं मिलता; इसलिये मनुष्यको तृष्णा—इच्छा—त्यागकर सन्तोष करना चाहिये। सन्तोषमें ही सच्चा सुख है। सन्तोषीके बराबर इस जगत्में कोई सुखी नहीं। सन्तोष ही सबसे बड़ी दौलत है। जिसे सन्तोष नहीं, तृष्णा है, वह अरब-खरब और सारे संसारका स्वामी होनेपर भी सुखी नहीं।

मनुष्य-जीवन कोई लम्बा-चौड़ा नहीं। यह बदलीकी छाया और बिजलीकी चमकके समान क्षणस्थायी है। मनुष्य-जीवन खान खोदनेवालेके चकमक पत्थरके पहियेकी चिनगारी है; जबतक पहिया घूमता है; रोशनी है; जहाँ पहिया ठहरा कि अन्धकार है। ऐसे क्षणिक जीवनको तृष्णाके भुलावेमें आकर नष्ट करना और ईश्वरने जो कुछ दिया है, उसको सुखपूर्वक न भोगना, महा अज्ञानता है। तृष्णाका ओर-छोर नहीं; एक इच्छा पूरी नहीं होती और दूसरी सामने आ जाती है। इस तरह इच्छायें पूरी नहीं होतीं और मृत्यु

झट मनुष्यको अपने पंजोंमें दबाकर ले भागती है। इसलिये बुद्धिमान वही है, जो तृष्णाको सन्तोषसे शान्त करके, परमात्माकी भक्ति और परोपकारमें अपना अमूल्य और क्षणिक जीवन अतिवाहित करे। कहा हैः—

क्रोधो वैवस्वतो राजा, तृष्णा वैतरणी नदी।
विद्या काम दुधा धेनुः, सन्तोषो नन्दनं वनम् ॥

क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु गाय है और सन्तोष इन्द्रका बग़ीचा है।

तृष्णाकी शान्तिका उपाय मोटामोटी सन्तोष है। सन्तोष तभी होता है, जब मनुष्यको ज्ञान होता है; अतः ज्ञान ही तृष्णाको शान्त करनेवाला है। विषयोंके भोगनेसे तृष्णा बढ़ती है और विषयोंके त्यागनेसे तृष्णा शान्त होती है। अगर आप तृष्णाके दोषोंको जानकर तृष्णासे दूर रहना चाहते हैं, तो आप मनको वशमें कीजिये। मनके वशमें हो जानेसे इन्द्रियाँ आप ही क़ाबूमें हो जायँगी। इन्द्रियोंके वशमें होनेसे इन्द्रियोंके विषय—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दकी चाह न रहेगी। जब इन विषयोंकी चाह न रहेगी, तब किसकी चाह रहेगी ? अर्थात् किसी भी पदार्थकी चाह न रहेगी। जब चाह ही न रहेगी, तब तृष्णा कैसी ? विषयोंके भोगके लिये ही तो मनुष्य धनकी तृष्णा करता है। जब विषयोंको भोगनेकी इच्छा नहीं, तब धनकी क्या ज़रूरत ? इसलिये तृष्णा नाश करनेके लिये आप अपनी इन्द्रियोंको वशमें कीजिये। फिर देखिये,

आपको इस पृथ्वीपर ही स्वर्गसे अधिक सुख मिलता है कि नहीं। जिसने इन्द्रियोंको जीत लिया, उसने जगत्को जीत लिया। जिसने इन्द्रियोंको स्वाधीन कर लिया है, वही सच्चा स्वाधीन है। जो स्वाधीन है, वह तृष्णा क्या—किसीके भी अधीन नहीं है।

महात्मा बुद्धने कहा है—घाससे खेतका नाश होता है, तृष्णासे मनुष्यका नाश होता है, जिसकी तृष्णा नष्ट हो गई है, उसे दान देनेसे अधिक फल मिलता है।

कबीर साहबने कहा है:—

कबिरा तृष्णा पापिनी, तासों प्रीति न जोरि।
पैंड़-पैंड़ पाछे परे, लागै मोटि खोरि॥

सारांश—तृष्णाको मुँह न लगाइये। मुँह लगानेसे ही यह पीछे पड़ती है। इसके नाशके लिये, आप ज्ञानका सञ्चय कीजिये और ज्ञान-बलसे मन और इन्द्रियोंको वशमें करके सदा सन्तोषसे प्रीति कीजिये।

गुरुजनोंके प्रति नम्रता।

——::o::——

सुखाभिलाषी मनुष्यको अपने माता-पिता गुरु आदि बड़ोंके आगे नम्र रहना चाहिये और सहनशीलतासे काम लेना चाहिये। रॉसो नामक एक पाश्चात्य विद्वान्ने कहा है—"सहनशीलता सीखना ही बालकका सर्व प्रथम और परमावश्यक पाठ है।" हमारे शास्त्रोंमें ऐसे रत्नोंके बहुत

उदाहरण हैं, जिन्होंने गुरुजनोंकी सहने और उनकी आज्ञा पालन करनेमें हद ही करदी। उन सबमें श्रीरामचन्द्रजी सबसे आगे हैं। उनके समान नम्र और सहनशील पुरुष वहुत कम हुए हैं। किसीमें दो उत्तम गुण थे, तो किसीमें चार या छै; पर रामचन्द्रजी तो सभी उत्तम गुणोंके आधार थे, इसीसे आप मर्य्यादापुरुषोत्तम कहलाते हैं। चाणक्यमें लिखा है—

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता।
मित्रेऽवंचकता गुरौ विनयिता चित्ते अति गम्भीरता॥
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता।
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता त्वय्यस्ति भो राघव!॥

धर्ममें अभिरुचि, मुखमें मधुरता, दानमें उत्साह, मित्रके साथ निश्छल व्यवहार, गुरुजनोंके साथ नम्रता, चित्तमें गंभीरता, आचारमें पवित्रता, गुणमें रसिकता, शास्त्रज्ञान, रूपकी सुन्दरता और शिवजीकी भक्ति—ये सब गुण राघव! आप ही में हैं।

नीच लोग अपने माँ-बाप और उस्ताद या गुरु अथवा बड़े भाई आदिसे सदा रूखा और कड़ा बर्ताव करते हैं; पर महापुरुष गुरुजनोंके आगे सदा नम्र रहते हैं और उनकी बुरी-भली सभी बातोंको बर्दाश्त करते हैं। रामचन्द्र ही थे, जिन्होंने पिताकी आज्ञासे राज्य छोड़ चौदह साल तक वन-वासके कठोर कष्ट सहन किये। अपने बड़े भाई युधिष्ठिरके

लिये भीम, अर्जुन और नकुल सहदेवने भी कम कष्ट नहीं सहे। ऐसे आदर्श संसारके इतिहासमें और कहाँ हैं ?

वृन्द कविने कहा है:—

भले बुरे गुरुजन वचन, लोपत कबहुँ न धीर।
राज-काजको छाँड़िके, चले विपिन रघुवीर॥
गुरु वच जोग अजोगहु, करिये भ्रम विसराय।
राम हते जमदग्नि कै, वचन सहोदर माय॥

धैर्य्यवान पुरुष गुरुजनोंकी भली और बुरी बातोंको लोप नहीं करते। पिताकी इच्छासे रामचन्द्रजी राज्य छोड़कर वनको चले गये।

माता-पिता आदि बड़ोंकी उचित और अनुचित आज्ञाका भ्रम छोड़कर पालन करना चाहिये। परशुरामजीने पिता जमदग्निकी आज्ञासे सहोदर भाइयों और माताके प्राण नष्ट कर दिये।

प्राणिमात्रपर दया।

—::०::—

संसारमें दयाके समान और गुण नहीं है। जो दयालु स्वभाव है, वह देवता है। जिसमें दया नहीं, वह मनुष्य कहलानेका अधिकारी नहीं—राक्षस है। दयालु पुरुष समझते हैं कि, जैसे हमें अपने प्राण प्यारे हैं, वैसे ही दूसरोंके भी हैं। चींटी अगर हमारे पैरके तले दब जाय; तो उसे

उतना ही कष्ट होगा, जितना हमें हाथीके पैर तले दबनेसे होगा। दया दो तरहसे की जा सकती है—(१) दूसरोंके दिलको अपने समान समझकर, उनका दिल न दुखानेसे, और (२) जो दुःखी हैं; उनका दुःख दूर करनेसे। अगर मनुष्य दूसरोंके कष्ट और अभावोंको दूर न कर सके, दूसरोंकी मदद न कर सके, तो कम-से-कम दूसरोंका दिल तो न दुखावे; किसीको अपनी ज़बान और अपने शरीरसे तकलीफ तो न दे। यह भी दया ही है।

आप बालकोंको असमर्थ समझकर उनपर दया कीजिये। अपनी सामर्थ्यभर उनकी इच्छा पूरी कीजिये; उनसे कठोर बात न कहिये। उनको प्यार कीजिये—यह भी दया ही है।

आप मातृहीन पितृहीन अनाथ बालकोंपर यह समझकर दया कीजिये, कि उन बेचारोंने अपने माता-पिताको देखा ही नहीं। उनको अपने ही बालक समझकर, उनके भरण-पोषण और शिक्षा प्रभृतिका प्रबन्ध कर दीजिये।

आप स्त्रियोंपर यह समझकर दया कीजिये, कि वे अबला हैं। उनमें स्वयं कमाने और पैसा लानेकी शक्ति नहीं। वे बेचारी जन्मसे ही पराधीन और परमुखापेक्षी हैं; उनको यथासामर्थ्य गहने, कपड़े और अन्य आवश्यक पदार्थ दीजिये। उनकी इच्छापूर्त्तिके लिये कुछ नक़द भी दीजिये। मनमें समझ लीजिये, जैसा जी हमारा है वैसा ही उनका भी है। घरकी बहुओंपर यह समझकर दया कीजिये, कि ये

हमारे भरोसे ही अपने माँ-बापोंको छोड़कर चली आई हैं। यदि हम ही इनसे कड़वी बातें कहेंगे; इनका दिल दुखायेंगे, इनकी इच्छायें पूरी न करेंगे तो ये बेचारी क्या करेंगी? अगर आज हम इन्हींकी तरह होते, तो हमारी क्या हालत होती? घरकी बेवाओंपर सबसे अधिक दया कीजिये; क्योंकि वे पतिहीना हैं। संसारमें पति ही स्त्रीको सब तरहके सुख देनेवाला है। आप उनको घरकी और औरतोंकी अपेक्षा उत्तम वस्त्र दीजिये; उनकी उचित इच्छाको सबसे पहले पूरी कीजिये; रोग होनेपर सबसे पहले उनका इलाज कराइये; भूलकर भी उनसे कठोर वचन न कहिये। यदि उनसे कोई ग़लती भी हो जाय, तो उनकी नादानी समझकर क्षमा कर दीजिये; मीठी-मीठी बातोंसे उन्हें समझा दीजिये, कि वे फिर वैसी ग़लती न करें। घरकी और स्त्रियोंसे भी कह दीजिये, कि उनको सबसे पहले खिलावें और सबसे उत्तम वस्त्र दें; भूलकर भी उनका दिल न दुखावें; ऐसा कीजिये, जिससे उन्हें पतिका अभाव बहुत ही कम अखरे। ये सब काम दयालुताके ही हैं। घरकी औरतोंके बाद बाहरकी औरतोंका हक़ है। यथासामर्थ्य मन-वच और कर्मसे उनके भी दुःख दूर कीजिये।

देशके शासकोंपर भी दया कीजिये। उन बेचारोंके कन्धोंपर बड़ा बोझा है—उन्हें बहुत काम करना पड़ता है। उनको जरूरतके समय सहायता दीजिये, ताकि उनकी कठि-

नाइयाँ दूर हों। अगर उनसे भूल हो जाये, तो शीघ्र ही उनकी बदनामीपर कमर न कस लीजिये! मनमें सोचिये— यदि हम स्वयं इस जगह होते, तो हमसे भी ऐसी भूल होती या न होती।

आप पुस्तक-लेखकोंपर भी दया कीजिये। उनकी भूल नज़र आते ही, उनकी निन्दापर कमर न कस लीजिये। उनकी ग़लतियों या त्रुटियोंपर ही नज़र गड़ाकर, उनकी गर्दनोंपर क़लम-कुल्हाड़ी चलानेको तैयार न हो जाइये। मनमें ज़रा इन्साफ़ कीजिये, कि अगर आपकी कृतिपर कोई दूसरा क़लम-कुल्हाड़ी चलावे या वाग्वाण छोड़े—तो आपकी क्या दशा होगी? आपका दिल दुखेगा या नहीं? साथ ही इस बातका भी विचार कीजिये, कि हमसे भी भूल और ग़लतियाँ होती हैं या नहीं, हमारे कामोंमें भी त्रुटियाँ रहती हैं या नहीं। अगर आपका आत्मा कहे, कि बेशक हमसे भी भूलें होती हैं, हमारे काम भी सर्वथा दोषहीन नहीं होते; तब आपही सोचिये, कि आपको दूसरोंकी निन्दा करने या धूल उड़ानेका क्या अधिकार है? अगर आप यह कहें कि, हमसे भूलें तो होती हैं, पर औरोंसे कम; तब मनमें समझिये कि ऐसे भी हैं; जिनसे आपसे भी कम भूलें होती हैं। अगर वे आपकी धूल उड़ायें, आपकी गर्दनपर क़लम-कुल्हाड़ी चलायें तो आपको कष्ट होगा कि नहीं। अगर आपका आत्मा कहे, कि दुःख तो हमें भी ज़रूर ही होगा; तब इस

हिसाबसे भी आपको दूसरोंके दोषोंपर हँसी न उड़ानी चाहिये। गोल्डस्मिथ महोदय कहते हैं—"जो परले सिरेके मूर्ख हैं, वे ही सदा दूसरोंकी मूर्खताकी बातोंपर ठट्ठे उड़ाया करते हैं।" लेङ्गविन महाशय कहते हैं—"मूर्ख दूसरोंके दोष पकड़ सकते हैं, पर वे स्वयं उनसे अच्छा काम नहीं कर सकते। निस्सन्देह जो दुष्टस्वभाव हैं, जो निष्ठुरहृदय हैं, वे ही दूसरोंके ऐब ढूँढ़ा करते हैं और उनकी बदनामी उड़ानेमें अपना सारा ज़ोर लगा देते हैं। जो सज्जन हैं, सचमुच ही विद्वान् हैं, वे अव्वल तो गुणोंको देखते हैं, दोषोंपर उनकी दृष्टि जाती ही नहीं; यदि दोष नज़र तले आ भी जाते हैं, तो वे उनको क्षमा कर देते हैं; क्योंकि महापुरुषोंका तो स्वभाव ही ऐसा होता है, कि वे पराये औगुणोंको दबाते और गुणोंको प्रकाशित करते हैं। जिनके दिलोंमें ईर्षा, द्वेष, मत्सर, क्रोध प्रभृति दुर्गुण होते हैं, वे ही बेचारे लेखकोंका दिल दुखाया करते हैं। वे अपने मनमें ज़रा इस बातका भी विचार करें, कि आरम्भमें क्या वे आज-जैसे ही थे। हमने अपनी आँखोंसे देखा है, कि जो लोग आज-दिन अपने तईं साहित्यके बादशाह समझते हैं, उनकी आरम्भ-कालकी लिखी पुस्तकें किसी भी कामकी नहीं। जिस तरह लिखते-लिखते वे आज साहित्यके बादशाह बन गये हैं—दूसरे भी कोशिश करनेसे वैसे ही हो जायँगे। हमने देखा, कि एक शख़्स प्रत्येक लेखककी पुस्तकोंकी धूल उड़ाया करता था।

एक दफ़ा उसे भी धूल उड़ानेवाला मिल गया; फिर तो मियाँजीको दिनमें तारे दीख गये। आपको अपनी इज्ज़त बचानी कठिन हो गई। मेरे इतना काग़ज़ काला करनेका यही मतलब है, कि आप दुष्टोंकी सी चाल न सीखें—आप सबपर दया करें, क्योंकि ये काम निन्द्य और सज्जनोंके स्वभावके विरुद्ध हैं—ऐसा काम शराफ़तके बईद है। जो अपनेसे नीचेवालोंपर दया करता है, वही सच्चा महात्मा है।

पाश्चात्य विद्वानोंने ऐसे लोगोंके सम्बन्धमें वहुत कुछ लिखा है। उसमेंसे दो एक विद्वानोंके कथन हम अपनी अनुभव की हुई बातोंके प्रमाणमें लिख देना अनुचित नहीं समझते; नहीं तो बहुतसे महापुरुष यह कहने लगेंगे, कि ये लेखक महाशय अपनी रक्षाके लिये ऐसा कहते हैं। कोलरिज महाशय कहते हैं,—"ग्रन्थोंके गुण-दोष-निरीक्षक अक्सर वे लोग हैं, जो कवि, इतिहास-लेखक या जीवनी लिखनेवाले होना चाहते थे; पर जब उन्होंने सब तरहसे अपनी क्षमताकी परीक्षा कर ली, उन्हें सफलता न हुई, तब वे परछिद्रान्वेषी बन गये।" उन्होंने सोचा,—अगर यों नाम न हुआ, तो इस तरह ही नाम कमायें। शैली महाशय लिखते हैं—"चन्द लोगोंको छोड़कर, अधिकांश समालोचक आलसी और दुष्ट लोग हैं। जिस तरह चोर जब चोरी करनेमें सफल नहीं होता, तब वह चोर पकड़नेवाला हो जाता है;

इसी तरह जिसे ग्रन्थ लिखनेमें सफलता नहीं होती, वह पर-छिद्रान्वेषी—पराये दोष ढूँढ़नेवाला बन जाता है।"

आपको ग्रन्थ-प्रकाशकोंपर भी दया करनी चाहिये। आप नहीं समझते, प्रकाशक कितनी हिम्मत करके, अपने रुपयोंको काग़ज़ प्रभृतिमें लगा देते हैं। बहुतसे प्रकाशक ऐसे भी होते हैं, जो पैसा पास न होनेपर, जहाँ-तहाँसे माँग-ताँगकर अथवा स्त्रीका ज़ेवर गिरवी रखकर किसी पुस्तकको प्रकाशित करनेका साहस कर बैठते हैं। यदि वैसे प्रकाशकपर आप हाथ साफ करने लगें, दुर्भाग्यसे लोग आपकी बात मानकर बेचारेकी पुस्तक न ख़रीदें; तो उसकी कैसी दुर्गति हो? आपकी लिखी पुस्तक उसने नहीं ली; यही अपराध किया है न? पर भाई! यह तो कोई अपराध नहीं। शायद आपके देने लायक़ रुपया उसके पास न हों—अथवा और ही कोई वजह हो। पर क्या इसे आप अपने प्रति अपराध समझते हैं? आप बाज़ारमें कोई चीज़ ख़रीदने जाँय, दूकानदारके दिखाने और कहने-सुननेपर भी आप उसे न लें, और वह आपको गालियाँ दे, तो क्या आप उसकी गालियोंका बुरा न मानेंगे? आप उस दूकान-दारको अन्यायी नीच प्रभृति न कहेंगे? वास्तवमें दूकान-दारको वैसा करनेका कोई अधिकार नहीं है। मनमें आई चीज़ ली, मनमें आई न ली। बस, यही बात अपने और प्रकाशकके दर्म्यान समझिये। आप उस बेचारेपर दया कीजिये, उसकी हानि न कराइये! ख़ुदा न ख़्वास्ता!

उसकी किताब रुक गई, उसकी रक़म ऐंड हो गई, तो बेचारेकी कैसी बुरी दशा होगी। अगर आप उस प्रकाशककी जगह प्रकाशक होते, और वह अपनी नीचतासे आपके साथ वैसाही सलूक करता, जैसाकि आप कर रहे हैं, तब आपको दुःख होता कि नहीं; ज़रा अपनी छातीपर हाथ धरकर अपने अन्तरात्मासे पूछिये तो सही। अगर उसने बुरी पुस्तक प्रकाशितकी है, उससे साहित्य गन्दा होता है अथवा पाठक बिगड़ते हैं; तो कम-से-कम एक-दो बार आप उसे पत्र द्वारा गुप्त रूपसे सावधान तो कर दीजिये। जब भी वह न माने, तभी आप उसपर खड्गहस्त होना। आपकी ऐसी कार्रवाईका उसके चित्तपर बड़ा प्रभाव पड़ेगा। वह भविष्यमें भूलकर भी वैसा काम न करेगा और साथ ही वह आपकी दयाका—आपकी उच्चाशयताका कृतज्ञ होगा। यह भी दया ही है।

आप अपने नौकरसे मनुष्यताका बर्त्ताव कीजिये। उसके प्राणोंको भी अपने ही प्राणों-जैसा समझिये। उसके और अपने शरीरमें भेद न समझिये। उसके भी ठीक आपकेसे प्राण और शरीर हैं। भेद इतना ही है, कि आपके पास दो पैसे हैं और उसके पास नहीं। आपसे एक पैसा पानेके लिये, उसने आपकी गुलामी की है। अगर उससे कोई काम बिगड़ जाय या कुछ नुक़सान हो जाय, तो आप उसे तङ्ग मत कीजिये। आप उससे काम लीजिये, पर गालियाँ देकर उसका दिल न दुखाइये; उसपर प्रहार

मत कीजिये; उसके शरीरमें भी दर्द होता है। अगर वह बीमार हो जाय, तो उसका इलाज कराइये। अगर आपसे इतना न हो सके, तो उसे ज़रूरतके माफ़िक़ रुख़सत ही दीजिये। उसको आपकी तरह शिक्षा लाभ करने और अपनी उन्नति करनेके अवसर नहीं मिले—इसीलिये वह आपका गुलाम है और आपकी दयाका हक़दार है। सज्जन पुरुष अपने नौकरोंपर अत्याचार नहीं करते—उनको अधिक कष्ट नहीं देते—उनको किसी तरह दुःखित नहीं करते—उनके दुःख-सुखको अपने दुःख-सुखके समान समझते हैं—उनकी हितचिन्तना करते हैं। सज्जनोंको सबपर दया आती है। "गुलिस्ताँ" में लिखा है,—

वर बन्द मगीर ख़श्म बिसियार।
जौरश मकुन व दिलश मयाज़ार॥
ओरा तो बदह दिरम ख़रीदी।
आख़िर न ब कुदरत आफ़रीदी॥

"अपने ख़रीदे गुलामपर जुल्म मत करो—उसका दिल मत दुखाओ। तुमने उसे दस दीनारोंमें ख़रीदा ज़रूर है, पर उसे बनाया नहीं है।" और भी कहा है:—"तेरा यह घमण्ड, गुस्ताख़ी और गुस्सा कहाँ तक चलेगा? तेरे ऊपर तुझसे भी बड़ा मालिक है। विचारके दिन बड़ा भारी दुःख होगा, जबकि नेक गुलाम स्वर्गमें पहुँचाया जायगा और दुष्ट स्वामी नरकमें जलाया जायगा।"

दुर्जनोंपर भी दया कीजिये, क्योंकि उनका भविष्य अन्धकारमय है। वह दूसरोंपर जल-जलकर आप ही खाक हुए जाते हैं। दाहरूप शत्रु उनके पीछे लग रहा है; अतः आप उनपर भी दया कीजिये।

जब आप स्वयं बे-ऐब या निर्दोष नहीं हैं, तब आप दूसरोंके दोष ढूँढ़नेकी चेष्टा क्यों करते हैं? दूसरोंके अपराधों, व्यभिचारोंपर आपका क्रोध करना वृथा है, इससे आपको क्या फायदा? बुरा तो इस तरह सुधरेगा नहीं; आपकी ही क्षति होगी। अच्छा हो; अगर आप ऐसोंपर दया करें। सम्भव है, आपके मधुर वचनों और दयासे उनमें कुछ सुधार हो जाय। बच्चा मारने-पीटनेसे सुधरनेके बजाय बिगड़ता ही है; मगर प्रेमसे—दयापूर्ण व्यवहारसे बड़े-बड़े दुष्ट सुधरते देखे गये हैं। वाक्य-वाण बड़े बुरे होते हैं। प्यार किया जाना, प्यार करनेसे उत्तम है। कठोरताकी अपेक्षा, दयाके द्वारा बालकोंपर अधिक प्रभाव डाला जा सकता है।

एक राजाने मरण-शय्यापर अपने पुत्रको उपदेश दिया— "बेटा! दीनोंको सुखी करना; कमजोरोंकी ज़बरदस्तोंसे रक्षा करना; अपनी प्रभुतापर भटके हुएको राहपर लाना; अगर तुम ऐसा करोगे, तो परमेश्वर तुमसे सन्तुष्ट होगा।"

लार्ड एव्हरीने कहा है,—"प्रेम, दया और चित्तकी शान्तिके बिना भी मनुष्य धनवान और बलवान हो सकता है, परन्तु इन तीनोंके बिना मनुष्य सुखी कदापि नहीं हो सकता।

इनके बिना स्वर्ग भी नरक है······लोग कहते हैं, कि मित्रोंको प्यार करो और शत्रुओंसे घृणा करो; परन्तु मैं कहता हूँ,— "शत्रुओंपर भी दया करो। जो तुम्हें गाली दे, उसे तुम आशीर्वाद दो। जो तुमसे घृणा करे, उसका उपकार करो। जो तुमको दुःख दे, उसके लिये ईश्वरसे क्षमा माँगो। फिर देखो, कैसा आनन्द आता है।" कहा है:—

जो तोकूँ काँटा बुवे, ताहि बोउ तू फूल।
तोकूँ फूलके फूल हैं, वाकूँ हैं तिरशूल॥

अपराधी या निरपराधी, धर्मात्मा या पापात्मा सबपर दया करो। दयामें सब ही का समान हक़ है। हमारे देशके लोग बहुधा पापियों और अपराधियोंसे घृणा करते हैं। यह बड़ी भारी भूल है। सच्चा दयावान् तो वही है, जो सबपर दया करता है। देखिये, परमात्मा सबपर दया करता है। चन्द्रमा राजा, तपस्वी, अपराधी, निरपराधी, चोर, बदमाश, चमार और भंगी सबके घरमें समान रूपसे अपनी चाँदनी छिटकाता है। सूर्य्य अमीर-ग़रीब, छोटे-बड़े, बुरे-भले, सबके घरमें रोशनी करता है।

संसारमें ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो पापियोंके पाप-कर्मोंपर पर्दा डालें, उनपर दया प्रकाशित करें, उनके सुधारनेकी चेष्टा करें। पापियोंको देखकर हँसनेवाले और घर-घर उनकी निन्दा करके अपना मुँह काला करनेवाले बहुत हैं।

"गुलिस्ताँ" में लिखा है,—"हे भक्त! पापीसे तुझे घृणा न करनी चाहिये—चाहिये उसपर दया करनी।"

रोगियोंकी बकवादसे आप नाराज़ न हों, बल्कि उनकी अवस्थापर तरस खायँ। आपसे हो सके जितनी उनकी सेवा-शुश्रूषा करें। इस दयाका बड़ा पुण्य होता है। महात्मा हावर्डने अपना जीवन रोगियों और क़ैदियोंकी भलाईमें ही बिता दिया। उसने क़ैदियोंके सुखके लिये जेलकी भयानक यन्त्रणायें भोगीं और छुतहे रोगियोंकी सेवा करते हुए अपने प्राण त्यागे। ऐसे ही दयालु महापुरुषोंका जीवन धन्य है। महात्मा बुद्ध जबकि राजकुमार थे—एक कोढ़ीको दुःखित देखकर गोदमें लेकर बैठ गये। सारथीने कहा—"राजकुमार! ऐसे रोगियोंको कोई भी नहीं छूता—ऐसे रोगियोंके संसर्गसे दूसरोंको भी रोग हो जाता है। आप राजकुमार हैं, आपको ऐसा हरगिज़ न करना चाहिये।" आपने कहा,—"क्या राजकुमार और राजघरानेवालोंको रोग नहीं होता? बहुत क्या कहें—आपने संसारके दुःखोंसे पानी-पानी होकर हो—दयावश, अपना राज्य, अपनी स्त्री और अपने शिशु-पुत्रको त्यागकर वनकी राह ली!

कबीरदासने कहा है:—

भावै जाओ बादरी, भावै जावहु गया।
कहै "कबीर" सुनो भाई साधो, सब तैं बड़ी दया॥

सारांश—किसीका भी दिल न दुखाओ; हो सके तो उपकार करो। इससे बढ़कर और धर्म नहीं है।

छप्पय—तजै प्राण की घात, और परधन नहिं राखै।
पर-युवती को त्याग, वचन झूँठे नहिं भाषै॥
निज हाथन जुति दान देत, तृष्णा को रोकत।
दया सबन में राख, गुरुनके चरणन ढोकत॥
यह सम्मत है श्रुति स्मृतिकी, सबको सुखदायक सुभग।
सब विधि दायक कल्यानकी, अति उत्तम यह सुगम मग॥२६॥

26. Abstinence from murder and robbery, truthfulness, giving alms at the proper time, silence in the matter of a talk about other people's wives, checking the springs of avarice, respect for elders, sympathy with all, a general knowledge of all the sacred books, an unbroken compliance with religious duties, all these are the ways leading to a man's welfare.

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः॥
विघ्नैः पुनःपुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति॥ २७॥

भावे = चाहे। कबीर = एक महात्मा थे। भाषै = बोले। निज = अपने। चरनन = चरणोंमें। ढोकत = ढोक देता है। सम्मत = सम्मति = राय। श्रुति = वेद। स्मृति = धर्मशास्त्र। सुगम = सहज। मग = मार्ग = रास्ता।

संसारमें तीन तरहके मनुष्य होते हैं:—(१) नीच, (२) मध्यम, और (३) उत्तम। नीच मनुष्य, विघ्न होनेके भयसे, कामको आरम्भ ही नहीं करते। मध्यम मनुष्य कामको आरम्भ तो कर देते हैं, किन्तु विघ्न होते ही उसे बीचमें ही छोड़ देते हैं; परन्तु उत्तम मनुष्य जिस कामको आरम्भ कर देते हैं, उसे विघ्न-पर-विघ्न होनेपर भी, पूरा करके ही छोड़ते हैं।

उत्तम मनुष्य विचारवान् और धैर्यवान् होते हैं। वे जिस कामको करना चाहते हैं, पहले उसे सब पहलुओंसे विचार लेते हैं। जब खूब अच्छी तरहसे समझ लेते हैं, तभी उसमें हाथ डालते हैं और जब हाथ डाल देते हैं—आरम्भ कर देते हैं, तब बारम्बार विघ्न होने, बारम्बार सफलता न होनेपर भी, उसे किये ही जाते हैं और शेषमें उसे पूरा करके ही दम लेते हैं। देवताओंने अमृतके लिये समुद्र मथना आरम्भ किया। मथते-मथते उसमेंसे ऐसा हालाहल विष निकला, जिससे सब जलने लगे; पर देवताओंने धैर्य न त्यागा, विषसे घबराये नहीं, मथन-कार्य किये ही गये; उनके दृढ़ अध्यवसायसे उन्हें सिद्धि हो ही गई—अमृत निकल आया और वे उसे पीकर अमर हो गये।

महाराजा भगीरथने गङ्गाको स्वर्गसे पृथ्वीपर लानेके लिये कठोर तपश्चर्या आरम्भ की। उनकी तपस्या भङ्ग करनेके लिये इन्द्रने वर्षा की, अग्नि प्रज्वलित की, वज्र छोड़ा; उससे पृथ्वी काँप उठी, दशों दिशायें थर्राने लगीं; पर वे आसनसे न उठे,

ज़रा भी विचलित न हुए। उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली, कि चाहे मरण ही क्यों न हो, कार्य्य सिद्ध करके ही उठेंगे। सुरपति जब डराकर हार गये, तब, उन्होंने विश्वामित्रका तप भङ्ग करनेके लिये जिस तरह अप्सरा भेजी थी; इनका तप भङ्ग करनेके लिये भी अप्सरा भेजी, पर महाराज भगीरथको अप्सरा भी क़ाबूमें न कर सकी; तब शङ्कर भगवान् उनकी कठोर तपस्या और दृढ़ अध्यवसायसे परम सन्तुष्ट हुए। आपने महाराजको दर्शन देकर गङ्गाको अपने सिरपर धारण करनेका वचन दिया। ब्रह्मा पहले सन्तुष्ट हो ही चुके थे; इसलिये गङ्गाजी स्वर्गसे आईं। महाराजकी कामना सिद्ध हुई। असम्भव सम्भव हुआ। अगर महाराज घबराकर बीचमें ही तप करना छोड़ देते, तो क्या गङ्गा स्वर्गसे आतीं? रघुवंशी राजाओंमें कामको आरम्भ करके, बिना पूरा किये, अधूरा छोड़नेका स्वभाव नहीं था; इसीसे वे ससागरा पृथ्वीके अधीश्वर हो सके थे। "रघुवंश" में लिखा है:—

सोऽहमाजन्म शुद्धानामाफलोदय कर्मणाम्।
आसमुद्र क्षितीशानामानाक रथवर्त्मनाम्॥

सूर्य्यवंशी राजा अपने जन्मसे ही शुद्ध थे। जब तक उन्हें सफलता नहीं हो जाती थी, तब तक दृढ़तासे काम किये जाते थे। सफलता प्राप्त किये बिना, कामको अधूरा न छोड़ते थे; इसीसे ससागरा पृथ्वीके स्वामी थे। और तो क्या, स्वर्ग तकमें उनका रथ बेरोक-टोक चलता था।

हमारे राजा अङ्गरेजोंमें भी यह गुण है। यह भी जिस कामको आरम्भ कर देते हैं, उसे हज़ार विक्षेप होनेपर भी, सफल किये बिना विश्राम नहीं लेते। इसी उत्तम गुणकी वजहसे, बारम्बार हारनेपर भी, विश्वव्यापी महासमरमें, अन्तमें इनकी ही जीत हुई। इनके इस गुणपर मुग्ध होकर ही, विजय-लक्ष्मीने, इनके ही गलेमें विजयमाल डाली। इस गुणके कारण ही ये भी रघुवंशियोंकी तरह ससागरा पृथ्वीके अधीश्वर हैं।

महात्मा विदुरने कहा है,—"जो मनुष्य खूब सोच-विचार-कर कामको आरम्भ करता है, आरम्भ किये कामको समाप्त किये बिना नहीं छोड़ता; किसी समय भी काम करनेसे मुँह नहीं मोड़ता और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखता है, वही "पण्डित" कहलाता है।

वीलेण्ड नामक एक पाश्चात्य विद्वान्ने कहा है,—"उत्तम पुरुषोंकी यह रीति है, कि वे किसी कामको अधूरा नहीं छोड़ते।"

एनन नामक एक यूरोपीय विद्वान् कहते हैं,—"काममें सफलता न होनेसे चेष्टाको परित्याग कर देना, महा-मूर्खता है। चरित्र-विकाशमें असफलतायें अद्भुत उपादान-सामग्री हैं।"

अल्काट महाशय लिखते हैं,—"सफलता मीठी है; पर यदि सफलता बड़ी-बड़ी तकलीफ़ों और पराजयोंके बाद, बड़ी देरसे, प्राप्त की जाय, तो वह और भी मीठी है।"

सारांश यही है, कि मनुष्य जिस कामको आरम्भ करे उसे बिना पूरा किये न छोड़े। हार-पर-हार, असफलता-पर-अस-

फलता, विघ्न-पर-विघ्न होनेपर भी, जो हतोत्साह होकर कामको न छोड़े, वही उत्तम पुरुष है। उसे दृढ़ अध्यवसायके बलसे सफलता होहीगी। संसारमें जिन्होंने रेल, तार, हवाई जहाज़ प्रभृति ईजाद किये हैं अथवा बड़े-बड़े मत फैलाये हैं, उन्हें बड़ी-बड़ी तकलीफ़ें उठानी पड़ी हैं—बड़े-बड़े विघ्नोंका सामना करना पड़ा है। लोगोंने उनकी खूब दिल्लगियाँ कीं—पर वे तो अपने आरम्भ किये कामको पूरा करके ही उठे। यह उत्तम गुण प्रत्येक सिद्धि-अभिलाषी मनुष्यको ग्रहण करना चाहिये। मध्यम पुरुषोंकी तरह घबराकर कामको अधपर छोड़ देना अथवा नीचोंकी तरह असफलता या विघ्नोंके भयसे आरम्भ ही न करना अच्छा नहीं। ऐसे पुरुषोंके कोई काम सिद्ध नहीं होते और वे दूसरोंका भी कुछ भला नहीं कर सकते।

यूरोपविजयी वीरशिरोमणि फ्रान्स-सम्राट् नेपोलियन "असम्भव" शब्दको नहीं मानते थे। उनका कहना था, कि संसारमें कोई काम असम्भव नहीं। उनका कहना यथार्थ है। स्वर्गसे गङ्गाको लानेसे अधिक क्या असम्भव होगा? एक दृढ़ अध्यवसायीने वह असम्भव भी सम्भव कर डाला। मनुष्य परमात्मापर भरोसा करके डटा रहे; कोई भी काम हुए बिना न रहेगा। डाक्टर नारमेन मेकलियडने कहा है:—

Let the road be rough and dreary,
And its end far out of sight,

Foot it bravely ; strong or weary,
"Trust in God, and do the right."

"राह चाहे जैसी ही ख़तरनाक और अन्धकारपूर्ण हो, उसका अन्त दूर और दृष्टिसे बाहर क्यों न हो, आपमें बल हो और चाहे आप थके हुए हों, आप साहसपूर्व्वक चले जाइये, परमात्माका भरोसा रखिये और न्यायसे काम करते रहिये।" आपको सफलता होगी और होगी, आप लक्ष्य-स्थान या मंज़िल मकसूदपर पहुँच ही जायँगे; आपकी अभीष्ट-सिद्धि हो जायगी।

शेख़सादीने कहा है:—

मुशकिले नेस्त कि आसाँ न शवद।
मर्द बायद कि, परेशाँ न शवद॥

ऐसी कोई मुशकिल नहीं, जो आसान न हो जाय; पर यह ज़रूरी है कि मर्द घबरावे नहीं। और भी कहा है,— "हिम्मते मर्दां मददे .खुदा"। साहसीकी मदद .खुदा करता है। मतलब यह जो भगवान्पर भरोसा रखकर, बिना घबराये काम किये जाता है, उसको कामयाबी होती ही है।

छप्पय—करहिं न कार्य्यारम्भ, विघ्नभय अधम अनारी।
मध्यम काजहिं छेड़, विघ्नभय देहिं बिसारी॥
उत्तम त्यागहिं नाहिं, करें जो काज अरम्भा।
परें अनेकन विघ्न, तदपि रहें अडिग अथम्भा॥
धन जन वैभवमें पाप बिन रहें, ऐसे जनसूर हैं।
ते दै मूछनपै तावको, फिर जगत सुख पूर हैं॥२७॥

27. The weak-minded do not begin (a work) for fear of obstacles. Ordinary men, having begun a work, give it up finding obstacles (in the way). But the best men, once they have begun, never give up their work even if they are hindered by obstacles again and again.

असंतो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभंगेप्यसुकरम् ॥
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥२८॥

सत्पुरुष दुष्टोंसे याचना नहीं करते; थोड़े धनवाले मित्रोंसे भी कुछ नहीं माँगते; न्यायकी जीविकासे सन्तुष्ट रहते हैं, प्राणोंपर बन आनेपर भी पाप-कर्म नहीं करते; विपद्-कालमें वे ऊँचे बने रहते हैं; यानी घबराते नहीं और महत् पुरुषोंके पदचिह्नोंका अनुसरण करते हैं, अर्थात् बड़े लोगोंकी चालपर चलते हैं। इस तलवारकी धारके समान कठिन व्रतका उपदेश उन्हें किसने दिया ? किसीने नहीं। वे स्वभावसे ही ऐसे होते हैं। मतलब यह है कि, सत्पुरुषोंमें उपरोक्त गुण किसी के सिखानेसे नहीं आते। उनमें ये सब गुण स्वभावसे या पैदायशी होते हैं।

विघ्नभय = विघ्न होनेके डरसे। अधम = नीच। अनारी = मूर्ख। मध्यम = बीचके लोग। काजहिं = कामको। छेड़ = शुरू करके। देहिं बिसारी = भूल जाते हैं। उत्तम = अच्छे लोग। काज = काम। अरम्भा = शुरू। तदपि = तो भी। अडिग = अटल।

प्रथम तो "याचना" या माँगना शब्द ही बुरा है। याचकके मान तो होता ही नहीं। याचनासे भगवान्‌को भी नीचा होना पड़ा; मनुष्य बेचारा तो कौन चीज़ है? याचनाके बराबर बुरा और नीचा कर्म नहीं। तिनका सबसे हलका है, तिनकेसे रूई हलकी है, पर माँगनेवाला रूईसे भी हलका है। हवा रूईको उड़ा ले जाती है, पर याचकके पास नहीं आती; हवा डरती है, कि कहीं यह मुझसे भी कुछ न माँग बैठे। "शुक्र नीति"में लिखा है—धनी, गुणी, वैद्य, राजा और जल-रहित स्थानमें सदा रहना, एक भी कन्याका होना और माता-पितासे भी माँगना—ये सब दुःखदायी हैं। माँगनेमें अनेक दोष हैं। माँगना माता-पितासे भी बुरा है। माता-पितासे माँगनेमें भी मनुष्यको दुःख होता है, तब दुष्ट और नीचोंसे माँगना तो कैसा न दुःखदायी होगा? ग़ैर-तो-ग़ैर, दुष्ट-स्वभाव बन्धु-बान्धवोंसे भी याचना करना, मरणसे भी अधिक कष्टदायक है। यही वजह है, कि सत्पुरुष चाहे भूखे मर जायँ, छोटे-छोटे बालक भी तड़फ-तड़फकर क्यों न प्राण देदें, पर वे नीचोंसे कभी कुछ नहीं माँगते। सत्पुरुषोंकी नज़रमें मानका मूल्य सबसे अधिक है। वे मानके आगे स्वर्गराज्यको भी तुच्छ समझते हैं। जिसने मान-रक्षा नहीं की, उसने किसीकी रक्षा नहीं की। याचना करने या माँगनेसे मर जाना कहीं अच्छा है।

वृन्द कविने कहा है:—

मानधनी नर नीच पै, जाचै नाहीं जाय।
कबहुँ न माँगै स्यार पै, बरु भूखो मृगराय॥

मान-धनी पुरुष नीचसे जाकर नहीं माँगते। भूखा सिंह स्यारसे जाकर कभी खानेको नहीं माँगता।

यदि मनुष्य अपनी मानरक्षा चाहे तो भूखा मर जाय, पर किसीसे न माँगे और जिसमें दुष्ट भाई-बन्धुओंसे तो किसी हालतमें भी न माँगे—भाई-बन्धुओंसे ग़ैर भला। भाई-बन्धु कुछ देते भी नहीं, उल्टी हँसी उड़ाते और दिलमें खुश होते हैं। घरवालोंको दया नहीं आती, पर ग़ैरोंको रहम आ जाता है। तुलसीदासजीने कहा है:—

तुलसी कर पर कर करो, कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरण करो॥
घरमें भूखा पड़ रहे, दस फ़ाक़े हो जायँ।
तुलसी भैया-बन्धुके, कबहुँ न माँगन जाय॥

शेख़सादीने कहा है:—

अगर हिनज़ल खुरी अज़ दस्त खुशरुए।
वह अज़ शीरीनी दस्ते तुर्शरुए॥

दुष्टके हाथसे मिठाई खानेकी अपेक्षा, सज्जनके हाथसे इन्द्रायणका कड़वा फल खाना अच्छा।

कर = हाथ। कर पर कर करो = हाथके ऊपर हाथ करो। कर तर कर न करो = हाथके नीचे हाथ मत करो। जा दिन = जिस दिन। ता दिन = उस दिन। मरण करो = मौत दो।

जो बन्धु-बान्धव या मित्र ग़रीब हैं, जिनके पास नाम मात्रको धन है, उनसे कुछ माँगना उन्हें वृथा कष्ट देना और अपने समान दुःखी बनाना है; सो बुद्धिमान कैसे कर सकते हैं ?

सत्पुरुष न्यायसे कमाये धनको पसन्द करते हैं—न्याय्य-जीविका ही उन्हें अच्छी लगती है, यह उचित ही है। जो अन्यायसे कमाये धनसे सुख भोगना चाहते हैं, उन्हें सत्पुरुष कौन कहेगा ? सभी शास्त्रोंमें न्याययुक्त जीविका ही उत्तम जीविका लिखी है। "शुक्र नीति" में लिखा है:—

"वही जीविका श्रेष्ठ है, जिससे अपने धर्मकी हानि न हो और वही देश उत्तम है, जिससे कुटुम्बका पालन हो।" चाणक्यने भी कहा है,—"अत्यन्त क्लेशसे, धर्मके त्यागसे और दुश्मनोंके पैरोंमें पड़नेसे जो धन मिले, वह धन मुझे नहीं चाहिये।" महाभारतमें लिखा है,—"जो मनुष्य पढ़ा-लिखा न होनेपर भी घमण्डी हो, दरिद्र होकर भी ऊँची-ऊँची वासनाओंके भोगनेकी इच्छा करे और बुरे कामोंसे धन पैदा करना चाहे,—वह मूर्ख है। अन्याय-कर्मसे कमाया धन वंशका नाश कर देता है; किन्तु न्यायसे कमाया धन बेटे पोतों तक स्थिर रहता है; अतः मनुष्यको सुमार्गसे ही धन संग्रह करना चाहिये।" और भी कहा है,—अन्यायका धन दस वर्ष तक ठहरता है—ग्यारहवाँ वर्ष लगनेपर समूल नष्ट हो जाता है।

नीच लोग इन बातोंका ख़याल नहीं करते। वे तो ज्यों-त्यों धनवान होनेमें ही अपनी भलाई समझते हैं; पर सज्जन, कण्ठमें प्राण आ जानेपर भी, बुरे काम नहीं करते और विपद्में नहीं घबराते तथा बड़ोंकी राहपर चलते हैं। सज्जनोंको ये तलवारकी धारके समान कठिन व्रत कोई नहीं सिखाता। इस तरह तलवारकी धारपर चलनेका उनका स्वभाव ही होता है। संसारमें ऐसे ही नररत्न धन्य हैं।

कुण्डलिया—*माँगैं नाहिं जो दुष्ट सों, लेत मित्रकौ नाहिं।*
प्रीति निबाहत विपदमें, न्यायवृत्ति मन माहिं॥
न्यायवृत्ति मन माहिं, उच्च पद प्यारौ जिनकों।
प्राणन हूँ के जात, अकृत नाहिं भावत तिनकों॥
खड्ग्धारवत् धार, रहै केहूँ नहिं त्यागैं।
सन्तनकों यह मंत्र, दियौ कौने बिन माँगैं ?॥२८॥

28. They like a livelihood lawfully gained. They dislike doing evil deeds even if it cost them their life. They do not beg from bad men. They do not even beg from their true friends if the latter are poor in wealth. They take a high stand when in distress and follow in the footsteps of great men. Oh, who has taught good men to observe this vow which is as sharp as the edge of a sword ?

अकृत = कुकर्म। भावत = अच्छा लगता। तिनकों = उनकों। खड्ग्धारवत् = तलवारकी धारकी तरह। कौने = किसने।



मानशौर्य प्रशंसा ।

—::०::—

क्षुत्क्षामोपि जराकृशोऽपि शिथिलप्रायोपि कष्टां दशा-
मापन्नोपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषुनश्यत्स्वपि ।
मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलग्रासैकबद्धस्पृहः
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥२६॥

जो सिंह माननीयोंमें अगुआ है और जो सदा मतवाले हाथियोंके बिदारे हुए मस्तकके ग्रासका चाहनेवाला है, वह चाहे कितना ही भूखा, बुढ़ापेके मारे शिथिल, शक्तिहीन, अत्यन्त दुःखी और तेजहीन क्यों न हो जाय,—पर वह, प्राणनाशका समय आने-पर भी, सूखी हुई सड़ी घास खानेको हरगिज़ तैयार न होगा ॥२६॥

सिंह और आत्माभिमानी पुरुष एकसे होते हैं। सिंह भूखा भले ही मर जाय; पर वह सड़ी घास कदापि न खायगा। इसी तरह मानी पुरुष मर भले ही जाय, पर वह मान और प्रतिष्ठानाशक नीच कर्म हरगिज़ न करेगा। शेख़ सादीने कहा है:—

न.खुरद शेर नीम .खुरदये सग ।
गर बसख़्ती बमीरद अन्दर ग़ार ॥

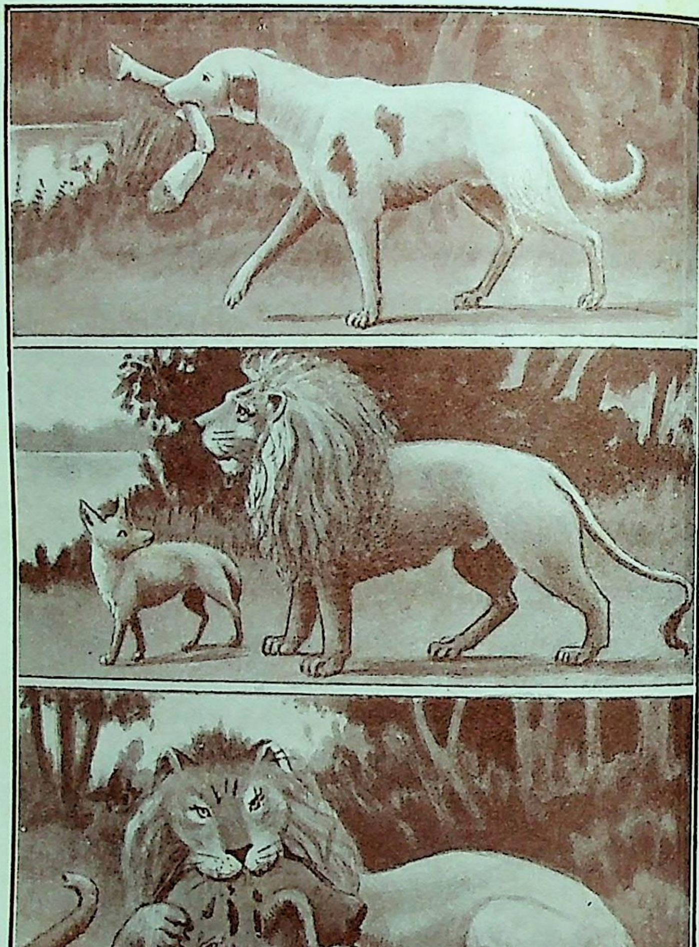
शेर भूखके मारे माँदमें ही भले ही मर जाये, पर वह कुत्तेका जूठा हरगिज़ न खायगा ।

गिरिधर कविरायने भी कहा हैः—

पीवे नीर न सरवरो, बूँद स्वातिकी आश।
केहरि तृण नहिं चर सके, जो व्रत करे पचाश॥
जो व्रत करै पचाश, विपुल गज-युत्थ बिदारे।
सत्पुरुष तजै न धीर, जीव बरु कोऊ मारे॥
कह गिरिधर कविराय जीव जोधक मरि जीवै।
चातक बरु मर जाय, नीर सरवर नहिं पीवै॥

स्वाति-बूँदकी आशा रखनेवाला चातक—पपीहा प्यासा ही क्यों न मर जाय, पर वह तालाबका जल नहीं पीता। सिंह जो हाथियोंके झुण्डोंका फाड़नेवाला है, पचास फ़ाक़े करनेपर भी घास नहीं चर सकता। सत्पुरुष अपना धैर्य्य नहीं त्यागते, चाहे कोई उनके प्राणनाश ही क्यों न करे।

सारांश यही है, कि मनुष्यपर कैसी भी विपद् पड़े, वह कितना ही दुःखित क्यों न हो, पर वह धैर्य्यच्युत न हो, सब्रको हाथसे न जाने दे, घबराकर मान और प्रतिष्ठाको नष्ट करनेवाले नीच कर्मोंपर उद्यत न हो जाय। सिंह भूखा मर जाता है, पर घास नहीं खाता। पपहिया प्यासा मर जाता है, पर स्वाती-बूँदके सिवा और जलोंको नहीं पीता। उत्तम पुरुषको, सिंह और चातककी तरह, अपनी मानरक्षा प्राणोंसे भी अधिक समझनी चाहिये।



कुत्ता मांसहीन हाड़का टुकड़ा पाकर भी अत्यन्त प्रसन्न होता है; किन्तु सिंह गोदमें आये स्यारको छोड़ हाथीको ही मारता है ।

(पृष्ठ १६३)

कुण्डलिया—नाहर भूखो उदर कृश, वृद्ध वयस तनक्षीण ।
शिथिल प्राण अति कष्टसों, चलिवेहीमें लीन ॥
चलिवेहीमें लीन, तऊ साहस नहिं छाँडे ।
मदगज-कुम्भविदार, मांसभक्षण मन आँडे ॥
मृगपति भूखौ, घास पुरानी खात न जाहर ।
अभिमानिनमें मुख्य शिरोमणि, सोहत नाहर ॥२६॥

29. Will the lion, first in the list of honourable creatures and desirous of eating mouthfuls of flesh off the broken trunk of a mad elephant, be contented with the eating of rotten grass, even if he is weak with hunger, old age and loss of vigour and confronted by distress, acute agony and even death itself ?

स्वल्पं स्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमप्यस्थि गोः
श्वा लब्ध्वा परितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये ।
सिंहो जंबुकमंकमागतमपि त्यक्त्वा निहंति द्विपम्
सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वांछति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् ॥ ३०

कुत्ता, गाय प्रभृति पशुका ज़रासा पित्त और चरबी लगा हुआ मलिन और मांसहीन छोटासा हाड़का टुकड़ा पाकर—जिससे उसकी क्षुधा शान्त नहीं हो सकती—अत्यन्त प्रसन्न होता है; लेकिन सिंह गोदमें आये हुए स्यारको भी त्यागकर हाथीके मारनेको दौड़ता है ।

इससे सिद्ध होता है, कि लोग कैसे भी दुःखित क्यों न हों, पर वे अपने पुरुषार्थके अनुसार ही फलकी आकांक्षा करते हैं ॥३०॥

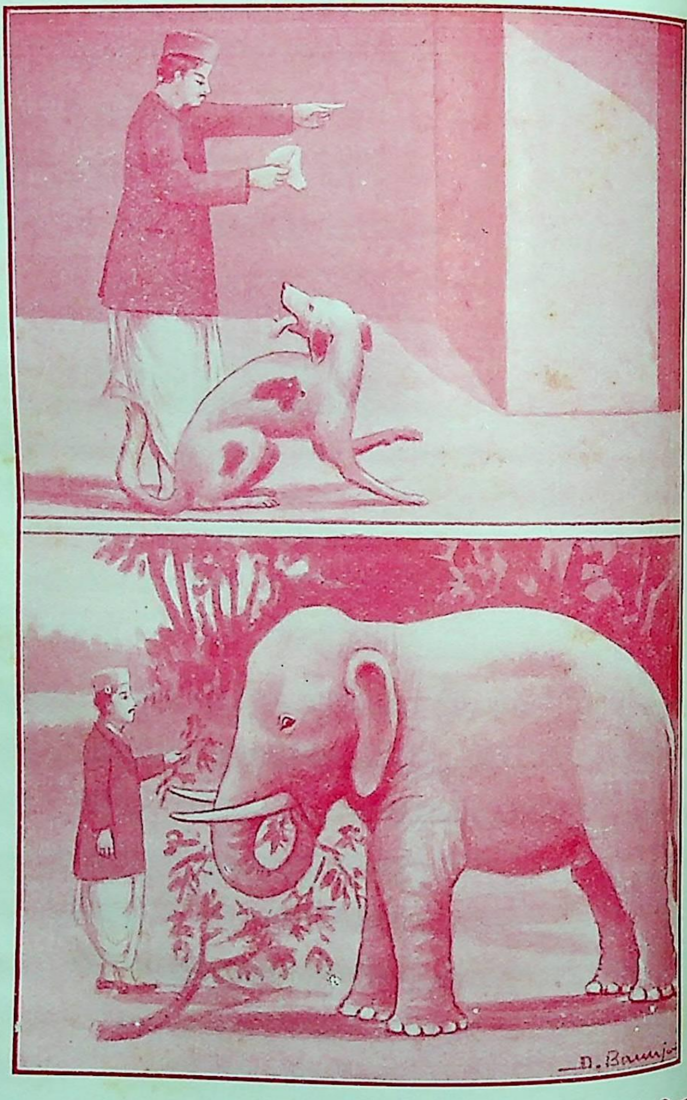
वृन्द कविने कहा है:—

बड़े कष्ट हू जे बड़े, करैं उचित ही काज।
स्यार निकट तजि खोज के, सिंह हने गजराज॥

नीच मनुष्य कुत्तेके समान और बड़े लोग सिंहके समान होते हैं। नीच लोग बुरी-से-बुरी चीज़पर नीयत डिगा देते हैं; पर बड़े लोग, घोर विपद्ग्रस्त होनेपर भी, अपने पुरुषार्थके अनुसार जीविका करते हैं। वे मर भले ही जायँ, पर वे नीच काम नहीं करते। हंस या तो मोती ही चुगते हैं, नहीं तो लंघन करके मर जाते हैं। सिंह या तो गजराजोंको मारकर ही खाते हैं, नहीं तो भूखों ही मर जाते हैं।

कुण्डलिया—कूकर सूखे हाड़सों, मानत है मन मोद।
सिंह चलावत हाथ नहिं, गीदड़ आये गोद॥
गीदड़ आये गोद, आँखहू नाहिं उघारे।
महामत्त गज देख, दौरके कुम्भ विदारे॥
ऐसे ही नर खरे, बढ़ीकृत करत दुहूंकर।
करैं नीचता नीच, कूर कुत्सित ज्यों कूकर॥३०॥

30. A dog is delighted if he finds a small, dirty bone of beef consisting only of a little fatty matter inside and without any flesh, although it can in no



कुत्ता अपने रोटी देनेवालेके सामने मुँह और पेट दिखाता है; किन्तु गजराज सौ-सौ खुशामदें कराकर खाता है । (पृष्ठ १६५)

Kanti Press, Agra.

way satisfy his hunger, while a lion unheeding a jackal fallen into his arms, goes to kill an elephant. (This proves that) every one desires for a fruit in accordance with his spirit, no matter if it be hard to attain.

लांगूलचालनमधश्चरणावपातम्
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनञ्च ॥
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुंगवस्तु
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुंक्ते ॥ ३१ ॥

कुत्तेको देखिये, कि वह अपने रोटी देनेवालेके सामने पूँछ हिलाता है, उसके चरणोंमें गिरता है, ज़मीनपर लेटकर उसे अपना मुँह और पेट दिखाता है; उधर श्रेष्ठ गजको देखिये, कि वह अपने खिलानेवालेकी तरफ धीरतासे देखता है और सैकड़ों तरहकी खुशामदें कराके ही खाता है ॥३१॥

राजर्षि भर्तृहरि नीचकी नीचता और महाजनकी उच्चता कुत्ते और हाथीके दृष्टान्तसे दिखाते हैं। कुत्ता इतना नीच है, कि एक टुकड़ेके लिये रोटी देनेवालेकी सौ-सौ खुशामदें करता है और हाथी इतना उच्च है, कि अपने रोटी देनेवालेके सामने ज़रा भी दीनता नहीं करता; उलटी सैकड़ों खुशामदें कराता है, तब खाता है।

मनुष्योंमें भी कुत्ते और हाथीके समान मनुष्य हैं। दुनियामें ऐसे भी लोग हैं, जो अपना पेट भरनेके लिये अथवा कुछ द्रव्य

प्राप्त करके विषय-विष भोगनेके लिये, महाभिमानी नीच धनियोंको अपना पेट दिखाते हैं, उनके पैर पकड़ते हैं, सैकड़ों तरहकी झूठी खुशामदें करते हैं, किसी दशामें भी न करने योग्य निन्द्य कर्म करते हैं, उनकी खोटी-खरी सुनते हैं, उच्च जाति होकर उनके बच्चोंका मलमूत्र तक साफ़ कर देते हैं, समयपर उनकी धोतियाँ तक धो डालते हैं—और तो क्या—उनकी स्त्री तककी बुरी-से-बुरी लल्लोचप्पो करते हैं; भगवान्‌को भूलकर, हरदम बाईजी-बाईजीकी रटना लगाये रहते हैं। ऐसे भी लोग हैं, जो अपने घरोंसे नहीं निकलते, लोग स्वयं उनके घर जाकर उनकी पूजा और खुशामद करते हैं; पर वे लोग भूखे मरनेपर भी किसीकी खुशामद नहीं करते; क्योंकि वे पराई खुशामद करके स्वर्ग-सुख भोगनेको नरकके दुःखोंसे भी बुरा समझते हैं। अगर घरमें खानेको भी नहीं होता, तो पेटको बाँधकर या दबाकर सो जाते हैं; किसीकी खुशामदसे खाना और कपड़ा पानेकी अपेक्षा, निराहार रहना और राहके चीथड़े लपेटकर लज्जा निवारण करना कहीं बेहतर समझते हैं; क्योंकि किसीकी खुशामद-बरामद करके जो चीज़ ली जाती है, उससे कायाको तो लाभ होता है, पर आत्माकी हानि होती है। बड़े लोगोंने कहा है,—"मान-सहित मरना,—अपमान-सहित जीनेसे भला है।"

"गुलिस्ताँ" में लिखा है:—

नानम अफ़ज़ूदो आ बरूयम कास्त।
बेनवाई वह अज़ मज़िल्लते ख्वास्त॥

जिस रोज़ीसे इज़्ज़त घटे, उस 'रोज़ी' से ग़रीबी भली।

दोहा—स्वान लेत लोयो लपक, दीन मान करि दूर।
सौ कों दे भच्छण करत, धीर वीर गजपूर ॥३१॥

31. A dog wags his tail before his bread-giver, falls at his feet and lies down on the ground to show his mouth and belly, but the noble elephant looks (on his *mahout*) composedly and only eats his meal when he is flattered a hundred times.

स जातो येन जातेन जाति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ॥३२॥

इस परिवर्त्तनशील जगत्में मरकर कौन नहीं जन्म लेता ? जन्म लेना उसीका सार्थक है, जिसके जन्मसे वंशकी गौरव-वृद्धि या उन्नति हो ॥३२॥

जिस तरह सूर्य्य, चाँद, शुक्र, शनि प्रभृति घूमनेवाले ग्रह हैं; उसी तरह हमारी यह पृथ्वी भी एक ग्रह है। यह भी सदा ग्रहोंकी तरह घूमती रहती है। इस घूमनेवाली पृथ्वी-पर सदा परिवर्त्तन होते रहते हैं। संसार एक अवस्थामें नहीं रहता। जो आज ज़िन्दा है, कल वही फिर मुर्दा हो

जायगा; जो मर जायगा, वही फिर जन्म लेगा यानी इस संसारमें जीना और मरना लगा ही रहता है—रोज़ परिवर्त्तन होते ही रहते हैं। इस परिवर्त्तनशील जगत्‌में मरकर जन्म लेना उसीका सार्थक या सफल है, जिसके जन्म लेनेसे वंशकी उन्नति हो,—वंशका नाम ऊँचा हो। जो जन्म लेकर अपना पेट भरते हैं और उम्र पूरी करके मर जाते हैं, पर उनसे वंशकी गौरव-वृद्धि नहीं होती, उनका जन्म लेना वृथा ही है। वैसे लोग वृथा पृथ्वी-माताको बोझों मारनेको पैदा होते हैं। यदि वैसे लोग पैदा ही न होते तो भला था, बेचारी पृथ्वी तो बोझों न मरती।

"पञ्चतन्त्र" में लिखा है:—

किं तेन जातु जातेन, मातुर्यौवनहारिणा।
आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा॥

माताकी जवानी नष्ट करनेवाले उस पुरुषके जन्मसे क्या, जो अपने वंशमें ध्वजाके अगले भागकी तरह स्थित नहीं होता ?

और भी कहा है:—

जातस्य नदी तीरे, तस्यापि तृणस्य जन्म साफल्यम्।
यत् सलिलमज्जनाकुल जन हस्तावलम्बनं भवति॥

नदीके किनारे पैदा हुए उस तिनकेका भी जन्म सफल है जो जलमें डूबनेसे घबराये हुएका अवलम्ब होता है।

दानी, परोपकारी, शूरवीर, तपस्वी, विद्वान् और धर्मात्माओंके जन्म लेनेसे निश्चय ही कुलकी गौरव-गरिमा बढ़ती है। महाराजा रघु, दिलीप, राम प्रभृति महापुरुषोंसे उनके कुलका नाम हुआ। अभी कई सौ साल पहले इटलीके एक साधारण गृहस्थके घरमें जन्म लेकर महावीर नेपोलियनने अपने कुलको उजागर किया। आप अपनी अपूर्व शूरता, दृढ़ अध्यवसाय एवं लोकप्रियता प्रभृति गुणोंसे फ्रान्सके अद्वितीय सम्राट् हुए। महाराज भगीरथने श्री गंगाजीको स्वर्गसे लाकर रघुवंशका नाम सदाको अमर कर दिया। ऐसोंकी ही जननी जननी है और ऐसोंहीका जन्म लेना जन्म लेना है। जिनके जन्म लेनेसे संसारका उपकार न हुआ, वंशका नाम न हुआ—उनकी जननी बन्ध्या और उनका जन्म लेना जन्म लेना नहीं।

दोहा—जन्म-मरण जगचक्रमें, ये दो बात महान।
करै जु उन्नति वंशकी जन्म्यौ सो ही जान ॥३२॥

32. Who is not born after having died in this ever changing universe ? But he is really born by whose birth his family gets prosperity.

कुसुमस्तवकस्येव द्वे गतीस्तो मनस्विनाम्।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशीर्येत वनेऽथवा ॥३३॥

फूलोंके गुच्छेकी तरह महापुरुषोंकी गति दो प्रकारकी होती है—या तो वे सब लोगोंके सिरपर ही विराजते हैं अथवा वनमें पैदा होकर वनमें ही मुर्झा जाते हैं ॥३३॥

आत्मसम्मान चाहनेवाले पुरुष फूलोंकी तरह होते हैं। फूल या तो देवताओंके सिरपर ही चढ़ते हैं अथवा वन-के-वनमें ही नष्ट हो जाते हैं। मनस्वी पुरुष भी या तो सब लोगोंके ऊपर ही रहते हैं या जहाँ पैदा होते हैं वहीं चुपचाप जीवन बिताकर शेष हो जाते हैं। हिन्दु-कुलसूर्य्य महाराणा प्रतापने, सब राजाओंके अकबरकी अधीनता स्वीकार कर लेनेपर भी, स्वयं अधीनता स्वीकार न की। उनके बच्चे रोटीके टुकड़ोंके लिये तरसे, उन्होंने क्षण-भर भी चैन न पाया ; पर अकबरके चरण-सेवक होनेकी अपेक्षा उन्होंने ये सब कष्ट अच्छे समझे। महा-पुरुषोंका स्वभाव ही ऐसा होता है। वे जीवनसे मानको बड़ा समझते हैं।

वृन्द कविने कहा है—

द्वै ही गति हैं बड़नकी, कुसुम मालती भाय।
कै सबके सिरपर रहैं, कै बन माँहिं बिलायँ॥

दोहा—*पहुपगुच्छ सिरपै रहै, कै सूखै बन माँहि।*
मान ठौर सत्पुरुष रहि, कै सुखदुख घन माँहि ॥३३॥

33. Like a bunch of flowers there are only two alternatives for a self-respecting man. He will either find a place at the head of all men or will wither in the forest.

संत्यन्येऽपि वृहस्पतिप्रभृतयः संभाविताः पंचषा—
स्तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते ॥
द्वावेव ग्रसते दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ भासुरौ
भ्रातः पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षावशेषीकृतः॥३४

आकाशमें वृहस्पति प्रभृति और भी पाँच छै ग्रह श्रेष्ठ हैं; पर असाधारण पराक्रम दिखानेकी इच्छा रखनेवाला राहु इन ग्रहोंसे बैर नहीं करता। यद्यपि दानवपतिका सिर मात्र अवशेष रह गया है, तो भी वह अमावस्या और पूर्णिमाको दिनेश्वर—सूर्य्य और निशानाथ—चन्द्रमाको ही ग्रसता है ॥३४॥

महापुरुषोंका स्वभाव होता है, कि वे छोटोंसे वैरभाव नहीं करते, क्योंकि छोटोंसे जीतनेमें नेकनामी नहीं मिलती, पर हार जानेमें बदनामी होती है—छोटोंसे जीतनेमें भी हार और हारनेमें भी हार। महापुरुष, इसीलिये, अपने समान या अधिक बलवालोंसे ही युद्ध करते हैं।

कहा है—

निबल जान कीजै नहीं, कबहूँ बैर विषाद।
जीते कछु शोभा नहीं, हारे निन्दावाद॥
कै सम सों कै अधिक सों, लरिये करिये वाद।
हारे जीते होत है, दोऊ भाँत सवाद॥

"पञ्चतन्त्र"में लिखा है—

तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो
मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः।
समुच्छ्रितानेव तरून्प्रबाधते
महान्महत्येव करोति विक्रमम्॥

सब तरहसे नीचेको झुके हुए कोमल तिनकेको पवन नहीं उखाड़ता; खूब ऊँचे वृक्षको ही उखाड़ता है। इससे प्रत्यक्ष है कि, बड़ा पुरुष बड़ेपर ही अपना बल-विक्रम प्रकाशित करता है।

"भामिनी विलास"में लिखा है—

वे तंड गंड कडति पाण्डित्य परिपन्थिना।
हरिणा हरिणालीषु कथ्यतां कः पराक्रमः॥

हाथियोंके मस्तकोंकी खुजली मिटानेवाला सिंह हिरणोंमें अपने किस पराक्रमका वर्णन करे?

हाथियोंके मस्तकोंमें जो मद-जल होता है, उसके लिये भौंरे उनके पास जाते हैं और उनपर चरण-प्रहार करते हैं, पर महाबली हाथी उनको तुच्छ समझकर उनपर क्रोध नहीं करते, इससे भी यही सिद्ध होता है, कि बलवान् बराबरवालेसे ही वैर करते हैं; पर नीच लोग अपनेसे कमज़ोरोंपर ही अपनी बलपरीक्षा किया करते हैं, वे दुर्बलोंको ही सताते हैं। नीच इस बातको नहीं समझते, कि दबेको दबाने और मरेको

मारनेमें कोई वीरता नहीं है। वे उस हवाकी तरह हैं, जो बलवान आगको तो जगाती है, पर निर्बल दीपकको बुझाती है। नीचोंका स्वभाव ऐसा ही होता है और महापुरुषोंका स्वभाव वैसा ही होता है।

कुण्डलिया—राजा निशि अरु दिवसको, रविशशि तेज निधान।
पाँचौ ग्रह इन सम नहीं, ताते तजै निदान॥
ताते तजै निदान, आन इनहीं सो अकड़त।
रह्यौ शीशकौ राहु, चाहकर जब तब पकड़त॥
ऐसे ही नरधीर, मरत हूँ करत सुकाजा।
गिरत पड़त रणमाँहि, सुभट पहुँचत जहँ राजा॥३४॥

34. There are five other well-known planets such as Jupiter etc.; but against these this Rahu, the lover of specially heroic deeds, professes no enmity. Look, O brother, it is only the two great luminaries, the sun and the moon, that this lordly Rakshasa catches hold of at the time of an eclipse, although head is the only part of its body that is now left.

वहति भुवनश्रेणीं शेषः फणाफलकस्थितां।
कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स विधार्यते॥
तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा-
दहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः॥ ३५॥

शेषनाग चौदह भुवनोंकी श्रेणीको अपने फणपर धारण करता है, उस शेषनागको कच्छपराजने अपनी पीठके मध्य भागपर धारण कर रक्खा है; किन्तु समुद्रने इन कच्छपराजको भी हलकीसी चीज़ समझकर अपनी गोदमें रख छोड़ा है। इससे प्रत्यक्ष है, कि बड़ोंके चारित्रकी विभूतिकी कोई सीमा नहीं है ॥ ३५ ॥

चौदह लोकोंको अपने फणपर धारण करनेमें शेषजीको बोझा नहीं लगता, यह बड़े ही आश्चर्य्यकी बात है! इससे भी अधिक विस्मयकी यह बात है, कि कच्छप-राजने चौदहों लोक समेत शेषनाग * को भी अपनी पीठपर धारण कर रक्खा है और उन्हें भार नहीं लगता! जब यह देखते हैं, कि समुद्रने चौदहों लोक, शेषनाग और कच्छप इन सबको मामूली सी—अत्यन्त हल्कीसी—चीज समझकर, अनादरसे, अपनी गोदमें रख रक्खा है, तब तो आश्चर्य्यकी सीमा ही नहीं रहती !! तात्पर्य्य यह कि, बड़ोंकी सामर्थ्यकी हद नहीं, वे जो करें वही थोड़ा है।

---

* हमारे पुराणोंमें लिखा हुआ है, कि यह पृथ्वी शेषनागके फणोंपर ठहरी हुई है। शेषनाग कच्छपराजकी पीठपर स्थित हैं। कच्छपराज बैलके सींगपर हैं इत्यादि। पर असलमें यह बात नहीं है; पृथ्वी सूर्य्यकी आकर्षण-शक्तिसे ठहरी हुई है। ऊपरकी बात बड़ोंकी महिमा दिखानेके लिये कही गई है।

वृन्दने बड़ोंकी महिमाके सम्बन्धमें खूब कहा है—

बड़े जो चाहैं सो करैं, करन मतो उर धारि।
बड़े भार ले निरबहैं, तजत न खेद बिचारि॥
बड़े भार ले निरबहैं, तजत न खेद बिचार।
शेष धरा धरि धर धरै, अब लौं देत न डार॥

छप्पय—धरयो धराकों शीश, शेष अति करयो पराक्रम।
शेष सहित सब भूमि, कमठ धर रह्यौ बिना श्रम॥
कमठ शेष अरु भूमिभार, वाराह रह्यौ धर।
इन सबहिन कौ भार, एक जलके आश्रितकर॥
इक इकसों विक्रम अधिक ही, करत बड़े अद्भुत सुकृति।
तिनके चरित्र सीमा रहित, अति विचित्र राखत सुवृति॥३५॥

35. The Shesha (serpent) lifts the fourteen worlds on its hood. It is (in its turn) borne by the great tortoise on the middle part of its back. The tortoise again is subjected to a dependent position to the Great Boar by the Ocean through malice. Oh, how endless are the forms of behaviour displayed by the great !

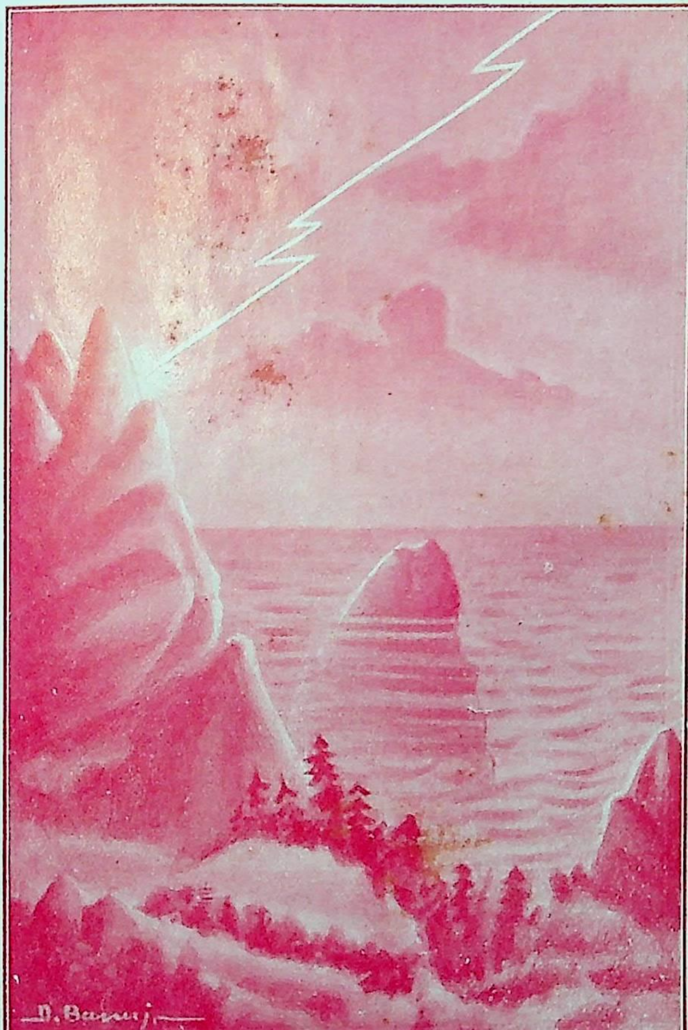
वरं पक्षच्छेदः समदमघवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरुद्गच्छद्बहलदहनोद्गारगुरुभि ॥
तुषाराद्रे सूनोरहह पितरि क्लेशविवशे
न चासौ संपातः पयसि पयसां पत्युरुचितः ॥३६॥

हिमालय-पुत्र मैनाकने पिताको संकटमें छोड़कर, अपनी रक्षाके लिये, समुद्रकी शरण ली—यह काम उसने अच्छा नहीं किया। इससे तो यही अच्छा होता, कि मैनाक स्वयं भी मदोन्मत्त इन्द्रके अग्निज्वाला उगलनेवाले वज्रसे अपने भी पंख कटवा लेता ॥३६॥

हिमालयकी स्त्रीका नाम मेनका था। उसके एक पुत्र हुआ; उसका नाम मैनाक रक्खा गया। उस ज़मानेमें पहाड़ोंके पंख होते थे। उन पंखोंसे पहाड़ उड़ते फिरते थे और बिना किसी विचारके चाहे जहाँ पड़कर मनुष्योंका संहार करते थे। इससे पृथ्वी-निवासी अतीव भयभीत हुए; तब इन्द्रने मनुष्योंकी रक्षाके लिये पर्वतोंके पंख काटनेको अपना वज्र छोड़ा। उस समय मैनाक अपने पिता हिमालयको सङ्कटमें छोड़कर समुद्रसे मैत्री करके उसमें जा छिपा और इस तरह अपने तईं इन्द्रवज्रके कष्टसे बचा लिया। वहाँ जाकर उसने नागकन्याओंसे शादी करली।

असूत सा नागवधूपभोग्यं
मैनाकम्भोनिधिवद्ध सख्यम्।
क्रुद्धेपि पक्षच्छिदि वृत्रशत्रा—
ववेदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम् ॥ "कुमार सम्भव" प्र० सर्ग।

मेनकाने नागवधुओंको ब्याहनेवाले, समुद्रके साथ सख्य-सूत्रमें आवद्ध एवं पंख काटनेवाले इन्द्रके क्रुद्ध होनेपर भी वज्र-प्रहारजनित वेदनासे अनुभव-विहीन—मैनाकको जना।



मैनाकने इन्द्रके वज्रसे भीत होकर पिताको संकट में छोड़ समुद्रकी शरण ली। मैनाकने यह अच्छा नहीं किया।

Kanti Press, Agra.

(पृष्ठ १७६)

पिताको कष्टमें छोड़कर, अपनी प्राणरक्षाके लिये, मैनाकका समुद्रमें जा छिपना और वहाँ आनन्द करना अच्छा काम नहीं हुआ। जो माता-पिता जन्म दें, जो पुत्रके पालन-पोषणमें असीम कष्ट सहन करें, उन्हें विपद्के मुखमें छोड़कर अन्यत्र भाग जाना बड़ी बुरी बात है। ऐसे लोगोंकी संसार निन्दा करता है। यह काम मानियोंके योग्य नहीं।

सुख और दुःख दोनोंमें मनुष्यको अपनोंके साथ रहना चाहिये। जो सम्पदमें साथ रहते हैं और विपद्में किनारा कस जाते हैं, वे नीच हैं।

कुण्डलिया—हिमगिरि सिर धुनकै कहै, कहा कियो मैनाक।
सहिवौ हो निज शीसपै, इन्द्रबज्र परिपाक॥
इन्द्रबज्र परिपाक, अग्निज्वालामें जरिवौ।
नीकौ हौ सब भाँति, उहाँ सन्मुख ह्वै मरिवौ॥
दुर्यौ सिन्धुके माँहि, कहौ कौलों ह्वै है थिर।
निलज लजायो मोहि, पिता नहिं जान्यो हिमगिरि ॥३६॥

36. It would have been better for the Mainaka mountain if its wings had been chopped off by the hard blows given by the excited god Indra with his thunderbolt like so many hideous sparks of blazing fire. But its action of falling into the water of the Ocean (saving itself from danger), taking no heed

of its father, the Himalaya, while the latter was in the grip of distress, was rather disgraceful.

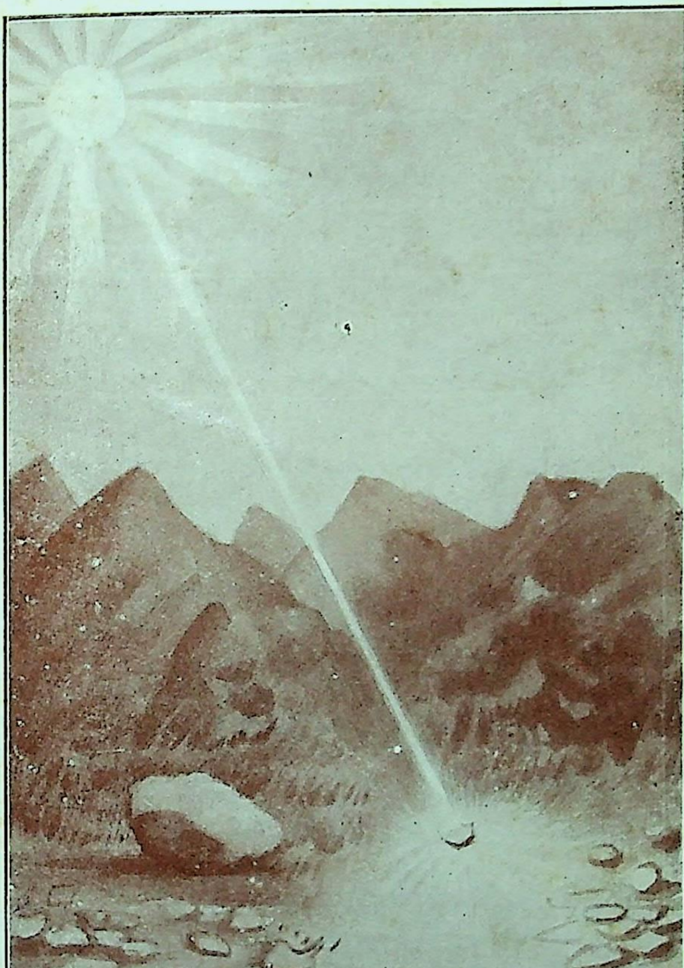
यदचेतनोऽपि पादैःस्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकांतः।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतविकृतिं कथं सहते ? ॥३७

जब चेतना-रहित सूर्यकान्त-मणि भी सूर्य-किरण-रूप पैरोंके लगनेसे जल उठती है, तब चेतना-सहित तेजस्वी पुरुष परका किया अपमान कैसे सह सकते हैं ? ॥३७॥

सूर्यकान्त मणि बेजान चीज़ है, पर वह भी सूर्यके किरण-रूपी पैरोंके लगनेसे अपने तईं अपमानित समझकर मारे क्रोधके जल उठती है, तब जानदार तेजस्वी पुरुष दूसरोंके किये अपमानको कैसे सह सकते हैं ? अर्थात् नहीं सह सकते। मानियोंको अपमानसे क्रोध आये बिना नहीं रह सकता। उन्हें अपमान मृत्यु-यन्त्रणासे भी अधिक भयङ्कर यन्त्रणादायक बोध होता है। चन्दनका स्वभाव शीतल है, पर घिसनेसे उसमें भी आग निकल आती है।

दोहा—बचन बाणसम श्रवण सुनु, सहत कौन रिस त्याग ?।
सूरजपद-परिहार तें, पाहन उगलत आग ॥३७॥

37. The Suryakanta stone, although lifeless, spits forth fire, if it is touched by the rays of the Sun as (it were touched) by his feet. Then how can a respectable man bear an indignity inflicted by others ?



चेतना-रहित सूर्य्यकान्तमणि, सूर्य्यकिरणरूप पैरोंके लगनेसे जल उठती है। मानियोंका स्वभाव ऐसा ही होता है। (पृष्ठ १७८)

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः ॥३८॥

सिंह चाहे छोटा बालक भी हो, तो भी वह मदसे मलीन कपोलोंवाले उत्तम गजके मस्तकपर ही चोट करता है। यह तेजस्वियोंका स्वभाव ही है। निस्सन्देह अवस्था तेजका कारण नहीं होती ॥३८॥

सिंहका बच्चा, नितान्त छोटा होनेपर भी, मदोन्मत्त हाथीके गण्डस्थलोंपर ही चोट करता है; यह उसका स्वभाव है।

अवस्थासे तेज नहीं होता। शकुन्तला-पुत्र महाराज भरत, बाल्यावस्थामें ही, हिमालयपर, सिंहके कान पकड़कर उसके साथ खेला करते थे। स्वयं उनके पिता दुष्यन्तको बालकको देखकर बड़ा विस्मय हुआ था। उन्होंने कहा था—"यह निश्चय ही किसी महातेजस्वी सौभाग्यवानका पुत्र-रत्न है।" जब उन्हें मालूम हुआ कि, यह उनका ही पुत्र है, तब उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। तेजस्वियोंमें शूरवीरता स्वभावसे ही होती है। कृष्णचन्द्रने शिशु अवस्थामें ही पूतना जैसी विकराल राक्षसीके प्राणनाश किये। सात-आठ सालकी उम्रमें तो उन्होंने अनेक महाबली राक्षसोंका निधन किया। कंस-जैसे महाबलशालीको भी उन्होंने लड़कपनमें ही हँसते-हँसते मार दिया। महात्मा बुद्धने ऐश-आराममें पलने और अतीव कोमल होनेपर भी

ऐसे नटखट घोड़ेको अपने क़ाबूमें कर लिया, जो बड़े-बड़े शहसवारोंको अपनी पीठसे गेंदकी तरह उछाल-उछालकर नीचे फैंक देता था। सिकन्दर आज़मने भी बालकपनमें ऐसे ही एक घोड़ेको अपने वशमें कर लिया था, जिसे राज्यके नामी-नामी चाबुक़सवार क़ाबूमें न कर सके थे। उनके पिता फिलिपको पुत्रके इस अपूर्व कौशलसे बड़ी प्रसन्नता हुई। कहाँ तक बतायें, ऐसे बहुत दृष्टान्त हैं। अभिमन्यु कोई बड़ी उम्रके न थे, पर उन्होंने वह पराक्रम दिखाया कि, सात-सात महारथियोंके दाँतों पसीने आगये। निस्सन्देह तेजस्वियोंमें शूरवीरता स्वभावसे ही होती है। इसमें अवस्थाको हेतु मानना भूल है।

"पञ्चतन्त्र"में लिखा है:—

बालस्यापि रवेः पादाः पतन्त्युपरि भूभृताम्।
तेजसा सहजातानां, वयः कुत्रोपयुज्यते॥

बालसूर्यकी किरणें पर्वतोंपर गिरती हैं। तेजके साथ पैदा होनेवालोंकी अवस्था नहीं देखी जाती।

हाथी इतना बड़ा जानवर है कि, पहाड़-सा दिखता है। उसमें बलकी भी कमी नहीं, पर वह ज़रासे अंकुशके वशमें हो जाता है। क्या अंकुश हाथीके बराबर होता है? वज्रकी चोटसे पर्वत गिर पड़ते हैं; क्या वज्र पर्वतके समान है? दीपकके जलनेसे घोर अन्धकार नष्ट हो जाता

है; पर क्या दीपक अन्धकारके बराबर है ? जिसमें तेज है वही बलवान है। शरीरकी मुटाई और अवस्थासे कुछ नहीं होता।

दोहा—टूट सिंहशिशु करि निकर, बिचलावै छण माहिं।
तेजवानकी प्रकृति यह, तेज हेतु वय नाहिं ॥३८॥

38. Even the cub of a lion falls on the elephants, the upper parts of whose trunks are besmeared with *mada* (fluid). It is the nature of the high-spirited and not their age that is the cause of their boldness and courage.

धन-महिमा ।

—::०::—

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छता-
च्छीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ॥
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाःसमस्ता इमे ॥३९॥

यदि जाति पातालको चली जाय, सारे गुण पातालसे भी नीचे चले जायँ, शील पर्वतसे गिरकर नष्ट हो जाय, स्वजन अग्निमें जलकर भस्म हो जायँ और बैरिन शूरतापर शीघ्र ही वज्रपात हो जाय—तो कोई हर्ज नहीं; लेकिन हमारा धन नष्ट

न हो; हमें तो केवल धन चाहिये, क्योंकि धनके बिना मनुष्यके सारे ही गुण तिनकेकी तरह निकम्मे हैं।

कोई अनुभवी पुरुष कहता है,—मनुष्यकी जात-पाँत, उत्तमोत्तम गुण, सुशीलता और शूरवीरता प्रभृति नष्ट हो जायँ तो ज़रा भी हर्ज नहीं—उन सबके नष्ट होनेसे कोई भी हानि नहीं। सब नष्ट हों, पर एकमात्र धन नष्ट न हो; क्योंकि धनवानमें यदि ये सब गुण न भी हों, तो भी लोग उसकी पूजा करते हैं, और निर्धनमें ये सब गुण हों तो भी लोग उसका आदर नहीं करते। धन बिना सभी गुण निकम्मे हैं। संसारमें धन सर्व्वोपरि गुण है। धनसे ही गुणोंकी शोभा है। जिस तरह पदार्थोंमें सूर्यसे प्रकाश आता है, उसी तरह लक्ष्मीसे गुण प्रकाशित होते हैं।

जिसके पास धन है, वह नीच-से-नीच कुलोत्पन्न क्यों न हो, उसको सभी पूजते हैं—सभी उसका सन्मान करते हैं। निर्धनने चाहे जैसे उत्तम कुलमें जन्म लिया हो, पर उसकी ओर लोग देखते तक नहीं। धनवान ब्रह्महत्यारेकी भी लोग पूजा करते हैं। निर्धन चाहे चन्द्रमाके समान उज्ज्वल वंशमें पैदा हुआ हो, तो भी उसका तिरस्कार ही करते हैं।

मनुष्य चाहे कृपण हो, नीचकुलोत्पन्न हो, सज्जनोंने चाहे उसके पास जाने और उसकी सेवा आदि करनेकी मनाही करदी हो—पर यदि उसके पास धन हो, तो लोग इन सब बातोंकी

परवा न करके भी उसके पास जाते और उसकी सेवा करते हैं !

लोग उत्तम कुलमें पैदा हुए, चतुर और सज्जन निर्धनको त्यागकर, नीच कुलमें पैदा हुए, महामूर्ख दुर्जनसे भी कल्पवृक्षकी तरह अनुराग करते हैं।

इस लोकमें धन होनेसे ग़ैर भी अपने हो जाते हैं और निर्धन होनेपर अपने नज़दीकी नाते-रिश्तेदार भी ग़ैर हो जाते हैं।

निर्धनकी जगत्‌में बड़ी ही दुर्गति है। निर्धनको स्त्री-पुत्र तक त्याग देते हैं; निर्धनका न कोई मित्र है न नातेदार; निर्धनके सारे ही काम बिगड़ जाते हैं—उसे किसी भी काममें सिद्धि नहीं मिलती, उसमें उत्तम-से-उत्तम काम करनेपर भी उसे यश नहीं मिलता।

कहा है—

स्वामीद्वेष्टि सुसेवितोऽपि, सहसा प्रोज्झन्ति सद्बान्धवा।
राजन्ते न गुणास्त्यजन्ति तनुजाः, स्फारी भवन्त्यापदः॥
भार्य्या साधु सुवंशजापि भजने नो यान्ति मित्राणि च।
न्यायारोपित विक्रमाण्यपि नृणां येषां नहि स्वाद्धनम्॥

उत्तम सेवा करनेपर भी, धनहीन सेवकका स्वामी आदर नहीं करता; उसके अच्छे-अच्छे वन्धु-बान्धव उसे

त्याग देते हैं ; उसकी आपदायें बढ़ जाती हैं ; अच्छे कुलमें पैदा हुई भार्य्या भी उसे प्यार नहीं करती और नीति-मार्गसे पुरुषकार द्वारा प्राप्त हुए मित्र भी उसके पास नहीं जाते।

निर्धनता शरीरधारियोंको परम दुखदायिनि और उनका क़दम-क़दमपर अपमान करानेवाली है। निर्धनताकी वजहसे, निर्धन मनुष्यके बन्धु-बान्धव निर्धनको जीवितावस्थामें ही मृतक समझते हैं। जिसके पास कौड़ी नहीं होती, उससे उसके निकट-सम्बन्धी भी लजाते हैं और उससे अपना सम्बन्ध-रिश्ता छिपाते हैं। बहुत क्या, जिसके पास कौड़ी नहीं होती, उसके गाढ़े मित्र भी उसके शत्रु हो जाते हैं।

शरीरधारियोंकी निर्धनता दरिद्रकी मूर्त्ति और आफ़तोंका घर है। सच तो यह है, "मरण" का ही दूसरा नाम "निर्धनता" है।

दरिद्र मनुष्य यदि कुछ देनेकी इच्छासे भी किसी धनीके घर जाता है, तो धनी और उसके घरवाले मनमें यही समझते हैं कि, यह कुछ माँगने आया है; इसलिये उससे बैठनेको भी नहीं कहते; अतः निर्धनताको धिक्कार है!

जिस तरह काक-जौ और बन-तिल निकम्मे समझे जाते हैं; उसी तरह धनहीन भी निकम्मा समझा जाता है।

बिना दाढ़का साँप और बिना मदका हाथी जिस तरह निकम्मा होता है; उसी तरह बिना धनका पुरुष भी निकम्मा होता है।

जिसके पुत्र और सुमित्र नहीं उसका घर सूना है; मूर्खकी सब दिशाएँ सूनी हैं और दरिद्रका तो सभी सूना है।

ऐसा कोई काम नहीं, जो धनसे सिद्ध न होता हो; धनसे स्वर्गमें भी सीढ़ी लग जाती है। निर्गुण धनी गुणी समझा जाता है; नीच धनी उत्तमवंशज समझा जाता है; दुश्चरित्र धनी सच्चरित्र समझा जाता है; महाकायर धनी बड़ा भारी शूरवीर समझा जाता है; इसीसे कहनेवाला कहता है—जातपाँत रसातलको चली जाय; गुण रसातलसे भी नीचे चले जायँ; सुशीलता पर्वतसे गिरकर चूरचूर हो जाय; स्वजन अग्निमें भस्म हो जायँ और शूरतापर वज्र गिरे तो हर्ज नहीं; केवल हमारा धन नाश न हो, उसके आनेकी राहें खुली रहें।

सारांश—संसारमें धन ही सर्व्वोपरि और दूसरा परमेश्वर है। धनहीन मनुष्य प्राणहीन है।

छप्पय—जाति रसातल जाहु, जाहु गुण ताहूके तर।
परो शीलपर शैल, अग्निमें जरौ सुपरिकर॥
शूरातनके शीश, बज्र बैरिनको बरसहु।
एक द्रव्य बहु भाँति, रैन दिन घन ज्यों सरसहु॥

जिहि बिन सब गुण हैं तृणहिं सम, कछु कारज नाहिं कर सकहिं।
कञ्चन अधीन सबसौंज सुख, बिन कञ्चन अकबक बकहिं ॥३९॥

39. Let (the superiority of) caste go to the devil ; let a host of good qualities find even a worse fate ; let good manners fall down from a mountain (and meet an unnatural death) ; let kins men be burnt (down) by fire ; let a thunderbolt soon fall over (the head of) chivalry ; ours are riches alone, without which all these good things are no better than a bit of straw.

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ॥
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥४०॥

सारी इन्द्रियाँ वे की वे ही हैं; काम भी सब वैसे ही हैं; परन्तु एक धनकी गरमी बिना वही पुरुष क्षणमात्रमें और-का-और हो जाता है; निस्सन्देह यह एक विचित्र बात है ॥४०॥

मनुष्य नहीं बदल जाता, केवल अवस्था बदल जाती है; अवस्थाके बदल जानेसे ही मनुष्य और-का-और हो जाता है। धनावस्थामें जिस मनुष्यके कर्म, बुद्धि और वचन-शक्तिकी लोग भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं; निर्धनावस्था होते ही उसी



धनकी गर्मी बिना वही पुरुष क्षणमें और का और हो जाता है।

मनुष्यके उन्हीं कर्म, बुद्धि और वचनशक्तिकी लोग घोर निन्दा करने लगते हैं।

धनावस्थामें मनुष्यके नाक कान नेत्र प्रभृति जो इन्द्रियाँ होती हैं, निर्धनावस्थामें भी वे सब ज्यों-की-त्यों, जहाँ-की-तहाँ और जैसी-की-तैसी बनी रहती हैं। धनावस्थामें वह जैसी बातें करता है, वैसी ही निर्धनावस्थामें भी करता है; धनावस्थामें वह जैसे कर्म करता है, वैसे ही कर्म वह निर्धनावस्थामें भी करता है; धनावस्थामें वह जैसी अक्लकी तेज़ी दिखाता है, वैसी ही तेज़ी वह निर्धनावस्थामें भी दिखाता है; अर्थात् निर्धनावस्थामें उसी मनुष्यकी वे ही सब शक्तियाँ—विचार-शक्ति, वचनचातुरी और काम करनेकी शक्ति कम नहीं हो जाती हैं—ज्यों-की-त्यों रहती हैं; पर लोगोंको निर्धनावस्थामें वही मनुष्य इन सबसे हीन मालूम होता है; यह कुछ कम आश्चर्यकी बात नहीं है। बात यह है कि, मनुष्यके पाससे धनका निकल जाना वैसा ही है; जैसा कि शरीरसे प्राणका निकल जाना। प्राणहीन देहको जिस तरह मनुष्य निकम्मी समझते हैं; उसी तरह धनहीन मनुष्यको भी निकम्मा समझते हैं।

कहा है—

दौर्गत्यं देहिनां, दुःखमपमानकरं परम्।
येन स्वैरपि मन्यते, जीवन्तोऽपि मृता इव॥

निर्धनता मनुष्यका घोर दुःख और अपमान करानेवाली है। निर्धनके भाई-बन्धु निर्धनको जीवित अवस्थामें ही मुर्देकी तरह समझते हैं।

दोहा—वै इन्द्री वै कर्म हैं, वही बुद्धि वही ठौर।
धनविहीन नर छणहिमें, होत और तें और ॥४०॥

40. All his senses remain the same; the same are his actions, his unfaltering reason as well as his speech; even the individual is the same, but it is strange that, destitute of the pride of wealth, in a moment he looks like another man.

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान्गुणज्ञः ॥
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥ ४१ ॥

जिसके पास धन है, वही कुलीन, पण्डित, शास्त्रज्ञ, वक्ता और दर्शनीय है। इससे सिद्ध हुआ कि, सारे गुण धनमें ही हैं ॥४१॥

जिसके पास धन है, वह अकुलीन होनेपर भी कुलीन, अपण्डित होनेपर भी पण्डित, अशास्त्रज्ञ होनेपर भी शास्त्रज्ञ, बोलना न जाननेपर भी सुवक्ता और कुरूप होनेपर भी देखने-योग्य ख़ूबसूरत है।

कहा है—

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि
यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमांल्लोके
यस्यार्थाः स हि पण्डितः॥

—:*:—

शूरः सुरूपः सुभगश्च वाग्मी
शस्त्राणि शास्त्राणि विदां करोति।
अर्थं बिना नैव यशश्च मानं
प्राप्नोति मर्त्योऽत्र मनुष्य लोके॥

जिसके पास धन है उसके मित्र हैं; जिसके पास धन है, उसीके बन्धु-बान्धव हैं; जिसके पास धन है, संसारमें वही पुरुष है; जिसके पास धन है, वही पण्डित है।

शूरवीर, रूपवान्, सुन्दर, वाचाल, शस्त्रविद्या और शास्त्र-विद्या जाननेवाला मनुष्य भी, इस लोकमें, धन-बिना यश और मान नहीं पाता; अर्थात् धनहीनमें इन गुणोंका होना न होनेके ही समान है।

और भी कहा है—

पूज्यते यदपूज्योऽपि, यदगम्योऽपि गम्यते।
वन्द्यते यदवन्द्योपि, स प्रभावो धनस्य च॥

धनवान यदि पूजा करने-योग्य नहीं होता, तो भी लोग उसकी पूजा करते हैं; धनवान यदि पास जाने लायक़ भी नहीं

होता, तो भी लोग उसके पास जाते हैं और धनवान यदि प्रणाम करने योग्य नहीं होता, तो भी लोग उसे प्रणाम करते हैं। यह सब धनकी माया है।

भोजनसे जिस तरह इन्द्रियोंमें सामर्थ्य आती है, उसके बलसे वे सब कामोंमें समर्थ होती हैं; उसी तरह धनसे संसारके सब काम होते हैं। संसारमें पैसा ही हर्ता, कर्ता और विधाता है—पैसा ही माता, पिता और मित्र है; बहुत क्या, पैसा ही परमात्मा है। लूथर महाशय कहते हैं—

The God of this world is riches, pleasure, and pride.

इस संसारका ख़ुदा धन, सुख और ग़रूर है।

सचमुच, धनमें ही सारे गुण हैं। धनसे ही मनुष्य मनुष्य है; धन बिना मनुष्य मृतक है। धनहीनका मर जाना या बनमें रहना भला, क्योंकि धनहीनका कोई भी आदर नहीं करता। और तो क्या, सगे माँ-बाप और स्त्री तक धनहीनको नफ़रतकी नज़रसे देखते हैं। इसीलिये समझदार लोग जब उद्योग करनेपर भी धनको प्राप्त नहीं कर सकते—सब कुछ करके थक जाते हैं, तब अपमानके भयसे बनमें चले जाते हैं—

कहा है:—

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्र सेवितम्।
द्रुमालयः पक्व फलाम्बु भोजनम्॥

तृणानि शय्या परिधान वल्कलम् ।
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥

सिंह व्याघ्रादिवाले वनमें पेड़के नीचे बसना, पके-पके फल खाना, जल पीना और घास की शय्यापर सोना भला; पर भाई-बन्धुओंके बीचमें निर्धन होकर रहना भला नहीं ।

और भी कहा है —

यत्र देशेऽथवा स्थाने भोगान्भुक्ता स्ववीर्य्यतः ।
तस्मिन् विभवहीनो यो वसेत्स पुरुषाधमः ॥

जिस देश या जिस स्थानमें अपने पराक्रमसे अनेक भोग भोगे हों, उसी स्थानमें जो धनैश्वर्य्यहीन होकर रहता है, वह नीच है ।

धनसे ही मनुष्यमें मान, दर्प, विज्ञान, विलास और बुद्धि प्रभृति होते हैं और धनके साथ ही ये सब नष्ट हो जाते हैं। बुद्धि प्रभृति रहें कहाँसे ? कुटुम्बके भरण-पोषणकी चिन्ता इन सबको नष्ट कर देती है। धनके नाश होनेपर निश्चय ही मनुष्यकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। उसे रात-दिन घी, तेल, नमक, चाँवल, कपड़े और ईंधनकी चिन्ता लगी रहती है। जब बुद्धि ही नष्ट हो गई, तब मनुष्यमें रहा ही क्या ? वह तो बिना पतवारकी नाव हो गई। इसलिये जीवनका बेड़ा पार करनेके लिये मनुष्यको धन

अवश्य ही संग्रह करना चाहिये। धन बिना धर्म भी नहीं होता। धर्म और अर्थ आपसमें एक दूसरेकी पुष्टि करते हैं। अर्थ—धन द्वारा धर्म अर्जित होता है। धन प्राप्त होनेपर या इन्द्रियोंके तृप्त होनेपर जो सुख मिलता है, उसे 'काम' कहते हैं। मनुष्य सुखसेव्य द्रव्यके भोगसे जिस प्रसन्नताको प्राप्त होते हैं, वही कामका फल है। उसके उपयोगसे वञ्चित होनेपर मानव जन्म निष्फल हो जाता है। अर्थ और कामके त्रिवर्गमें परिगणित होनेसे—धर्म, अर्थ और काम—इन त्रिवर्गके प्रति समान यत्न करना पड़ता है। मनुष्यको दिनके पहले भागमें धर्माचरण, दूसरे भागमें अर्थ-सञ्चय और तीसरे भागमें कामानुशीलन करना चाहिये। जो यथासमय त्रिवर्ग-साधन करते हैं, वे धर्मतत्वके जाननेवाले पण्डित हैं। धन बिना धर्म और कामकी प्राप्तिमें बाधा पड़ती है; इसलिये धनोपार्ज्जन अवश्य ही करना चाहिये और साथ ही सञ्चित धनकी रक्षा करनी चाहिये*। धनसे स्वयं सुख भोगना चाहिये और उसे सत्पात्रोंको देकर पुण्य-संचय करना चाहिये। धनकी गर्मी मनुष्यके तेजको बढ़ाती है और यदि उसका भोग और त्याग हो, तब तो कहना ही क्या?

---

* लक्ष्मी कैसे आती है, किनके पास आती है और लक्ष्मी प्राप्त करनेके लिए मनुष्यको क्या करना चाहिये—ये सब बातें हमने विस्तारपूर्वक इसी पुस्तकके ८८ वें श्लोकके नीचे लिखी हैं।

दोहा—सोइ पंडित वक्ता गुणी, दर्शन योग कुलीन।
जाके ढिंग लक्ष्मी अहे, सब गुण तिहिं आधीन ॥४१॥

41. That man is nobly born and he is wise as well as qualified and he is to be considered a good speaker as well as a personage fit to be seen, who has wealth. All the good qualities rest in the possession of gold.

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः संगात्सुतो लालना-
द्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ॥
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयान्मैत्री
चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥४२॥

दुष्ट मन्त्रीसे राजा, संसारियोंकी संगतिसे संन्यासी, लाड़से पुत्र, न पढ़नेसे ब्राह्मण, कुपुत्रसे कुल, खलकी सेवासे शील, मदिरा पीनेसे लज्जा, देख-भाल न करनेसे खेती, विदेशमें रहनेसे स्नेह, प्रीति न करनेसे मित्रता, अनीतिसे सम्पत्ति और अन्धाधुन्ध ख़र्च करनेसे धन नष्ट हो जाता है।

जो मन्त्री दिलसे राजाका भला चाहता है, समयपर राजाको उचित सलाह देता है, राजाके धनको स्वयं नहीं हड़पता, रिश्वत नहीं खाता, व्यसन और व्यभिचारसे परहेज़ करता है, प्रजाको सन्तुष्ट करके राजाका धन बढ़ाता है, स्वार्थसाधनके लिये राजाको कुपथपर नहीं चलाता; बल्कि

राजा यदि कुपथपर चलता है, तो निर्भय होकर राजा और राज्यकी भलाईके लिये राजाको रोकता है, वही मन्त्री अच्छा होता है, उससे राजाका राज नष्ट नहीं होता, किन्तु यदि मन्त्री विपरीत गुणोंवाला होता है, अपना उल्लू सीधा करनेके लिये राजाके व्यभिचारादि निन्द्य कर्मोंका समर्थन करता है, वह राजाका वैरी होता है। वैसे मन्त्रीको कुमन्त्री कहते हैं। कुमन्त्रीकी कुमन्त्रणाओंसे राजा अवश्य ही नष्ट हो जाता है।

कहा है—

लुब्धस्य नश्यति यशः पिशुनस्य मैत्री ।
नष्टक्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्मः ॥
विद्याफलं व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यं ।
राज्यं प्रमत्त सचिवस्य नराधिपस्य ॥

लोभीका यश, चुगलकी मित्रता, नष्ट-क्रियावालेका कुल, लोभीका धर्म, कामासक्तका विद्याफल, कृपणका सुख और खराब मन्त्रीवाले राजाका राज्य नष्ट हो जाता है। राजा और राज्य एक ही बात है। राज्य नष्ट होगा तो राजा नष्ट होगा और राजा नष्ट होगा तो राज्य नष्ट होगा। शकुनिकी मन्त्रणासे दुर्योधन नष्ट हुआ और दुर्योधनके नष्ट होनेसे कौरवोंका राज्य ही नष्ट हो गया। शकटारने अपने अन्न-दाता राजाको खोटी-खोटी सलाहें देकर राजा और राज्यका

विनाश करा दिया। वह ऊपरसे राजासे मीठी-मीठी बातें करता और जो सलाह देता वह राजाके विनाशकी; क्योंकि भीतरसे वह दुष्ट राजाके वैरी चाणक्यमें मिला रहता था।

संन्यासी—संसार-त्यागी वैरागी गृहस्थोंकी और विशेषकर स्त्रियोंकी सङ्गतिसे नष्ट हो जाता है, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। "गुलिस्ताँ" में एक कहानी है—"दमस्कस शहरके निकटके एक वनमें एक फ़क़ीर रहता था। वह पेड़ोंके पत्ते खाकर जीवन-निर्व्वाह करता था। एक रोज़ वहाँका बादशाह उसके दर्शन करने गया और उसे बहुत कुछ कह-सुनकर अपने शहरमें ले आया। अपने निजके बाग़में उसका डेरा करा दिया और चन्द अव्वल दर्जेकी ख़ूबसूरत दासियाँ उसकी सेवामें नियुक्त कर दीं। चन्द रोज़ बाद ही वह फ़क़ीर उत्त-मोत्तम भोजन करने और भाँति-भाँतिकी बढ़िया पोशाकें पहनने तथा कँवारी स्त्रियों और उनकी सहेलियोंकी सुहबतका आनन्द लूटने लगा। बहुत लिखना वृथा है, वह पूरा अमीर और ऐयाश बन गया। महापुरुषोंने जो कहा है कि, सुन्दरी युवतीकी जुल्फें विचारशक्तिके पैरोंकी बेड़ियाँ और अक़्लकी चिड़ियाका फन्दा हैं—यह बात सोलह आने ठीक हुई।

"एक दिन बादशाह फिर उस फ़क़ीरसे मिलने गया। उसने देखा कि फ़क़ीरका रङ्ग-रूप ही बदल गया है। वह खूब मोटा-ताज़ा हो गया है और शरीरका रङ्ग गुलाबसा

हो गया है। वह एक रेशमी मसनदके सहारे लेटा हुआ है और एक परीज़ाद-सा उसके पीछे खड़ा मोरछल कर रहा है। कुछ बातचीतके बाद बादशाहने कहा—"मुझे विद्वान् और एकान्तवासी संन्यासी अच्छे लगते हैं।" एक अनुभवी और समझदार मन्त्रीने कहा,—'हुजूर! आप विद्वानोंको धन दें, जिससे और लोग भी विद्वान् बनें और संसारत्यागी संन्यासियोंको कुछ भी न दें, जिससे उनकी विरक्ति बनी रहे।' बादशाह बुद्धिमान मन्त्रीकी बातसे खुश हुआ और अपने किये पर पछताया।"

उन अमीरोंको जो साधुओंको बुलाकर मख़मली गद्दे-तकियोंपर बिठाते हैं, उन्हें उत्तमोत्तम षट्रस भोजन कराते हैं, मोटरों और बग्गियोंमें हवा खिलाते हैं, युवतियोंको उनकी सेवामें नियुक्त करते हैं—इस कहानीसे सबक़ सीखना चाहिये और वैरागियोंको तो इससे खूब ही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। उन्हें खूब ख़याल करना चाहिये कि, इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं; ये सदा मनुष्यको विषयोंकी ओर खींचकर ले जानेकी चेष्टा किया करती हैं। विश्वामित्र जैसे तपस्वी मेनकाके रूपजालमें फँसकर तप भङ्ग कर बैठे; शङ्कर जैसे योगीश्वर मोहिनीकी रूपच्छटापर मुग्ध होकर अपनी अक्ल खो बैठे और पाराशर नावमें ही नाविककी कन्यापर लट्टू हो गये। जब ऐसे-ऐसे जितेन्द्रियोंके दिल मोहिनियोंकी मोह-पाशमें फँस गये,

तब साधारण साधु-संन्यासी किस बाड़ीके बथुए हैं ? कहा है:—

तीव्र तपसमें लीन, नहिं कर इन्द्रिय विश्वास ।
विश्वामित्र जु मेनका, कण्ठ लगाइ हुलास ॥

गिरधर कविराय भी कहते हैं :—

रहनो सदा एकान्त को, पुनि भजनो भगवन्त ।
कथन श्रवण अद्वैतको, यही मतो है सन्त ॥
यही मतो है सन्त, तत्वको चिंतवन करनो ।
प्रत्यक ब्रह्म अभिन्न, सदा उर अन्तर धरनो ॥
कह गिरधर कविराय, वचन दुर्जन को सहनो ।
तजके जन-समुदाय, देश निर्जन में रहनो ॥
बहता पानी निर्मला, पड़ा गन्ध सो होय ।
त्यों साधु रमता भला, दाग न लागे कोय ॥
दाग न लागै कोय, जगतमें रहै अकेला ।
राग द्वेष युत प्रेत, न चित्तको करै विछेदा ॥
कह गिरधर कविराय, शीत उष्णादिक सहता ।
होइ न कहुँ आसक्त, यथा गंगा जल बहता ॥

लाड़ या दुलारसे पुत्र निस्सन्देह ख़राब हो जाता है । अनेक लोग बचपनमें अपने लड़कोंका इतना लाड़ करते हैं, कि उसकी हद नहीं । लड़के नीचोंकी सङ्गतिमें रहने लगते हैं, तो उन्हें मना नहीं करते । वे जूआ खेलते, सिगरेट-तम्बाकू पीते,

वेश्याओंमें जाते हैं, तो भी चुप्पी साध जाते हैं। पीछे वही लड़के जब बड़े हो जाते हैं, तब माता-पिताका कलेजा जलाते हैं। उस वक्त क्या हो सकता है ? बड़े होनेपर, वे एक नहीं सुनते। बाज़े बाज़े तो अपने जनक-जननीपर ही हाथ तक उठाने लगते हैं। विद्वानोंने कहा है—"मिट्टीके कच्चे घड़ेपर जैसे निशान बनाइये, बन जायँगे ; पर पक्के घड़ेपर निशान नहीं हो सकते। हरी लकड़ीको चाहे जितना मोड़ लीजिये, वह मुड़ जायगी ; सूखनेपर वह नहीं मुड़ सकती।" जिसका बचपनमें लाड़ किया जाता है—सत् शिक्षा नहीं दी जाती, वह बड़ा होनेपर गुणवान् और शीलवान् नहीं होता। इसलिये कहा है :—

लालने बहुवो दोषाः, ताड़ने बहुवो गुणाः ।
तस्मात् पुत्रंच शिष्यंच, ताडयेत् न तु लालयेत् ॥

लाड़ करनेमें बहुतसे दोष हैं ; ताड़ना करनेमें बहुतसे गुण हैं ; इसीलिये पुत्र और शिष्यको ताड़ना देनी चाहिये, लाड़ न करना चाहिये। "गुलिस्ताँ" में भी कहा है—

वर सरे लौह ओ नविश्तः बजर ।
ज़ोरे उस्ताद बह, जे मेहरे पिदर ॥

यह बात सोनेके अक्षरोंमें लिखी जाने योग्य है ; कि माँ-बापके लाड़से शिक्षककी ताड़ना अच्छी है ; पर ताड़नाका यह मतलब नहीं, कि लड़के डण्डोंसे पीटे जावें। मारने

पीटनेसे लड़के अकसर ख़राब होते देखे जाते हैं। आँखोंसे जो काम होता है, वह डण्डेसे नहीं होता।

ब्राह्मणका सबसे पहला काम ब्रह्मचर्य्य व्रत रखकर विद्या पढ़ना है; जो ब्राह्मण विद्याऽध्ययन नहीं करता, वह निस्सन्देह नष्ट हो जाता है। पर आजकल अधिकांश ब्राह्मण-सन्तान रोटियाँ पकाने, पानी भरने, दरबानी करने या अन्यान्य सेवा-वृत्ति करके जीवन-निर्वाह करनेमें ही अपने कर्त्तव्यकी इति-श्री समझते हैं। आजकल बहुतसे ब्राह्मण अपने मनमें इस बातको समझ बैठे हैं, कि हम मन्वादिक स्मृतिकारोंकी आज्ञा पालन करें चाहे न करें, हम वेदोंका पठन-पाठन और यज्ञ-हवनादि कर्म करें चाहे न करें, हमें हमारे ब्राह्मणत्व-पदसे कोई उतार नहीं सकता। हम चाहे परले सिरेके अज्ञानी, कुकर्मी, जूआ-चोर और व्यभिचारी ही क्यों न हों—हैं हम ब्राह्मणके ब्राह्मण। पहले वेदके न जाननेवाले ब्राह्मणको लोग श्राद्ध तकमें निमन्त्रण न देते थे, अपढ़ ब्राह्मणसे कोई कर्मकाण्ड न कराते थे, क्योंकि शास्त्रकारोंने वेदके न जाननेवालेका कराया हुआ श्राद्ध मृतकवत् कहा है; इसीलिये ब्राह्मण लोग, कम-से-कम अपनी उपजीविकाके ख़यालसे, अवश्य ही वेदपाठी होते थे। आजकल अधिकांश द्विवेदी त्रिवेदियोंकी सन्तान जमादारी करतीं, रसोईगीरी करतीं या बसूला चलाती हैं। बहुसंख्यक चतुर्वेदियोंने तो माँगना-खाना ही अपना काम समझ लिया है। हम यह नहीं कहते कि, सभी ब्राह्मण

विद्वान् नहीं; विद्वान् भी होते हैं; पर जिन्हें विद्वान् कहना चाहिये, जिन्हें वेदके पूर्ण ज्ञाता कहना चाहिये, बड़ी कठिनतासे, खोजनेपर मिलते हैं। गुरुओंका अधःपतन होनेसे शिष्योंका भी अधःपतन हो रहा है। हमने ये पंक्तियाँ अपने गुरुओंकी निन्दा या हँसी करनेकी ग़रज़से नहीं लिखी हैं। हमारे अन्तरात्मामें वेदना होती है, हमें गुरुओंका अधःपतन खटकता है, इसीसे लिखी हैं।

प्राचीन समयमें ब्राह्मण आदि चारों वर्ण समझते थे, कि जाति—गुण और कर्मसे है—जन्मसे नहीं; इसीसे वे गुण सम्पादन करनेकी फिक्र करते थे और धर्मशास्त्रपर चलते थे। प्रत्येक वर्ण अपने-अपने कर्म करता था। जबसे यह डर मिटा; लोग समझने लगे कि, हम चाहे मिस्त्रीगीरी करें अथवा बावर्चीगीरी करें—रहेंगे वही जो हैं; अर्थात् ब्राह्मणकी सन्तान ब्राह्मण, क्षत्रियकी सन्तान क्षत्रिय और वैश्यकी सन्तान वैश्य ही कहलायेगी। संसारमें भयसे ही काम होता है। दण्ड-भयसे ही जगत्‌में शान्ति है। अगर दण्ड-भय न हो, तो एक मनुष्य दूसरेकी चटनी कर खाय।

शुक्राचार्य्य महाराज लिखते हैं—

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभिः॥
ब्रह्मणस्तु समुत्पन्नाः सर्वेते किं नु ब्राह्मणः।
न वर्णतो न जनकाद् ब्राह्म्यं तेजः प्रपद्यते॥

ज्ञान-कर्मोपासनाभिर्देवताराधने रतः।
शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणश्च गुणः कृतः॥
इज्याध्ययन दानानि कर्माणि तु द्विजन्मनाम्।
प्रतिग्रहो ध्यापनं च याजनं ब्राह्मणेधिकम्॥
सर्वाधिको ब्राह्मणस्तु जायतेहि स्वकर्मणा॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और म्लेच्छ—ये सब जन्मसे नहीं होते ; किन्तु गुण और कर्मसे होते हैं।

यों तो सभी जीव ब्रह्मासे ही पैदा हुए हैं। क्या वे सभी ब्राह्मण हो सकते हैं ? कभी नहीं। वर्ण और पितासे ब्रह्मतेजकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

जो मनुष्य ज्ञान और कर्मसे देवताओंकी उपासना-आराधनामें लगा रहता है एवं शान्त, जितेन्द्रिय और दयालु होता है,—वही ब्राह्मण होता है।

यज्ञ करना, पढ़ना और दान देना,—ये द्विजातियों यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके कर्म हैं। दान लेना, यज्ञ करना और पढ़ाना—ये तीन कर्म ब्राह्मणके लिये अधिक हैं।

ब्राह्मण अपने कर्मके कारणसे ही सबसे अधिक माना जाता है।

अब अगर हम इन सब बातोंकी विस्तृत आलोचना करें, तो पचासों पृष्ठ इस एक ही विषयसे काले हो जायँ। इस ग्रन्थमें इन बातोंको इतना भी लिखना उचित नहीं ;

और भी विस्तृत रूपसे लिखना तो और भी अनुचित होगा। पाठक स्वयं ऊपरकी महात्मा शुक्राचार्य्यकी कही हुई बातोंपर विचार करें। इशारा हमने कर दिया है। कितने ब्राह्मण शान्त, जितेन्द्रिय और दयालुचित आपको नज़र आते हैं ? कितने अपने कर्त्तव्य-कर्मोंपर आरूढ़ दिखाई देते हैं ? विचार करें कि क्रोध, अजितेन्द्रियता और अशान्तताका ठेका आजकल, किसने ले रक्खा है ? जिन भूदेवोंसे पहले बड़े-बड़े महीपाल थरथर काँपते थे, उनके स्वागतके लिये नगरद्वार तक जाते थे, उनकी आजकी हालत देखकर हमारी काठकी क़लम भी रोती है, इसीसे हमने ये पंक्तियाँ लिखी हैं। अगर यही दशा और सौ-पचास वर्ष रही, तो क्या ब्राह्मण—वास्तविक ब्राह्मण—अमेरिकाके रेड इण्डियनोंकी तरह दुष्प्राप्य और दुर्लभ न हो जायँगे ? और जब गुरु न रहेंगे—उपदेशकोंका अभाव हो जायगा, तब हम शिष्योंकी और भी अधोगति न हो जायगी ? हमारा तो यही कहना है—हमारे गुरु योगिराज भर्तृहरिके "विप्रोऽनध्ययनात् नश्यति" ब्राह्मण विद्या न पढ़नेसे नष्ट हो जाते हैं—इस महोपदेशपर ध्यान धरें ; तभी भारतका मंगल होगा। ब्राह्मण जाति ही भारतकी उन्नति और अवनतिकी मूल-कारण है।

कपूतसे कुल नष्ट हो जाता है,—इस बातको प्रायः सभी जानते हैं ; तो भी दस-पाँच पंक्तियाँ लिखनेमें हर्ज नहीं।

कपूतसे न माता-पिताको सुख मिलता है, न बन्धु-बान्धवोंका भला होता है। कपूत चोरी, अन्याय, व्यभिचार, परस्त्री-हरण, गुण्डागीरी प्रभृति ऐसे-ऐसे कुकर्म करता है, जिनसे उसे स्वयं पिटना पड़ता और जेलकी हवा खानी पड़ती है; इससे माता-पिताका हृदय जलता और कुलमें कालिमा लगती है। सपूत कुलको ऊँचा उठाता है और कपूत कुलको रसातलमें पहुँचाता है। कौरवकुलको एक कपूत दुर्योधनने नष्ट ही कर दिया। कहा है—

एकेन शुष्क वृक्षेण, दह्यमानेन वह्निना।
दह्यते तद्वनंसर्वं, कुपुत्रेण कुलं यथा॥

आगसे जलता हुआ एक ही सूखा वृक्ष सारे बनको नष्ट कर देता है; उसी तरह एक कपूतसे कुल नाश हो जाता है।

शेख सादीने कहा है—

ज़नाने बारदार ऐ मर्द हुशियार।
अगर बक्त विलाहत मार ज़ायेंद॥
अज़ां बेहतर के नज़दीके ख़िरदमन्द।
के फ़र्ज़न्दाने ना हमबार ज़ायेन्द॥

कपूत जननेकी अपेक्षा अगर जननी सर्प जने, तो बुद्धिमान उसको अच्छा समझता है।

हमारे यहाँ भी कहा है—

> वरं गर्भस्रावो, वरम् ऋतुषु नैवाभिगमनं।
> वर जात प्रेतो, वरमपि च कन्यैवजनिता॥
> वरं वन्ध्या भार्य्या, वरमपि च गर्भेषु वसतिर्न।
> चाविद्वान् रूपद्रविण गुण युक्तोपि तनयः॥

गर्भ गिर जाना भला, ऋतुस्नानके बाद स्त्रीके पास न जाना अच्छा, पैदा होते ही मर जाना भला, कन्या पैदा होना भला, स्त्रीका बाँझ रहना भला, गर्भमें रहना ही भला; परन्तु रूप-धन सम्पन्न मूर्ख—कपूत—का पैदा होना भला नहीं।

दुष्टकी संगतिसे सुशीलता नाश हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं। इस विषयमें पहले कई बार लिख आये हैं। एकवार लिखी बातको बारम्बार लिखनेसे कोई लाभ नहीं। दुश्चरित्र कोई भी हो; चाहे स्वामी हो, चाहे सेवक हो, चाहे मित्र हो चाहे पड़ोसी—दुश्चरित्रकी संगतिसे सच्चरित्र भी नष्ट हो जायगा।

मदिरा-पान करनेकी चाल प्राचीन कालसे ही चली आती है। शास्त्रोंमें लिखा है, मदिराके परिमित रूपसे या मात्रासे पीनेसे बुद्धि फुरती है, श्रेष्ठता, धीरता और चित्तके निश्चयका विस्तार होता है एवं स्वास्थ्य-लाभ और शोक नाश होता है। वैद्यक-ग्रन्थोंमें लिखा है कि, मदिरासे बढ़कर शोकनाशक पदार्थ

और है ही नहीं; पर बुद्धिमानोंको इससे सर्वथा दूर ही रहना चाहिये। थोड़ी-थोड़ी पीनेसे यह बढ़ जाती है और अत्यन्त पीनेसे बुद्धिका लोप और विनाश होता है। इससे सब अनर्थोंके मूल काम और क्रोधकी उत्पत्ति होती है। विकलता, पृथ्वीपर गिरना, मनमें आवे सो बकना प्रभृति जो लक्षण सन्निपातमें होते हैं, वही सब इस मद्यमें होते हैं। मनुष्यके हाथ काँपने लगते हैं, कपड़े-लत्तोंकी सुध नहीं रहती, नंगे हो जानेसे भी लाज नहीं आती। पश्चिम दिशामें सूर्य्यके अस्त होते समय तेजहानि और रागता प्रभृति जो दशा सूर्य्यकी होती है, वही दशा शराबीकी होती है। क्रोध और निर्लज्जता इसके सबसे बड़े दुर्गुण हैं। शराबी माता, पिता, बहन और बेटी तकके सामने ऐसी बेशरमी करता है, जिसके लिखनेमें काठकी क़लम भी लजाती है। कहा है—

एकतश्चतुरो वेदा, ब्रह्मचर्यं तथैकतः।
एकतः सर्व पापानि, मद्यपानं तथैकतः॥

एक ओर चारों वेद, एक ओर ब्रह्मचर्य, एक तरफ सारे पाप और एक तरफ मद्यपान।

किसी कविने कहा है—

मद्यव्यसन सों मत्त नर, करै न निश्चर काम।
मद्य पीय यादव गये, तृण प्रहरण यमधाम॥

मद्य पीनेसे ही यादव-कुल नष्ट हो गया। मद्य पीकर यादवगण इतने निलज्ज हो गये थे, कि उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान्की भी कान न की।

विदेशमें रहनेसे स्नेह निश्चय ही घट जाता है। प्रीतिसे प्रीति बढ़ती है और अप्रीतिसे प्रीति घटती है। कठोर बचनसे कौन मित्र रह सकता है? कहा है—

तीक्ष्ण वाक्यात् मित्रमपि, तत्कालं याति शत्रुताम्।
वक्रोक्ति शल्यमुद्धर्तुं तु, न शक्यं मानसंयतः॥

कठोर बचनसे मित्र भी तत्काल शत्रु हो जाता है; क्योंकि कठोर बचनके शल्यको मनसे कोई नहीं निकाल सकता। नम्रता और मधुर-भाषणसे ही संसारी लोग प्रसन्न होते हैं; सभी इनसे वशमें हो जाते हैं; तब मित्रकी तो बात ही क्या? मित्रका गुप्त भेद प्रकाशित करना, माँगना, निष्ठुरता करना, क्रोध करना, झूठ बोलना और चित्तको चंचल रखना ये मित्रताके दूषण हैं। इनके होनेसे मित्रता नहीं रहती। इन दुर्गुणोंको त्यागकर, मित्रसे निष्कपट प्रीति करो, हर बातमें अनुराग दिखाओ, मित्रता हरगिज़ न टूटेगी। मीठा बोलने और नम्र व्यवहार करनेसे वनमें भी श्रीरामचन्द्रजीके लाखों-करोड़ों बानर और रीछ मित्र हो गये, तब मनुष्यका तो कहना ही क्या?

अनीतिसे ऐश्वर्य्यका निश्चय ही नाश हो जाता है। जिन्होंने अनीति की, उनका धन-वैभव नाश ही हुआ। दुर्योधनकी अनीतियोंसे कौरवकुलकी श्री नष्ट हो गई। बालिने छोटे भाईकी स्त्रीको अपनी स्त्री बनानेकी अनीति की। रावणने बलके मदसे अन्धे होकर देवताओं और ब्राह्मणोंपर अत्याचार किये, जगज्जननी सीताको कामके वश होकर चुरा ले गया, भगवद्भक्तोंको अनेक प्रकारके कष्ट दिये और ग़रीबोंका धन हरण किया—नतीजा यह हुआ, कि बालि और रावण दोनोंका धनैश्वर्य्य नाश हुआ। मुग़ल-सम्राट् औरंगज़ेबने पूज्यपाद पिता शाहजहाँको कैद किया, भाइयोंको बड़ी दुर्गतिसे क़त्ल कराया, हिन्दुओंका धर्म-नाश करके ज़बर्दस्ती मुसल्मान बनाया और जज़िया वग़ैरः टैक्स लगाकर अनेकानेक अन्याय और अत्याचार किये। परिणाम यह हुआ कि, मुग़लिया सलतनतकी नींव हिल गई। उसके बाद जो दो-चार बादशाह हुए, वे नाममात्रके ही बादशाह हुए। 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा'—कहलानेवाले ख़ान्दानकी श्री समूल नष्ट हो गई। आज उस ख़ान्दानके अनेक लोग पराधीन होकर अपना जीवन बिता रहे हैं। सुनते हैं, कोई-कोई मजदूरी तक करके पेट पाल रहे हैं। अनीतिसे भगवान्को चिढ़ है। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

निडर अनय कर अनकुशल, बीस बाहु सम होय।

निःशंक होकर अनीति करनेवाला यदि बीस भुजावाला रावणके समान ही क्यों न हो, उसकी कुशल नहीं।

धनको समझ-बूझकर खर्च करना चाहिये। जो विना समझे अंधाधुन्ध खर्च करते हैं, वे एक दिन अवश्य ही कंगाल हो जाते हैं। हिमालयके समान धन भी लगातार खर्च करनेसे एक न एक दिन चुक ही जाता है। जिस कूएमें पानीका सोता न हो, उससे अगर कोई जल निकाले ही जाय, तो एक दिन वह रीता हो जायगा। जिसके अस्सीकी आमदनी और चौरासीका खर्च होता है, उसका एक न एक दिन दिवाला अवश्य ही निकल जाता है। कहा है—

> क्षिप्रमायमनालोच्य व्ययमानः स्ववाञ्छया।
> परिक्षीयते एवासौ धनी वैश्रवणोपमः॥
> अति दानेन दारिद्र्यं, तिरस्कारोति लोभतः।
> अत्याग्रहान्नरस्यैव, मौर्ख्यं संजायते खलु॥

शीघ्रही आमदनीको न देखकर, अपनी इच्छानुसार खर्च करनेसे कुवेरके समान धनवान भी दरिद्र हो जाता है।

अत्यन्त दानसे दरिद्रता, अत्यन्त लोभसे तिरस्कार और अत्यन्त आग्रहसे मनुष्यकी निश्चय ही मूर्खता होती है।

छप्पय—कुत्सित-मन्त्री भूप, सन्त बिनसत कुसंगतें।
लाड़लड़ाये पूत, गोत कन्या कुढंगतें॥
बिन विद्यातें विप्र, शील खल संग लिये तें।
होत प्रीतिको नाश, बास परदेश किये तें॥
बनिता बिनता मदहाससों, खेती बिन देखे दृगन।
सुख जात अनय अनुरागतें, अति प्रमादतें जात धन॥४२॥

42. A king is ruined by bad counsel, a celibate by (bad) company, a son by (too much) fondling, a Brahman by absence of study, a family by (the birth of) a bad son, (one's) character by the society of profligate persons, modesty by wine, agriculture by want of care, love by living abroad, friendship by arrogant behaviour, prosperity by unfair dealing and wealth by (too much) expense and lavishness.

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥४३

दान, भोग, और नाश—धनकी यही तीन गति हैं। जिसने न दिया और न भोगा, उसके धनकी तीसरी गति होती है।

जो अपने कमाये हुए धनको न आप भोगता है और न किसीको देता है, उसका धन नाश हो जाता है; या तो उसे चोर ले जाते हैं या राजा छीन लेता है। "गुलिस्ताँ"में

लिखा है—"धन द्वारा दीन-दुखियोंकी सहायता करनेसे आफ़त टलती है। जो दुखियोंको धन नहीं देते, उनका धन अत्याचारी ज़बर्दस्ती छीन लेते हैं। मनुष्यको चाहिये, कि अच्छे दिनोंमें अपने धन-मालको दुःखियोंके दुःख दूर करनेमें लगावे; जिससे इस लोक और परलोकमें भला हो। जो न स्वयं भोगते और न दूसरोंको देते हैं, उनका धन नाश हो जाता है और दूसरे लोग उन कंजूसोंके धनको बड़ी बेदर्दीसे ख़र्च करते हैं। मैंने एक बुद्धिमानसे पूछा—"कौन भाग्यवान और कौन अभागा है?" उसने कहा—जिसने खाया और भोगा वह भाग्यवान है; किन्तु जिसने भोगा नहीं, लेकिन छोड़कर मर गया, वह भाग्यहीन या अभागा है।"

कहा है,—

न देवाय न विप्राय न बन्धुभ्यो न चात्मने।
कृपणस्य धनं याति वह्नितस्कर पार्थिवैः॥

धनेन किं यो न ददादि नाश्नुते
बलेन किं यश्च रिपून्न बाधते।
श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत्
किमात्मनायो न जितेन्द्रियो भवेत्।

कंजूस अपने धनको न देवताके काममें ख़र्च करता है, न ब्राह्मणको देता है, न भाई-बन्धुओंको देता है और न अपने काममें लाता है। कंजूसका धन या तो आगमें जल जाता है या चोर ले जाते हैं अथवा राजा छीन लेता है।

उस धनसे क्या जो न दान किया गया न भोगा गया ? उस बलसे क्या जिससे शत्रु न दबाया गया ? शास्त्र सुननेसे क्या, यदि उसका आचरण न किया गया ? उस आत्मासे क्या, जो जितेन्द्रिय न हुआ ?

वृन्दने भी कहा है—

खाय न खर्चै सूम धन, चोर सबै ले जाय।
पीछे ज्यों मधुमच्छिका, हाथ मले पछताय॥

गिरधर कविरायने भी कहा है:—

खायो जाय जो खायरे, दियो जाय सो देह।
इन दोनोंसे जो बचै, सो तुम जानो खेह॥
सो तुम जानो खेह, सिके पुनि काम न आवे।
सर्व शोकको बीज, पुनः पुनि तुझे रुलावे॥
कह गिरधर कविराय, चरण त्रै धनके गायो।
दान भोग बिन नाश होत, जो दियो न खायो॥

सोरठा—*दान भोग अरु नाश, तीन होत गति द्रव्यकी।*
नाहिन द्वैको बास, तहाँ तीसरो बसत है॥४३॥

43. There are three ends to riches, i. e., giving away in charity, enjoyment (of pleasures) and destruction. The wealth of a man who neither spends it on charity nor on his enjoyments has only the third course (i. e., it is destroyed).

**मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतो
मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः
कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालललना तनिम्ना
शोभंते गलितविभवाश्चार्थिषु नृपाः ॥४४॥**

सानपर ख़रादी हुई मणि, हथियारोंसे घायल विजयी योद्धा, मदक्षीण हाथी, शरद ऋतुकी सूखे किनारों और अल्प-जलवाली नदी, कलाहीन दूजका चन्द्रमा, सुरतके मर्दन चुम्बन आदिसे थकी हुई नवयुवती और अपना सारा ही धन दान करके दरिद्र हुए सज्जन पुरुष—ये सब अपनी हानि या दुर्बलतासे ही शोभा पाते हैं।

हीरा प्रभृति रत्न सानपर रखकर घिसे जाते हैं, तो पहलेसे अधिक सुन्दर हो जाते हैं, उनका कुछ अंश क्षय होनेसे उनकी खूबसूरती और भी बढ़ जाती है। हथियारोंसे सजा हुआ विजयी योद्धा अच्छा जान पड़ता है, पर जिस विजयीके शरीरमें शस्त्रोंके घाव हो रहे हों, उसकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती है। जाड़ेके मौसममें नदीके किनारोंसे जल हटकर बीचमें रह जाता है, वह जल यद्यपि थोड़ा होता है, पर बड़ा ही साफ होता है; उस समय जलके घटनेसे वह सूखे किनारोंवाली और थोड़े जलवाली नदी बड़ी सुन्दर मालूम होती है। चन्द्रमा ऐसे ही मनोहर है, पर जब द्वितीयाको वह घटी हुई कलाओंसे क्षीणावस्थामें उदय होता है, तब

उसका सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। नवयुवती षोड़शी बाला स्त्री ऐसे ही सुन्दरी होती है, पर आलिङ्गन चुम्बन आदिसे जब उसका बल कुछ क्षीण हो जाता है, तब वह और भी अधिक सुन्दरी जान पड़ती है। इसी तरह दानी पुरुष जब अपना सारा ही माल-खज़ाना याचकोंको लुटाकर दरिद्र हो जाते हैं, तब उनकी शोभा बहुत ही बढ़ जाती है। तात्पर्य यह है कि, मणि और योद्धा प्रभृतिकी शोभा क्षीणतासे उल्टी बढ़ जाती है। विशेष करके वह दानी जो अपने दानके कारण दरिद्र हो जाता है, सबसे अधिक शोभायमान लगता है। उसकी जितनी ही प्रशंसा की जाय थोड़ी है। महाराज हरिश्चन्द्र और राजा वलिने अपना सर्व्वस्व दान करके जो शोभा और अक्षय कीर्त्ति सम्पादन की है, वह प्रलय काल तक स्थिर रहेगी।

कुण्डलिया—*छोटी हू नीकी लगे, मणि खरषाण चढ़ीसु।*
बीर अंग कटि शस्त्रसों, शोभा सरस बढ़ीसु॥
शोभा सरस बढ़ीसु, अंग गज मदकर छीनहि।
द्वैज कला शशि सोह, शरादि सरिता जिमि हीनहि॥
सुरत दलमली नार, लहत सुन्दरता मोटी।
अर्थिनको धन देत, घटी सो नाहिंन छोटी॥४४॥

44. The following look even more beautiful in their loss:—A precious stone after being polished on a grinding-stone, a victorious warrior after being wounded in a battle, an elephant after having

exhausted its *mada* (restiveness), a stream after its sandbanks have been left dry in winter, a new moon (after she has lost all her brightness), a young woman after she has been exhausted by cohabitation and a king after he has spent all his treasury in charity to mendicants.

परिक्षीणः कश्चित्स्पृहयति यवानां प्रसृतये
स पश्चात्संपूर्णः कलयति धरित्रीं तृणसमाम् ॥
अतश्चानैकान्त्याद्गुरुलघुतयाऽर्थेषु धनिना-
मवस्था वस्तूनि प्रथयति च संकोचयति च ॥४५॥

जब मनुष्य दरिद्री होता है, तब तो एक पस्से जौकी भूसीकी इच्छा करता है; पर वही मनुष्य जब धनवान हो जाता है, तब सारी पृथ्वीको तिनकेके समान समझने लगता है। इससे स्पष्ट है, कि मनुष्यकी विशेष अवस्थायें ही पदार्थमें अपनी लघुता या गुरुताके कारण भिन्नता पैदा करती हैं; कभी उन्हीं वस्तुओंको फैलाती और कभी सुकेड़ती हैं; अर्थात् धनावस्था और दरिद्रावस्था ही मनुष्यको बड़ा और छोटा बनाती हैं।

सारांश यह है कि, पदार्थका कोई मूल्य नहीं; अवस्था ही उसे बड़ा बना देती है और अवस्था ही उसे छोटा बना देती है। जो आज छोटा है, वही धनैश्वर्य्यसे कल बड़ा हो जाता है और जो आज बड़ा है वही दरिद्रावस्था होनेसे कल छोटा हो जाता है।

जब मनुष्य निर्धन होता है—उसकी दीनावस्था होती है, तब वह दो-चार पैसे या पेटभर रोटीको ही बहुत समझता है, सबसे नम्र व्यवहार करता है, अपनेको सबसे छोटा समझता है; किन्तु जब वही मनुष्य धनवान हो जाता है, तब वह संसारको अपने सामने तुच्छ समझता है, जगत्को अपनेसे नीचा और अपने तईं सबसे ऊँचा समझता है। मनुष्यसे यह सब कौन कराता है? चञ्चल अवस्थायें—ग़रीबी और अमीरी। ग़रीबी उसे नम्र और सन्तोषी बनाती है और अमीरी उसे अभिमानी और असन्तोषी बना देती है। सारांश यह कि, अवस्था ही मनुष्यको छोटा और बड़ा करती है; मनुष्य तो वह का वही रहता है।

छप्पय—*होत वहै धनहीन, तबै अंजलि जौ माँगत।*
धन पाये बौराय, ताहि महि तृणसम लागत॥
दशा यही द्वै चपल, नराहिं लघु दीर्घ बनावैं।
कराहिं नीचको ऊँच, ऊँचको नीच जनावैं॥
जग यह विलोकि सज्जन पुरुष, सदा रहैं समता धरे।
ते पूर्ण रहैं अम्भोधि जनु, प्रेम ईश-यशमें करे॥४५॥

45. A man overtaken by poverty wishes for a small quantity of barley, but afterwards when he has got wealth, he reckons the whole world as a straw. Therefore it is the particular conditions of a man that owing to their greatness or smallness create a

variety in his objects of life, now expanding and then contracting the same things.

राजन्दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेनां
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण ॥
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ॥ ४६ ॥

हे राजा! यदि तुम इस पृथ्वी रूपी गायको दुहना चाहते हो, तो प्रजा रूपी बछड़ेका पालन-पोषण करो। यदि तुम प्रजा रूपी बछड़ेका अच्छी तरह पोषण करोगे, तो पृथ्वी स्वर्गीय कल्पलताकी तरह, आपको नाना प्रकारके फल देगी।

जो राजा प्रजाका पालन खूब अच्छी तरह करता है, उसके सारे मनोरथ पूरे होते हैं। राजाके धन-वैभवकी वृद्धि प्रजासे ही होती है। अगर राजा अत्याचारी या अन्यायी होता है—प्रजाके पालन-पोषणकी फिक्र नहीं रखता, उस राजाकी प्रजा निश्चय ही नाश हो जाती है। प्रजाके नष्ट होने या दरिद्र होनेसे राजा भी नष्ट हो जाता है। उसके भाण्डार धन-धान्य-शून्य पड़े रहते हैं और खजानोंमें चूहे दण्ड पेलते हैं। जो राजा अपनी समृद्धिकी वृद्धि करना चाहें, वे प्रजा-पालनमें दत्तचित्त हों और प्रजा पालनको ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझें। "शुक्र नीति"में लिखा है—

सदानुरक्त प्रवृतिः प्रजापालन-तत्परः।
विनीतात्माहि नृपतिर्भूयसी श्रियमश्नुते ॥

जो राजा प्रजासे अनुराग रखता है, प्रजा-पालनमें तत्पर रहता है और विनीत होता है—वह राजा लक्ष्मीको खूब भोगता है।

राजा प्रजाका स्वामी नहीं—सेवक है। प्रजाने ही अपनी भलाईके लिये उसे राजा बना रक्खा है; पर राज्यकी लगाम हाथमें आते ही राजा लोग इस बातको भूल जाते हैं। वे अपने तईं स्वामी और प्रजाको अपना सेवक समझकर उनका सर्व्वस्व हरण करने और आनन्द मनानेमें ही अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझते हैं। राजाका काम पिताकी तरह प्रजाको पालना और उनकी समृद्धि बढ़ाना है। रघु-वंशमें महाकवि कालिदासने रघुवंशी राजाओंके सम्बन्धमें जो लिखा है, उसे पढ़कर मनमें अनेक तरहकी तरंगें उठती हैं। अहा! वह समय कैसा होगा, जिस समय वैसे राजा इस पृथ्वीकी शोभा बढ़ाते होंगे? लीजिये, दो श्लोक आप भी पढ़िये और अबका और तबका मिलान कीजियेः—

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्र गुणमुत्स्रष्टुमादत्तं हि रसं रविः ॥
प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥

महाराजा दिलीप धन जमा करनेके लिये कर न लेते थे। जो धन लेते थे, वे उसे अपने काममें न लाते थे; पर उसे प्रजाकी

भलाईमें ख़र्च कर देते थे। इस काममें वे अपने पूर्वपुरुष सूर्य्यका अनुकरण करते थे। सूर्य्य जिस तरह पृथ्वीसे रस लेता है, पर उसे वृष्टिके रूपमें हज़ार गुणा करके वापिस दे देता है, उसी तरह वे भी करते थे।

वे प्रजाके पिताओंका काम करते थे। जन्मसे ही शिक्षाका भार अपने हाथमें रखते थे। विपद्से रक्षा करनेका कर्त्तव्य भी उन्हींका था, और वे ही पालन-पोषण करते थे। असलमें वे ही प्रजाके पिता थे। पिता केवल जन्मदाता थे, इतनी ही विशेषता थी।

कहिये पाठक! ऐसे राजा आपकी नज़रोंमें कहाँ-कहाँ और कितने हैं? कितने राजा आजकल एक गुणा लेकर सहस्र गुणा प्रदान करते हैं? कितने राजा पिताकी तरह प्रजा रूपी पुत्रका पालन-पोषण और फ़िक्र करते हैं? सच कहनेमें भय नहीं; समाचार-पत्रोंमें जो पढ़ते और कानोंसे सुनते हैं; अगर वह सच हो, तो यही कहना पड़ता है, कि हमारे भाइयोंसे विदेशी अँगरेज़ लाखों दर्जे भले हैं; औरोंकी अपेक्षा ये अपनी प्रजाका पालन अच्छा ही करते हैं। प्रजासे जो लेते हैं, उसे यदि सम्पूर्ण रूपसे लौटा नहीं देते, तो भी बहुत कुछ हमारी ही भलाईमें लगा देते हैं। जितनी फ़िक्र प्रजाकी ये रखते हैं, उतनी हमारे भाई-राजे नहीं रखते। जितनी जल्दी दीन दुखियोंकी पुकार ये सुनते हैं, उतनी हमारे भाई-राजे नहीं सुनते। देशी राज्योंकी प्रजा जब अत्या-

चारियोंसे पीड़ित होती है, वारम्बार पुकारती है, अर्ज़ियों-पर अर्ज़ियाँ देती है, पर हमारे भाइयोंके कानोंपर जूं नहीं रेंगती ! इस राज्यमें आप उन वाइसरायसे—जिनके मुक़ाबलेमें सारे राजा भी कोई चीज़ नहीं—पुकार कीजिये; फौरन सुनाई होगी—शीघ्रही रक्षा होगी। ये बात हमने सुनकर नहीं लिखी है, वरन् स्वयं देखकर लिखी है। इसकी सत्यतामें राईके दाने बराबर भी मिथ्या नहीं; यह झूठी खुशामद नहीं; सच्ची तारीफ है। हमने तो इतनी उम्रमें जो कुछ देखा, सुना, समझा और विचार किया है, उसका निचोड़ यही है कि, लाख-लाख दोष और त्रुटियाँ होनेपर भी हमारे अंग्रेज़ शासक हमसे बहुत अच्छे हैं; जो सुख स्वाधीनता हम इस राज्यमें भोग रहे हैं, वह हमारे अपने राज्यमें भी—जब तक हम लोगोंकी बुद्धि आजकलकीसी ही रहे—हमें नहीं मिल सकती। किसीसे असन्तुष्ट होकर उसके औगुणोंका ही बखान करना, गुणोंका नाम न लेना—सज्जनता नहीं। सुनते हैं, देखा नहीं, कोई-कोई देशी नरेश अपनी प्रजाके पालनमें अच्छा ध्यान देते हैं; पर वैसे दो-चारोंसे क्या हो सकता है ? जबतक हम लोगोंमें पहलेकीसी धर्मपरायणता, न्यायबुद्धि और स्वार्थत्याग प्रभृति उत्तमोत्तम गुणोंका समावेश न हो जाय, अंग्रेज़ महाराज हमारे सिरपर अपनी सुशीतल शान्तिप्रदायिनी छाया बनाये रखें ! लोग हमें गालियाँ देंगे; पर अपना मत प्रकाशित करनेका एक

कुलीको भी अधिकार है। उसी अधिकारसे हम यह कहनेको बाध्य हैं। हमारी आत्मा हमसे कहलवाती है और यह लिखनेको मजबूर करती है कि, अङ्गरेज़ोंका इस देशसे अभी बिदा होना हरगिज़ भला नहीं—हरगिज़ भला नहीं।

दोहा—धेनु-धरा कौ चहत पय, प्रजा वत्स करि मान।
याकौ परिपोषण किये, कल्पवृक्ष सम जान ॥४६॥

46. O king, if thou wouldst milk this cow of thy kingdom, then it behoves thee now to nourish thy subjects who are like (that cow's) calf. If thou wilt take proper care of them unceasingly, thy land will bear thee various (kinds of) fruit like the heavenly creeper.

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वेश्यांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥ ४७ ॥

राजनीति वेश्याकी नाईं अनेक रूपिणी होती है। कहीं यह सत्यवादिनी और कहीं असत्यवादिनी, कहीं कटुभाषिणी और कहीं प्रियभाषिणी, कहीं हिंसा करनेवाली और कहीं दयालु, कहीं लोभी और कहीं उदार, कहीं अपव्यय करनेवाली और कहीं धन सञ्चय करनेवाली होती है ॥४३॥

राजा सदा एक नीतिपर नहीं चलते। उनकी नीति वेश्याकी तरह अनेक रूप धारण करनेवाली होती है। कहीं राजा सत्य बोलता है, तो कहीं मिथ्या बोलता है; कहीं कठोर भाषण करता है, तो कहीं मधुर भाषण करता है; कहीं निष्ठुरता करता है तो कहीं दयालुता दिखाता है; कहीं लोभीकासा व्यवहार करता है, तो कहीं उदारता दिखाता है, कहीं बिना विचारे अंधाधुन्ध खर्च करता है, तो कहीं संग्रह करता है।

राजाओंका काम एक नीतिसे चल भी नहीं सकता। कूटनीति बिना राजका काम चलना कठिन है और कूटनीतिमें केवल सत्य, दया, उदारता प्रभृति सद्‌गुणोंसे काम नहीं चल सकता। मौक़े-मौक़ेपर रङ्ग बदलना ही कूटनीति है। राजा अगर सदा दयालु-स्वभाव रहे, तो उसे कोई न गिने। जब कोई उसका भय ही न माने, तो वह किस तरह प्रजाकी रक्षा करे, किस तरह दुष्टोंका दलन करे और किस तरह शत्रुओंको परास्त करे? राजाके अति दयालु होनेमें भी बड़ी भारी हानि है। नीतिमें कहा है—"अति दयालु राजा, सर्वभक्षी ब्राह्मण, निर्लज्ज स्त्री, दुष्टमति सहायक, प्रतिकूल सेवक, असावधान अधिकारी और काम न जाननेवाला ये सब त्यागने योग्य हैं।" बिना उपद्रव किये कोई बड़े-से-बड़ेको नहीं मानता। देखिये, मनुष्य सर्पोंको पूजते हैं, पर सर्पको खा जानेवाले गरुड़को नहीं पूजते; क्योंकि सर्प उपद्रवी हैं और गरुड़ उपद्रवी नहीं। "गुलिस्ताँ"में भी लिखा है—"तीन चीज़ें तीन चीज़ोंके बिना क़ायम नहीं रहतीं—

दौलत बिना सौदागरीके, इल्म बिना बहसके और बादशाहत बिना दहशतके।" बहुत लिखनेसे क्या, जो राजा वेश्याकी तरह अनेक रूप बदलते हैं, वेश्यारूपिणी नीतिको बर्तते हैं, उनका ही राज्य रहता और बढ़ता है। हमारे वर्तमान राजा अँगरेज़ भी इसी तरहकी नीतिपर चलते हैं, कहीं सत्य बोलते हैं और कहीं मिथ्या; कहीं प्रतिज्ञा पालन करते हैं और कहीं प्रतिज्ञा भंग। हमारे परम योगेश्वर भगवान् कृष्ण प्रथम श्रेणीके कूटनीतिज्ञ थे। नीतिमें लिखा है—

न राम सदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमान्भूत्।
न कूटनीतिरभवत श्रीकृष्ण सदृशो नृपः॥

इस पृथ्वीपर रामचन्द्रके समान नीतिमान् और श्रीकृष्णके समान कूटनीतिज्ञ राजा नहीं हुआ। रामचन्द्रजीने अपनी नीतिके बलसे बानरोंको अपने वशमें कर लिया और श्रीकृष्णने अपनी ही बहिन सुभद्रा छलसे अर्जुनको व्याह दी।

छप्पय—*साँची है सब भाँति, सदा सब बातनि झूठी।*
कबहुँ रोससों भरी, कबहुँ प्रिय बनै अनूठी॥
हिंसा को डर नाहिं, दयाहू प्रगट दिखावत।
धन लेवे की बान, खर्चहू धन को भावत॥
राखत जु भीर बहु नरनकी, सदा संवारत रहत गृह।
इह भाँति रूप नाना रचति, गनिकासम नृपनीति यह॥४७॥

47. The policy of a king like that of a prostitute is manifold. It is truthful as well as false, heartless as well as sweet-tongued, destructive as well as merciful, avaricious as well as charitable and ever prodigal as well as ever economical.

विद्या कीर्त्तिः पालनं ब्राह्मणानां
दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च ।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥ ४८ ॥

जिन पुरुषोंमें विद्या, कीर्त्ति, ब्राह्मणोंका पालन, दान, भोग और मित्रोंकी रक्षा—ये छै गुण नहीं हुए, उनकी राजसेवा वृथा है ॥४८॥

तात्पर्य यह है, जिनका हुक्म चलता हो, जिनकी नेकनामी हो, जिनके द्वारा ब्राह्मणोंका पालन होता हो, जो सत्पात्रोंको धन-दान करते हों, स्वयं सुख भोगते हों और अपने बन्धु-बान्धवोंकी रक्षा करते हों—उनका ही राजाकी सेवा करना सफल है—जिनमें ये गुण न हों, उनकी राजसेवा निरर्थक है ।

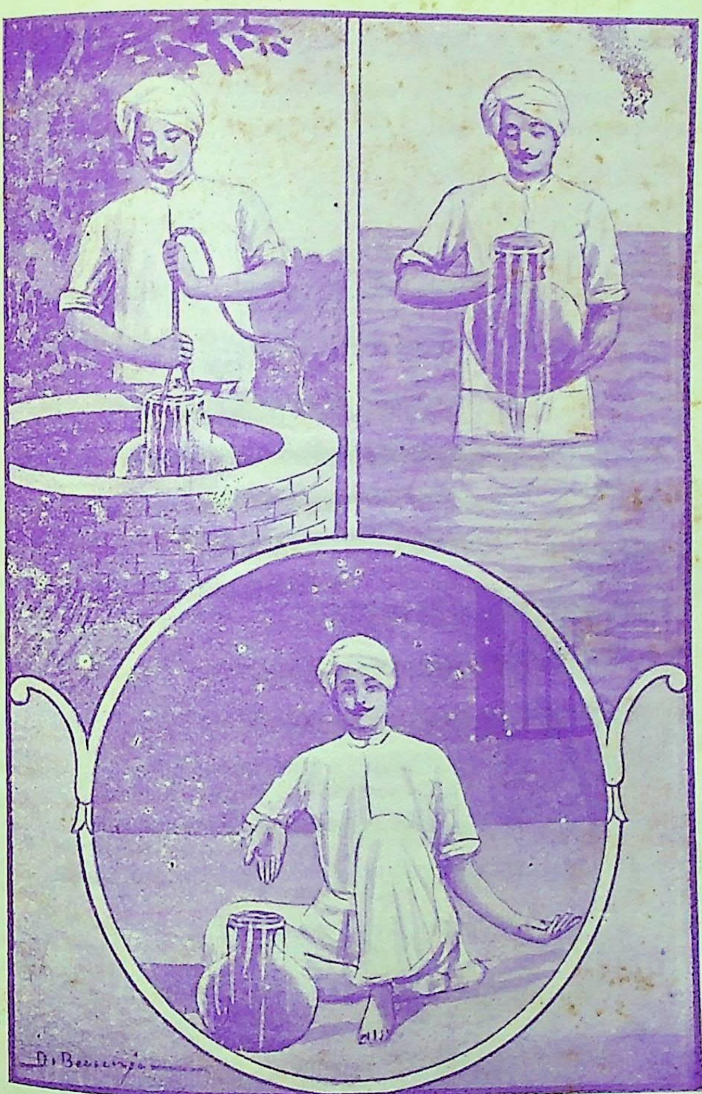
दोहा—विद्या यश द्विज पालना, दान भोग सन्मान ।
नृप-सेवा इन छः बिना, निष्फल जान सुजान ॥४८॥

48. What is the use of those that have influence at a king's court if they do not possess these six qualities :—knowledge, fame, procuring livelihood for Brahmans, charity, enjoyment of pleasures and protection of friends.

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम्।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम्॥४६

थोड़ा या बहुत—जितना धन विधाताने तुम्हारे भाग्यमें लिख दिया है, उतना तुम्हें निश्चय ही मरुस्थलमें भी मिल जायगा; उससे ज़ियादा तुमको सुमेरुपर भी नहीं मिल सकता; इसलिये सन्तोष करो, धनियोंके सामने वृथा दीनतासे याचना न करो; क्योंकि, देखो, घड़ा समुद्र और कूएँसे समान जल ही ग्रहण करता है ॥४६॥

इसका खुलासा यह है—जितना धन भाग्यमें लिखा है उतना हर कहीं मिल जाता है। भाग्यमें लिखेसे अधिक धन सोनेके सुमेरु पर्वतपर भी नहीं मिलता। घड़ेको चाहे समुद्रमें डालिये चाहे कूएँमें डालिये, दोनों जगहोंसे वह समान जल ही ग्रहण करता है; अर्थात् जितना जल उसमें समा सकता है, उतना ही उसमें आता है—कूएँमेंसे कम नहीं आता और समुद्रमेंसे अधिक नहीं आ जाता।



जितना धन विधाताने भाग्यमें लिख दिया है, उतना सर्वत्र मिल जायगा, उससे अधिक नहीं; देखो, घड़ा कूए और समुद्रसे समान जल ही ग्रहण करता है। (पृष्ठ २२४)

मनुष्यको इस बातको समझकर सदा सन्तोष करना चाहिये। धनियोंकी खुशामद और दीनता करके अपना मान न गँवाना चाहिये। भाग्यमें जो नहीं है, उसे लाख-लाख खुशामद और दीनता करनेसे भी कोई न देगा। शास्त्रमें लिखा है—

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चेतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥

आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँचों प्राणीके भाग्यमें उसी समय लिख दिये जाते हैं, जबकि वह गर्भाशयके भीतर ही होता है। जितना विधाता लिख देता है, उतना अवश्य मिलता है और जो नहीं लिखता वह कैसे मिल सकता है? इसलिये भटकना और दीनता करके मान खोना वृथा है।

"पञ्चतंत्र"में लिखा है—

न हि भवति यन्न भाव्यं, भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन।
करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति॥

जो होनहार नहीं है वह नहीं होता और जो होनहार है वह बिना उपाय किये ही हो जाता है। जो हमारे भाग्यमें नहीं है, वह हाथमें आकर भी नष्ट हो जाता है।

मनुष्यने जितना पूर्वजन्ममें बोया है, उतना वह अवश्य ही काटेगा। सारा संसार प्रारब्ध और पुरुषार्थमें ही

विद्यमान है। पूर्वजन्मके कर्मको प्रारब्ध और इस जन्मके कर्मको पुरुषार्थ कहते हैं। एक ही कर्मके दो नाम हैं। फलोंकी प्राप्तिका हेतु प्रत्यक्ष नहीं दीखता। फलोंकी प्राप्ति पूर्वजन्मके कर्मानुसार ही होती है। देखते हैं, कोई-कोई बिना ज़रा-सा भी उद्योग और परिश्रम किये अतुल सम्पत्तिका अधिकारी हो जाता है और कोई दिन-रात घोर परिश्रम करनेपर भी पेट-भर अन्न नहीं पाता। किये हुए कर्मका फल मनुष्यको अवश्य मिलता है। जिस तरह बछड़ा अपनी माँको हज़ारों गायोंमेंसे पहचान लेता है; उसी तरह पूर्वजन्मका किया कर्म अपने कर्त्ताको चट पहचान लेता है। किया हुआ कर्म सोतेके साथ सोता है, चलतेके साथ चलता है; बहुत क्या पूर्वकृत कर्म आत्माके साथ रहता है। छाया और धूपका आपसमें जो सम्बन्ध है, कर्त्ता और कर्मका भी वही सम्बन्ध है।

सारांश यही है, कि जितना दिया है, उतना इस जन्ममें अवश्य मिलेगा; उससे अधिक कहीं और कभी भी न मिलेगा। "गुलिस्ताँ"में लिखा है—"संसारमें दो बातें असम्भव हैं—(१) भाग्यमें जितना लिखा है उससे अधिक खाना, और (२) नियत समयसे पहले मरना।" जितना भाग्यमें लिखा है, उतना हर जगह बिना उद्योग और परिश्रमके भी मिल जायगा और जो भाग्यमें नहीं लिखा है, वह कुबेरकी खुशामद और चाकरीसे भी न मिलेगा। जबतक मृत्युका

समय नहीं आया है, मनुष्य सिंहके मुँहमें जाकर भी बच जायगा और मृत्यु-समय आ जानेपर, वह कहीं भी और किसी भी उपायसे न बचेगा।

मित्रो! इन बातोंको समझो और इनपर विश्वास करके बेफ़िक्र रहो। वृथा मारे-मारे न फिरो। अपनी प्रतिष्ठा और मानको न खोओ। कहा है—

असेवितेश्वरद्वारमदृष्ट विरहव्यथम्।
अनुक्तक्लीव वचनं, धन्यं कस्यापि जीवनम्॥

जिसने धनवानका द्वार न सेया, विरहकी पीर न सही और नामर्दीकी बात न कही—उसका जीवन धन्य है। ऐसा कौन है?

दोहा—भाल लिखौ जू बिरंचि वह, घटै बढ़ै कछु नाहिं।
मुरधर कंचन मेरु-सम, जान लेहु मनमाहिं ॥४९॥

49. Whatever wealth, great or small, the god Brahma has ordained to be the lot of a man, is got by him without fail even in a desert. On the golden (Meru) mountain he cannot get any more. Then be contented and do not show a suppliant attitude towards rich people uselessly. See, a pitcher takes in an equal quantity of water in a well as well as in the ocean.

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचरः।
किमम्भोदवरास्माकं कार्पण्योक्तिः प्रतीक्ष्यते॥५०॥

हे श्रेष्ठ मेघ ! तुम्हीं हम पपहियोंके एकमात्र आधार हो, इस बातको कौन नहीं जानता ? हमारे दीन बचनोंकी प्रतीक्षा क्यों करते हो ?

चातक कहता है—"हे मेघ ! संसारमें नद नदी और सरोवर आदि अनेक जलाशय हैं; हम प्यासे ही क्यों न मर जायँ, पर तुम्हारे सिवा हम किसीका जल नहीं पीते। तुम्हारे जलके सिवा गंगा, जमुना, सरस्वती और सिन्धु प्रभृति हमारे लिये धूल हैं। हम लोगोंको तुम्हारा ही आश्रय है। इस दशामें तुम्हें उचित नहीं है, कि तुम हमसे वारम्बार दीनता कराओ।

सज्जनोंको अपने आश्रितोंकी दीनताकी प्रतीक्षा न करनी चाहिये। उनकी अनुनय-विनय और दीन वाणीके बिना ही उनकी आशा पूरी करनी चाहिये। जो अपने आश्रितको बिना दीनता कराये दे, उसके समान कौन दाता है ?

दोहा—मेघ तुझे जाने जगत, पपिहा-प्राण-अधार।
दीन बचन चाहत सुन्यौ, यह नहिं उचित विचार॥५०॥

50. Who does not know, O cloud, that thou art the only refuge of Chataka birds (a kind of sky-lark) ? Then why, Oh, dost thou wait for our entreaties ? (The above is spoken by a Chataka bird which, it is said, tastes no water except that from falling drops of rain.)

रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयता-
मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः ॥
केचिद्वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद्वृथा
यंयं पश्यसि तस्यतस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः ॥५१

रे रे चातक ! सावधान होकर ज़रा हमारी बात सुन ! आकाशमें बहुतसे मेघ हैं, पर सब एकसे नहीं। कितने ही तो ऐसे हैं, जो पृथ्वीपर जल ही जल कर देते हैं और कितने ही ऐसे हैं, जो वृथा ही गर्ज कर चले जाते हैं; इसलिये हे मित्र ! तुम जिसको देखो उसीके सामने दीनता मत करो।

मनुष्यको चाहिये कि, जिस-तिसके सामने दीनता न करे। इस जगत्में सभी उदार दाता नहीं। कितने ही बातें तो लम्बी-चौड़ी बनाते हैं, पर देते एक पैसा नहीं। ऐसे सज्जन बहुत थोड़े हैं, जो बिना कहे ही अपने आश्रितोंके मनोरथ पूरे कर दें। नीच-स्वभाववालोंके सामने अपनी दुःख कहानी कहने और उनसे कुछ माँगनेसे दुःखके सिवा और कुछ नहीं मिलता। "गुलिस्ताँ"में कहा है—"दुष्टोंके आगे अपने अभावोंका रोना न रोओ; क्योंकि उनके दुष्ट स्वभावके कारण तुम्हें दुःखित होना पड़ेगा। अगर तुम अपने दिलका दुःख किसी मनुष्यके आगे कहो, तो ऐसेके सामने कहो, कि जिसके प्रसन्न मुखके देखनेसे तुम्हें निश्चय

हो जाय कि, वह अवश्य देगा, दुष्टसे माँगना भला नहीं; वह देता कुछ नहीं, उल्टा मान और ले लेता है। जो थोथे हैं वे गरजते हैं, पर बरसते नहीं। जो पूरे हैं, वे चुपचाप बिना माँगे ही इच्छा पूरी कर देते हैं। सूरज बिना कहे ही रोशनी करता है; उससे कहने कौन जाता है? दुष्ट कहनेसे भी किसीका भला नहीं करते।

कुण्डलिया—चातक सुन मेरे वचन, सावधान मन होय।
मेघ बहुत आकाशमें, प्रकृति जुदी पन होय॥
प्रकृति जुदी पन होय, कोय बरसे महि भारी।
कोई बूँद न देहिं, गरज कर उपल-प्रहारी॥
ताही सों मैं कहत, लेय मत यह सिर पातक।
देखै जो ही मेघ, ताहि मत माँगे चातक॥५१॥

51. O Chataka, listen for a moment with an attentive mind (to what I say). There are numerous clouds in the sky and all of them are not of the same kind. Some of them wet the earth with rain, while others only thunder in vain. Hence do not utter thy humble request before whichsoever thou lookest upon.

दुर्जनोंकी निन्दा।

——::०::——

अकरुणत्वमकारणविग्रहः
परधने परयोषिति च स्पृहा ॥
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता
प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ॥ ५२ ॥

किसीपर दया न करना, बिना वजह लड़ाई-झगड़ा करना, परधन और पर-स्त्रीपर मन चलाना, सज्जनों और अपने रिश्तेदारोंकी उन्नतिपर कुढ़ना—ये छहों अवगुण दुष्टोंमें स्वभावसे ही होते हैं।

दुर्जनोंमें ठीक ये छहों अवगुण होते हैं। कौरव-कुल-कलङ्क दुर्योधनमें ये सभी औगुण थे। दयाका उसमें नाम ही नहीं था। हृदयमें दया होती, तो पाण्डवोंको वह इतने कष्ट क्यों देता ? उन्हें लाक्षागृहमें सोते हुए क्यों जलवाता ? द्रौपदीको भरी सभामें नंगी करनेकी चेष्टा क्यों करता ? असलमें; दुर्जन पराई वृद्धिको नहीं देख सकते। दुर्योधन राजसूय यज्ञमें पाण्डवोंकी अतुल सम्पत्ति देखकर ही जल गया था और इसीलिये उसने अकारण ही रार मोल ली। कपट-द्यूतसे उनकी सम्पत्ति और स्त्री तकको छीन लेनेका उसने उद्योग किया। सम्पत्ति तो ले ही ली, केवल द्रौपदी अपने बुद्धिबलसे स्वाधीन हो गई।

रोज़ ही आँखोंसे देखा करते हैं, दुष्ट लोग ग़रीब और कमज़ोरोंको सताते हैं, परस्त्रियोंको छेड़ते हैं और मौक़ा पानेसे उन अबलाओंका जीवन सदाके लिये ख़राब कर देते हैं, रात-दिन पराई सम्पत्ति हड़पनेकी चेष्टामें लगे रहते हैं, जिसे ज़रा भी खुशहाल और खाता-पीता देखते हैं उसके पीछे पड़ जाते हैं; उसकी बदनामी करने और उसका सर्वस्व स्वाहा करनेमें कोई बात उठा नहीं रखते। दुर्जनोंके सिरपर कलंगी नहीं होती; जिनमें ये छहों दुर्गुण हों, उन्हें ही दुर्जन समझना चाहिये। ऐसे दुर्जन इस जगत्में बहुत हैं। "पराई सम्पत्ति या वैभवको देखकर जलना" इन दुष्टोंकी मुख्य पहचान है। ये सब बातें इनमें स्वभावसे ही होती हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है:—

पर-सुख-सम्पति देखि-सुनि, जरहिं मूढ़ बिन आग।
तुलसी तिनके भागते, चलै भलाई भाग॥
सुजन-गुनन सों खल जर्यो, पुनि पुनि वैर कराय।
पूर्ण चन्द्र-गुण सो जर्यो, ग्रसै राहु जिमि आय॥

दोहा—दयाहीन बिन काज रिपु, तस्करता पर पुष्ट।
सहि न सकत सुख बन्धुको, यह स्वभाव सों दुष्ट ॥५२॥

52. Want of pity, quarrelling without any cause, cherishing desire for other people's money and

womenfolk, intolerance towards the virtuous and towards their own relatives are the natural characteristics of evil men.

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्यया भूषितोऽपि सन् ।
मणिनालङ्कृतः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥५३॥

दुर्जन विद्वान् हो तो भी उसे त्याग देना ही उचित है, क्योंकि मणिसे भूषित सर्प क्या भयंकर नहीं होता ?

जिस तरह मणिके धारण करनेसे सर्पकी भयङ्करता नष्ट नहीं हो जाती; उसी तरह विद्या अध्ययन कर लेनेसे दुर्जनोंकी स्वाभाविक दुष्टता चली नहीं जाती।

"पञ्चतंत्र" में लिखा है—

न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं
न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते
यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ॥

धर्मशास्त्रके पढ़ने या वेदाध्ययन करनेसे दुष्टात्मा साधु-स्वभाव नहीं हो जाता; जिसका जो स्वभाव है, वही प्रबल है; गायका दूध स्वभावसे ही मीठा होता है।

वृन्द कविने कहा है—

खल विद्या-भूषित तऊ, नहिं भरोसको मूल।
ज्यों मणि-भूषित भुजग जग, नीच मीच सम तूल ॥

नहिं इलाज देख्यौ-सुन्यौ, जासों मिटत स्वभाव।
मधुपुट कोटिक देत तउ, विष न तजत विष-भाव॥

किसीका भी जन्म-स्वभाव नहीं बदलता। विद्या उत्तम चीज़ है, पर स्वभाव बदलनेकी शक्ति उसमें भी नहीं। विद्यासे मनुष्यमें बुद्धिमत्ता आती है, पर मूर्खकी मूर्खता और भी बढ़ती है। जिन्होंने यूरोपियन डाकू, चोर और बदमाशोंके सम्बन्धकी पुस्तकें पढ़ी होंगी अथवा जिन्होंने बायस्कोपके तमाशे देखे होंगे, उन्हें मालूम होगा, कि चोर और बदमाश इस देशमें भी भयङ्कर होते हैं, पर यूरोपके पढ़े-लिखे बदमाशोंकी लीलायें देखकर तो दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। विद्यासे दुष्टोंको एक प्रकारका बल और मिल जाता है। विद्याबलसे उनकी दुष्टतायें और भी भीषण रूप धारण कर लेती हैं। स्वातीकी बूँद सीपमें पड़कर मोतीका रूप धारण करती है और सर्पके मुखमें पड़कर भयङ्कर विष हो जाती है। मेह सर्वत्र यकसाँ ही बरसता है, पर बाग़ोंमें गुललाला होते हैं और ऊसर ज़मीनमें घास होती है। जो अयोग्य और नालायक़ होता है, जिसकी असलियत ही ख़राब होती है, उसे कैसी भी उत्तम शिक्षा दी जाय और वह कैसी भी अच्छी संगतिमें रक्खा जाय, वह हरगिज़ उत्तम न होगा; जैसाका तैसा रहेगा। निकम्मे लोहेपर चाहे जितनी पालिशकी जाय, वह हरगिज़ चिकना और चमकदार न होगा। पानीको कितना ही

गरम कीजिये, थोड़ी देर बाद ही वह शीतल हो जायगा; यानी अपने असली स्वभावपर आ जायगा। लहसुन और हींग कस्तूरीके हज़ारों पुट दिये जानेपर भी अपने स्वभावको नहीं त्यागते; उनकी असली गन्ध बनी ही रहती है। जीभपर कितनी ही चिकनाई ल्हेसी जाय; पर वह चिकनी न होगी। नीममें कितना ही गुड़ घी सींचा जाय, पर वह मीठा न होगा; जैसा उसका स्वभाव है, वैसा ही रहेगा। विषमें चाहे जितना मधु मिलाइये, पर वह अपना विषभाव न तजेगा। बहुत कहनेसे क्या, असली स्वभाव किसी भी उपायसे मिट नहीं सकता।

जो लोग समझते हैं, कि दुर्जन विद्याके प्रभावसे सज्जन हो जाते हैं,—उनकी स्वाभाविक दुष्टता नष्ट हो जाती है, उन्हींके लिये योगिराज भर्तृहरिने मणिधारी सर्पका दृष्टान्त देकर समझाया है, कि आप ऐसा भूलकर भी न समझें! अगर ऐसा समझकर दुर्जनोंका संग करेंगे, उनके साथ रहेंगे, उनसे बात-चीत करेंगे; तो आपको भयानक विपद्में फँसना होगा। रावण कम विद्वान् नहीं था, पर विद्वान् होनेसे क्या उसकी दुष्टता चली गई थी?

इन बातोंको हृदयङ्गम करके, अपना भला चाहनेवालोंको अपढ़—निरक्षर दुष्टोंसे तो बचना ही चाहिये; पर पढ़े-लिखे या विद्वान् दुर्जनोंसे और भी अधिक दूर रहना चाहिये। निरक्षर दुर्जनोंसे साक्षर या विद्वान् दुर्जन अधिक भयंकर होते हैं।

इस बातको तो सभी जानते हैं, कि विद्वान् होते ही उनमें सौ दुर्गुणोंका एक दुर्गुण अभिमान आ जाता है। जिसमें अभिमान आ जाता है, उसमें कौनसा दुर्गुण नहीं आ जाता। "करेला और नीम चढ़ा वाली" कहावत चरितार्थ होने लगती है।

हमारा विद्वान् दुर्जनोंसे बहुत काम पड़ा है। हमने योगिराजके इस उपदेशको लड़कपनमें पढ़कर भी अनेक बार धोखे खाये हैं। हमारे दिलमें भी सदा यही ख़याल जमा रहता था, कि जो विद्वान् होते हैं, वे दुष्टात्मा नहीं होते; पर अब संसारमें ठोकरें खाकर, हम इस नतीजेपर पहुँचे हैं, कि विद्वान्-दुर्जनोंके समान और दुरात्मा नहीं होते। ये अकारण ही लोगोंसे तकरार और झगड़े करते हैं और परले सिरेके स्वार्थी और कृतघ्न होते हैं। एक बार एक भले आदमी वृथा ही झगड़ा करने लगे। अगर वह झगड़ा चलता, अगर दोनों पक्ष अदालतमें जाते, तो हज़ारों रुपये स्वाहा हो जाते। हमने उन्हें लिखा—"भाई! इन बातोंमें कोई लाभ नहीं; धर्मतः मेरे दिलमें आपसे ज़रा भी बैर-भाव नहीं। आप ऐसा न कीजिये। इससे आपको और मुझको दोनोंको तकलीफ़ होगी और नतीजा कुछ निकलेगा नहीं। अधिक क्या लिखूँ, आप गणेश हैं, गणेशको बुद्धि कौन दे?" बस, इस आख़री फ़िक़रेने तो अग्निमें घीका काम ही किया। पाठक! विचारें, हमने क्या बुरी बात लिख दी?

और भी लीजिये—एक बार हम एक भले आदमीसे मिलने गये। आफिसमें वे तो हमें न मिले, पर एक दूसरे नामी ग्रामी पढ़े-लिखे भले आदमी वहाँ कुरसीपर विराजमान थे। चन्द मिनट तो हम खड़े रहे, उन्होंने हमारी ओर देखा भी नहीं। ख़ैर, बेहयाईसे हम और हमारे मित्र वहाँ ही पड़ी हुई दो चौकियोंपर बैठ गये। कुछ देर बाद आपकी नज़र हमपर पड़ी। आपने हमारा नाम-धाम पूछा। इसके बाद आपने और सब छोड़ यह पूछा—"मुझे आपके यहाँका अमुक माल बेचनेके लिये चाहिये। पेमेण्ट किस तरह करना होगा?" हमारे यहाँ उधारका नियम नहीं है। इसलिये हमने मीठा-सा उत्तर दे दिया, कि इस बातका जवाब हम सोचकर देंगे। एक रोज़ वह मित्र जिनसे हम मिलने गये थे, हमारे डेरेपर ही तशरीफ़ ले आये। बातों-ही-बातोंमें ज़िक्र आ गया, कि कल हम आपके आफिसमें गये थे। एक सज्जन जो वहाँ बैठे हुए थे, उन्होंने हमसे ये सवाल किये। दुःख है, कि हम उधार माल किसीको भी नहीं देते; फिर भी अगर आप कहें तो सौ दो सौ का दे दें। आपको हम जानते हैं, उनको नहीं जानते। उस समय वहाँ एक और विद्वान् कहलानेवाले महाशय तशरीफ़ रखते थे। उन्होंने उनसे जाकर कह दिया कि, अमुक आदमी आप इतने बड़े कारोबारीका ऐतबार नहीं करता और आपके मातहतका ऐतबार करता है। बस, अब क्या

था ? वह भले आदमी तत्ते तेलके बैंगन हो गये। कहने लगे—"हमारा विश्वास नहीं; हमारे नौकरका विश्वास! आपने हमारे साथ बड़ा बुरा व्यवहार किया है। याद रक्खो, आपने यह अच्छा काम नहीं किया। हम आपको इसके लिये बुरे फल चखायेंगे।" गौर कीजिये पाठक! हमने क्या अपराध किया ? अपना माल उधार दिया और न दिया, किसी की ज़बर्दस्ती है ? अधिक काग़ज़ काला करके आपका अमूल्य समय नष्ट करना नहीं चाहते। उन्होंने हमारे सर्वनाशके लिये कोई बात उठा न रक्खी, पर "जाको राखे साँइयाँ, मार सके नहिं कोय" वाली बात हुई। उनका नैतिक पतन हो गया। हमें मानसिक कष्ट अवश्य हुआ, पर और हमारा बाल भी बाँका न हुआ। कहाँ तक लिखें, ऐसे-ऐसे विद्वान् दुर्जन हमने बहुत देखे हैं। इनके दिलमें न दया है न धर्म; दूसरोंको वृथा कष्ट देना ही इनके जीवनका मुख्य उद्देश्य है। यह उस भेड़ियेकी तरह जो नीचे स्थानमें पानी पीनेवाले मेमनेसे विवाद कर बैठा—वृथा लड़ाई मोल लिया करते हैं। इन बातोंके बिना इनकी रोटी ही हज़म नहीं होती। अच्छा हो, ये शान्तिसे अपना काम करें, दूसरोंकी शान्तिको भङ्ग न करें, दीन-दुःखियोंको न सतावें, पराये धनपर मन न चलावें; पर ये अपने स्वभावसे लाचार हैं। भगवान्ने इनका स्वभाव ही ऐसा बना दिया है। ये आप दुःख पाते हैं और दूसरोंको कष्ट

देते हैं। ये दूसरोंके छिद्र देखनेमें ही अपनी उम्र बिता देते हैं। किसीकी उन्नतिसे ये खुश नहीं होते। वे ही भाग्यवान हैं, जिनका ऐसोंसे पाला नहीं पड़ता। इस बातको याद रखोः—

कैसे हू छूटत नहीं, जामें परी कुबानि।
काग न कोयल ह्वै सके, जो विधि सिखवैं आनि॥

सोरठा—विद्यायुतहू होय, तदपि दुष्ट तज दीजिये।
सर्पजु मणिधर होय, भयकारी तेहु जानिये ॥५३॥

53. An evil person should be shunned even if he is adorned with knowledge. Is a serpent, although adorned with a precious gem, not fearful?

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवं
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनि॥
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तव्यशक्तिः स्थिरे
तत्को नाम गुणी भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः॥५४॥

लज्जावानोंको मूर्ख, व्रत उपवास करनेवालोंको ठग, पवित्रतासे रहनेवालोंको धूर्त्त, शूरवीरोंको निर्दयी, चुप रहनेवालोंको निर्बुद्धि, मधुर-भाषियोंको दीन, तेजस्वियोंको अहंकारी, वक्ताओंको बकवादी और शान्त पुरुषोंको असमर्थ कह कर, दुष्टोंने गुणियोंके कौनसे गुणको कलंकित नहीं किया?

दुर्जनोंको सज्जनोंसे स्वाभाविक वैर होता है। जिस तरह मूर्ख पण्डितोंसे, दरिद्री धनियोंसे, व्यभिचारिणी कुल-स्त्रियोंसे और विधवा सधवाओंसे सदा जलती रहती हैं; उसी तरह दुर्जन सज्जनोंसे जला करते हैं। ये सब चाहा करते हैं,— जैसे हम हैं, वैसे ही सभी हों। जब इनसे कुछ भी बन नहीं पड़ता, तब ये गुणियोंके गुणोंकी ही निन्दा किया करते हैं।

बुरे कामोंसे लजाना मनुष्यमें उत्तम गुण है; इस गुणके होनेसे मनुष्य बुरे कामोंसे बचता है। व्रत-उपवास करनेसे मन और आत्मा शुद्ध हो जाते हैं तथा कायाका मल नाश हो जाता है। शूरवीरतासे निर्बलोंकी रक्षा होती है। मधुर भाषणसे मनुष्यमात्रकी आत्मा सन्तुष्ट रहती है; पर दुर्जनोंकी नज़रमें ये सब अनुकरणीय गुण भी औगुण हैं। और कहाँ तक कहें ये लोग उस वक्ताको भी वाचालताके दोषसे दूषित करते हैं, जिसके बोलनेसे श्रोता मूक हो जाते हैं, उनके मन स्थिर हो जाते हैं और नेत्रोंसे टपाटप आँसू गिरने लगते हैं, जो आप किसीकी ओर नहीं देखता, पर सबकी दृष्टि अपनी ओर खींच लेता है, आप सिर नहीं हिलाता, पर सबके सिर हिलवा देता है और जिसका भाषण श्रोताओंके हृदयमें अमृतका काम करता है। असलमें दुर्जनोंको सज्जन और गुणवान बुरे लगते हैं; इसलिये वे सदा उन्हें अपने जैसा करनेके लिये कोई कोशिश उठा

नहीं रखते और उन्हें बदनाम करनेके लिये अपना एड़ीसे चोटी तकका ज़ोर लगानेमें ही अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझते हैं। जिनके हृदय मलिन हैं, वे इन्हीं कुकर्मोंमें अपने दुष्प्राप्य मनुष्य-जीवनको बर्बाद करते हैं। कहा है—

दोष लगावत गुनिन कों, जाको हृदय मलीन।
धरमी को दम्भी कहे, छमियन को बलहीन॥
दुर्जन गुनगन सुजन के, छिन महँ करत मलीन।
विमल वसनकों करत जिमि, धूम श्याम रंग भीन॥

दुष्ट लोग भले आदमियोंको अकारण इतना तंग करते हैं, कि मनुष्यको यह संसार बहुत ही बुरा मालूम होता है। ऐसों ही से दुःखित होकर महाकवि ग़ालिबने कहा है:—

रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हमसखुन कोई न हो और हमज़बाँ कोई न हो॥
बे दरो दीवार-सा इक घर बनाया चाहिए।
कोई हमसाया न हो और पासबाँ कोई न हो॥

संसार रहनेकी जगह नहीं, यहाँ ईर्ष्या-द्वेषका बाज़ार गर्म है। जीमें आता है ऐसी जगह चलकर रहिये, जहाँ कोई न हो। हमारी बात कोई न समझे और न हम किसीकी समझें। मकान भी ऐसा ही हो, जिसमें न दर हो न दीवार अर्थात् शुद्ध जंगल हो, न कोई साथी हो न पड़ोसी।

इसी तरह एक अँग्रेज़ी विद्वान्ने भी दुष्टोंसे दुःखित होकर कहा है—

The better I know men the more I admire dogs.

जितना ही मैं मनुष्योंको जानता जाता हूँ, उतना ही मैं कुत्तोंकी प्रशंसा करता हूँ।

बस; यही हालत हमारी भी है। दुष्टोंसे दुःख पाकर हमारी भी तबियत ऐसी हो गई है, कि इस संसारसे जङ्गल भला मालूम होता है। मनुष्योंके सङ्गसे पशुओंका सङ्ग भला मालूम होता है। पर मजबूरीसे, दूसरोंके कारणसे, हम इच्छा करके भी, यहाँसे अभी सरक नहीं सकते। हम तो यही कहेंगे, जो मनुष्योंकी बस्तीसे दूर रहते हैं, वे ही सुखी हैं, उन्हें ही सुख-शान्ति मिलती होगी; हमें तो किसी तरहका अभाव न होनेपर भी, यहाँ सुख नहीं दीखता।

जो लोग इनमें ही रहना चाहें अथवा इच्छा न होनेपर भी रहे बिना न सरे, उनको इन दुष्टोंकी बातोंपर कान न देना चाहिये। मनमें समझना चाहिये, हम तो कौन चीज़ हैं, ये बड़े-बड़ोंकी निन्दा करते हैं। इनकी निन्दासे हमारा क्या बिगड़ जायगा ? तुलसीदासजीने कहा है—

द्वारे टाट न दे सकहिं, तुलसी जे नर नीच।
निदरहिं बल हरिचन्द कहँ, कहु का करण दधीच॥
भलो कहहिं जाने बिना, की अथवा अपवाद।
तुलसी गाँवर जानि जिय, करब न हर्ष विषाद॥

तुलसी देवल राम के, लागे लाख करोर।
काक अभागे हगि भरे, महिमा भयउ न थोर॥

नीच लोग दरवाज़ेपर तो टाट भी नहीं लगा सकते, पर बलि और हरिश्चन्द्र जैसे महादानियोंकी भी निन्दा करते हैं; कर्ण और दधीच तो इनकी नज़रोंमें कोई चीज़ ही नहीं।

बिना जाने प्रशंसा करें अथवा निन्दा; गँवार समझकर इनकी बातपर न हर्ष ही करना चाहिये और न शोक ही करना चाहिये।

रामचन्द्रजीके लाखों-करोड़ोंकी लागतसे बने मन्दिरपर अगर अभागा काग हग भरता है, तो क्या मन्दिरकी महिमा कम हो जाती है?

बस, दुष्टोंमें रहकर शान्तिपूर्वक जीवन बितानेका इससे उत्तम और इलाज नहीं। यों तो दुष्टोंका पड़ोस और गाँव छोड़कर—उनसे हज़ार कोस दूर रहनेमें भी सुखशान्ति नहीं—हाँ, गोस्वामीजीके उपदेशसे मनको कुछ शान्ति अवश्य मिलती है।

छप्पय—लज्जायुत जो होय, ताहि मूरख ठहरावत।
धर्मवृत्ति मन मांहि, ताहि दम्भी काहि गावत॥
अति पवित्र जो होय, ताहि कपटी काहि बोलत।
धरै शूरता अंग, ताहि पापी काहि तोलत॥

विक्रमी मत्त प्रिय वचन रत, तेजवान लम्पट कहत।
पण्डित लबार कहै, दुष्ट जन गुण को तज औगुण गहत॥५४॥

54. What good qualities of the meritorious are not misrepresented by evil men? The modest are called by them fools, those true to their vows are named hypocrites, the pure in heart are nicknamed cheats, the brave are misrepresented as tyrants, the philosophers are spoken of as whimsical, the sweet-tongued are depicted as servile, the self-respecting are called self-conceited, good speakers are said to be talkative and the patient are proclaimed as inactive.

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्॥
सौजन्यं यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मंडनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना॥५५॥

यदि लोभ है, तो और औगुणोंकी क्या ज़रूरत? यदि परनिन्दा या चुग़लख़ोरी है, तो और पापोंकी क्या आवश्यकता? यदि सत्य है, तो तपस्यासे क्या प्रयोजन? यदि मन शुद्ध है, तो तीर्थोंसे क्या लाभ? यदि सज्जनता है तो और गुणोंकी क्या ज़रूरत? यदि कीर्त्ति है, तो आभूषणोंकी क्या आवश्यकता? यदि उत्तम विद्या है, तो धनका क्या प्रयोजन? यदि अपयश है, तो मृत्युसे और क्या होगा? ॥५५॥

लोभसे ही काम, क्रोध और मोहकी उत्पत्ति होती है और मोहसे मनुष्यका नाश होता है। लोभ ही पापोंका कारण है। लोभसे बुद्धि चंचल हो जाती है। लोभसे तृष्णा होती है। तृष्णार्त्तको दोनों लोकोंमें सुख नहीं। धनके लोभीको, असन्तोषीको, चंचल मनवालेको और अजितेन्द्रियको सर्वत्र आफ़त है। लोभ सचमुच ही सब औगुणोंकी खान है। लोभ होते ही और सब औगुण आप-से-आप चले आते हैं। दुष्टोंके मनमें पहले लोभ ही होता है; इसके बाद वे परनिन्दा, परपीड़न और हत्या प्रभृति कुकर्म करते हैं। रावणको पहले सीतापर लोभ ही हुआ था। दुर्योधनको पहले पाण्डवोंकी सम्पत्तिपर लोभ ही हुआ था। इसलिये मनुष्यको लोभ-शत्रुसे बिल्कुल ही दूर रहना चाहिये। जिसमें लोभ नहीं, वह सच्चा विद्वान् और पण्डित है। निर्लोभको जगत्में आपदा कहाँ? अगर विद्वान्के मनमें लोभ है, तो वह विद्वान् नहीं मूर्ख ही है। कहा है—

काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मन में खान।
का पण्डित का मूरखै, दोनों एक समान॥ तुलसी॥

परनिन्दकसे बढ़कर पापी कोई नहीं। जिनका हृदय काला होता है; जिनका दिल मैला होता है, वे ही पराई निन्दा किया करते हैं। पराई निन्दा यदि सच्ची हो, तो भी लाभ

नहीं और यदि झूठी हो तब तो कहना ही क्या? अपनी ज़बान गन्दी करनेसे कोई फायदा नहीं। लेवेटर नामक एक पाश्चात्य विद्वान्ने कहा है—"अगर तुम्हें किसीके दोषका ठीक पता न हो, तो तुम उसकी निन्दा मत करो; और अगर तुमको उसके दोषका ठीक पता हो, तो अपने दिलसे पूछो, कि तुम्हें निन्दा करनेसे क्या लाभ?" आपका अन्तरात्मा यही कहेगा कि, कोई लाभ नहीं। जब लाभ नहीं, तब परनिन्दा क्यों की जाय? अच्छे आदमी परनिन्दासे लाभ होनेपर भी परनिन्दा नहीं करते। परनिन्दासे जो लाभ हो, उसकी अपेक्षा उस लाभ विना रहना भला। पर ससांरमें कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो दूसरोंसे परनिन्दा सुनकर खुश हुआ करते हैं और इस तरह वे निन्दकोंको उनके काममें उत्साहित करते हैं। अगर लोग इनता समझें कि, जो आज दूसरेकी बुराई हमारे सामने करता है, वह एक दिन हमारी भी दूसरेके सामने करेगा, तो कभी ऐसोंको मुँह न लगावें। परनिन्दा करने और सुननेमें समान पाप लगता है। जो पराई निन्दा करें, उन्हें सोचना चाहिये कि, क्या उनमें कोई दोष या ख़ामी नहीं है। अगर उनमें भी दोष या ख़ामियाँ हों, तब उन्हें दूसरोंकी निन्दा करनेका क्या अधिकार है? असल बात यह है, जिनमें स्वयं दोष होते हैं, वे ही दूसरोंकी निन्दा किया करते हैं। गोथे नामक एक पाश्चात्य विद्वान्ने कहा है—

"He that would reproach an author for obscurity should look into his own mind to see whether it is quite clear there. In the dusk the plainest writing is illegible."

जो मनुष्य अस्पष्टताके कारण किसी ग्रन्थकर्त्ताकी निन्दा करे, वह अपने ही चित्तमें विचार कर देखे, कि क्या वहाँ बिल्कुल स्वच्छता है। धुँधलकेमें स्पष्ट-से-स्पष्ट लेख अपाठ्य होता है। जिनका दिल स्वच्छ नहीं होता, उनको ही पराया काम सदोष दीखता है। किसीने कहा है—

"It is easy to criticise an author, but it is difficult to appreciate it."

किसी ग्रन्थकारके ग्रन्थकी कड़ी आलोचना करना आसान है, पर उसकी प्रशंसा करना या क़द्र करना कठिन है; अर्थात् किसीकी निन्दा करना सहज है, पर उसकी तारीफ़ करना कठिन है। इस कामके लिये बड़े दिलकी ज़रूरत है। निन्दक संकीर्ण-हृदय होते हैं। वे लोग पराई निन्दा करके ही प्रसिद्धि लाभ करना चाहते हैं; पर यह महापाप है, इससे पराई आत्माको कष्ट होता है। पराया दिल दुखाना ही संसारमें सबसे बड़ा पाप माना गया है। परनिन्दक और स्वार्थी, इस बातको जानते हुए भी, अपनी आदतसे लाचार हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

तुलसी निज कीरति चहैं, पर कीरति कहँ खोय।
तिनके मुख मसि लागिहै, मिटे न मरि है धोय॥

कबीरदासने भी कहा है—

निन्दक एकहु मति मिलै, पापी मिलैं हज़ार।
एक निन्दक के सीस पर, हज़ार पाप को भार॥

सत्यकी महिमा २६ वें श्लोकमें लिख आये हैं। सत्यके सामने तप कुछ नहीं। सत्यवादी स्वयं बड़ा भारी तपस्वी है। जो सदा सत्य बोलता है, स्वप्नमें भी मिथ्या नहीं बोलता, उसकी बराबरी कौन कर सकता है ?

यदि मन शुद्ध है, तो निश्चय ही तीर्थयात्राकी कोई ज़रूरत नहीं। सारा दारमदार मनकी शुद्धिपर है। कहते हैं—"मन चंगा तो कठौतीमें गंगा।" जिसका मन शुद्ध नहीं, जिसके हृदयमें पाप है, वही दुष्ट है। वह सौ वार तीर्थस्नान करनेसे भी शुद्ध नहीं हो सकता। क्या मदिराका पात्र जलानेसे शुद्ध हो जाता है ? जिनके मनमें काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ प्रभृतिका निवास नहीं है—उनका ही मन शुद्ध है, उनका ही मन रोग-रहित है। जिनका मन विशुद्ध है, उन्हें तीर्थोंसे क्या लाभ ? अगर मन शुद्ध रहे और एक ही रंगमें रँगा रहे—तो बस फिर सारा काम ही बन जाय—स्वयं जगदीश ही न मिल जायँ। कहा है—

मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक।
जो यह मन हर सों मिले, तो हरि मिले निःशंक॥

सज्जन पुरुष सदा पराया भला करते हैं, बुरा वे किसीका मनसे भी नहीं चाहते, सभीका काम बनाते हैं, बिगाड़ते

किसीका भी नहीं। वे न किसीपर क्रोध करते हैं, न किसी वस्तुपर मन चलाते हैं, परस्त्रियोंको अपनी माताके समान समझते हैं, प्राणिमात्रको अपना कुटुम्बी समझते हैं, सबके कष्टको अपना कष्ट समझते हैं और किसीको भूलकर भी दुःख नहीं देते। झूठ बोलना और पराई निन्दा या चुग़ली-चपाती करना तो उनके स्वभावमें ही नहीं। वे पराये औगुणोंको छिपाते और गुणोंको प्रकाश करते हैं। वे ऐसे मधुरभाषी होते हैं, कि जिससे ज़रा भी बात करते हैं, वही उनका हो जाता है। उनके इन गुणोंके कारण ही सभी उनके हो जाते हैं, इसीसे कहा है, कि अगर सज्जनता है, तो स्वजनोंकी क्या ज़रूरत ?

निस्सन्देह, विद्या स्वयं धन है। जिसके पास विद्या है, उसे क्या अभाव है ? प्रथम तो वास्तविक विद्वान् धनकी इच्छा ही नहीं रखते; वे जानते हैं, कि धन ही सारे अनर्थोंकी जड़ है। धन बड़े कष्टसे कमाया जाता है, बड़ी-बड़ी तकलीफोंसे सञ्चित होता है, विपत्तिमें सन्ताप और सम्पद्में मोह करता है, इससे अभिमान हुए बिना नहीं रहता। धनवानको क्षण-भर भी चैन नहीं। जिस तरह आकाशमें माँसको खानेवाले पक्षी हैं, जलमें मछलियाँ और पृथ्वीपर सिंह व्याघ्र आदि हैं; उसी तरह धनीको खानेवाले सर्वत्र हैं। जिस तरह प्राणधारियोंको सदा मृत्युसे भय रहता है; उसी तरह धनीको राजा, अग्नि, जल, चोर और भाई-

बन्धुओंसे सदा भय रहता है। कुटुम्बी सदा धनवानकी मरण-कामना करते रहते हैं। प्रथम तो मनुष्य-जन्म ही दुःखोंसे भरा हुआ है। फिर; धन होते ही तृष्णा बढ़ती है और ज्यों-ज्यों धन अधिक होता है, त्यों-त्यों तृष्णा और भी अधिक होती है। इच्छानुसार सम्पत्ति किसीको भी नहीं होती। जो धन पास होता है, उसके चले जानेका भय सदा सिरपर सवार रहता है; क्योंकि लक्ष्मी स्वभावसे ही चञ्चल है, किसी एकके यहाँ नहीं ठहरती; अपने चञ्चल स्वभावके वश, एकको छोड़ दूसरेके यहाँ चली जाती है। उसके चले जानेपर जो सन्ताप मनमें होता है, उसे भुक्तभोगी ही जानता है। पासका धन नष्ट हो जानेसे मृत्यु-समयकी सी वेदना होती है। बहुत क्या—धनवानको कभी सुख नहीं मिलता। बेंजामिन फ्रेंकलिन महोदय कहते हैं—

Money never made a man happy yet, nor will it. There is nothing in its nature to produce happiness. The more man has, the more he wants.

"रुपयेने आज तक किसीको सुखी किया भी नहीं और करेगा भी नहीं। इसके स्वभावमें ऐसी कोई बात ही नहीं, जिससे वह सुख उत्पन्न करे। जितना ही मनुष्यके पास होता है, उतना ही वह और चाहता है।" लूथर महाशय कहते हैं—

Our Lord God commonly gives riches to foolish people, to whom He gives nothing else.

"हमारा स्वामी—परमेश्वर मूर्खोंको धन देता है। जिन्हें वह धन देता है, उन्हें वह सिवा धनके और कुछ नहीं देता।" इन दुःखोंके सिवा धनसे एक और भी दुःख है। वह यह कि, मरण-समय भी यह कष्ट देता है। जिस गधेपर हल्का बोझ होता है, वह आसानीसे चला जाता है; उसी तरह जो ग़रीब होते हैं जिनके हाथी घोड़े महल मकान बाग़-बगीचे, बड़ा परिवार और अनेक प्रकारके हीरा पन्ना आदि रत्न नहीं होते, वे सहजमें देह त्याग कर जाते हैं, उन्हें प्राणान्तके समय भयङ्कर वेदना नहीं होती—इन सब दुःखोंके कारणसे ही विद्वान् लोग धनको पसन्द नहीं करते। वे विद्या रूपी धनको सब धनोंकी अपेक्षा उत्तम धन समझते हैं; क्योंकि उसके नाशका कभी भय नहीं और वह सदा-सर्वदा मनुष्यका कल्याण ही करता है। अगर वे इस धनको परोपकार प्रभृति पुण्यकार्य्योंके लिये चाहें, तो इसका उन्हें कभी अभाव न हो—लक्ष्मी उनके क़दमोंमें लोटे; पर वे उस अक्षय धनके मुक़ाबलेमें, इस नाशमान् और क्षण-क्षण दुःखदायी धनको पसन्द ही क्यों करने लगे ?

मनुष्यमें यदि सुयश है, तो उसे आभूषणोंकी जरूरत नहीं। आभूषणोंसे तो शरीरकी शोभा होती है और वह भी सदा नहीं; किन्तु सुयश या सुनामसे आत्माकी शोभा होती है और वह चिरकाल रहती है। सुयश स्त्री-पुरुषोंकी आत्माओंका सच्चा आभूषण है। मनुष्यकी देह नाश

हो जाती है, पर सुकीर्त्ति शरीरके नाश हो जानेपर भी बनी रहती है।

अपयश मनुष्यका मरण है। जिसकी अपकीर्त्ति है, वह जीता हुआ ही मरा है। सज्जनोंके दिलोंमें बदनामीसे जैसी मर्मान्तक वेदना होती है, वैसी शायद मृत्युसे भी नहीं होती। बदनामीके डरसे ही भगवान् रामचन्द्रने सच्ची सती प्राणाधिका सीताको, निर्दोष जानकर भी, बनमें भेज दी और स्वयं उसकी विरहाग्निमें जल-जलकर ख़ाक हुए। बहुत क्या मनुष्यको कोई भी काम ऐसा न करना चाहिये, जिससे उसका अपयश हो। जिसका अपयश है, वह ज़िन्दा होनेपर भी मुर्दा है।

छप्पय—*भयौ लोभ मन माँहि, कहा तब अवगुण चहिये?।*
निन्दा सबकी करत, तहाँ सब पातक लहिये॥
सत्यवचन तप जान, शुद्ध मन तीरथ जानहु।
होत सुजनता जहाँ, तहाँ गुण प्रकट प्रमानहु॥
यश जहाँ कहा भूषण चहै, सद्विद्या जहँ धन कहा?।
अपयश जु छयौ या जगतमें, तिन्हें मृत्यु ही है महा॥५५

55. If there is avarice, there is no need of seeking for other bad qualities. If there is perversity of heart, no other sin is required. If there is truth, other penances are useless. If the heart is pure, one need not visit the holy places. If a man is

good-natured, no other strength in needful. If there is inborn merit, no other ornaments are necessary. If there is knowledge, wealth is a secondary consideration. If there is disgrace, death is no worse.

शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी ।
सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः ॥
प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो ।
नृपाङ्गणगतः खलो मनसि सप्त शल्यानि मे ॥५६॥

दिनका मलिन चन्द्रमा, यौवनहीन कामिनी, कमलहीन सरोवर, निरक्षर रूपवान, कंजूस स्वामी या राजा, सज्जन दरिद्री और राज-सभामें दुष्टोंका होना—ये सातों हमारे दिलमें काँटेकी तरह चुभते हैं ॥५६॥

चन्द्रमा अपनी प्रभासे ही शोभायमान लगता है। सूर्यके प्रकाशमें उसकी प्रभा नष्ट हो जाती है, इसलिये खूबसूरती-पसन्दोंके दिलमें वह, प्रभाहीन होनेपर, काँटेकी तरह खटकता है। स्त्रीकी शोभा यौवनसे ही है। जिस स्त्रीकी तरुणाई और लूनाई नष्ट हो जाती है, चित्ताकर्षक सौन्दर्य्य नष्ट हो जाता है; वह बुरी मालूम होती है। सरोवरकी शोभा कमलोंसे है। कमल-हीन-सरोवर, अच्छा-से-अच्छा होनेपर भी, सौन्दर्य्यहीन और सूना सा लगता है। रूपवान मनुष्य विद्याहीन होनेपर, ढाकके फूलोंकी तरह बेकाम

होता है। यदि रूपवान विद्वान् भी होता है, तो उसकी खूबसूरती दुबाला हो जाती है। राजा या धनीकी शोभा उदारतासे है। कृपण राजा या धनी नपुंसकके समान होते हैं। बिना धन त्याग किये, राज राज शब्दसे कोई लाभ नहीं। निधियोंकी रक्षा करनेवाले कुबेरको पण्डित लोग महेश्वर नहीं कहते। दाता अगर थोड़े धनवाला भी हो तो भी अच्छा; किन्तु समृद्धिवान कृपण किसी कामका नहीं; समुद्रकी अपेक्षा लोग कुएँको पसन्द करते हैं। धनी होनेपर जो उदार नहीं होता, वह मनमें खटकता ही है। इसी तरह सज्जनोंका दरिद्री होना और राजसभामें दुष्टोंका होना खटकता है।

परमात्माने अपने सभी कामोंमें कुछ-न-कुछ दोष रख दिये हैं और वे ही दोष चतुरोंके दिलोंमें खटकते हैं। अगर चन्द्रमा दिनमें भी प्रभाहीन न होता, स्त्रीका यौवन सदा रहता, सरोवर कभी कमल-शून्य न होता, रूपवान विद्वान् होते, धनी उदार होते, सज्जन धनवान होते और राजसभामें दुष्टोंकी पहुँच न होती—तो कैसे आनन्दकी बात होती? पर परमात्माकी तो लीला ही अजब है। वह सज्जनोंको बहुधा निर्धन रखता है।

एमर्सन महोदयने कहा है—

The greatest man in history was the poorest.

इतिहासमें सबसे बड़ा आदमी सबसे ज़ियादा निर्धन था। लिवी महोदय कहते हैं—

Men are seldom blessed with good fortune and good sense at the same time.

धन और सुबुद्धि एक साथ किसी ही भाग्यवानको मिलते हैं। जो धनवान हैं, वे बुद्धिमान नहीं और जो बुद्धिमान हैं, वे धनवान नहीं।

कवियोंने कहा है और ठीक ही कहा है—

भले बुरे बिधिना रचे, पै सदोष सब कीन।
कामधेनु पशु, कठिन मनि, दधि खारो शशि छीन॥
कहीं कहीं विधि की अविधि, भूले परम प्रवीन।
मूरख को सम्पत दई, पण्डित सम्पतहीन॥

और भी कहा है,—

गंधः सुवर्णे फलमिक्षुदंडे,
नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य।
विद्वान् धनी, भूपति दीर्घजीवी
धातुःपुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत॥

सोनेमें सुगन्ध, ऊखमें फल, चन्दनमें फल, विद्वान् धनी और राजा चिरजीवी न किया, इससे स्पष्ट है, कि विधाताको कोई अक्ल देनेवाला न था।

कुण्डलिया—फीको है शशि दिवस में, कामिन यौवनहीन।
सुन्दर मुख अच्छर बिना, सरवर पंकजहीन॥
सरवर पंकजहीन, होत प्रभु लोभी धनकौ।
सज्जन कपटी होत, नृपति ढिंग बास खलन कौ॥
सातों हैं शल्य परम, छेदत या जीको।
व्रजनिधि! इनको देख, होत मेरो मन फीको॥५६॥

56. These seven prick my heart like a thorn. The moon seen in the day-time destitute of her brightness, a beautiful woman past her youth, a lake without lotus-flowers, a hand-some person possessing no literary talents, a miserly king, a good man stricken with poverty and a tale-bearing person having influence in a king's court.

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम्।
होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः॥५७॥

प्रचण्ड क्रोधी राजाओंका कोई प्यारा नहीं। जिस तरह हवन करनेवालेको भी अग्नि छूते ही जला देती है, उसी तरह राजा भी किसीके नहीं।

क्रोधी राजाका भूलकर भी विश्वास न करना चाहिये। उसके नाते-रिश्तेदार और मित्रोंको भी उससे डरना चाहिये। आग जिस तरह हवन करनेवालेका भी मुलाहिज़ा नहीं

करती, उसी तरह राजा अपने बन्धु-बान्धवोंका भी लिहाज़ नहीं रखते। राजा और अग्निसे कुछ दूर रहना और डरते रहना ही भला है। जो इनसे बिल्कुल दूर रहते हैं, उन्हें इनसे फल नहीं मिलता और जो इनके बहुत निकट जाते हैं—इनसे निर्भय रहते हैं—इनकी प्रीतिका विश्वास करते हैं, वे मारे जाते हैं। कहावत प्रसिद्ध है—

राजा जोगी अगिन जल, इनकी उल्टी रीति।
डरते रहिये परसराम, ये थोड़ी पालें प्रीति॥

"पंचतंत्र" में लिखा है—

काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं
सर्पे क्षान्ति स्त्रीषु कामोपशान्तिः।
क्लीवे धैर्य्यं मद्यपे तत्वचिन्ता
राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा॥

कव्वेमें पवित्रता, ज्वारीमें सत्य, सर्पमें सहनशीलता, स्त्रीमें कामशान्ति, नामर्दमें धीरज, शराबीमें तत्वचिन्ता और राजामें मैत्री किसने देखी या सुनी है ?

और भी कहा है—

दुर्जनगम्या नार्य्यः प्रायेणास्नेहवान्भवति राजा।
कृपणानुसारि च धनं, मेघो गिरिदुर्गवर्षी च॥

नारी अपने शत्रुओंसे भी मिल सकती है, राजामें स्नेह नहीं होता, धन कृपणके पास रहता है और मेह पर्वतोंकी चोटियोंपर बरसता है।

"गुलिस्ताँ" में भी लिखा है—राजाओंकी मैत्री और लड़कोंकी मीठी-मीठी बातोंपर भरोसा न करना चाहिये; क्योंकि राजाओंकी मैत्री ज़रासे शकपर टूट जाती है और लड़कोंकी प्यारी-प्यारी बातें रात-भरमें बदल जाती हैं।

दोहा—जे अति पापी भूप ते, काहूसौं न कृपाल।
होम करतहूँ द्विजन कौ, दहत अग्नि की ज्वाल ॥५७॥

57. As for kings who are subject to strong passions, nobody is their own. Fire never fails to burn a man if it is touched by him, while offering his oblations to it.

मानौन्मूकः प्रवचनपटुश्चाटुको जल्पको वा
धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा दूरतश्चाप्रगल्भः ॥
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥५८॥

नौकर यदि चुप रहता है, तो मालिक उसे गूँगा कहता है; यदि बोलता है, तो उसे बकवादी कहता है; यदि पास रहता है, तो ढीठ कहता है; यदि दूर रहता है, तो उसे मूर्ख कहता है; यदि खोटी-खरी सह लेता है, तो उसे डरपोक कहता है और यदि नहीं सहता है, तो उसे नीच कुलका कहता है। मतलब यह कि, सेवाधर्म—पराई चाकरी बड़ी ही कठिन है; योगियोंके लिये भी अगम्य है ॥५८॥

संसारमें जितने कठिन काम हैं, उनमें पराई चाकरी सबसे कठिन है। योगिजन सब तरहके कष्ट सहनेके अभ्यासी होते हैं, उन्हें कोई कष्ट—कष्ट और कोई दुःख—दुःख नहीं मालूम होता; पर, पर-सेवा उनके लिये भी महा कठिन है। नौकरको किसी तरह भी चैन नहीं। प्रसिद्ध विद्वान् और महाकवि होमरने जो कहा है, वह बहुत ही ठीक कहा है, कि मनुष्यके आधे गुण तो उसी समय विदा हो जाते हैं, जब वह दूसरेका दासत्व स्वीकार करता है।

पहले तो मनुष्यका जन्म ही दुःख भोगनेके लिये होता है। फिर, यह दरिद्रता हो और पराई चाकरीसे पेट भरना पड़े, तब तो दुःखकी परम्परा ही है। सेवा करनेवाले बड़े ही मूर्ख होते हैं, जो अपने शरीरकी स्वतन्त्रताको भी खो देते हैं—अपनी आज़ादीसे भी हाथ धो बैठते हैं। सेवक भूख लगनेपर खा नहीं सकता, नींद आनेपर सो नहीं सकता, नींद खुलनेपर जाग नहीं सकता और निःशंक हो कर कुछ कह नहीं सकता। क्या ऐसे सेवकको भी ज़िन्दा कह सकते हैं? लोग जो सेवावृत्तिको कुत्तेकी वृत्ति कहते हैं, बड़ी ग़लती करते हैं। कुत्तेमें और सेवकमें तो बड़ा फ़र्क़ है। सेवकसे कुत्ता भला है; क्योंकि कुत्ता आज़ाद होता है और सेवक आज़ाद नहीं होता। कुत्ता अपनी मौजसे फिरता है; पर नौकर तो प्रभुकी आज्ञासे फिरता है। सेवक सारे ही काम यतिके समान करता है। सेवक

ज़मीनपर सोता है और यति भी ज़मीनपर सोता है; सेवक ब्रह्मचर्य रखता है और यति भी ब्रह्मचर्य रखता है। सेवक थोड़ा सा भोजन करता है और यति भी थोड़ा सा भोजन करता है; पर सेवक और यतिमें बड़ा भेद है; क्योंकि सेवकके सब काम पापके लिये और यतिके धर्मके लिये होते हैं। सेवासे जो गोल-गोल और बड़े-बड़े मनोहर लड्डू मिलते हैं, वे तुच्छ हैं। उनकी अपेक्षा जङ्गलका साग-पात खाकर पेट भरना और स्वतन्त्र रहना भला। झोंपड़ीमें रहना अच्छा, पर गुलामी करके महलोंमें रहना भला नहीं। स्वर्गमें सेवा करनेसे नरकमें राज्य करना भला। कहा है:—

वरं वनं वरं भैक्ष्यं, वरं भारोपजीवनम्।
वरं व्याधिर्मनुष्याणां, नाधिकारेण सम्पदः॥

वनमें रहना अच्छा, भीख माँगकर खाना अच्छा, बोझा उठाकर जीना अच्छा, रोगी रहना अच्छा, पर सेवा करके धन प्राप्त करना अच्छा नहीं।

हिन्दीके सुप्रसिद्ध विद्वान्, भूतपूर्व सरस्वती सम्पादक, श्रीमान् पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी महोदय कहते हैं:—

चाहे कुटी अति घने वनमें बनावे,
चाहे बिना निमक कुत्सित अन्न खावे।

चाहे कभी नर नये पट भी न पावे,
सेवा प्रभो, पर न तू पर की करावे ॥

दोहा—चुप गूँगो लाबर वचन, निकट ढीठ जड़ दूर।
क्षमाहीन परिहास खल, सेवा कष्टहिं पूर ॥५८॥

58. If a servant is silent, he is said to be dumb; if he is clever of speech, he is dubbed as a talkative prattler; if he lives near, he is called disrespectful; if he keeps himself at a distance, he is considered a skulker; if he pardons, he is a coward and if he does not, he is put down as valgar. The duty of serving (others) is very difficult to perform. Even the Yogis can hardly understand it.

उद्भासिताखिलखलस्य विशृङ्खलस्य
प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः ॥
दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोऽस्य
नीचस्य गोचरगतैः सुखमास्यते कैः ॥५९॥

जो दुष्टोंका सिरताज है, जो निरंकुश या मर्यादा-रहित है, जो पूर्वजन्मके कुकर्मोंके कारण परले सिरेका दुराचारी है, जो सौभाग्यसे धनी हो गया है और जो उत्तमोत्तम गुणोंसे द्वेष रखनेवाला है—ऐसे नीचके अधीन रहकर कौन सुखी हो सकता है ?

तात्पर्य्य यह है, कि नीच मनुष्यकी सेवा करके मनुष्य हरगिज़ सुखी नहीं हो सकता। कहा है—

अगम्यान्यः पुमान्याति, असेव्यांश्च निषेवते।
स मृत्युमुपगृह्णाति, गर्भमश्वतरी यथा॥

जो अगम्या स्त्रीमें गमन करता है, जो सेवा न करने योग्यकी सेवा करता है; वह उसी तरह मरता है, जिस तरह खच्चरी गर्भ धारण करनेसे मरती है।

जो ऐसे अवगुणोंकी खान नीचोंकी सेवा करते हैं, उन्हें भीष्म और द्रोणकी तरह पद-पदपर लांछित और दुखी होना पड़ता है। कहा है—

नासेव्य सेवयादद्यादैवाधीने धनेधियम्।
भीष्मद्रोणादयो याताक्षयन् दुर्योधनाश्रयात्॥

दुर्योधन दुष्टोंका सरदार और बुराइयोंकी खान था, वह किसी नीति-नियमको न मानता था—मनमें आता था वही करता था। पूर्वजन्मके पापोंसे घोर दुराचारी था। दैवके अनुकूल होनेसे लक्ष्मी मिल गई थी; पर पाण्डवोंके उत्तमोत्तम गुणोंसे वह अहर्निश जला करता था। उसकी सेवा करनेसे गोगृहमें भीष्मको अपमानित होना पड़ा और द्रोणाचार्यको भी नीचा देखना पड़ा। भरी सभामें उसका अन्यायाचरण देखकर भी, चाकरीके कारणसे, भीष्म और द्रोण कुछ न बोल सके। न चाहनेपर भी, अन्याय और अनीतिको देखकर मन-ही-मन कुढ़ा किये। बहुत क्या, शेषमें उन्हें अपने प्राण भी गँवाने पड़े।

अतः मनुष्यको किसी दशामें भी नीचकी चाकरी न करनी चाहिये; क्योंकि नीचकी सेवामें सुख नहीं।

कुण्डलिया—संग न करिये दुष्टका, जासों होय उपाध।
पूर्वजन्मके पाप सब, उपज उठावें व्याध॥
उपज उठावें व्याध, दैवबल होय घनी सो।
शुभगुण राखै द्वेष, कुबुध कों मित्र करै सो॥
निपट निरंकुश नीच, तासु चित रंग न धरिये।
दुखमय दुर्गुण खान, तासु को संग न करिये॥५६॥

59. Who can find happiness if he is dependent on a mean-hearted person who outvies all evil men and is unrestrained by any thing, who is bent upon adding to his base nature owing to the evil actions done in a previous birth, who has acquired wealth by good luck and who is jealous of all good qualities.

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्॥
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्॥ ६०॥

दुष्टोंकी मैत्री; दोपहर-पहलेकी छायाके समान, आरम्भमें बहुत लम्बी-चौड़ी होती है और पीछे क्रमशः घटती चली जाती है; किन्तु सज्जनोंकी मैत्री दोपहर-बादकी छायाके समान

पहले बहुत थोड़ी-सी होती है और पीछे क्रमशः बढ़नेवाली होती है ।

खुलासा यह है कि, जिस तरह दोपहर पहलेकी छाया आरम्भमें बहुत होती है और पीछे क्षण-क्षण घटती जाती है; उसी तरह खलोंकी मैत्री पहले बहुत और पीछे कम होनेवाली होती है; परन्तु सत्पुरुषोंकी मैत्री दोपहर पीछेकी छायाके समान, पहले थोड़ी और पीछे क्रम-क्रमसे बढ़नेवाली होती है ।

दुर्जनों की मित्रता—पहले बहुत, पीछे कम ।
सज्जनों की मित्रता—पहले कम, पीछे बहुत ॥

"पंचतंत्र" में भी कहा है—

इक्षोरग्रात्क्रमशः पर्वणि यथा रस विशेषः ।
तदवत् सज्जन मैत्री विपरीतानान्तु विपरीता ॥

ईखके अगले हिस्सेमें रस कम होता है; ज्यों-ज्यों आगे चलियेगा, रस अधिक मिलता जायगा । बस, सज्जनोंकी मैत्री ठीक ऐसी ही होती है; दुर्जनोंकी इसके विपरीत होती है ।

नीचोंकी मैत्रीके सम्बन्धमें और कवियोंने भी कहा है:—

ओछे नर की प्रीति की, दीनी रीति बताय ।
जैसे छीलर ताल जल, घटत-घटत घट जाय ॥

विनसत बार न लागई, ओछे नर की प्रीति।
अम्बर डम्बर साँझ के, ज्यों बालू की भीत॥

कुण्डलिया—छाया जैसी प्रात की, तैसी दुर्जन-प्रीति।
पहिले दीरघ होय पुनि, घटन लगे तज रीति॥
घटन लगे तज रीति, प्रीति को करै बहानौ।
पै सज्जन की प्रीत, विरुध याके मन मानौ॥
पहिले सूक्ष्मरूप, फेर दिनरात सवाया।
सुजन प्रीति नित बढ़ै, यथा संध्या की छाया॥६०॥

60. The friendship of evil as well as good men is like the shade of day in the forenoon and afternoon. The former is great in the beginning, but diminishes as the day passes on, whereas the latter is small at first but goes on increasing afterwards.

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम्।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति॥६१

हिरन, मछली और सज्जन क्रमशः तिनके, जल और सन्तोषपर अपना जीवन निर्वाह करते हैं; पर शिकारी, मछुए और दुष्ट लोग अकारण ही इनसे वैर-भाव रखते हैं।

हिरन, मछली और सज्जन—ये किसीकी हानि नहीं करते, पर दुष्ट लोग इन्हें वृथा ही सताते हैं। इससे मालूम होता है, कि दुष्टोंका स्वभाव ही ऐसा होता है। वे दूसरोंको

तकलीफ देनेमें ही अपना कर्त्तव्य-पालन समझते हैं। कहा है:—

सहज संतोष है साध को, खल दुख दैन प्रवीन।
मछुआ मारत जल बसत, कहा बिगारत मीन॥

दोहा—*मीन वारि मृग तृण सुजन, करि सन्तोषहिं जीव।*
लुब्धक धीमर दुष्टजन, बिन कारण दुख कीव॥६१॥

61. With deer, with fishes and with good men who feed themselves only with grass, water and a contented livelihood respectively, the hunters, fishermen and evil-minded persons cherish an enmity in this world without any cause whatsoever.

सज्जन-प्रशंसा।

—::०::—

वाञ्छा सज्जनसंगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता।
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम्॥
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले-
ष्वेते येषु वसंति निर्मल गुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः॥६२

सज्जनोंकी संगतिकी अभिलाषा, पराये गुणोंमें प्रीति, बड़ोंके साथ नम्रता, विद्याका व्यसन, अपनी ही स्त्रीमें रति, लोक-निन्दासे भय, शिवकी भक्ति, मनको वशमें करनेकी शक्ति और

दुष्टोंकी संगतिका त्याग—ये उत्तम गुण जिनमें हैं, उन्हें हम प्रणाम करते हैं।

जिन पुरुषोंमें ये उत्तम गुण हैं, वे मनुष्य-रूपमें देवता और इस भूतलकी शोभा हैं।

सज्जनोंकी संगतिमें अनन्त लाभ हैं और दुर्जनोंकी संगतिमें अनन्त हानियाँ हैं। सज्जनोंकी संगतिसे बुरे भी भले हो जाते हैं और दुर्जनोंकी संगतिसे भले भी बुरे हो जाते हैं,—इन बातोंका विचार करके बुद्धिमान मनुष्य सज्जनोंको संगति करते हैं और दुर्जनोंकी छायाके पास भी नहीं जाते। सज्जन आप दुखी रहनेपर भी पराया भला करते हैं। अर्जुनने स्वयं, घोर विपत्तिमें भी, विराटकी गौवें कौरवोंसे छुड़ाकर, राजाका भला किया। शिवजी स्वयं भिक्षाटन करते हैं, पर उनकी सहधर्म्मिणी जगत्को अन्न पूरती हैं। सज्जनोंकी बातें पत्थरकी लकीर होती हैं। वे जो कुछ मुँहसे निकाल देते हैं, उसे पूरा करते ही हैं। राजा हरिश्चन्द्रने अगणित कष्ट भोगे, पर विश्वामित्रको जो कहा था, सो दे ही दिया। रामचन्द्रजीने, स्वयं राज्यहीन वनवासी होनेपर भी, विभीषणको तो राज्य दे ही दिया। सज्जन जिसे, हँसीमें भी, अपना कह लेते हैं, उसे अपने ऊपर हज़ार-हज़ार कष्ट पड़नेपर भी नहीं त्यागते। चन्द्रमा क्षयी और कलंकी है तथा विष प्राणहारक है; पर शिवजी उन्हें नहीं त्यागते। सज्जन

ज़रा-ज़रा-सी बातोंपर रीझकर दूसरोंको निहाल कर देते हैं; उमापति गाल बजानेसे ही सन्तुष्ट होकर मनुष्यको अभावहीन कर देते हैं; विष्णु भगवान् केवल तुलसी-पत्रोंसे ही रीझकर भक्तके सारे मनोरथ पूरे कर देते हैं। पारखजी नामक एक महापुरुषने अपने मन्दिरमें झाड़ू देनेवालेको करोड़पति बना दिया। एक दिल्लगीबाज़ने किसी महफिलमें एक सेठके दुपट्टेके पल्लेसे नाचनेवाली वेश्याके ओढ़नेका पल्ला बाँध दिया। सेठने वेश्याको इच्छानुसार धन देकर उसकी वेश्या-वृत्ति छुड़ा दी। सज्जनोंके गुण कदाचित शेषजी भी न कह सकें, तब हमारे जैसे क्षुद्र मनुष्यकी क्या सामर्थ्य ? बुद्धिमान लोग इन बातोंको जानते हैं, इसीसे वे सज्जनोंकी ही संगतिकी अभिलाषा रखते हैं।

तुलसीदासजीने कहा है—

तुलसी सत्पुरुष सेइये, जब तब आवहिं काम।
लंक विभीषणको दई, बड़े दुचित में राम॥

जिस तरह उत्तम पुरुष सज्जनोंकी सङ्गतिकी अभिलाषा रखते हैं; उसी तरह वे पराये गुणोंकी क़दर भी करते हैं, एवं माता पिता और गुरु प्रभृति बड़ोंके आगे नम्र भावसे रहते हैं। इसमें वे श्रवण, रामचन्द्र और कच प्रभृति आदर्श पुरुषोंका अनुकरण करते हैं; अपने समयको हँसी-मज़ाक, ताश-गंजफे अथवा मादक पदार्थोंके सेवनमें नहीं बर्बाद करते। जीविका उपार्जनके कामोंसे जो समय बचता है, उसे

पुस्तकावलोकनमें व्यतीत करते हैं; अपनी ही स्त्रीसे सन्तुष्ट रहते हैं, सपनेमें भी पर-स्त्रीका ध्यान नहीं करते; लोक-निन्दासे बहुत डरते हैं; वे समझते हैं, कि संसार जिसकी निन्दा करता है, वह जीता भी मरा है; इसलिये वे फूँक-फूँककर क़दम रखते हैं। वे इन्द्रियोंको अपने क़ाबूमें रखनेकी सामर्थ्य रखते हैं, क्योंकि जो इन्द्रियोंको वशमें नहीं रख सकते, उनको पद-पदपर आपदायें हैं; घोड़ोंको वशमें न रखनेसे जो गति गाड़ी और गाड़ीके बैठनेवालेकी होती है, वही गति मनुष्यके शरीर और आत्माकी होती है। जो इन्द्रियोंको वशमें रखता है, वही सच्चा बहादुर है। दुष्टोंकी संगतिसे वे बिल्कुल ही बचते हैं; क्योंकि कुसङ्गके समान हानिकारक और मनुष्यका अधःपतन करानेवाला और कोई काम नहीं है। जिनमें ये सब उत्तम गुण हैं, वे नररत्न निस्सन्देह वन्दनीय हैं।

कुण्डलिया—जाने परके गुण सदा, महत् पुरुषको संग।
विद्या, अरु निज भारजा, तिनमें मनकौ रंग॥
तिनमें मनकौ रंग, भक्ति शिवकी दृढ़ राखै।
गुरु आज्ञा में नम्र रहै, खल संग न भाषै॥
ब्रह्मज्ञान चित माहिं, दमन इन्द्रिन सुख मानै।
लोकवादकी शंक, पुरुष ते नृप-सम जानै॥६२॥

62. I salute the people in whom the following pure qualities find their residence:—A desire for

the society of virtuous men, an appreciation for other people's merits, respect for elders, love of knowledge, fondness for their own wives, fear of disgrace, devotion to the god Shiva, power of self-control and avoidance of evil company.

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा ।
सदसि वाक्पटुता युधिविक्रमः ॥
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ ।
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥६३॥

विपदकालमें धैर्य्य, ऐश्वर्यमें क्षमा, सभामें वचन-चातुरी, संग्राममें पराक्रम, सुयशमें अभिरुचि और शास्त्रोंमें व्यसन— ये गुण महापुरुषोंमें स्वभावसे ही होते हैं ॥६३॥

महात्मा पुरुष घोर विपद्में भी धैर्य्य नहीं त्यागते, विपद्में वे फौलादसे भी मज़बूत हो जाते हैं; कैसी भी आपदा उन्हें अधीर नहीं कर सकती; स्वयं विधाता भी उन्हें धैर्य्यच्युत नहीं कर सकता । जिस तरह गरमीमें सरोवर सूख जाते हैं, पर सिन्धु अत्यन्त बढ़ता है; उसी तरह विपद्में नपुंसक घबरा जाते हैं, किन्तु महात्मा और भी दृढ़ हो जाते हैं—उनका साहस बढ़ जाता है । साहसके बलसे, वे महाविपद्के भी पार हो जाते हैं ।

महात्मा लोग समझते हैं, कि मनुष्यके सुख और दुःख सम्पद और विपद् उसके पूर्व्वजन्मोंके किये हुए कर्म्मोंके फल हैं ।

कर्मोंके फल भोगनेसे कोई भी बच नहीं सकता। जो किया है, उसका फल भोगना ही होगा। विपत्ति और दुर्भाग्यका रोकना असम्भव है, फिर घबरानेसे क्या लाभ? घबराने या धैर्य्य त्यागनेसे विपत्ति बढ़ती है, घटती नहीं।

उनका ख़याल है, कि विपत्ति परमात्मा अपने प्यारोंपर डालता है। विपत्ति रूपी कसौटीपर ही वह अपने प्यारोंके धैर्य्य और धर्म्मकी परीक्षा करता है। परीक्षामें उत्तीर्ण होने-पर, वह अपने प्यारोंको उचित पुरस्कार देता है। विपत्ति भयङ्कर सर्प है और उसके गुण सर्पकी मणिसे ज़ियादा क़ीमती नहीं, तो कम भी नहीं। विपत्तिमें ही मनुष्यको अपने और पराये, हितु-मित्र प्रभृतिका खरा-खोटापन मालूम होता है। इस समय स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धव और सेवक आदि जो साथ देते हैं, वे ही सच्चे समझे जाते हैं; सम्पदावस्थामें तो शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। गोस्वामीजीने कहा है—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपदकाल परखिये चारी॥

इन सबकी परीक्षाके सिवा, मनुष्य विपद्‌कालमें देश-देशान्तरोंमें भ्रमण करता है, छोटे और बड़े सबसे मिलता है और सब तरहके आदमियोंके व्यवहार और बर्तावको देख-कर नित्य-नया अनुभव प्राप्त करता है। रात जितनी ही अंधेरी होती है, तारे उतनी ही तेज़ीसे चमकते हैं; विपद् जितनी ही भारी होती है, मनुष्य उतना ही अधिक गुणवान होता

है। विपद्में ही मनुष्यके गुणोंका प्रकाश होता है। विपद् निश्चय ही परमात्माका शुभाशीर्वाद है। जिस तरह दिनके बाद रात और रातके बाद दिन होते हैं; उसी तरह सम्पद और विपदावस्थायें आती और जाती रहती हैं। सदा न सुख ही रहता है और न दुःख ही रहता है। इसलिये विपद्में मनुष्यको घबराना न चाहिये। समुद्रमें जहाज़के डूब जानेपर जो यात्री घबरा जाता है, वह निश्चय ही डूब जाता है; किन्तु जो धैर्य्य और साहस रखता है, वह परमात्माकी दयासे बहुधा बच जाता है। धैर्य्यवानका विपद् कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। विपद् मनुष्यका धैर्य्य देखती है; जब उसे धैर्य्यमें पक्का पाती है, तब आप उसके धैर्य्यसे घबराकर भाग जाती है। महात्मा लोग इन सब तत्त्वपूर्ण बातोंको जानते हैं; इसीलिये वह स्वभावसे ही धैर्य्यवान होते हैं और विपद्में धैर्य्यको कदापि नहीं त्यागते।

अयोध्यानाथ महाराजा रामचन्द्रजीपर कुछ कम विपत्ति नहीं पड़ी। राजतिलक होते-होते वनवास हुआ, पिता दशरथका मरण हुआ, जननीसे वियोग हुआ, सीता-जैसी कोमलाङ्गीको लेकर भीषण वन और दुर्गम पर्वतोंमें भ्रमण करना पड़ा। वनमें भी सीताका वियोग हुआ, पर वे ज़रा भी धैर्य्यच्युत नहीं हुए और इसीलिये महादुस्तर विपद्से पार होकर विजयी हुए। महाराजा नलपर कम

विपद् नहीं पड़ी। राज्य गया, रानी और सन्तानसे वियोग हुआ, अन्न और वस्त्रके लिये तरसना पड़ा, पराई चाकरी करनी पड़ी; पर वे नहीं घबराये; इसीलिये शेषमें उनकी विपद् भाग गई, रानी और राज्य सभी मिल गये। पाण्डवोंकी तरह कौन विपद् सहेगा? बेचारोंपर विपद्-पर-विपद् पड़ती रहीं। धनैश्वर्य्य गया, भरी सभामें घोर अपमान हुआ, वन-वनमें मारे-मारे डोले; भिक्षा-वृत्तिपर भी जीवन निर्वाह करना पड़ा; पर धैर्य्यके बलसे सारी विपदाओंको काटकर, भगवान् कृष्णकी दयासे, वे युद्धमें विजयी हुए। महाराजा हरिश्चन्द्रका राज्य गया, स्त्री और पुत्रसे वियोग हुआ, पुत्रका मरण हुआ, रानीको पराई दासी बनना पड़ा, स्वयं आपने श्मशानपर चाण्डालकी चाकरी की; पर आपने पुत्रके मरनेपर भी अपने धैर्य्य और धर्मको न छोड़ा; इसीसे भगवान् आपपर प्रसन्न हुए; आपकी सारी विपद् हवा हो गई। मनुष्योंको इन महात्माओंकी विपद्-कहानियोंसे शिक्षा ग्रहणकर, विपद्में कदापि धैर्य्यच्युत न होना चाहिये।

महात्मा लोग विपद्में जिस तरह कठोर हो जाते हैं; उसी तरह सम्पदमें वे एकदम नम्र बने रहते हैं और धनैश्वर्य्यशाली होकर इतराते नहीं; अभिमानके वश होकर किसीको कष्ट नहीं देते। इस अवस्थामें उनकी सहनशीलता उल्टी बढ़ जाती है। क्षमा और नम्रताकी वे मूर्त्ति ही बन जाते हैं; क्योंकि वे इस अवस्थाको भी विपदावस्थाकी तरह चिरस्थायी नहीं समझते।

महापुरुषोंमें क्षमाशीलता स्वभावसे ही होती है; किन्तु सर्प-समान दुष्टोंमें क्षमा नहीं होती। धैर्य्य वीरोंमें होता है; नपुंसकोंमें नहीं होता। सम्पद पाकर दुष्ट लोग नदी-नालोंकी तरह इतरा जाते हैं; पर महात्मा लोग समुद्रकी तरह गम्भीर बने रहते हैं।

वृन्द कविने कहा है—

भले बंस को पुरुष सो, निहुरे बहु धन पाय।
नवै धनुष सदबंस को, जिहि द्वै कोटि दिखाय॥

सभा-चातुरी भी एक बड़ा गुण है। सभा-चतुर मनुष्य अपनी वचन-चातुरीसे सबको मुग्ध कर लेता है। नीतिमें लिखा है, जो सुन्दर वचन रूपी द्रव्यका संग्रह नहीं करता, वह परस्परके आलाप रूपी यज्ञमें क्या दक्षिणा दे सकता है? वचन-चातुरीसे देवता राज़ी होते हैं। वचन-चातुरीसे शत्रु भी वशमें हो जाते हैं। सभा-चतुर पुरुष हज़ारों-लाखों विपक्षियोंको भी मूक बना देता है। इच्छा न होनेपर भी, विपक्षियोंको उसकी इच्छानुसार काम करना पड़ता है। यों तो सभी बोलते-चालते और काम करते हैं; पर चतुरोंका बोलना-चालना कुछ और ही होता है। सभा-चतुर जो कहता है, वह सप्रमाण कहता है और इस ढँगसे कहता है, कि सभी उसकी बातोंपर लट्टू हो जाते हैं। कहा है—

श्रवण नयन मुख नासिका, सब ही के इक ठौर।
हँसिवो बोलिवो देखिवो, चतुरन कौ कछु और॥

करिये सभा सुहावते, मुखत वचन प्रकाश।
बिन समझे शिशुपाल को, वचनन भयो बिनाश॥

महात्मा लोग जीवनको एक-न-एक दिन अवश्य नाश होनेवाला समझते हैं; उन्हें धन और प्राणोंका मोह नहीं होता। वे जीवनका मोह त्यागकर और निर्भय होकर युद्ध करते और अपना पराक्रम खूब दिखाते हैं। वे आगे पैर रखकर पीछे पैर नहीं देते। कर्ण, अर्जुन और अभिमन्यु प्रभृति महापुरुषोंके पराक्रमकी बात "महाभारत" पढ़नेवालोंसे छिपी नहीं है। कहा है—

रन सन्मुख पग सूर के, वचन कहैं ते सन्त।
निकस न पाछे होत हैं, ज्यों गयन्द के दन्त॥

महात्मा लोगोंकी रुचि सदा सुयशमें ही रहती है; अपयश और मौतमें वे भेद नहीं समझते। उनका ख़याल है कि, बुरा ज़ख्म अच्छा हो जाता है, पर कुनाम सुनाम नहीं होता। इसी भयसे वे जो काम करते हैं, ऐसा ही करते हैं, जिससे उनके सुनाममें बट्टा न लगे और निशि-दिवस उनका सुयश बढ़े।

महात्मा लोग अपना एक क्षण भी गप-शप, कलह-विवाद या अन्य बुरे कामोंमें नष्ट नहीं करते। उनका सारा समय ग्रन्थोंके देखने, पढ़ने और मनन करनेमें ही जाता है; जबकि मूर्खोंका समय सोने, झगड़ने और अन्य निन्दनीय कामोंमें नष्ट होता है।

सारांश यह है कि, महापुरुषोंकी तरह मनुष्यको विपद्में धैर्य्य रखना चाहिये, ऐश्वर्य्यमें विनीत भाव धारण करना चाहिये, सभामें वाक्चातुरी दिखानी चाहिये, युद्धमें वीरता प्रकाशित करनी चाहिये, सदा सुयशकी प्राप्ति करानेवाले काम करने चाहियें और शास्त्रावलोकनके सिवा और व्यसन न रखना चाहिये। सत्पुरुषोंमें तो ये सब गुण स्वभावसे ही होते हैं; पर दूसरे लोगोंको भी उनका अनुकरण करना चाहिये; क्योंकि इस राहपर चलनेसे सदा कल्याण होता है।

दोहा—विपत धीर, सम्पति क्षमा, सभा माहिं शुभ बैन।
युधि विक्रम, यश माहिं रुचि, ते नरवर गुण ऐन ॥६३॥

63. Fortitude in distress, gentleness in prosperity, cleverness of speech in gatherings, gallantry in war, liking for renown and fondness for the study of Vedas are the natural characteristics of great men.

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः।
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः॥
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसारा परकथाः।
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥६४॥

दानको गुप्त रखना, घर आयेका सत्कार करना, पराया भला करके चुप रहना, दूसरोंके उपकारको सबके सामने

कहना, धनी होकर गर्व न करना और पराई बात निन्दा-रहित कहना—ये उत्तम गुण महात्माओंमें स्वभावसे ही होते हैं।

महात्माओंमें तो ये गुण स्वभावसे होते ही हैं, उन्हें कोई इनकी शिक्षा नहीं देता; पर अन्य लोगोंको भी उनका अनुकरण करना चाहिये।

दान करके किसीसे कहना, अख़बारोंमें छपवाना अथवा और तरह डोंडी पिटवाना अच्छा नहीं। इस तरहसे जो दान किया जाता है, उस दानका मूल्य घट जाता है; इसीसे वास्तविक दानी अपने दानकी ख़बर अपने दूसरे हाथको भी नहीं पड़ने देते। अमेरिकाके धनकुबेर महादानी कारनेगी इस ज़मानेके कर्ण, करोड़ोंका दान करके भी किसीको नहीं जनाते थे। उन्होंने अपने धनसे हज़ारों दुखियाओंके दुःख दूर कर दिये, लाखोंके चिक ज़रा-ज़रासी प्रार्थनाओंपर काट दिये और साथ ही उनसे कह दिया—"ख़बरदार! किसीसे भी यह बात न कहना।" इस अभागे भारतमें भी, पहले, ऐसे ही अनेक दानी महात्मा जन्म लेते थे, पर अब तो दान पीछे करते हैं और समाचारपत्रोंमें ख़बर पहले निकल जाती है। आजकल इस देशके धनी ऐसी ही जगह अपनी रक़में दान करते हैं, जहाँसे उन्हें नाम होनेकी या कोई पदवी मिलनेकी आशा होती है। ऐसा दान सच्चा दान नहीं। इस दानका फल दाताको पूरा नहीं मिलता। कहा है:—

तन धन महिमा धर्म जेहि, जाकहँ सह अभिमान।
तुलसी जियत बिडम्बना, परिणामहु गति जान॥तुलसी

महापुरुष पराया भला करके किसीसे कहते नहीं; वे पराया कष्ट निवारण करके चुप रहनेमें ही अपनी शोभा समझते हैं। जो परोपकार करके कहता फिरता है, उसका उपकार नष्ट हो जाता है। उपकार करके गाते फिरनेसे उपकार न करना ही भला है। अँगरेज़ लोग भी उपकार करके जगत् जनानेवालेको सत्पुरुष नहीं समझते। महात्माओंमें तो यह उत्तम गुण स्वभावसे ही होता है; अन्य लोगोंको भी महात्माओंका अनुकरण करना चाहिये। महात्मा अर्जुनने विराट् राजाका महत् उपकार करके भी, अपनी ज़बानसे यह नहीं कहा कि, यह काम मैंने किया है। उसका सेहरा उत्तरके सिर ही बाँधना चाहा; पर स्वयं उत्तरने राजासे सारा हाल कह दिया। कहा है—

बड़े बड़ेई काम कर, आप सिहावत नाहिं।
जय जस उत्तर को दियो, पथ विराट के माहिं॥

सत्पुरुष घर आये शत्रुका भी उपकार करते हैं। अपने घरमें जो कुछ होता है, उसीसे उसका सत्कार करते हैं। अगर कुछ भी पास नहीं होता, तो उसे बैठनेको कुशोंका आसन देते हैं, शीतल कूप-जल पिलाते हैं और मीठी-मीठी बातोंसे उसका श्रम दूर करते हैं। आप नहीं खाते, अतिथिको खिलाते हैं। आप ज़मीनपर सो रहते हैं, पर अतिथिको

पलँगपर सुलाते हैं। यह सत्पुरुषोंका सहज स्वभाव होता है। और लोगोंको भी उनका अनुकरण करना चाहिये। हमारे शास्त्रोंमें लिखा है—

अपूजितोऽतिथिर्यस्य, गृहाद्याति विनिश्वसन्।
गच्छन्ति विमुखास्तस्य, पितृभिः सह देवताः॥

"जिसके घरसे अपूजित अतिथि स्वाँस लेता हुआ चला जाता है, उसके यहाँसे देवता पितरों-सहित विमुख होकर चले जाते हैं।" अगर गृहस्थ सूर्य्य डूबनेके बाद आये हुए अतिथिकी सेवा करता है, तो वह देवता होता है—"आइये" कहनेसे अग्नि, आसन देनेसे इन्द्र, चरण धोनेसे पितर और अर्घ देनेसे शिवजी प्रसन्न होते हैं। घरपर कोई भी आवे, उसकी खातिर करनी ही चाहिये। यथासामर्थ्य खान-पान वस्त्र आदिसे उसका कष्ट और श्रम निवारण करना चाहिये। देखिये, वृक्ष अपने काटनेवालेके सिरपर भी छाया करता है। घरपर आये हुए बालक, वृद्ध, युवा सभीकी पूजा करनी चाहिये; क्योंकि अभ्यागत सबका गुरु होता है। उत्तम वर्णवालेके घर आया हुआ नीच वर्णका अतिथि भी यथायोग्य पूजनीय होता है। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, वह अपने किये पाप उसे देकर उसका पुण्य ले जाता है। एक दिन भारतमें अतिथि-सत्कारको बड़ी महिमा थी, पर अब वह बात नहीं। देशके जिन भागोंमें नई सभ्यताकी रोशनी नहीं पहुँची है, वहाँके लोग अब भी पुरानी चालपर चलते हैं। यह बात

राजपूतानेके उन हिस्सोंमें, जिनमें पुराने ही ढँगके मनुष्य हैं, अब भी है। हमने सिन्ध और राजपूतानेके मरुस्थलमें स्वयं परिभ्रमण किया है। जब हम दिन-भर चलकर शामके वक्त किसी गाँवमें पहुँचते थे, तो वहाँके ग़रीब लोग हमें यथा-सामर्थ्य सब तरहसे सुखी करनेमें ही अपनेको धन्य समझते थे। कहा है—

जो घर आवत शत्रुहु, सुजन देत सुख चाहि।
ज्यों काटे तरु मूल कोउ, छाँह करत वह ताहि॥

महापुरुष अपने किये उपकारोंको तो छिपाते हैं; पर दूसरा उनके साथ जो ज़रासी भी भलाई करता है, उसको सौ गुनी करके औरोंसे कहते हैं। यह सामर्थ्य सत्पुरुषोंमें ही होती है। नीच लोग तो अपने उपकारीके उपकारको छिपानेकी ही चेष्टा किया करते हैं; क्योंकि संकीर्ण-हृदय लोग इसमें अपनी मान-हानि समझते हैं। किसीने कहा है—

"Man is, beyond dispute, the most excellent of created beings, and the vilest animal is a dog; but the sages agree that a grateful dog is better than an ungrateful man".

मनुष्य, निस्सन्देह, सब प्राणधारियोंमें उत्तम है और कुत्ता सबसे नीच है, लेकिन बुद्धिमान कहते हैं, उपकार न माननेवाले मनुष्यसे कुत्ता अच्छा है। शास्त्रोंमें लिखा है—मित्रद्रोही, कृतघ्न, भ्रूणहत्या करनेवाले और विश्वासघाती

सदा रौरव नरकमें रहते हैं; इसलिये पराये किये उपकारको कभी न भूलना चाहिये और अपने उपकारीकी जगह-जगह प्रशंसा करनी चाहिये। कहा है—

तिनसों विमुख न हूजिये, जे उपकार समेत।
मोर ताल जल पान करि, जैसे पीठ न देत॥
खल नर गुण माने नहिं, मेटहिं दाता ओप।
जिमि जल तुलसी देत रवि, जलद करत तेहि लोप॥

कहते हैं, धनसे किसे गर्व न हुआ ? किस कामीका दुःख कम हुआ ? किसके मनको स्त्रियोंने खण्डित न किया ? कौन राजाका प्यारा हुआ ? कौन कालके वश नहीं हुआ ? कौन याचक बड़ा हुआ ? दुष्टके संसर्गसे कौन सकुशल बचा ? महात्मा तुलसीदासजीने भी कहा है—

"प्रभुता पाय काहि मद नाहीं ?"

यह बात साधारण लोगोंके सम्बन्धमें ठीक है। सत्पुरुषोंको धनसे गर्व नहीं होता। धनैश्वर्य्य पाकर, सत्पुरुष फल-दार वृक्षोंकी तरह उल्टे नीचेको झुक जाते हैं; अर्थात् नम्र हो जाते हैं। वे इस बातको जानते हैं कि धन, यौवन और जीवन असार और चञ्चल हैं। धन गेंदकी तरह हाथमें आता है और गेंदकी ही तरह शीघ्र ही हाथसे निकल जाता है। जो आज ऊँचा है, उसे कल नीचे गिरना ही होगा। इस जहानमें कितने ही बाग़ लग-लगकर सूख गये, आज उनका

नामोनिशान भी नहीं; कितने ही दरिया चढ़े और उतर गये। संसारकी परिवर्तनशीलताका ज्ञान होनेकी वजहसे ही, वे सारी पृथ्वीके अकेले स्वामी होनेपर भी, मुतलक़ घमण्ड नहीं करते और जो ऐश्वर्य्यशाली होनेपर गर्व नहीं करते, वे निस्सन्देह महात्मा और इस पृथ्वीके भूषण हैं।

कहा है—

सधन सगुण सधरम सगण, सुजन सुसबल महीप।
तुलसी जे अभिमान बिन, ते त्रिभुवनके दीप॥

महात्मा पुरुष अगर किसीका ज़िक्र करते हैं, तो उसमें निन्दाव्यञ्जक वाक्य तो क्या—एक बुरा शब्द भी नहीं आने देते। उनको किसीसे ईर्षा-द्वेष नहीं होता, इसलिये वे किसीका दिल दुखानेवाली बात नहीं कहते। पराया दिल दुखानेको वे महापातक समझते हैं। उनकी ज़बान और क़लमसे, स्वप्नमें भी किसीकी निन्दाकी बात नहीं निकलती। महात्माओंको दूसरेमें दोष दीखते ही नहीं। दोष उन्हींको दीखते हैं, जिनके हृदय स्वयं मलीन होते हैं और जो परछिद्रान्वेषणकी फ़िक्रमें रहते हैं। जो स्वयं ख़राब होते हैं, उन्हींको दूसरे ख़राब मालूम होते हैं। धूँधले आइनेमें ही चेहरा ख़राब दीखता है। धुँधलकेमें स्पष्ट लिखा हुआ भी अस्पष्ट और अपाठ्य दीखता है। शैली महाशयने कहा है—

"जो ग्रन्थकारोंकी धूल उड़ाते हैं, उनमें अधिकांश लोग मूर्ख और पर-गुण-द्वेषी होते हैं।" पर-गुण-द्वेषीके सिवा पर-

निन्दा कौन करेगा ? महापुरुष जो कहते हैं, वह इस तरह कहते हैं, जिससे किसीके दिलमें चोट न लगे और उन्हें कोई निन्दक न सह सके। दूसरेका दिल दुखानेवाली बात सच भी हो, तो भी न कहनी चाहिये।

कहा है—

पर परिवादः परिषदि न कथञ्चित पण्डितेन वक्तव्यः।
सत्यमपि तन्न वाच्यं यदुक्तम सुखावहं भवति॥

सभामें बुद्धिमानको पराई निन्दा किसी हालतमें भी न करनी चाहिये। जो बात कहनेसे दूसरेको बुरी लगे, वह सत्य भी हो तथापि न कहनी चाहिये।

और भी कहा है—

पर को अवगुण देखिये, अपनो दृष्टि न होय।
करै उजेरो दीप पै, तरे अँधेरो जोय॥
दोष भरी न उचारिये, जदपि यथारथ बात।
कहै अन्ध कों आँधरो, मान बुरौ सतरात॥

छप्पय—दियो जनावत नाहिं, गयै घर कर सत आदर।
हितकर साधत मौन, कहत उपचार वचन बर॥
काहू को दुख होय, कथा वह कबहूँ न भाषत।
सदा दान सों प्रीति, नीतियुत सम्पति राखत॥

यह खड्गधार व्रत धारके, जे नर साधत मन बचन।
तिनकौ सुनहु यह लोकमें, पूर रह्यो यशही रचन ॥६४॥

64. To give charity in secret, to honour a guest, to be silent after doing good to others, to speak openly of the good done by others, to be free from vanity in spite of wealth and to speak of others without the use of any bad remarks (are the virtues generally possessed by good man). (I wonder) who has taught these good men to observe such a difficult vow which is as sharp as the edge of a sword.

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता।
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् ॥
हृदि स्वस्था वृत्तिः श्रुतमधिगतैकव्रतफलं।
विनाप्यैश्वर्येणं प्रकृतिमहतां मंडनमिदम् ॥६५॥

बिना ऐश्वर्यके भी महापुरुषोंके हाथ दानसे, मस्तक गुरुजनोंको सिर झुकानेसे, मुख सत्य बोलनेसे, जय चाहनेवाली दोनों भुजायें अतुल पराक्रमसे, हृदय शुद्ध वृत्तिसे और कान शास्त्रोंसे शोभाके योग्य होते हैं।

मनुष्यके और आभूषण धन होनेपर होते हैं; पर सत्पुरुषोंकी निर्धनावस्थामें भी उनके हाथ दानसे, मस्तक बड़ोंको दण्डवत-प्रणाम करनेसे, मुँह सत्यभाषणसे, भुजायें पराक्रमसे, हृदय शुद्धतासे और कान शास्त्र सुननेसे, उनके

भूषण होते हैं। अर्थात् वे धन न होनेपर भी, इन उत्तम कामोंको करते हैं।

छप्पय—करन करत ते दान, शीस गुरु चरणन राखत।
मुखसों बोलत सांच, भुजन सौं जय अभिलाषत॥
चित की निर्मल वृत्ति, श्रवण में कथा श्रवणरति।
निशदिन पर उपकार सहित, सुन्दर जिनकी मति॥
ते बिना साज सम्पत तऊ, सोहत सकल सिंगार तन।
उनकौ जु संग तिन देह प्रभु, तौ यह सुधरे चपल मन॥६५॥

65. The hands become praiseworthy by charity, the head by bowing down before elders, the mouth by speaking the truth, both the arms by display of valour in battle, the mind by calm thinking and the ears by listening to the knowledge of scriptures. The foregoing are the ornaments of those great by nature even without the possession of wealth.

संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम्॥६६

सम्पत्ति-कालमें महापुरुषोंका चित्त कमलसे भी कोमल रहता है और विपद्-कालमें वह पर्वतकी महान शिलाकी तरह कठोर हो जाता है॥६६॥

सम्पदावस्थामें मनुष्य जितना ही नम्र रहे उतना ही अच्छा। इस अवस्थामें नम्रता और सरलतासे मनुष्यकी

शोभा होती है और विपद्-कालमें मनुष्य जितना ही कठोर होता है, जितना ही धैर्य्यावलम्बन करता है, उतनी ही उसकी बड़ाई होती है। जो विपद्में घबराता है, उसको विपद् घबराती है। कठोर होनेसे ही विपद् आसानीसे कट जाती है। जो विपद्में पड़कर कड़ा नहीं होता, सब कुछ सहनेको तैयार नहीं होता, मोहसे ख़ाली रोता है, उसका रोना ही बढ़ता है। उपाय करने और विषाद त्यागनेके सिवा विपद्की और दवा नहीं। महापुरुष सम्पद और विपद् दोनों अवस्थाओंको चिरस्थायी नहीं समझते; उन्हें गाड़ीके पहियोंकी तरह घूमती हुई समझते हैं; इसलिये वे सम्पदमें न तो फूलते हैं और न इतराते हैं और विपद्में न रोते हैं न घबराते हैं। जो नम्र और सरल होते हैं, वे आपदमें विकार-ग्रस्त नहीं होते।

सोरठा—सतपुरुषन की रीति, सम्पत में कोमलहिं मन।
दुखहू में यह नीति, बज्रसमानहिं होत तन ॥६६॥

66. In prosperity the heart of the great becomes gentle like a lotus-flower; while in calamity it is hardened like the rock of a great mountain.

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते।
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितम् राजते॥

स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते ।
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संसर्गतो देहिनाम् ॥६७

गरम लोहेपर जलकी बूँद पड़नेसे उसका नाम भी नहीं रहता; वही जलकी बूँद कमलके पत्तेपर पड़नेसे मोती सी हो जाती है और वही जलकी बूँद स्वाति नक्षत्रमें समुद्रकी सीपमें पड़नेसे मोती हो जाती है। इससे सिद्ध होता है, कि संसारमें अधम, मध्यम और उत्तम गुण प्रायः संसर्गसे ही होते हैं।

निस्सन्देह अधम, मध्यम और उत्तम गुण मनुष्यमें प्रायः संसर्ग या सुहबतसे ही होते हैं। यदि संसर्ग अधम होता है, मनुष्य अधम हो जाता है और यदि संसर्ग उत्तम होता है तो मनुष्य उत्तम हो जाता है।

सोरठा—तबे बुन्द ह्वै छीण, कमलपत्र जे सरस हैं।
मुक्ता सीपहिं कीन, यान मान अपमान है ॥६७॥

67. No trace is left of a drop of rain fallen on red-hot iron. The same drop, fallen on a lotus-leaf (in the shape of dew) looks beautiful like a pearl. (Again) the same is transformed into a genuine pearl when it falls into a sea-shell at the time of Swati (nakshatra). Generally the evil, ordinary or good qualities of men are acquired in accordance with the kind of society they keep.

य: प्रणीयेत्सुचरितै पितरं स पुत्रो।
यद्भर्तु रेव हितमिच्छति तत्कलत्रम् ॥
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं य-।
देतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥६८॥

अपने उत्तम चारित्रसे पिताको प्रसन्न रक्खे वही पुत्र है, अपने पतिका सदा-सर्वदा भला चाहे वही स्त्री है और जो सम्पद और विपद्—दोनों अवस्थाओंमें एकसा रहे वही मित्र है। जगत्में ये तीनों भाग्यवानोंको ही मिलते हैं।

यों तो पुत्र प्रायः सभीके होते हैं; पर जो पुत्र सदाचारी है, अच्छे चाल-चलनवाला है, कुकर्मोंसे बचनेवाला है, पिता-माताकी सेवा करनेवाला और उनकी आज्ञामें रहनेवाला है, वही पुत्र है। वैसे ही पुत्रके माता-पिता पुत्रवान् हैं। असदाचारी—बुरे चाल-चलनवाला, माता-पिताकी बात न सहनेवाला, उनकी आज्ञा न पालन करनेवाला और अपने कुकर्मसे कुलमें दाग़ लगानेवाला पुत्र, पुत्र नहीं—शत्रु है।

प्रायः सभी लोगोंके भार्य्यायें होती हैं; पर वास्तविक स्त्री वही है, जो पतिव्रता और पतिपरायणा है तथा पतिके अनुकूल चलनेवाली, छायाकी तरह उसके साथ रहनेवाली और पतिके दुःखमें दुखी और पतिके सुखमें सुखी रहनेवाली है एवं हर क्षण पतिकी शुभ-चिन्तना करनेवाली

है। जो स्त्री व्यभिचारिणी, कुलटा या असती है; जो हरदम कलह करनेवाली और क्रोधमुखी है; जो पतिको कष्ट देती, उसकी इच्छानुसार नहीं चलती, और उसकी अशुभ चिन्तना करती है, वह स्त्री—स्त्री नहीं; वह तो पतिकी शत्रु अथवा साक्षात् मृत्यु है।

मित्र भी बहुत लोगोंके होते हैं। जिसके पास दो पैसे होते हैं, उसके अनेक खुशामदी मित्र बन बैठते हैं। जबतक पैसा देखते हैं, मौज उड़ानेके सामान देखते हैं, खूब गुलछर्रे उड़ते हैं, तबतक वे मित्र बने रहते हैं; लेकिन ज्योंहीं पैसोंका अभाव या दरिद्र देखते हैं, कि आजकलके मित्र नौ दो ग्यारह होते हैं। जो ऐसोंको मित्र समझते हैं, वे बड़ी ग़लती करते और धोखा खाते हैं। इन लोगोंको स्वार्थी या मतलबी कहना चाहिये। मित्र तो वही होता है, जो सुदिन और दुर्दिन—अच्छे दिन और बुरे दिन—सम्पद और विपद् दोनोंमें ही एकसा रहता है अथवा विपद्में स्नेहकी मात्रा और भी बढ़ा देता है। ऐसा मित्र न हमें मिला और न हमने किसी और के ही देखा। हाँ, मतलबी यार हमें भी बहुत मिले और अन्य लोगोंको भी। बनीमें साथ रहनेवाले और बिगड़ीमें अलग हो जानेवाले नीच हमने बहुत देखे। कहा है—

प्रारम्भे कुसुमाकरस्य परितो यस्योल्लसन्मंजरी-
पुञ्जे मञ्जुल गुञ्जितानि रचयंस्तानातनोरुत्सवान्।

तस्मिन्नद्य रसालशाखिनी दृशां दैवात् कृशामंचति
त्वंचेन्मुंचसि चंचरीक विनयं नीचस्त्वदन्योऽस्तिकः।

हे चंचरीक ! वसन्तके आते ही चारों ओरसे फूली हुई आमकी मंजरियोंके पुञ्जमें मंजु-मंजु गुञ्जार करते हुए तूने खूब सुख पाया। अब दैववशात्, आमोंके पुष्पहीन होनेपर, तू यदि उससे पहला सा स्नेह न रक्खेगा, तो तुझसे बढ़कर और नीच कौन है ?

जिनका स्वभाव ही नीच है, वे इन बातोंको नहीं समझते; उन्हें किसीके भले-बुरे कहनेकी परवा नहीं। अगर वे इतना ही समझें, मित्रोंको मुसीबतमें न त्यागें; तो वे सज्जन ही न कहलावें। पर ऐसे सज्जन विरले ही होते हैं। महात्मा स्टीलने कहा है:—

"Men of courage, men of sense and men of letters are frequent but a true gentleman is what one seldom sees."

साहसी, बुद्धिमान और विद्वान् लोग बहुत मिलते हैं; किन्तु जिसे सच्चा सत्पुरुष कहते हैं, वह कभी ही दृष्टिगोचर होता है। साधुपुरुष और चन्दन सर्व्वत्र नहीं होते। तात्पर्य्य यह कि, जिन्हें सच्चे मित्र कहते हैं, वे किसी ही पुण्यवानको मिलते हैं। मित्रताका नाम भर रह गया है; अब सच्ची मित्रता कहाँ है ? किसी उर्दू कविने ठीक कहा है—

मिट गये जौहर वफ़ा के, उठ गये सब अहले दिल।
अब वफा है नाम को और बावफा कहने को है॥

सहृदय उठ गये और सहृदयता भी उन्हींके साथ चली गई, अब तो वफ़ा और बावफ़ा केवल शब्दोंमें रह गये।

दोहा—पुत्रचरित तिय हितकरन, सुख-दुख मित्र समान।
मनरञ्जन तीनों मिलें, पूरब पुण्यहि जान ॥६८॥

68. He makes a good son who pleases his father by his good character. She is a good wife who desires only for the welfare of her husband. He is a good friend who remains equal in distress as well as in happiness. These three are obtained in this world by those only who have done pious deeds (in their previous birth).

एको देवः केशवो वा शिवो वा
एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा ॥
एको वासः पत्तने वा वने वा
एका नारी सुन्दरी वा दरी वा ॥६६॥

एक देवताकी आराधना करनी चाहिये—केशवकी या शिवकी; एक ही मित्र करना चाहिये—राजा हो या तपस्वी, एक ही जगह बसना चाहिये—नगरमें या वनमें और एकसे ही विलास करना चाहिये—सुन्दरी नारीसे या कन्दरासे।

इसका खुलासा यह है—मनुष्यको या तो संसारमें रहकर भोग भोगने चाहियें अथवा संसारको परित्याग करके वनमें जा बसना चाहिये। यदि मनुष्य संसारमें रहे, तो उसे कृष्ण भगवान्की भक्ति करनी चाहिये, किसी राजासे मैत्री करनी

चाहिये, नगरमें बसना चाहिये और किसी सुन्दरी नारीका पाणिग्रहण कर उससे विलास करना चाहिये। अगर मनुष्य संसारकी असारतासे विरक्त होकर वनमें रहे, तो उसे शिवजीकी भक्ति और आराधना करनी चाहिये, किसी तपस्वीसे मैत्री करनी चाहिये, वनमें रहना चाहिये और कन्दरा—गुफ़ासे विलास करना चाहिये।

अत्यागी और त्यागी—गृहस्थ और संन्यासी दोनोंके लिये योगिराजने क्या ही उत्तम उपदेश दिया है! संसारमें रहनेवाले, गृहस्थके लिये कृष्णकी भक्ति, राजाकी मैत्री, नगरका निवास और सुन्दरी नारीसे विलास—चारों ही बातें बड़ी उत्तम हैं। इस तरह करनेसे अत्यागी—गृहस्थको दोनों लोकोंमें सुख होता है। भगवान् कृष्णकी अनन्य भक्ति करनेसे मनुष्यके सारे मनोरथ पूरे होते हैं; कोई आपदा पास नहीं आती और यदि आती भी है, तो भगवान्‌की कृपासे हवासे बादलोंकी तरह उड़ जाती है। लाख-लाख दुर्जन शत्रु मिलकर भी, कृष्णके प्यारेका बाल भी बाँका नहीं कर सकते। कृष्णकी कृपा होनेसे लक्ष्मीकी कृपा होती है। पति जिसे चाहता है, स्त्री भी उसे प्यार करती है। भगवान् कृष्णकी भक्तिका फल, इस कलिकालमें भी, हाथों-हाथ मिलता है, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। इन पंक्तियोंके लेखकने इसका स्वयं अनुभव किया है। बहुतसे लोग कहा करते हैं, कि गृहस्थीके जंजालमें भगवान्‌की भक्ति हो ही नहीं

सकती। जो ऐसा कहते हैं, ग़लती करते हैं। मनुष्य, गृहस्थीमें रहकर भी, परमात्माकी भक्ति कर सकता है। मनुष्यको चाहिये, वाणिज्य-व्यवसाय नौकरी-चाकरी आदि संसारी काम करता रहे, पर मनको प्यारे कृष्णमें रक्खे। इस तरह शरीरसे जगत्के काम-धन्धे करने और मनको परमात्मामें रखनेसे मनुष्यको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थोंकी प्राप्ति होती है। मायामें फँसा हुआ चञ्चल मन मुकुन्दके चरण-कमलोंमें कैसे लग सकता है ? स्वामी रामकृष्ण परम-हंस कहते हैं—"व्यभिचारिणी स्त्री घरके सभी काम-काज करती रहती है, पर उसका मन हर क्षण अपने यारमें रहता है। गाय जगह-जगह घास चरती फिरती है, पर मनको अपने बच्चेमें रखती है। स्त्रियाँ धान या बाजरा वग़ैरः ओखलीमें डालकर कूटा करती हैं, उस समय एक हाथसे मूसल चलाती हैं और दूसरेसे धानको ठीक करती जाती हैं। अगर उस समय घरका कोई आदमी या पड़ोसिन आ जाती है, तो वे धान भी कूटती जाती हैं और बातें भी करती रहती हैं। अगर उस समय बालक रोने लगता है, तो उसे दूध भी पिलाती जाती हैं; पर उनका ध्यान मूसल हीमें रहता है। अगर बातोंमें उनका ध्यान ज़रा भी मूसलसे हट जाय, तो उनके हाथके पलस्तर उड़ जायँ, फौरन मूसल उनके हाथपर ही पड़े।" स्त्रियाँ तीन-तीन जेहर पानीकी सिरपर धर कर, अपनी साथिनोंके साथ इठलाती और बातें करती

राहमें चलती हैं। अगर राहमें किसी कुलटाका यार मिल जाता है, तो वह सिरपर घड़ेको रक्खे हुए हँस-हँसकर और मटक-मटककर खूब बातें करती है, पर उसके घड़ेका पानी उछलकर उसके कपड़े नहीं भिगोता—इसका क्या कारण है? कारण यही है, कि वह हँसती-मटकती और बातें अवश्य करती है, पर उसका मन अपने सिरपर रक्खे हुए घड़ेसे ज़रा भी नहीं हटता। बस, इसी तरह संसारी काम करता हुआ भी, मनुष्य भगवान्की सच्ची भक्ति कर सकता है। स्त्री रखने, बाल-बच्चोंका पालन-पोषण करने और अन्यान्य सुकर्म करनेसे इष्टसिद्धिमें ज़रा भी गड़बड़ नहीं होती।

पितरोंके पिण्डदानकी व्यवस्थाके लिये पुरुषको सुन्दरीसे विवाह करके सन्तान पैदा करनी चाहिये। सुन्दरी स्त्रीके साथ शादी करनेकी बात इसलिये लिखी गई है, कि स्त्रीके सुन्दरी होनेसे पराई स्त्रीपर मन नहीं जाता और सन्तान भी स्वरूपवान् होती है। नगरमें रहनेकी बात इसलिये लिखी है, कि गृहस्थको चिकित्सक, साहूकार, कर्मकाण्डी ब्राह्मण और खाद्य सामग्री एवं वस्त्र प्रभृतिकी जरूरत पड़ती रहती है और ये सब शहरमें आसानीसे जरूरतके समय मिल जाते हैं। राजाके साथ मैत्री करनेकी बात इसलिये लिखी है, कि राजाके साथ मैत्री रहनेसे पुरुषको धनसञ्चयमें सहायता मिलती है, लोगोंपर प्रभाव पड़ता है और

सम्मान मिलता है। राज-सम्मान अमृतके समान माना गया है और है भी ठीक। भाग्यवान् पुरुष ही राजसम्मान लाभ करते हैं। कहा है—

अमृतं शिशिरे वह्निरमृतं प्रियदर्शनम्।
अमृतं राजसम्मानममृतं क्षीरभोजनम्॥

शीतकालमें अग्नि अमृत है, प्यारेका दर्शन अमृत है, राज-सम्मान अमृत है और खीरका भोजन अमृत है।

अगर मनुष्यके स्त्री न हो, हो तो कुलटा और कलहकारिणी हो, लक्ष्मीकी कृपा न हो, राजासे भी मैत्री न हो; तो उसे भूलकर भी गृहस्थाश्रममें रहकर अपना दुष्प्राप्य मनुष्य-जीवन नष्ट न करना चाहिये। सब आशा-तृष्णा त्यागकर वनमें रहना चाहिये। वनमें अकेले रहनेसे, मनुष्यका मन सब ओरसे हटकर प्रभुके पदपंकजोंमें ही झुकेगा; क्योंकि एकान्त-वासीको मनके विकृत करनेवाले पदार्थ—शिकार, ताश-चौपड़ आदि खेल, दिनमें सोना, परनिन्दा, स्त्रीका सङ्ग, मदिरा-पान और नाच-बाजे तथा गाने प्रभृतिका संसर्ग ही नहीं रहता, इससे मन विकृत नहीं होता। कैसा ही मनुष्य क्यों न हो, उपरोक्त पदार्थ मनुष्यके मनको बिगाड़े बिना नहीं रहते। विकृत मनमें प्यारा बैठ नहीं सकता। प्यारेके निवासके लिये मनको क्रोधके आठों दोष—दुष्टता, हठकारिता, परकी अनिष्ट-चिन्ता और आचरण, पराये गुण देखकर जलना और सह न सकना, पराये गुणोंमें दोष ढूँढ़ना, जो देना

है उसे न देना और दी हुई चीज़को हज़म कर जाना, कठोर बचन बोलना और निर्दयताके काम करना—इनसे मनको साफ़ रखना चाहिये। शुद्ध और पवित्र मनमें ही प्यारा बैठता है। जिनसे इस तरह मन शुद्ध न किया जा सके, उनका वनमें जाना भी वृथा ही है। वनमें रहकर तपस्वियोंसे मैत्री करनी चाहिये; संसारी लोगोंका संसर्ग सदा त्यागना चाहिये। गुफ़ामें बैठकर आनन्दपूर्वक "शङ्कर-शङ्कर" भजना चाहिये। इस तरह करनेसे मनुष्यको इस जन्ममें सच्चा सुख और शान्ति मिलती है और मरनेपर स्वर्ग या मोक्ष-पदकी प्राप्ति होती है।

एक ही काम करना चाहिये, "इधरके रहे न उधरके रहे, .खुदा ही मिला न विसाले सनम्" वाली कहावत न चरितार्थ करनी चाहिये। संसारी बनना हो, तो संसारी ही बनना चाहिये; त्यागीका ढोंग करना ठीक नहीं। संन्यासी होकर गृहस्थोंके घर आना, उत्तमोत्तम पुष्टिकारक षट्रस भोजन करना, धन सञ्चय करना, युवतियोंको पास बिठाना, उनसे पैर पुजाना—उचित नहीं; इस तरह करनेसे मनुष्य न इधरका रहता है न उधरका। "धोबीका कुत्ता घरका न घाटका" यह कहावत चरितार्थ होती है।

गोस्वामीजीने कहा है:—

कै ममता करु रामपद, कै ममता करु हेल।
तुलसी दो महँ एक अब, खेल छाँड़ि छल खेल॥

कुण्डलिया—सेवहु केशव देव को, कै शिवकी कर सेव।
मित्र एक कर नृपति को, कै जोगेश्वर देव॥
कै जोगेश्वर देव, दुहुन में एक हितू करि।
करिये नगर निवास, किधौं बनवास करहु ढरि॥
पुत्रवती तिय संग, अंग अंगन मेटै बहु।
करि गिरिगुहा प्रसंग, प्रीति सों नितप्रति सेवहु॥६६॥

69. (One ought to worship) only one god, either Vishnu or Shiva. (There should be only) one friend, either a king or a recluse. (There should be) one residence, either in a town or in a forest. (There should be) single beautiful wife or (else one should have resort to) a (hidden) cave.

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान्गुणान्ख्यापयन्तः
स्वार्थान्ससम्पादयन्तो विततप्रियतरारम्भयत्नाः पदार्थे
क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान्दुर्जनान्दूषयन्तः
सन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः
॥७०॥

नम्रतासे ऊँचे होते हैं, पराये गुणोंका कीर्त्तन करके अपने गुणोंको प्रसिद्ध कर लेते हैं—पराया भला करनेमें दिलसे लग कर अपना मतलब भी बना लेते हैं और निन्दा करनेवाले दुष्टोंको अपनी क्षमाशीलतासे ही कलंकित या लज्जित करते हैं—ऐसे आश्चर्य्यकारक आचरणसे सभीके माननीय सन्त पुरुष संसारमें किसके पूजनीय नहीं हैं ?

सज्जन सबसे नम्रताका व्यवहार करते हैं, किसीसे भी ऐंठ कर बात नहीं करते, अपने तईं सबसे नीचा समझते हैं और अपनी नम्रतासे ही ऊँचे होते हैं; यानी किसीको भी अपनेसे कम नहीं समझते, सबको अपनेसे ऊँचा और अपने तईं सबसे नीचा समझते हैं; अदना-से-अदना आदमीसे विनीत व्यवहार करते हैं। उनके इस व्यवहारसे प्रत्येक मनुष्यका आत्मा सन्तुष्ट हो जाता है; प्रत्येक मनुष्य उनका सन्मान करने लगता है और उन्हें अपनेसे ऊँचा समझता है; क्योंकि वास्तविक महापुरुषोंमें ही नम्रता होती है; जो ओछे और थोथे होते हैं, उनमें ही अभिमानकी मात्रा हदसे ज़ियादा होती है ‡। नीच लोग अभिमान-भरी बातें कहकर, अपनी शान और रोब दिखाकर ऊँचा होना चाहते हैं; पर वे लोगोंकी नज़रोंसे उल्टे ही गिर जाते हैं। पहले भी जितने बड़े लोग हुए हैं, वे सभी निराभिमानी, परले सिरेके नम्र, विनयी और मधुरभाषी हुए हैं। जो अपने तईं ऊँचा बनाना चाहें, उन्हें नम्र होना ही चाहिये; बिना नीचा हुए कोई ऊँचा हो नहीं सकता।

कविजन कहते हैं—

'नर की अरु नल नीर की, गति एकी कर जोय।
ज्यों-ज्यों नीचो ह्वै चले, त्यों-त्यों ऊँचो होय॥'

---

‡ A little pot becomes soon hot.—*Dutch.*
Empty vessels make the most noise.

उच्च हुयो जो जन चहै, विनय धरे निज मत्थ।
नयौ प्रथम ज्यों केसरी, ह्वै करिबध समरत्थ॥

ईसाइयोंकी बाइबिलमें लिखा है—

"He that humbles himself shall be exalted."

जो अपने तईं नीचा बनावेगा, वह अवश्य ऊँचा होगा।

शेख़ सादीने भी कहा है—

"बनी आदम सरश्त अज़ ख़ाक दारन्द
अगर ख़ाकी न बाशद आदमी नेस्त
न शायद बनी आदमे पाकजाद।
के दर सर कुनद किब्र तुन्दी ओ बाद॥"

मनुष्य ख़ाकसे बना है। अगर उसमें ख़ाकसारी—नम्रता नहीं है, तो वह फिर आदमी नहीं है। ख़ाकसे बनी आदमकी औलादको अभिमान और कठोरता आदिसे बचना चाहिये।

सच है, मनुष्य मिट्टीसे बना है और मिट्टीमें ही मिल जायगा †। इसलिए उसमें मिट्टीकी तरह ही नम्रता होनी चाहिये। जिसमें नम्रता नहीं, वह मनुष्य नहीं।

दूसरी बात सज्जनोंके स्वभावमें यह होती है, कि वे किसीकी भी निन्दा नहीं करते; जहाँ तक होता है, पराई

† Dust thou art, and unto dust thou shalt return—*Bible.*

प्रशंसा ही किया करते हैं। जिनके दिलमें ईर्षा-द्वेष होता है, जिनके हृदय अपवित्र होते हैं, उनके हृदयोंसे ही गन्दी बातें निकला करती हैं। जो सबको ही परमात्माका रूप समझते हैं, जो सभी प्राणियोंमें परमात्माको देखते हैं, वे भूलकर भी किसीकी निन्दा नहीं कर सकते। वे सभीको अपनेसे बड़ा समझते हैं, उनकी नज़रमें कोई भी उनसे छोटा नहीं। उनकी ऐसी समझ है, तभी तो वे किसीसे शत्रुता और द्वेषभाव नहीं रखते। कहा है—

कैसा मोमिन कैसा काफ़िर, कौन है सूफ़ी कैसा रिन्द।
सारे बशर हैं बन्दे हक़के, सारे शर के झगड़े हैं॥

और भी—

ऐ ज़ौक़, किसको चश्मे हिक़ारत से देखिये।
सब हमसे हैं ज़ियादा, कोई हम से कम नहीं॥

जो सबको बन्दे-ख़ुदा समझते हैं और सभीको अपनेसे ज़ियादा समझते हैं, वे किसीको नज़र-हिक़ारतसे नहीं देख सकते §। उनके मुँहसे पराई प्रशंसा छोड़ निन्दा निकल ही नहीं सकती; पर यह काम है कठिन। किसी लेखककी नुक़ताचीनी या कड़ी समालोचना करना आसान है; पर उसकी प्रशंसा करना कठिन है। निस्सन्देह पराये औगुणोंको छिपाना और गुणोंका बखान करना कठिन है; पर सज्जनोंमें यह गुण स्वभावसे ही होता है। जो ऐसा करते हैं,

§ A true man hates no one—*Napoleon.*

उनका कोई भी शत्रु हो नहीं सकता, सभी उनके मित्र हो जाते हैं और उन्हींके द्वारा उनके गुणोंकी प्रसिद्धि हो जाती है।

तीसरा गुण सज्जनोंमें यह होता है, कि वे सदा परोपकार में दत्तचित्त रहते हैं। जो सदा पराई भलाईमें लगा रहेगा, उसका कोई काम बिना बने रह नहीं सकता।

चौथा गुण सज्जनोंमें यह होता है, कि वे अपने निन्दकोंकी बातोंका बुरा नहीं मानते। वे आमके वृक्षकी तरह होते हैं, कि लोग उसे पत्थर मारते हैं और वह फल देता है। जो लोग उनकी निन्दा करते हैं, वे उन्हींकी प्रशंसा करते हैं। उनका खयाल है—

ज़ुबाँ खोलेंगे मुझ पर बदज़ुबाँ क्या बदशआरी से।
कि मैंने ख़ाक भर दी है उनके मुँहमें ख़ाकसारी से॥
तू भला है तो बुरा हो नहीं सकता ऐ ज़ौक़!।
है बुरा वही कि जो तुझ को बुरा जानता है॥

बुरे आदमी अपनी बुराईके कारण मेरी निन्दा नहीं कर सकते; क्योंकि मैंने अपनी नम्रतासे उनके मुँहमें ख़ाक भर दी है।

ऐ ज़ौक़! तू भला है, तो निन्दकोंके कहनेसे बुरा हो नहीं सकता। वही बुरा है, जो तुझे बुरा समझता है।

"गुलिस्ताँ" में लिखा है:—

"द्वेषी मनुष्य ही निरपराध मनुष्योंसे शत्रुता रखता है। मैंने एक मूर्खको एक प्रतिष्ठित पुरुषका अपमान करते देखा।

मैंने उससे कहा—"महाशय! अगर आप भाग्यहीन हैं, तो इसमें भाग्यवानोंका क्या दोष है?" जो तुमको देखकर जले, तुम उसका बुरा मत चीतो; क्योंकि वह अभागा स्वयं आफतमें फँसा हुआ है*। जिसके पीछे ऐसा शत्रु (दूसरेको देखकर कुढ़ना) लग रहा है, उसके साथ शत्रुता करनेकी क्या आवश्यकता? बुद्धिमान दुष्टोंकी बातोंका बुरा नहीं मानते। दुष्टोंका स्वभाव ही है, कि जब वे गुणोंमें दूसरोंकी बराबरी नहीं कर सकते, तब अपनी दुष्टताके कारण उनमें दोष लगाने लगते हैं।"

सज्जन पुरुष नीचोंकी बातोंकी परवा नहीं करते। वे अपनी नम्रता और क्षमाशीलतासे ही उनके मुँह बन्द कर देते हैं। बुराई करते-करते जब दुष्ट थक जाते हैं, तब आप ही लज्जित होकर बुराई करना छोड़ देते हैं।

क्षमा खड्ग लीने रहे, खल की कहा बसाय।
अगिन परी तृण रहित थल, आपहि तैं बुझ जाय॥

नम्रतासे ऊँचा होना, पराया गुण गान करके अपनी प्रसिद्धि करना, पराया भला करते हुए अपना भी स्वार्थ सिद्ध कर लेना और निन्दकोंको अपनी क्षमाशीलतासे लज्जित करना,—ये चारों ही गुण अनुकरणीय हैं। जिनमें ये चारों गुण होते हैं, निश्चय ही वे सभीके पूजनीय होते हैं।

---

* Envy, if surrounded on all sides by the brightness of another's prosperity, like the scorpion confined with a circle of fire, will sting itself to death.—*colton*.

छप्पय—नीचे ह्वै के चलत, होत सबसे ऊँचे अति ।
परगुण कीरति करत, आप गुण ढाँकत यह मति ॥
आपन अरथ विचार, करत निशि दिन परमारथ ।
दुष्ट वचन नहिं कहत, क्षमा कर साधत स्वारथ ॥
नित रहत एकरस सबनसों, बचन कोपकर कहत नहिं ।
ऐसे जु सन्त या जगत में, बन्दित सबके स्वतन्त्रहिं ॥७०॥

70. They display their greatness by their humility, and their personal good qualities by speaking well of others. In the acquirement of their own objects they ceaselessly make even greater efforts for the benefit of others and put to shame by their pardoning (habits) the evil men whose mouths are polluted by (uttering) dry words of attack. Who will not honour the holy men with such a wonderful conduct and worthy of being respected by the whole world ?

परोपकारियोंकी प्रशंसा ।

——::o::——

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवांबुभिर्भूरि विलम्बिनो घनाः ॥
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥७१॥

जैसे वृत्त फल लगनेसे नीचेकी ओर झुक जाते हैं, वर्षाके जलसे भरे हुए नवीन मेघ ज़मीनकी ओर झूमने लगते हैं; वैसे ही सत्पुरुष भी सम्पत्ति पाकर उद्धत नहीं होते, बल्कि नम्र हो जाते हैं; इससे प्रत्यत्त है, कि परोपकारी मनुष्योंका स्वभाव ही ऐसा होता है।

सज्जन पुरुष सम्पत्तिवान् होकर नम्रता धारण करते हैं; किन्तु दुष्ट लोग धन-सम्पत्ति पाकर इतरा उठते हैं†। जो लक्ष्मी सज्जनोंको नम्र बना देती है, वही दुष्टोंकी दुष्टताको और भी बढ़ा देती है। दुष्ट लोग दौलत पाकर और मतवाले हो जाते हैं। ऐसों ही के सम्बन्धमें किसी उर्दू कविने कहा है—

नशा दौलत का बद अतबार को जिस आन चढ़ा।
सर पै शैतान के एक और शैतान चढ़ा॥

अनुभव-विहीन और तङ्ग-दिल मनुष्यपर जिस समय दौलतका नशा चढ़ गया, तब मानो शैतानके सिरपर एक और शैतान चढ़ गया।

और भी कहा है—

बन्धुः को नाम दुष्टानां, कुप्यते को न याचितः।
को न दृप्यति वित्तेन, कुकृत्ये को न पण्डितः॥

† A vulgar mind is proud in prosperity and humble in adversity; a noble mind is humble in prosperity and proud in adversity.—*Ruckert.*



जैसे सफल वृक्ष और जलपूर्ण मेघ पृथ्वीकी ओर झुक जाते हैं; वैसे ही सत्पुरुष सम्पत्ति पाकर नम्र हो जाते हैं। (पृष्ठ ३०४)

दुर्मन्त्रिणं कमुपयान्ति न नीतिदोषाः।
सन्तापयन्ति कमपथ्यभुजं न रोगाः॥
क श्रीर्नदर्पयति कं न निहन्ति मृत्युः।
कं स्वीकृता न विषयाः परितापयन्ति॥

दुर्जनका बन्धु कौन है ? माँगनेपर किसे क्रोध नहीं आता ? धनसे किसे अभिमान नहीं होता ? कुकर्म करनेमें चतुर कौन नहीं है ?

नीतिका दोष किस दुष्ट मन्त्रीको नहीं होता ? रोग किस कुपथ्य सेवन करनेवालेको दुःख नहीं देते ? लक्ष्मीसे किसे घमण्ड नहीं होता ? मृत्यु किसको नष्ट नहीं करती ? स्वीकृत विषय किसे सन्ताप नहीं देते ?

धन-मद सभीको चढ़ता है, दौलतका नशा सभीको आता है; केवल उन सत्पुरुषोंको धनका मद नहीं आता, जिन्होंने संसारका अनुभव प्राप्त किया है और जिन्होंने दुनियाकी ऊँच-नीच देखी है ।

धन और यौवन चञ्चल हैं।

——::०::——

कहा है:—

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसंचयः।
ऐश्वर्य्यं प्रियसंवासो मुह्येत्तत्र न पण्डितः॥
कायः संनिहतापायः सम्पदः पदमापदाम्।
समागमाः सापगमाः सर्वमुत्पादि भंगुरम्॥

यौवन, रूप, जीवन, धनसञ्चय, ऐश्वर्य्य और मित्रके साथ रहना,—ये सभी अनित्य हैं; इसी वजहसे ज्ञानवान् इनमें मोहित नहीं होते।

शरीर तो दुःखोंसे भरा है, सम्पत्तिके साथ आपत्ति और संयोगके साथ वियोग है और सारी उत्पत्तिमान वस्तुएँ नाशमान हैं*।

शंकराचार्य्य-कृत प्रश्नोत्तरमालामें भी लिखा है:—

विद्युच्चलं किं धनयौवनायु—
दानं परं किञ्च सुपात्रदत्तम्।

संसारमें बिजलीके समान चञ्चल क्या है? धन यौवन और आयु। उत्तम दान कौनसा है? जो सुपात्रको दिया जाय।

उस्ताद ज़ौक़ भी कहते हैं:—

दिखा न जोशो ख़रोश इतना, ज़ोर पर चढ़ कर।
गये जहान में दरिया, बहुत उतर चढ़ कर॥

अपनी उन्नतिपर मत इतरा; संसारमें बहुतसे दरिया चढ़-चढ़कर उतर गये।

ज्ञानी नम्र होते हैं।

जिन्हें संसारकी असारता और धन-यौवनकी चञ्चलताका ज्ञान है, भला वे धन-सम्पत्ति पाकर इतरा सकते हैं? कमल निर्मल जलमें पैदा होता है, उसकी मधुरता

* All things are double, one against another. Good set against evil and life against death.—*Ecclus.*

स्त्रियोंके मुखकी मिठाससे भी बढ़ी-चढ़ी होती है, सुगन्धसे देवता भी राज़ी होते हैं, स्वयं नारायणके हाथमें उसका वास है और कामदेवका तो वह सर्वस्व ही है,—इतने गुण होनेपर भी, कमल तुच्छ भौंरेसे मुहब्बत रखता है। इससे स्पष्ट है, कि बड़े लोग धन-वैभव होनेपर, अपनेसे छोटोंसे इतराते नहीं; क्योंकि सब तरहसे सुखी होनेपर भी, उन्हें मौत और मुसीबतका ख़ौफ़ लगा रहता है‡। इसलिये, ज्यों-ज्यों प्रभुता बढ़ती है, वे नम्र होते और परोपकार करते हैं। उस्ताद ज़ौक़ने भी कहा है,—

है बाग़े जहाँ में, तुझे गर हिम्मते आली।
कर गरदने तसलीम को, ख़म और ज़ियादा॥
लेते हैं समर शाख़, समर वर को झुकाकर।
झुकते हैं सख़ी, वक्त करम और ज़ियादा॥

अगर तू साहस रखता है, तो खूब नम्र बन। फलदार वृक्षको देख! लोग फल तोड़ते समय उसे झुका लेते हैं और वह फल देता और झुकता है।

दोहा—*नम्र होत फल भार तरु, जल भर नम्र घटासु।*
त्यों सम्पत् लहि सत्पुरुष, नवैं सुभाव छटासु॥७१॥

‡ Even out of a cloudless heaven the flaming thunder-bolt may strike; therefore in the days of joy have a fear of the spiteful neighbourhood of misfortune—*Schiller*.

71. The (branches of) trees hang down when they are full of fruits, the clouds lower (themselves in the sky) when they are full of fresh water (vapour) and good men become gentle-hearted in prosperity. Such is the nature of those that do good to others.

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणिर्न तु कंकणेन।
विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन।७२

दयालु पुरुषोंके कानोंकी शोभा शास्त्र सुननेसे है, कुण्डल पहननेसे नहीं; उनके हाथोंकी शोभा दान करनेसे है, कंगन पहननेसे नहीं; देहकी शोभा परोपकार करनेसे है, चन्दन लगानेसे नहीं।

इससे मिलता-जुलता कलाम उस्ताद ज़ौक़ने कहा है; पाठक! उसका भी मज़ा चखिये—

दिल वह क्या, जिस को नहीं तेरी तमन्नाये विसाल।
चश्म वह क्या, जिसको तेरे दीद की हसरत नहीं॥

वह दिल ही नहीं, जिसे तेरे पानेकी इच्छा न हो। वह आँख ही नहीं, जिसे तेरे दर्शनकी लालसा न हो।

कान वही हैं, जो शास्त्र सुनते हैं; हाथ वही हैं, जो दान करते हैं; देह वही है, जो पराये काम आती है; दिल वही है, जो परमात्माके पानेकी इच्छा रखता है और आँख वही है, जो उसके दर्शनोंकी लालसा रखती है। अगर शरीर और

उसके अवयवोंसे यह काम नहीं होते, तो उनका होना न होना बराबर है। मनुष्य और पशुओंमें क्या फ़र्क़ है? मनुष्य और पशुओंमें यही भेद है, कि मनुष्य अपने शरीरसे परोपकार और परमात्माकी भक्ति प्रभृति उत्तमोत्तम कार्य्य कर सकता है और पशु ये सब नहीं कर सकते। अगर शरीर पराये काम न आया, तो उससे कोई लाभ नहीं; एक न एक दिन यह पञ्चतत्वमें मिल ही जायगा। कहा है—

धनानि जीवितं चैव, परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्तो वरं त्यागो, विनाशे नियते सति॥

पण्डितोंको चाहिये, कि धन और प्राण पराये लिये त्याग दें; क्योंकि शरीरका नाश अवश्य होगा; इससे इसका साधुओंके लिए त्याग ही भला है।

गोस्वामि तुलसीदासजी भी कहते हैं:—

तुलसी सन्तनते सुनें, सन्तत यहै विचार।
तन-धन चञ्चल अचल जग, युगयुग परउपकार॥

सारांश—शास्त्र सुनो; दान करो और परोपकार करो। इन कामोंसे सचमुच ही शरीरकी खूबसूरती बढ़ती है; ज़ेवर पहननेसे खूबसूरतीको बढ़ी समझना मूर्खता है।

कुण्डलिया—कंकन ते सोहत न कर, कुण्डल ते नहिं कान।
चन्दन ते सोहत न तन, जान लेहु यह जान॥

जान लेहु यह जान, दानते पाणि लसत है।
कथा श्रवण ते कान, परम शोभा सरसत है॥
परमारथसों देह, दिपत चन्दन सों टंकन।
ये शुभ सुकृतहि राख, पहरिये कुण्डल कंकन ॥७२॥

72. The ears look beautiful by listening to Shastras and not by (wearing) ear-rings, the hands by doing charity and not by (wearing) bangles and the body of gentle-hearted men by philanthropic actions and not by sandalwood plastering.

पापान्निवारयति योजयते हिताय।
गुह्यं च गूहति गुणान्प्रकटीकरोति॥
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले।
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥७३॥

सन्तोंने कहा है,—सुमित्र वही है, जो मित्रको बुरे कामोंसे रोकता है, अच्छे कामोंमें लगाता है, उसकी गुप्त बातको छिपाता है, उसके गुणोंको प्रकट करता है, विपद्कालमें उसका साथ नहीं छोड़ता और समय पड़ेपर यथासामर्थ्य धन देता है।

सुमित्रके लक्षण।

—::०::—

अपने मित्रको पाप-कर्मोंसे बचाना, हितकर्ममें लगाना, उसकी गुप्त बातको छिपाना, उसके गुणोंको प्रका-

शित करना, दुःखमें उसका साथ न छोड़ना और समयपर आर्थिक सहायता करना—ये उत्तम मित्रोंके लक्षण हैं; गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है:—

जे न मित्र-दुःख होहि दुखारी।
तिन्हैं विलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज कर जाना।
मित्र को दुख रज मेरु समाना॥
जिनके अस मति सहज न आई।
ते शठ हठ कत करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा।
गुण प्रगटै अवगुणहिं दुरावा॥
देत लेत मन शंक न धरहीं।
बल अनुमान सदा हित करहीं॥
विपति-काल कर शतगुण नेहा।
श्रुति कह सत्य मित्र गुण एहा॥
आगे कह मृदु बचन बनाई।
पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गति सम भाई।
अस कुमित्र परिहरे भलाई॥

आजकल कपटी यार बहुत हैं। निष्कपट या साफ़ तबियतके आदमी कोई बिरले ही होते हैं। उस्ताद ज़ौक़ने कहा है;—

देखे आईने बहुत बिन ख़ाक है नासाफ सब।
हैं कहाँ अहले सफ़ा अहले सफ़ा कहने को हैं॥

मित्रको बुरे कामोंसे रोकना।

—::०::—

मित्रका पहला लक्षण है, मित्रको पापों या बुरे कामोंसे रोकना। आजकल बुरे कामोंसे रोकनेवाले तो नज़र नहीं आते, पर बुरे कामोंमें फँसानेवाले या कुराहपर ले जानेवाले बहुत हैं। जिसके पास लोग धन देखते हैं, उसके चारों ओर छत्तेपर मक्खियोंकी तरह आ लगते हैं। उसकी खुशामद करके, उसकी हाँ में हाँ मिलाकर, अपना स्वार्थ साधन करते हैं। भीतरसे हितकारी और ज़ाहिरा कड़वी कहनेवाले कहीं नहीं दीखते। ऐसी बात तो वही कह सकता है, जिसके दिलमें पाप न हो, जो शुद्ध हृदय और निष्कपट हो और जिसे अपना उल्लू सीधा न करना हो। किसीने ठीक ही कहा है:—

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥

राजन्! सदा मीठी-मीठी बातें बनानेवाले लोग बहुत हैं, पर हितकारी और कड़वी कहने और सुननेवाले दुर्लभ हैं।

खुशामदी मित्र।

—::०::—

जिनको लोग आजकल मित्र समझते हैं, वे मित्र नहीं, पर नीच खुशामदी हैं। खुशामदियोंकी लच्छेदार बातोंमें

कौन नहीं फँस जाता ? खुशामदियोंने लाखोंके घर खाकमें मिला दिये—अनेकोंकी घर-गृहस्थियोंका सत्यानाश कर दिया। भोले-भाले नातजुर्बेकार लोग उनकी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें फँस जाते और अपना सत्यानाश कर लेते हैं। अत्यन्त मीठी बातें बनानेवालोंको धूर्त्त समझना चाहिये। कहा है—

असती भवति सलज्जा, क्षारं नीरञ्च शीतलं भवति ।
दम्भी भवति विवेकी, प्रियवक्ता भवति धूर्त्तजनः ॥

असती लज्जावती होती है, खारी पानी शीतल होता है। पाखण्डी ज्ञानी होता है और धूर्त्त प्रियवक्ता होता है।

धूर्त्त या दग़ाबाजोंकी बातें आरम्भमें बड़ी प्यारी लगती हैं, परन्तु परिणाम उनका बुरा होता है; सज्जनोंकी बातें आरम्भमें कड़वी मालूम होती हैं, पर परिणाममें वे अच्छी प्रमाणित होती हैं। पण्डितेन्द्र जगन्नाथ महाराज अपने "भामिनी विलास" में कहते हैं—

अनवरत परोपकारव्यग्री भवदमलचेतसां महताम् ।
आपात काटवानि स्फुरन्ति वचनानि भेषजानीव ॥

जिन पुरुषोंके अन्तःकरण शुद्ध होते हैं, जो निरन्तर परोपकारकी चिन्तामें लगे रहते हैं, उनके वचन आरम्भमें कड़वी दवाकी तरह कड़वे लगते हैं; पर शेषमें, जिस भाँति कड़वी दवाका फल अच्छा होता है, उसी तरह उनकी कड़वी बातोंका फल भी मंगलकारी होता है।

अँगरेज़ीमें एक कहावत है—"खुशामदी हमारे सबसे बुरे शत्रु हैं।" यह कहावत अक्षर-अक्षर सच है। परमात्मा इन काल भुजङ्गोंसे बचाये। इनपर किसीने खूब भजन बनाया है। सुनिये—

देश को किया ख़राब, खुशामदी लोगों ने ॥ टेक ॥

महाराज मंत्रियों से बोले, 'बैंगन' बड़ा बुरा है।
मन्त्री बोले, तभी तो इसका 'बेगुन' नाम धरा है ॥
दिया क्या खूब जवाब, खुशामदी लोगों ने ॥ १ ॥

महाराज कुछ देर में बोले, 'बैंगन' अति अच्छा है।
कहा तभी तो इसके सरपर, हरा मुकट रक्खा है ॥
पलट दी बात शिताब, खुशामदी लोगों ने ॥ २ ॥

स्वामी दिन को रात कहैं, तो यह तारे चमकादें।
स्वामी कहें रात को दिन, तो यह सूरज उगवादें ॥
किया जाग्रत को ख्वाब, खुशामदी लोगों ने ॥ ३ ॥

स्वामी कहें मद्य कैसा है ? कहैं "सुरा" सुखकर है।
स्वामी पूछें हिंसा जायज़ ? कहिदें जीव अमर है ॥
पढ़ी है ख़ास किताब, खुशामदी लोगों ने ॥ ४ ॥

इसीलिये सतसंगी सज्जन, बिचर स्वतन्त्र रहे हैं।
भला समझकर सत्य वचन, ये राधेश्याम कहे हैं ॥
उठा ही दिया हिजाब, खुशामदी लोगों ने ॥ ५ ॥

मनकी बात किसीसे भी मत कहो ।

हमने खूब देख लिया है, कि जिससे अपने मनकी गुप्त बात कहकर मनुष्य अपने हृदयका बोझ हलका कर सके, ऐसा आदमी मिलना असम्भव नहीं तो कठिन ज़रूर है। हमने स्वयं खूब धोखे खाये हैं; बड़ी-बड़ी तकलीफ़ें उठाई हैं; इसीसे हम अपने प्यारे पाठकोंको बार-बार सावधान करते हैं, कि अपने मनकी गुप्त बात आजकलके मित्र तो क्या—अपने पिता और सगे भाईसे भी न कहनी चाहिये। जो आज मित्र बना हुआ है, वह कल, निश्चय ही, किसी-न-किसी कारणसे, आपका शत्रु हो जायगा और आपको कष्ट देगा। अपनी गुप्त बात दूसरेको देना और उसका गुलाम होना एक ही बात है। 'गुलिस्ताँ' में लिखा है और ठीक ही लिखा है—"वह भेद जिसे तुम गुप्त रखना चाहते हो, किसीसे भी न कहो; चाहे वह तुम्हारा परम विश्वासी ही क्यों न हो। अपनी गुप्त बातको जितनी अच्छी तरह आप स्वयं छिपा सकते हैं, दूसरा न छिपा सकेगा। अपनी बात किसीसे कहने और उसे दूसरेसे कहनेकी मनाही करनेसे एकदम चुप रहना भला है। ऐ भले आदमी! पानीको निकासपर ही रोक; जब वह नदीके रूपमें बहने लगेगा, तब तू उसे रोक न सकेगा।" कितनी अच्छी और सच्ची नसीहत है!

विश्वास ही आफ़तोंका मूल है।

संसारमें "विश्वास" ही आफ़तोंकी जड़ है। अगर किसीसे मैत्री टूट जाय और शत्रुता हो जाय; इसके बाद वही

शत्रु मेल-जालकी बातें करे, तो उससे बातें करो, मिलो-जुलो, पर उसकी प्रत्येक बातको सन्देहकी दृष्टिसे देखो। मनमें समझो, कि शत्रु अपना कोई मतलब निकालना चाहता है अथवा अपना बल बढ़ाना चाहता है और इसीके लिये धोखा दे रहा है। मित्रोंकी सचाईपर भी विश्वास करना नादानी है; तब शत्रुओंकी—ख़ासकर उस शत्रुकी, जो मेल-मिलापसे फिर मित्र बना लिया गया है, लल्लोचप्पो और मीठी बातोंसे क्या भली उम्मीद की जा सकती है ? कहते हैं—

"A reconciled friend is double enemy" जो शत्रु मेल-जोलसे मित्र बना लिया जाता है, वह डबल शत्रु होता है; यानी वह साधारण शत्रुसे कई दर्जे अधिक भयङ्कर होता है। शपथपूर्वक सन्धि करके, इन्द्रने वृत्रासुरको मार डाला था। विश्वासके सिवा, देवताओंका भी कोई शत्रु नहीं। विश्वाससे ही इन्द्रने दितिका गर्भ नाश कर दिया था। शास्त्रोंमें लिखा है—

वृहस्पतेरपि प्राज्ञो न विश्वासे व्रजेन्नरः।
य इच्छेदात्मनो वृद्धिमायुष्यंच सुखानि च॥
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्तेऽपि न विश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति॥
न वध्यन्ते ह्यविश्वस्तो दुर्बलोऽपि बलोत्कटैः।
विश्वस्ताश्चाशुबध्यन्ते बलवन्तोऽपि दुर्बलैः॥

यदि बुद्धिमान अपनी आयु-वृद्धि और सुखकी इच्छा करता हो, तो वृहस्पतिका भी विश्वास न करे।

मनुष्य अविश्वासीका विश्वास न करे और विश्वासीका भी बहुत विश्वास न करे ; क्योंकि विश्वाससे उत्पन्न हुआ भय मूल सहित नष्ट कर देता है।

किसीका भी विश्वास न करनेवाले, दुर्बल मनुष्य भी, बलवानोंके फन्देमें नहीं फँसते ; किन्तु विश्वास करनेवाले, बलवान् पुरुष भी, दुर्बलोंके फन्देमें फँसकर मारे जाते हैं।

न विश्वसेत्कुमित्रे च मित्रेचापि न विश्वसेत् ।
कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत् ॥

कुमित्रका विश्वास तो किसी हालतमें भी न करना चाहिये ; किन्तु सुमित्रका भी विश्वास न करना चाहिये ; क्योंकि कदाचित् मित्र रूठ जाय और सारी गुप्त बातोंको प्रकाशित कर दे।

मित्रद्रोहीको नरक।

—::o::—

मित्रके गुप्त भेदोंको प्रकाशित करना, उसके साथ विश्वासघात करना है। विश्वासघाती और मित्रद्रोहियोंको शास्त्रोंमें बड़ी-बड़ी सज़ायें लिखी हैं। जैसे—

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः ।
ते नरा नरकं यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

मित्रद्रोही, कृतघ्न—पराया ऐहसान न माननेवाले और विश्वासघात करनेवाले,—जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं, नरकमें पड़े रहेंगे।

फ्रैञ्च भाषामें भी एक कहावत है :—

"The betrayer is the murderer."

दग़ासे दुश्मनके हवाले करनेवाला या भेद खोल देनेवाला हत्यारा होता है। खेदकी बात है, इन बातोंपर दुष्ट लोग ध्यान नहीं देते। वे तो अपने ज़रासे स्वार्थके लिये घोरसे-घोर अधर्म करनेको तैयार हो जाते हैं। उन्हें इस बातकी ज़रा भी परवा नहीं, कि विश्वासघातकताके समान और पाप नहीं है। शास्त्रमें लिखा है :—

अपि ब्रह्मवधं कृत्वा प्रायश्चित्तेन शुद्ध्यति।
तदर्हेण विचीर्णेन न कथञ्चित् सुहृदद्रुहः॥

मनुष्य ब्रह्महत्या करके उसके योग्य प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध हो जाता है, पर मित्रद्रोही शुद्ध नहीं होता।

मित्रके औगुण छिपाना।

——::o::——

अब रही मित्रके गुणोंको प्रकाशित करने और अवगुणोंको छिपानेकी बात। यह भी आजकल अधिकांश मित्रोंमें नहीं पाई जाती। आजकल सामने मीठी-मीठी बात कहनेवाले और पीठ पीछे घोर निन्दा करनेवालोंकी अधिकता है। ऐसे मित्रोंसे सदा बचना चाहिये। चाणक्यने कहा है :—

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखं॥

आँखकी ओझल होनेपर काम बिगाड़नेवाले और सामने मीठी-मीठी बातें बनानेवाले मित्रको मुँहपर दूध और भीतर ज़हर भरे घड़ेके समान त्याग देना चाहिये।

संसारमें सभी "विषकुम्भंपयोमुखम्" नहीं होते। अगर ऐसा हो, तो प्रलय ही हो जाय। अब भी संसारमें सज्जन पुरुष हैं। उन्हींपर यह संसार ठहरा हुआ है। बात इतनी ही है, कि दुर्जन बहुत हैं और सज्जन कहीं-कहीं हैं। सज्जन अपने मित्रके अवगुणोंको छिपाते हैं, इसमें तो कोई बड़ी बात नहीं, वे दुष्टों—अपने अपकारी शत्रुओं तकके औगुणोंपर पर्दा डालते हैं। उनके औगुणोंको उसी तरह छिपाते हैं, जिस तरह मकड़ी शून्य स्थानोंको अपने जालेसे दबा देती है।

मित्रको समयपर साहाय्य करना।

——::०::——

अब रही समयपर सहायता देनेकी बात। सहायता देना तो बड़ी दूरकी बात है, आजकलके अधिकांश मित्र बिना धन दिये कोरे हाथों भी मित्रका संग नहीं देते। आप ही जब तक कुछ देते रहेंगे या देनेका वादा करते रहेंगे, लोग आपके मित्र बने रहेंगे। जहाँ आपने अपने वादेके अनुसार कुछ न दिया या आपके धन-भण्डारमें चूहे दण्ड पेलने लगे, कि मैत्री टूटी। वही मित्र जो आपकी देहलीकी धूल चाट जाते हैं,

आपके यहाँ दिन-रात पड़े रहते हैं, आपके लिये जान और सर्वस्व तक देनेकी डींग मारते हैं, आपके धनहीन होते ही आपको फौरनसे पहले त्याग देंगे। उनकी मैत्री धनसे है, आपसे नहीं। आजकल बिना उपकार प्रीति नहीं रहती। मेरा यह काम होगा तो यह दूँगा; इस वादेसे देवता भी अभीष्ट फल देते हैं। आजकलके मित्रनामधारी भी ऐसे ही होते हैं। जहाँ भेंट-पूजा बन्द हुई, कि नाराज़ हुए। गायके थनोंमें दूध सूख जानेसे बछड़ा जिस तरह गायको त्याग देता है; उसी तरह आजकलके मित्र भी धनागमकी राह बन्द होते ही मित्रको त्याग देते हैं। अँगरेज़ीमें एक कहावत है—"As long as the pot boils friendship lasts." जब तक सैनकीमें भात, तब तक तेरा मेरा साथ।

खलोंकी मैत्री।

—::०::—

दुष्टोंकी मैत्री मिट्टीके घड़ेके समान होती है, मिट्टीका घड़ा सहज ही में टूट जाता है और फिर नहीं जुड़ता; दुष्टोंकी मैत्री भी सहजमें ही टूट जाती है और फिर नहीं जुड़ती। कहा है:—

अभ्रच्छाया खलप्रीतिः सिद्धमन्नञ्च योषितः।
किञ्चित् कालोपभोग्यानि यावनानि च धनानि च॥

बादलोंकी छाया, दुष्टोंकी प्रीति, पका हुआ अन्न, स्त्री, यौवन और धन,—ये थोड़े समय तक ही भोग्य होते हैं।

विपद्में त्यागनेवालोंकी निन्दा।

——::०::——

सम्पदमें साथ रहनेवालों और विपद्में साथ छोड़कर भाग जानेवालोंकी विद्वानोंने कैसी निन्दा की है। देखिये "भामिनी-विलास"में लिखा है—

प्रारम्भे कुसुमाकरस्य परितो यस्योल्लसन्मंजरी
पुञ्जे मञ्जुल गुञ्जितानि रचयस्तानातनोरुत्सवान्॥
तस्मिन्नद्य रसालशाखिनि दृशां दैवात् कृशामचति
त्वं चेन्मुंचसि चंचरीक विनयं नीचस्त्वदन्योऽस्तिकः॥

हे भौंरे! वसन्तके आते ही जब आममें मञ्जरियाँ-ही-मञ्जरियाँ खिल उठीं, तब तो तूने उसके चारों ओर मंजु-मंजु गुञ्जार करते हुए खूब मजा लिया। अब दैववशात्, आमके वृक्षके कृश हो जाने—पुष्पविहीन हो जानेपर, अगर तू उससे मुहब्बत न रक्खेगा, तो तुझसे बढ़कर नीच कौन होगा?

सच्चा मित्र तो वही है, जो बिना किसी स्वार्थके प्रीति रक्खे, सुदिन और दुर्दिनमें समान रहे। सुदिनमें चाहे कम प्रीति दिखावे, पर दुर्दिनमें तो खूब ही मुहब्बत दिखावे, विपद्कालमें मित्रको सहायता दे और उसके कष्ट निवारणार्थ तन, मन और धनको लगा दे। सम्पदमें मित्र बना रहे और आपद्में छोड़ भागे, वह मित्र—मित्र नहीं, वह तो धूर्त्त है। कहा है:—

आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेवतत्।
वृद्धि काले तु सम्प्राप्ते दुर्जनोऽपि सुहृद् भवेत्॥

आफ़त पड़नेपर जो मित्र है वही मित्र है; अच्छे दिनोंमें तो दुर्जन भी मित्र हो जाते हैं।

मित्र बिना संसारमें आनन्द नहीं।

——::०::——

मित्र बिना संसारमें आनन्द नहीं है। जानसन साहब कहते हैं—"Life has no pleasure nobler than that of a friendship." जीवनमें मित्रतासे बढ़कर सुख नहीं है। हमारे यहाँ भी कहा है—

किं चन्दनैः सकर्पूरैस्तुहिमैः किं शीतलैः।
सर्वे ते मित्रगात्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
केनामृतमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्।
आपदाञ्च परित्राणं शोकसन्ताप भेषजम्॥

चन्दन, कपूर, बर्फ और शीतल पदार्थसे क्या है? वे सब मित्रके शरीरकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं।

अमृतके समान "मित्र" यह दोनों अक्षर किसने बनाये हैं, जो आपत्तिमें रक्षा करनेवाले और शोक-सन्ताप हरनेवाले हैं।

संसार मित्रोंके सम्बन्धमें ऐसी ही बातें कहता है; पर हमको मैत्रीका आनन्द मालूम नहीं; हमने बहुत मित्र बनाये, पर अन्तमें दुःख ही पाया। जभी जिस मित्रकी इच्छा

पूरी न कर सके, बस कुट्टी हो गई। अथवा मित्रोंका काम निकला और वे लम्बे हुए। क्या ऐसोंको मित्र कह सकते हैं? ऐसे मित्र तो शत्रुओंसे भी बढ़कर हैं। ऐसों ही के सम्बन्धमें गोल्डस्मिथने अपने "हरमिट" में एडविनके मुँहसे कहलवाया है:—

"उसी भाँति सांसारिक मैत्री केवल एक कहानी है।
नाममात्रसे अधिक आजतक नहीं किसीने जानी है॥
जब तक धन सम्पदा प्रतिष्ठा अथवा यश विख्याति।
तब तक सभी मित्र शुभचिन्तक निजकुल बान्धव ज्ञाति॥"

बस, बात बढ़ानेसे क्या? हमें ठीक ऐसे ही मित्र अधिक मिले; इस कारण हमें मैत्रीसे अरुचि हो गई है। फिर भी, हमको यह कहना पड़ता है कि, मेल-जोलसे बड़े काम निकलते हैं, इसलिये मेल-जोल या मुलाक़ात हर किसीसे पैदा करनेमें हानि नहीं; पर मेल-जोलवालोंको मित्र न समझ लेना चाहिये। जिसे मित्र बनाना हो, उसकी पहले खूब परीक्षा कर लेनी चाहिये। फिर; यदि वह मैत्रीके योग्य हो, तो मित्र बनाना चाहिये। नीचे हम अपने अनुभवसे मैत्री-सम्बन्धी चन्द हिदायतें लिखते हैं। आशा है, पाठक उनसे लाभान्वित होंगे:—

दोस्तीपर चन्द हिदायतें।

—:o:—

(१) मित्रता करो तो उसके साथ करो, जो धन, बल, विद्या, बुद्धि और कुलमें तुम्हारे समान हो; मैत्री अपने

समान स्वभाव और व्यसनवालोंकी ही होती है; असमानोंकी मैत्रीमें सुख नहीं होता। बड़ोंकी मैत्री तो निश्चय ही बुरी है।†

(२) मित्रता करो, पर किसीका भी विश्वास करके अपना गुप्त भेद न कह दो। अगर ऐसा करोगे, तो जीवन-भर पछताओगे। आजका मित्र कल कट्टर शत्रु हो सकता है।

(३) जो मित्र तुम्हारे शत्रुसे मेल रक्खे, उसे तुम अपना मित्र न समझो; क्योंकि शत्रुका मित्र शत्रु ही होता है।

(४) जिस मित्रसे एक बार मैत्री टूट जाय, उसे फिर मित्र न बनाओ। ऐसा करना मृत्युको न्योता देना है।

(५) शत्रु कैसी ही मीठी बातें बनावे, पर उसे भूलकर भी मित्र न बनाओ।

(६) अगर तुम्हारा मित्र चुप रहे, तो तुम उसे अपना मित्र मत समझो। चुप्पे मित्रसे बड़बड़ानेवाला शत्रु भला।

(७) नादान या गुस्ताख़ अथवा मूर्खको मित्र मत बनाओ; ऐसे मित्रसे समझदार और तमीज़दार शत्रु भला।

(८) मित्रता रखना चाहो, तो मित्रकी ग़लतियोंपर कम ध्यान दो। मित्रताके मुक़ाबलेमें धनको तुच्छ समझो।

(९) इटलीवालोंमें कहावत है, कि एक घण्टेका अण्डा, एक वर्षकी शराब और तीस वर्षका मित्र सर्व्वोत्तम होता है। मित्र और शराब पुराने ही अच्छे समझे जाते हैं।

† The cultivation of friendship with great is pleasant to the inexperienced but he who has experienced it dreads it.—Hor.

(१०) मित्रता निबाहनी हो, तो भरसक, ज़रूरतके समय, मित्रको धनकी सहायता दो ; पर उसे वापस लेनेकी उम्मीद न करो।

(११) जो सबका मित्र हो, उसे अपना मित्र मत समझो। जिसका एक दिल और अनेक दोस्त होंगे, वह तुमसे क्या किसीसे भी दिलचस्पी नहीं रख सकता। इटलीवालोंमें एक कहावत है,—"जो हर किसीका मित्र है, वह किसीका भी मित्र नहीं है।"

(१२) मित्रको कभी धोखा न दो; उसके गुप्त भेद प्रकट न करो; चाहे उससे आपकी मैत्री टूट ही क्यों न जाय।

(१३) खुशामदीको भूलकर भी मित्र न समझो; उसे अपना जानी दुश्मन समझो।

(१४) जहाँ तक बन पड़े, मित्रसे आर्थिक सहायता न माँगो; हो सके तो दो भले ही; देनेमें ऐब नहीं।

(१५) जो मित्र तुम्हारे कुछ कहते समय निगाह चुरा जाय, तुम्हारी बातको ध्यानसे न सुने और जिस समय दूसरा कोई तुम्हारी प्रशंसा करता हो, उस समय मुँह फेरले, उसे भूलकर भी मित्र न समझो।

(१६) जो मित्र तुम्हारे शत्रुके कामोंकी तुम्हारे ही सामने तारीफ करे और तुम्हारे अच्छे कामोंको भी घृणाकी नज़रसे देखे, उसको भी मित्र न समझो।

(१७) जो मित्र तुम्हारे शत्रुका पक्ष करे अथवा उससे भी मेल रखना चाहे, उसे अपना मित्र नहीं, शत्रु समझो। मित्रोंके शरीर दो होते हैं, पर जान एक ही होती है। एक जान दो क़ालिबवाली दोस्ती ही सच्ची दोस्ती है। अगर यह बात न हो, तो दोस्ती नहीं ढोंग है।

(१८) मित्रके साथ भी लेन-देन साफ रक्खो। हिसाबकी गड़बड़ परिणाममें ख़राब होती है और मैत्रीको तुड़ा देती है।

(१९) जो शीघ्र ही तुम्हें अपना मित्र या अभिन्न मित्र कह बैठे, उसकी मैत्रीका भरोसा न करो। वह सदा न रहेगी।

(२०) जो मित्र तुम्हारी समयपर कामसे सहायता करे, उसे मित्र समझो, किन्तु जो कोरी हमदर्दी दिखावे और बातें बनावे, उसे मित्र मत समझो।

(२१) जो मनुष्य तुम्हारे मुँहपर, किसी ख़ास वजहसे, तुम्हें खोटी-खरी भी सुना दे; पर तुम्हारे पीठ पीछे और लोगोंमें तुम्हारी प्रशंसाके पुल बाँध दे, उसे अपना मित्र समझो। सामने तारीफ करे और पीछेसे निन्दा करे; उसे अपना शत्रु समझो।

(२२) किसीको मित्र बनानेसे पहले, ज़िसे मित्र बनाओ उसके गुण-दोषोंकी समालोचना करो, उसके गुण-दोषोंका विचार करो, उसके आचरण और उसकी सङ्गतिका विचार करो और उसके मिज़ाज और स्वभावसे वाकिफ़ होओ।

इसके बाद सोचो, यह हमारी मैत्रीके योग्य है, कि नहीं; इससे हमारा क्या लाभ होगा और हमसे इसको क्या लाभ पहुँचेगा। अगर इतनी परीक्षाओंमें—कड़ी और सच्ची परीक्षाओंमें वह पास हो जावे, तो उसे मित्र बना लो; मित्रकी असल परीक्षा तो मुसीबतमें ही होती है; फिर भी, उपरोक्त परीक्षा किये बिना तो किसीको भी मित्र न बनाओ।

(२३) वफ़ादार नौकर सच्चा मित्र होता है; पर आप शीघ्र ही ऐसा समझकर, अपने नौकरको अपना भेद मत देदो; ऐसा करना आफ़त मोल लेना है। ड्राइडन महोदय कहते हैं—"He who trusts a secret to his servant makes his own man his master." जो अपने नौकरको अपना भेद देता है, वह अपने ही नौकरको अपना मालिक बनाता है।

(२४) हमारी सारी उम्रके तजुर्बेका निचोड़ तो यही है, कि आप न किसीको दोस्त बनावें और न दुश्मन। जो आपका काम करेंगे, वे बदलेमें आपसे भी अपना काम बनानेकी उम्मीद रक्खेंगे। यदि, समयपर, आप उनका काम किसी वजहसे न करेंगे या करनेमें असमर्थ होंगे, तो वे आपके शत्रु हो जायँगे। उस समय आपके दिलमें बड़ी वेदना होगी। अगर किसीसे दोस्ती ही न होगी, तो ऐसा अवसर न आयेगा और आप मनोवेदनासे बचेंगे। जर्मन विद्वान् सोपनहरने ठीक ही कहा है—"हमारा दूसरे लोगोंके साथ जो सम्बन्ध होता है, उससे

प्रायः हमारे सभी शोक और दुःखोंका जन्म होता है।‡ अर्थात् सम्बन्ध स्थापित करनेसे ही हमें दुःख भोग करने पड़ते हैं।

दोहा—पाप निवारत हित करत, गुनगनि औगुन ढाँकि।
दुख में राखत देत कछु, सन्मित्रन ये आँकि ॥७३॥

73. The following are said to be the qualities of a good friend by holy men. He prevents his friend from evil-doing, makes him do useful things, conceals his secrets, proclaims his good points, does not leave him in time of distress and helps him with money when necessary.

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति।
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्॥
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति।
सन्तः स्वयं परहिते सुकृताभियोगाः ॥ ७४ ॥

जिस तरह सूर्य, बिना कहे, आपही, कमलोंको खिलाता है; चन्द्रमा बिना कहे कुमुद-समूहको प्रफुल्लित करता है; मेघ भी बिना याचना किये जल बरसाता है; उसी तरह सन्त लोग, बिना याचना किये ही, पराई भलाईका आप-से-आप उद्योग करते हैं ॥७४॥

भामिनी-विलासमें लिखा है:—

सत्पुरुषः खलु हिताचरणैर मन्दमा-
नन्दयंत्यखिल लोकमनुक्त एष।

‡ Almost all our sorrows spring out of our relations with other people—*Schopenhauer.*

अराधितः कथय केनकरैरुदाररिन्दु-
र्विकाशयति कैरविणीकुलानि ॥

सत्पुरुष, बिना कहे ही, अपने हितकारी आचरणसे सारे संसारको आनन्दित करते हैं। कहिये, चन्द्रमाकी किसने आराधना की है, जिससे वह अपनी उदार किरणोंसे कुमुदिनी-कुलको खिलाता है ? अर्थात् परोपकार करना सज्जनोंका स्वाभाविक गुण है। उनसे कहने-सुनने और अनुनय-विनय करनेकी दरकार नहीं ।

किसी कविने ठीक ही कहा हैः—

बिना कहेहू सत्पुरुष, परकी पूरें आश।
कौन कहत है सूरकों, घर घर करत प्रकाश॥
अति उदारता बड़न की, कहँलौं बरने कोय।
चातक जाँचे तनिक घन, बरस भरै घन तोय॥

दोहा—कुमुदिनि प्रफुलित करत शशि, कमल विकासत भानु।
बिन मांगे घन देत जल, त्योंही सन्त सुजान ॥७४॥

74. The sun opens up (the buds of) a lotus flower (without any request being made by the latter), the moon causes the opening of a Kumuda (another species of lotus) flower (unasked) and a cloud gives (rain) water without being requested (to do so). (This proves that) the good are anxious to benefit others of their own accord.

**एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्यये।
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये॥
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये।
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे॥७५**

जो लोग अपने स्वार्थका ख़याल न करके पराया भला करते हैं, वे सचमुच ही सत्पुरुष हैं, जो अपना स्वार्थ न बिगड़ने देकर पराया भला करते हैं; यानी अपना और पराया दोनोंका हितसाधन करते हैं, वे साधारण पुरुष हैं, जो अपने स्वार्थके लिये पराया काम बिगाड़ते हैं, वे मनुष्यरूपमें राक्षस हैं और जो वृथा ही परायी हानि करते हैं, उन्हें क्या कहें, सो हमारी समझमें नहीं आता।

जिसका जन्म-स्वभाव जैसा है, वैसा ही रहेगा। सत्पुरुषोंका स्वभाव सत्पुरुषोंके ही योग्य रहेगा और नीचोंका नीचोंके योग्य। नीच पराया काम बिगाड़ना ही जानते हैं, बनाना नहीं। कहा है—

**घातयितुमेव नीचः परकार्य्यं वेत्ति न प्रसाधयितुम्।
पातयितुमस्ति शक्तिर्वायोर्वृक्षं न चोन्नमितुम्॥**

नीच पराये कामको बिगाड़ना जानता है, पर बनाना नहीं जानता; वायु वृक्षको उखाड़ सकता है, पर जमा नहीं सकता। चूहा अन्नकी पिटारीको गिरा सकता है, पर उठाकर

नहीं रख सकता। बिल्ली अगर दूधको पी नहीं सकती, तो लुढ़ा ही देती है। नीचोंका स्वभाव ऐसा ही होता है।

सत्पुरुषोंके स्वभावके सम्बन्धमें किसी कविने कहा है—

उत्तम पर-कारज करें, अपनो काज बिसार।
पूरै अन्न जहान को, ता पति भित्ताधार॥

उत्तम पुरुष अपना काम विसारकर, पराया काम करते हैं। अन्नपूर्णाके पति—शिवजी भित्ता माँगते हैं, किन्तु वह सारे संसारको अन्न देकर पालन करती हैं। सत्पुरुष परोपकारमें ही अपनी शोभा समझते हैं।

शित्ता—जो अपना काम सिद्ध नहीं करते, पर पराया काम विगाड़ते हैं, वे नीचोंके भी सरदार हैं और जो अपना काम बनानेके लिये पराया काम बिगाड़ते हैं, वे नीच हैं। आप इन दोनोंकी राहपर भूलकर भी न चलें। अगर हो सके, तो अपने स्वार्थका ख़याल भुलाकर पराया भला करें; आपका इस लोक और परलोक दोनोंमें भला होगा; आपका नाम सत्पुरुषोंकी लिस्टमें लिखा जायगा, स्वर्ग और मोत्तका द्वार आपको खुला रहेगा। अगर इतनी हिम्मत न हो, तो आप अपना भी काम बनावें और पराया भी; यह तरीक़ा भी बुरा नहीं।

छप्पय—उत्तम नर पर-अरथ करत, स्वारथको त्यागत।
　　मध्यम परको अर्थ करत, स्वारथ अनुरागत॥

दुष्ट जीव निज काज करत, पर काज बिगारत।
वे नहिं जाने जात, रूप चौथो जे धारत॥
जिनको न होत निज काज कछु, औरनके स्वारथ हरत।
तिनको न दरश क्षण देहु प्रभु, बात सुनत ही चित डरत॥७५॥

75. On one side are those good men who do good to others even at the sacrifice of their own objects. The ordinary apply their energies for the sake of others if the objects of the latter are not contrary to theirs. Those are the devils of men who destroy other people's objects for the sake of their own. But we do not know (what to say of) those who destroy the gains of others without any cause.

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः॥
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद्दृष्ट्वातुमित्रापदं।
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वद्दृशी॥७६

दूधमें जलके मिलते ही दूधने अपने सारे गुण जलको दे दिये। इसीसे दूधको जलते देखकर, जल भी अपना शरीर आगमें होमने लगा। फिर दूधने अपने मित्रकी इस आफतको देखकर, स्वयं आगमें गिरना चाहा; परन्तु जलके छींटे पड़ते ही दूधने समझा कि मित्र आया, इसलिये वह शान्त हो गया। सत्पुरुषोंकी मैत्री दूध और जलकी सी ही होती है।

शिक्षा—मैत्री करो तो, दूध पानीकी-सी करो।

कुण्डलिया—पानी पयसों मिलत ही, जान्यौ अपनो मित्त।
आप भयौ फीकौ वहै, जलकों कियौ सुचित्त॥
जलकों कियौ सुचित्त, तप्त पयकों जब जानी।
तब अपनौ तन बारि, बारि मन प्रीतहि आनी॥
उछल चल्यौ पय तबै, शान्ति जल छिरकत ठानी।
सत्पुरुषोंकी प्रीति रीति, ज्यों पय और पानी ॥७६॥

76. When water was mixed with (became a friend of) milk, the latter from the start shared all its good qualities with it. As soon as the former saw that (its friend) the milk was going to be heated, it offered its own self to fire (i, e, it began to evaporate). Seeing the distress of its friend, (water), the milk made up its mind to throw itself into the fire, but afterwards only calmed down when (its friend) water was sprinkled on (reunited to) it. Such is the friendship of the good.

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्विषा-
मितश्च शरणार्थिनः शिखरिणां गणाः शेरते॥
इतोऽपि बड़वानलः सह समस्तसंवर्तकै-
रहो विततमूर्जितं भरसहं च सिन्धोर्वपुः ॥७७॥

समुद्रमें एक ओर शेषशायी विष्णु सो रहे हैं; दूसरी ओर उनके शत्रु दानवोंका परिवार पड़ा है; एक ओर इन्द्रके वज्रसे

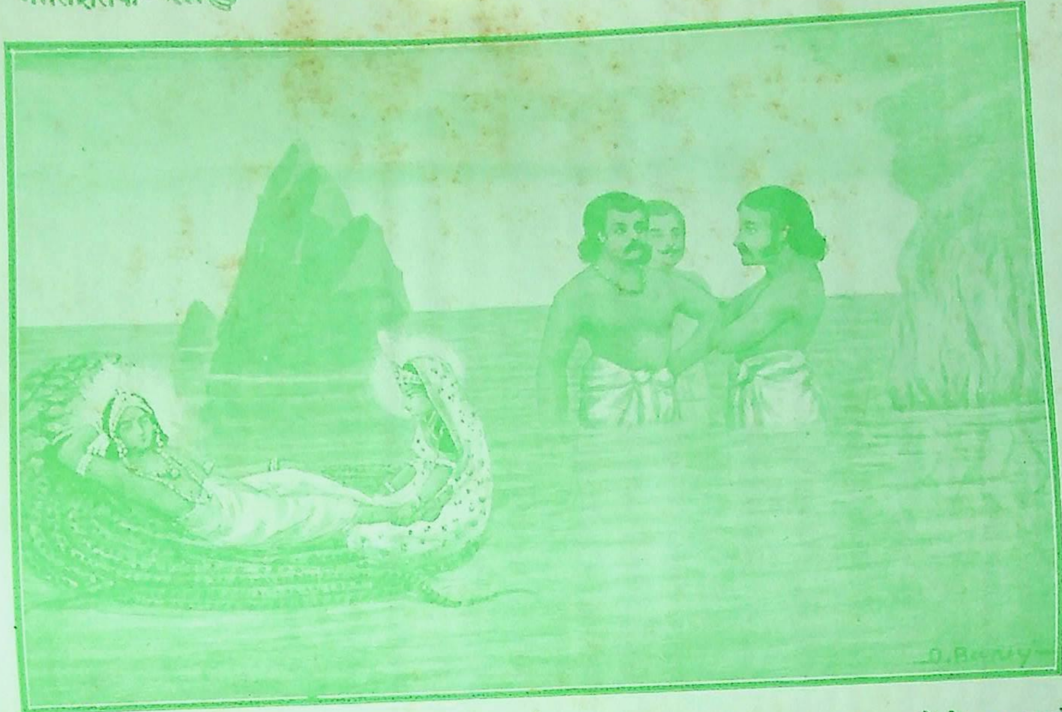
भयभीत हुए शरणार्थी मैनाक प्रभृति पर्वत पड़े हैं और एक तरफ प्रलयाग्नि समेत बड़वानल मौजूद हैं। अहो! समुद्रका शरीर कैसा बलवान् और विशाल तथा भार सहनेवाला है! उसकी सहन-शीलता और उदारता की बलिहारी है!

सारांश—सत्पुरुष अपनी शरणमें आनेवालोंकी सदा रक्षा करते हैं। वे आप कष्ट सहते हैं, पर अपने शरणार्थियोंको कष्ट नहीं होने देते। यह बड़ोंकी ही सामर्थ्य है और कौन ऐसा कर सकता है?

कवियोंने कहा है—

भले बुरे छोटे बड़े, रहें बड़नि पै आय।
मकर असुर सुर गिरि अनल, दधि मधि सकल बसाय॥
बड़े भार लै निरवहैं, तजत न खेद विचारि।
सेस धरा धरि धर धरै, अबलौं देत न डारि॥
सन्त कष्ट सह आपही, सुखि राखैं जु समीप।
आप जरै तह औरकों, करै उजेरो दीप॥

छप्पय—इत सोवत श्रीकृष्ण, उतै वैरी दानवगन।
इतकों गिरवरवृन्द, शरण सोवत निर्भय मन॥
इतकों बाड़व अग्नि, रहत जलमाहिं निरन्तर।
मच्छ कच्छ इत्यादि, रहत सुखसों सब जलचर॥
अति ही अगाध ऊँचो अधिक, सहनशीलताकी अवधि।
बिस्तार अमित कहिये कहा, अद्भुत गति राखत उदधि॥७७॥



समुद्रकी सहनशीलता और उदारता देखनेसे ज्ञात होता है कि, सत्पुरुष आप कष्ट सहते हैं पर अपने शरणार्थियोंको कष्ट नहीं होने देते ।

(पृष्ठ ३३४)

77. In one place (in the Ocean) the God Vishnu enjoys His sleep, in another there lives the family of His enemies (the Rakshasas). On the one hand, the groups of mountains lie anxious for shelter, and on the other there is the sea-fire along with all the sea-currents. How wonderfully powerful and capable of sustaining all these burdens is the Ocean !

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः ।
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ॥
मान्यान्मानय विद्विषोप्यनुनय प्रख्यापय स्वान्गुणा-
न्कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ॥७८

तृष्णाको त्याग, क्षमाको सेवन कर, मदको छोड़, पापोंसे प्रीति न कर, सच बोल, साधुओंकी रीतिपर चल, पण्डितोंकी सेवा कर, माननीयोंका मान कर, शत्रुओंको भी प्रसन्न रख, अपने गुणोंकी प्रसिद्धि कर, अपनी कीर्त्तिका पालन कर और दीन-दुखियोंपर दया रख—क्योंकि ये सब सत्पुरुषोंके लक्षण हैं।

तृष्णा पिशाचिनी ।

—::o::—

संसारमें आशा और तृष्णाके समान दुःखदायी और मनुष्यको बन्धनमें बाँधकर इहलोक और परलोक बिगाड़नेवाले

और कुछ भी नहीं हैं। जिसको धन-तृष्णा नहीं, वही सच्चा सुखी है। जिसे धनसे नफरत है; वह देवोंका देव है।‡

शंकराचार्य्यकृत प्रश्नोत्तरमालामें लिखा हैः—

बद्धो हि को यो विषयानुरागी।
का वा विमुक्तिर्विषये विरक्तिः॥
को वास्ति घोरो नरकस्स्वदेह-
स्तृष्णाक्षयस्स्वर्गपदं किमस्ति॥

बन्धनमें कौन है? विषयी। विमुक्ति क्या है? विषयोंका त्याग। घोर नरक क्या है? अपनी देह। स्वर्ग क्या है? तृष्णाका नाश।

मनुष्य बूढ़ा हो जाता है, पर तृष्णा बूढ़ी नहीं होती। बुढ़ापेमें यह और भी तेज़ हो जाती है और मरणकाल तक मनुष्यको अपने फेरमें फँसाये रखकर उसका सर्वनाश कर देती है। कहा है—

जीर्य्यन्ते जीर्य्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्तिजीर्य्यतः।
जीर्य्यतश्चक्षुषी श्रोत्रे तृष्णैका तरुणायति॥
इच्छति शती सहस्त्र सहस्त्री लक्षमीहते।
लक्षाधिपस्तथा राज्यं राज्यस्थः स्वर्गमीहते॥

जीर्ण होनेसे बाल जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण होनेसे दाँत

‡ Excellence and greatness of soul are most conspicuously displayed in contempt of riches.

जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण होनेसे आँख और कान भी जीर्ण हो जाते हैं; पर एक तृष्णा जवान होती जाती है।

सौवाला हज़ारकी, हज़ारवाला लाखकी, लाखवाला राज्यकी और राज्याधिपति स्वर्गकी इच्छा करता है।

तृष्णा निर्धनोंको तो अपने चंगुलोंमें फँसाये ही रहती है; पर धनियोंको भी नहीं छोड़ती। धनियोंको ग़रीबोंसे ज़ियादा तृष्णा होती है। वह सदा निन्न्यानवेके फेरमें पड़े रहते हैं। उनकी तृष्णा पूरी नहीं होती, कि काल आकर उनकी चोटी पकड़ लेता है। तृष्णाके फेरमें पड़कर, मनुष्य अपने पैदा करनेवालेको भी भूल जाता है। अन्त समय बहुत-कुछ तड़फता और पछताता है; चाहता है, कि यदि और कुछ दिन भी जीऊँ, तो तृष्णाको त्यागकर भगवद्भजन करूँ; पर उस समय तो एक क्षण भी उसे मिल नहीं सकता। इसलिये बचपन और जवानीमें ही, मनुष्यको तृष्णाका छेदन कर, परोपकार और ईश्वर-भजनसे अपना जीवन सफल करना चाहिये। तृष्णाका मार "सन्तोष" है। जिसे सन्तोष है, उससे तृष्णा डरती और कोसों दूर भागती है। तृष्णामें दुःख-ही-दुःख है और सन्तोषमें सुख-ही-सुख है। इसीसे कहा है—

सब सुख है सन्तोष में, धरिये मन सन्तोष।
नेक न दुर्बल होत है, सर्प पवन के पोष॥

और भी कहा है—

सन्तोषः परमं लाभः, सन्तोषः परमं धनम्।
सन्तोषः परमंचायुः, सन्तोषः परमं सुखम्॥

तृष्णादास सेठ।

—:०:—

एक तृष्णादास सेठकी कहानी हमने कहीं पढ़ी है, उसे पाठकोंके उपकारार्थ यहाँ लिखते हैं:—

तृष्णादास सेठ सदा निन्न्यानवेके फेरमें लगे रहते थे। करोड़ों रुपये होनेपर भी, आपकी तृष्णा न शान्त होती थी। आप सदा सोचते थे, अब अरब रुपये होनेमें इतने करोड़ घटते हैं। अमुक काममें नफा होनेसे, मैं अरबपति हो जाऊँगा। एक दिन उनको एक विद्वान् ने समझाया,—"सेठ जी! भगवान्ने बहुत दिया है; सन्तोष करो; बिना सन्तोष सुख न होगा। ख्वाहिशोंका बढ़ाना ही मनुष्यके बन्धन और दुःखोंका मूल है। महात्मा सुकरातने कहा है—'The fewer our wants, the nearer we resemble the gods.' मनुष्य ज्यों-ज्यों अपनी ख्वाहिशोंको कम करता है, वह देवताओंके समकक्ष होता जाता है। अँगरेज़ीमें भी एक कहावत है—Contentment is better than wealth. यानी "धनसे सन्तोष अच्छा है।" पण्डितजीका इतना सब समझाना-बुझाना अरण्यरोदन हुआ; सेठजी कुछ न समझे।

एक रोज़ सेठजी अपनी गद्दीमें बैठे हुक्का पी रहे थे; इसी समय ख़बर मिली, कि आपके पोता हुआ है। आपने उसी समय नौबत-नक्कारे बजनेका हुक्म दिया। नौकर-चाकरोंको इनाम बँटने लगा। इतनेहीमें, फिर कोई ख़बर लेकर आया, कि बच्चा और ज़च्चा दोनों परमधामको सिधार गये। सुनते ही सेठजी करम ठोकने लगे और ऐसे शोक-सागरमें डूबे, कि तनो-बदनका होश न रहा। इसी बीच, किसीने यकायक ख़बर दी, कि आपने जो विलायतकी लाटरीमें चिट्ठी डाली थी, वह चिट्ठी आपहीके नाम उठी है। सुनते ही सेठजी खुश हो गये; सारा रंज-ग़म और दुःख भूल गये; ताज़ा हुक्का भरनेका हुक्म दिया गया। इतनेमें एक आदमीने आकर कहा—"सेठजी आपका जहाज़, भूमध्यसागरमें, विकट तूफ़ान आनेसे, डूब गया।" सुनते ही सेठजीको काठ मार गया। हुक्का धरा-का-धरा ही रह गया। अब आपको होश हुआ। आप मन-ही-मन कहने लगे,—"उस दिन जो पण्डितजीने कहा था कि ख़्वाहिशोंको बढ़ाकर, उनके पूरा करनेके लिये, तृष्णाकी तरंगोंमें पड़ना दुःखका मूल है, वह बात सोलह आने ठीक है।" आपने उसी दिनसे तृष्णा-पिशाचनीको त्याग, सन्तोषसे मैत्री कर ली। सन्तोषसे मैत्री करते ही, उन्हें हर ओर सुख-ही-सुख दीखने लगा। न जाने वे दुःख और शोक कहाँ बिलाय गये †

† A storm at sea, a vine-wasting hail tempest, a disappointing farm, cause no anxiety to him who is content with enough.—Hor.

क्षमा प्रभृतिपर हम पहले लिख आये हैं, इसलिये दुबारा लिखना व्यर्थ है।

शत्रुके प्रति दया-प्रकाश।

——:०:——

मनुष्यको चाहिये प्राणिमात्रपर दया रक्खे; सबको दान, मान-सम्मान और मीठे बचनोंसे खुश रक्खे; यहाँ तक कि शत्रुओंको भी प्रसन्न रक्खे ‡। जो अपने शत्रुपर भी दया करते हैं, शत्रुओंसे भी अपना चित्त शुद्ध रखते हैं, शत्रुओंकी भी कल्याण-कामना करते हैं, वे वास्तवमें महापुरुष हैं।

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते॥

जो अपने उपकारियोंमें साधु है, उसकी साधुतामें क्या गुण है? जो अपने अपकारियोंपर कृपा करे, महात्मा उसे ही साधु कहते हैं।

सचमुच ही यह बड़ा कठिन काम है। कठिन है जिनके लिये कठिन है; महापुरुषोंके लिये कठिन नहीं। उनका तो स्वभाव ही ऐसा होता है, कि वे अपनी बुराई करनेवालोंके साथ भी भलाई करते हैं। "भामिनी-विलास" में लिखा है—

अयि मलयज महिमाऽय,
कस्य गिरामस्तु विषयस्ते।

‡ Regard for the wretched is a duty, and deserving of praise even in an enemy.—Ovid.

उद्गिरतो यद्गरलं फणिनः
पुष्णासि परिमलोद्गारैः ॥

हे चन्दन ! तेरी महिमाका बखान कौन कर सकता है ? जो सर्प तेरे ऊपर ज़हर उगलते हैं, उन्हींको तू अपनी सुगन्धसे पोषता है । तात्पर्य्य यह, कि सज्जन अपने अपकारीके अपकारको भी उपकार ही समझते और उसका भला करते हैं ।

अपनी हानि करनेवालों, अपनी निन्दा करनेवालों और अपने संग शत्रुभाव रखनेवालोंपर भी जो मिहरबानी करते हैं, उनकी शुभकामना करते हैं,—उन सत्पुरुषोंसे कमलापति नारायण प्रसन्न होकर उनकी इच्छा पूरी करते हैं। ध्रुवके अपनी विमाताकी कल्याण-कामना करते ही, भगवान्ने उन्हें दर्शन दिये। जब मनुष्य इस दर्जेपर पहुँच जाता है, तब वह परमात्माके बहुत नज़दीक हो जाता है। उस समय उसे कोई अभाव और दुःख नहीं रहता। राजर्षि भर्तृहरि-जीने यहाँ जो १२ उपदेश दिये हैं, वे मनुष्यमात्रको अपने हृदयपटपर लिख लेने और सदा याद रखने चाहियें; साथ ही इनपर अमल करनेका भी अभ्यास करना चाहिये। मनुष्यके कल्याणकी इनसे उत्तम और नसीहत हो नहीं सकती। यह उत्तम-से-उत्तम उपदेशोंका मक्खन है। आप इन उपदेशोंको सुरपतिके बग़ीचेका कल्पवृक्ष समझें। इनपर अमल करनेवालोंको संसारकी सुख-सम्पत्ति, सारी पृथ्वीका राज्य, और स्वर्ग तो क्या चीज़ है, वह परमपद भी मिल

सकता है, जिसके लिए देवता भी तरसते हैं। दुःख और क्लेश आपद और मुसीबत तो इन उपदेशोंपर चलनेवालेके नज़दीक, स्वप्नमें भी, आ नहीं सकतीं। मनुष्यो ! संसारके और झंझटोंमें न पड़, इनपर चलो। दुनियबी थोथे कामोंमें पचना-मरना, वृथा आयु खोना है।

छप्पय—तृष्णाको तजि देहु, क्षमाको भजन करहु नित।
दया हिये में राखि, पाप सों दूर राखि चित॥
सत्य बचन मुख बोल, धर्म-पदवी जिय धारहु।
सतपुरुषन की सेव, नम्रता अति विस्तारहु॥
सब गुण सु आपने गुप्त रखि, कीरति परपालन करहु।
करि याद दुखित नर देखके, सन्त रीति यह अनुसरहु॥७८॥

78. Abstain from avarice, cultivate gentle habits, give up vanity, do not cherish a desire for sin, speak the truth, follow the path of good men, serve the learned, honour those who are worthy of respect, even tolerate thy enemies, display thy good qualities, take care of thy reputation and sympathise with the afflicted. These are the attributes of good men.

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः॥
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसंतः सन्ति सन्तः कियन्तः॥७९॥

जिनके तन, मन और वाणीमें पुण्यरूपी अमृत भरा है, जो अपने उपकारोंसे तीनों लोकोंको तृप्त करते हैं और जो दूसरेके परमाणु-समान गुणोंको पर्व्वतके समान बढ़ाकर अपने हृदयमें प्रसन्न होते हैं—ऐसे सत्पुरुष इस जगत्में विरले ही हैं।

नीच लोग कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं और मनमें कुछ होता है। उनका मन, उनकी वाणी और उनकी क्रियाका एक रूप नहीं होता। परन्तु सत्पुरुषोंके जो मनमें होता है, वही उनकी ज़बानसे निकलता है और जो कुछ ज़बानसे निकलता है, उसे ही वह करते हैं। सत्पुरुष अपने तन, मन और वचनसे सदा परोपकारमें लगे रहते हैं। वे अपना जीवन ही परोपकारके लिये समझते हैं। नीच लोग पराये बड़े-से-बड़े गुणको छोटा कर देते हैं, उसमें अनेक दोष लगा देते हैं; पर सज्जन लोग पराये छोटे-से-छोटे गुणको भी पहाड़का रूप देकर, अपने मनमें बहुत ही खुश होते हैं। क्या यह कठिन, अति कठिन तपस्या नहीं है? क्या ऐसे सत्पुरुष इस जगत्में दिखाई देते हैं? धरती-माता ऐसे सत्पुरुषोंसे नितान्त शून्य तो नहीं है, पर ऐसे पुरुषरत्न कहीं-कहीं ही होते हैं। पृथ्वीके जिस खण्डकी ऐसे महा-पुरुष शोभावृद्धि करते हैं, वह भूखण्ड परम पवित्र तीर्थ और ऐसे सज्जन मनुष्यमात्रके वन्दनीय देवता होते हैं।

कहा है—

वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचोवाचः ।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः ॥

जो सदा प्रसन्न रहते हैं, जिनके हृदयमें दया है, ज़बानमें अमृत है और जो परोपकारपरायण हैं, वे किसके वन्दनीय नहीं हैं ?

शंकराचार्य्यकृत प्रश्नोत्तरमालामें लिखा है—

विषाद्विषं किं विषयास्समस्ता ।
दुःखी सदा को विषयानुरागी ॥
धन्योऽस्ति को यस्तु परोपकारी ।
कः पूजनीयः शिवतत्त्वनिष्ठः ॥

सबसे वड़ा विषय कौनसा है ? सभी विषय । सदा दुखी कौन है ? विषयानुरागी । धन्य कौन है ? जो परोपकारी है। पूजनीय कौन है ? जो शिवतत्त्वनिष्ठ है ।

दोहा—अमृत भरे तन मन बचन, निशिदिन जग-उपकार ।
परगुण मानत मेरु-सम, विरले जन संसार ॥७९॥

79. There are certain holy men who are full of the nectar of virtuous deeds in mind, speech and body, who please the three Bhuvanas (worlds) with series of philanthropic actions and who enlarge their hearts by always magnifying the particles of other people's good qualities into mountains.

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ॥
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
कंकोलनिंबकुटजा अपि चन्दनाःस्युः॥ ८० ॥

उस सोनेके सुमेरु पर्वत और चाँदीके कैलाश पर्वतसे संसारको क्या फायदा, जिनपर पैदा होनेवाले वृक्ष जैसे-के-तैसे ही बने रहते हैं ? हम तो मलयाचलको ही अच्छा समझते हैं, जिसके संसर्गसे कंकोल, नीम और कुटज प्रभृतिके कड़वे वृक्ष भी चन्दनके वृक्ष हो जाते हैं ।

खुलासा—सुमेरु और कैलाशपर पैदा होनेवाले वृक्ष उनके संसर्गसे सोने चाँदीके नहीं हो जाते, इसलिये उनसे संसारको कोई लाभ नहीं । उनसे मलय पर्वत अच्छा, जिसके संसर्गसे, वहाँ पैदा होनेवाले, नीम और कुटज प्रभृतिके वृक्ष, कड़वे होने-पर भी, चन्दनके वृक्ष हो जाते हैं । बड़ोंके संसर्गसे ऐसा ही होता है । कहा है—

महाजनस्य सम्पर्कः कस्य नोन्नतिकारकः ।
पद्मपत्रस्थितं तोयं धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ॥

महाजनोंका संसर्ग किसकी उन्नति नहीं करता ? कमलके पत्तेपर रक्खा हुआ जल मोतीकी सी कान्ति धारण करता है ।

जिससे किसीका भला न हो, उसका होना न होना यकसाँ है । अपने लिये तो सभी जीते हैं, जो पराये लिये

जीता है, जिससे दूसरोंको फ़ायदा पहुँचता है, उसीका जीना सफल है। जो धनवान् होकर, दीन-दुखियोंका कष्ट निवारण नहीं करता, उसके धनी होनेसे क्या लाभ? एक उपालम्भ (उलाहना) और भी सुनिये;—

किं खलु रत्नैरेतैः किं पुनरभ्रायितेन वपुषा ते।
सलिलमपि यन्न तावकमर्णववदनं प्रयाति तृषितानाम्॥

हे सागर! तेरे अमूल्य रत्नों और मेघके समान शरीरसे क्या लाभ, जो तेरा जल प्याससे घबराये हुए प्राणियोंके मुँहमें भी नहीं पड़ता? अर्थात् अगर किसी सम्पत्तिवानसे किसी प्राणीका उपकार न हुआ, तो उसके सम्पत्तिशाली होनेसे दुनियाको क्या?

जिससे संसारका उपकार न हो, वह बड़ा होनेपर भी किस काम का? जिससे दुखियाओंका दुःख दूर हो, वह छोटा भी अच्छा। "जेठकी धूपसे जलते हुए, प्याससे घबराये हुए बटोही, मेरे सूख जानेपर किसके पास जायँगे" ऐसी बात कहनेवाला, राह किनारेका थोड़ी संपदावाला सरोवर धन्य है! अखण्ड जलवाले समुद्रको लाख-लाख धिक्कार है, जिससे प्यासोंकी प्यास भी नहीं बुझती!!

लीजिये, उस्ताद ज़ौक़का भी एक उपालम्भ सुनिये—

सेराब न हो जिससे, कोई तिशनये मक़सूद।
ऐ ज़ौक़! जो वह आबेबक़ा भी है, तो क्या है॥

जिससे किसी प्यासेकी प्यास न बुझे, वह अमृत भी हो तो किस काम का ? उससे दूसरोंको क्या लाभ ?

सोरठा—एरे निलज सुमेर, तो साथी पाथर रहे।
मलयागिरि कहँ हेर, कुटज नीम चन्दन किये ॥८०॥

80. What is the use of the golden (Meru) mountain or the silver (Kailas) mountain on which the growing trees remain only (simple) trees ? We value (above all) the Malaya mountain on which even the Kankola, Nimba and Kutaja trees (having a bitter taste) are transformed into sandal trees.

धैर्य्य-प्रशंसा।

—::०::—

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम्।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः
॥ ८१ ॥

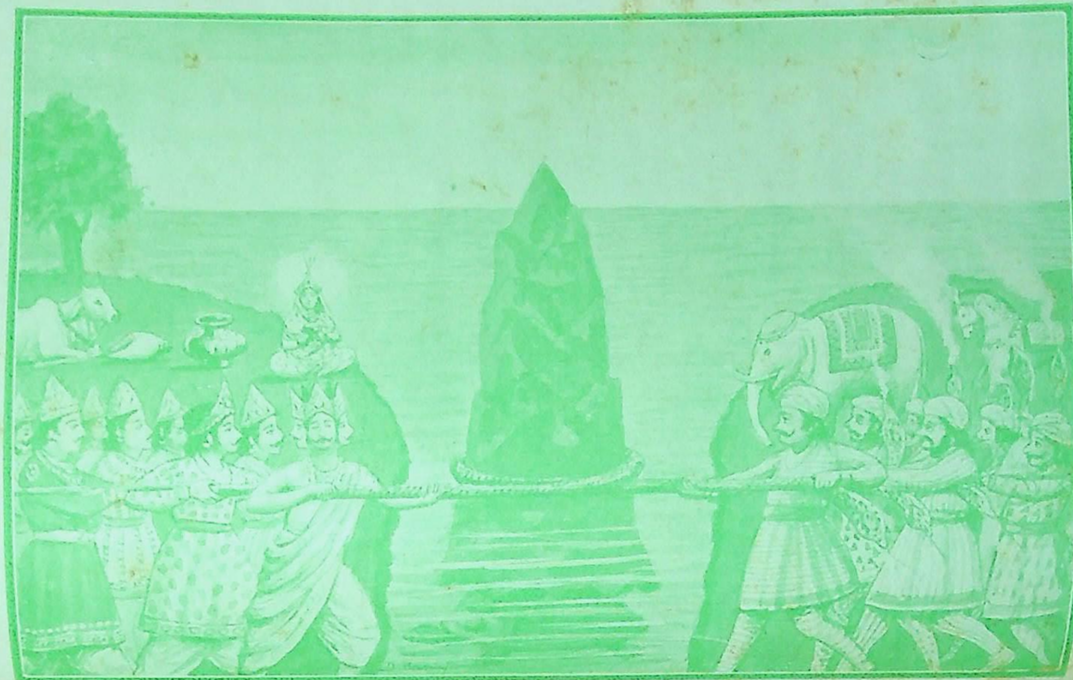
समुद्र मथते समय, देवता नाना प्रकारके अमोल रत्न पाकर भी सन्तुष्ट न हुए—उन्होंने समुद्र मथना न छोड़ा। भयानक विषसे भयभीत होकर भी, उन्होंने अपना उद्योग न त्यागा। जब तक अमृत न निकल आया, उन्होंने विश्राम न किया—

अविरत परिश्रम करते ही रहे । इससे यह सिद्ध होता है, कि धीर पुरुष अपने निश्चित अर्थ—इच्छित पदार्थ—को पाये बिना, बीचमें घबराकर, अपना काम छोड़ नहीं बैठते ।

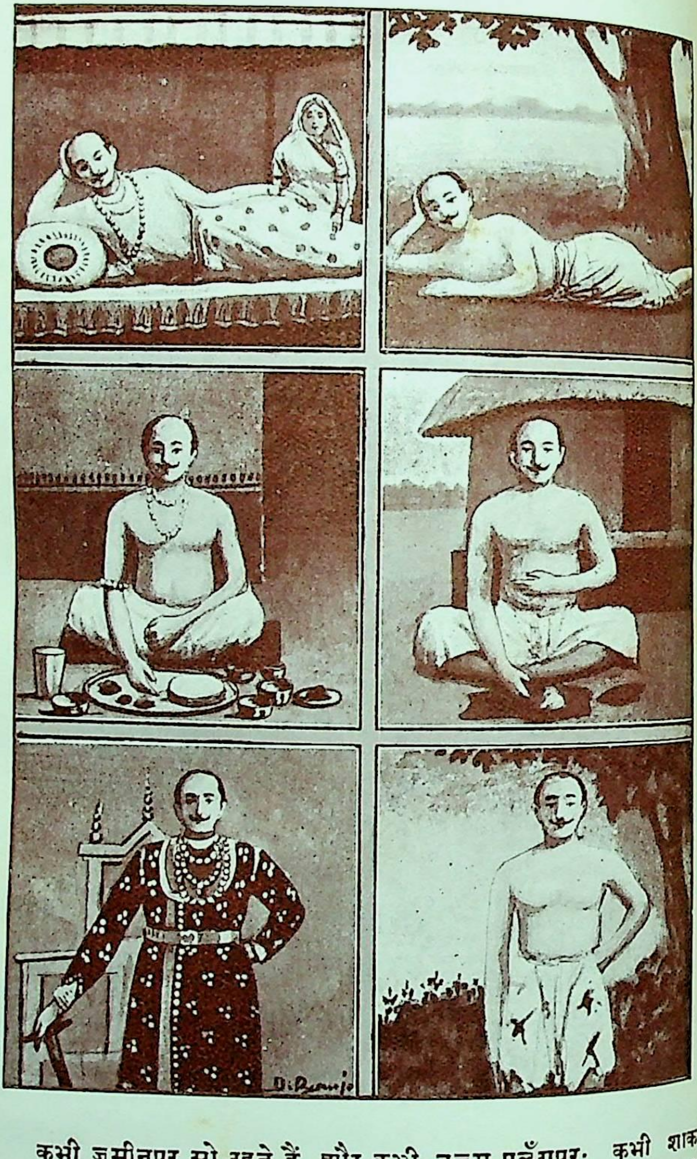
निर्बुद्धि पुरुष प्रथम तो विघ्न-भयसे किसी कामको आरम्भ ही नहीं करते; यदि कर भी देते हैं, तो बीचमें विघ्न-बाधा उपस्थित होते ही कामको छोड़ बैठते हैं; पर बुद्धिमान हज़ार-हज़ार विघ्न-बाधा उपस्थित होनेपर भी, कामको बीचमें नहीं छोड़ते । प्राचीन कालमें, महात्मा ध्रुवने परमात्माके दर्शनोंकी इच्छासे तपश्चर्य्या आरम्भ की । वनमें उन्हें बहुतसे हिंसक पशुओंने डराया तथा और भी विघ्न उपस्थित हुए, पर वे अपने आसनसे ज़रा भी न डिगे—जब परमात्माके दर्शन हो गये, तभी उन्होंने अपना काम छोड़ा, ऐसा ही सूर्यकुलतिलक महाराज भगीरथके साथ हुआ । उन्हें भी इन्द्रने बहुत डराया-धमकाया, पर वे न डरे; अपना काम करते ही रहे । जब उन्हें गङ्गाके मर्त्यलोकमें आनेका वर मिल गया, तभी वे तपस्यासे विरत हुए । कहा है—

महत्त्वमेतन्महतां नयालङ्कारधारिणाम् ।
न मुञ्चन्ति यदारब्धं कृच्छ्रेऽपि व्यसनोदये ॥

नीतिका भूषण धारण करनेवाले महात्माओंका यही महत्त्व है, कि वे घोर विपद् पड़नेपर भी, अपने आरम्भ किये कामको छोड़ नहीं बैठते ।



भयानक विष निकलनेपर भी देवताओंने समुद्र-मथन-कार्य्य नहीं त्यागा । धीर पुरुष वांछित पदार्थ पाये



कभी ज़मीनपर सो रहते हैं, और कभी उत्तम पलँगपर; कभी शाक-पात खाकर रहते हैं और कभी दाल भात खाकर; कभी गुदड़ी पहनते हैं और कभी दिव्य वस्त्र धारण करते हैं। मनस्वी और कार्यार्थी पुरुष सुख और दुख दोनोंको समान समझते हैं। (पृष्ठ ३४६)

छप्पय—महा अमोलक रत्न, नाहिं रीझे सुर तिनसों।
महा हलाहल जान, प्राण डरपत नहिं जिनसों॥
रहत चित्तकी वृत्ति, एक अमृत सों अतिही।
तैसे ही नर धीर, काज निश्चे कर मतिही॥
सब दोष-रहित अरु गुण-सहित, ऐसे कारन मन धरत।
तिहि को सअर्थ अमृत लहत, कोऊ सुखको नहिं करत॥८१॥

81. (While churning the Ocean) the gods were not satisfied with (finding) the precious gems (alone), not were they frightened by the dreadful Poison: They did not cease their efforts, till they had found the nectar. (This shows that) the persevering never give up the objects which they have set their hearts upon.

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यंकशयनं।
क्वचिच्छाकाहारा: क्वचिदपि च शाल्योदनरुचि:॥
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो।
मनस्वी कार्य्यार्थी न गणयति दु:खं न च सुखम्॥८२॥

कभी ज़मीनपर सो रहते हैं और कभी उत्तम पलँगपर सोते हैं, कभी साग-पात खाकर रह जाते हैं और कभी दाल-भात खाते हैं; कभी फटी-पुरानी गुदड़ी पहनते हैं और कभी दिव्य वस्त्र धारण करते हैं—कार्य्यसिद्धिपर कमर कस लेनेवाले धीर पुरुष सुख और दु:ख दोनोंको ही कुछ नहीं समझते।

जो धीर पुरुष सुख-दुःख, मान-अपमान और निन्दा-स्तुतिकी परवा नहीं करते, केवल कार्य्य साधनसे मतलब रखते हैं, जो शरीरको नाश करके भी कार्य्य सिद्ध करना चाहते हैं, वे अवश्य ही कठिन-से-कठिन कामको सिद्ध कर लेते हैं। कार्य-साधनके लिए स्वयं त्रिलोकीनाथको कभी वामन, कभी शूकर और कभी नृसिंह रूप धारण करना पड़ा; तब इतर लोगोंकी क्या बात है ? कहते हैं, महाबली रावणने भी, अपनी कार्य्य-सिद्धिके लिये, गधेको सिरपर रक्खा और एक पुष्प कम हो जानेपर, अपना नेत्र ही शिवजीको अर्पण करनेके लिये तय्यार हो गया। यूरोपविजयी महावीर नेपोलियनने अपनी विजयके लिये, अनेक बार दिन-को-दिन और रात-को-रात नहीं गिनी, आँधी वर्षा और तूफानमें घोर कष्ट सहन किये। शेषमें, विजय प्राप्त करके ही दम लिया। मनस्वी पुरुषोंका ऐसा ही स्वभाव होता है।

कहा है—

अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः।
स्वार्थमभ्युद्धरेत्प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशोहि मूर्खता॥

अपमानको आगे और मानको पीछे रखकर, बुद्धिमानको अपना कार्य सिद्ध करना चाहिये। अपना काम न बनाना ही मूर्खता है।

सारांश—धीर पुरुष स्वकार्य्यसिद्धिके आगे मान-अपमान और दुःख-सुखको कोई चीज़ नहीं समझते।

दोहा—भूमिशयन कहुँ पलँग पै, शाकाहार कहुँ मिष्ट।
कहुँ कन्था सिरपाव कहुँ, अर्थी सुख दुख इष्ट ॥८२॥

82, A resolute person who has made up his mind to do a thing does not care for hardships or comfort. He sometimes sleeps on (bare) ground and sometimes on a (luxurious) bed. Often he eats vegetables only and when available takes rice for his food. When necessary, he would clothe himself with a single sheet of patched rags and sometimes would put on a valuable dress.

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः ॥
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥८३॥

ऐश्वर्यका भूषण सज्जनता, शूरताका भूषण अभिमानरहित बात कहना, ज्ञानका भूषण शान्ति, शास्त्र देखनेका भूषण विनय, धनका भूषण सुपात्रको दान देना, तपका भूषण क्रोध-हीनता, प्रभुताका भूषण क्षमा और धर्मका भूषण निश्छलता है; किन्तु अन्य सब गुणोंका कारण और सर्व्वोत्तम भूषण "शील" है।

शंकराचार्य्यकृत प्रश्नोत्तरमालामें लिखा है:—

किम्भूषणाद्भूषणमस्ति शीलं।
तीर्थम्परं किं स्वमनो विशुद्धम् ॥

किमत्र हेयं कनकं च कान्ता।
श्राव्यं सदा किं गुरुवेदवाक्यम् ॥

उत्तम-से-उत्तम आभूषण क्या है? शील। उत्तम-से-उत्तम तीर्थ कौनसा है? अपने मनकी शुद्धता। इस जगत्में त्यागने-योग्य क्या है? धन और स्त्री। सदा सुनने लायक़ क्या है? गुरु और वेदका वाक्य।

संसारमें "स्वभाव" सबके ऊपर समझा जाता है। जिसका स्वभाव अच्छा नहीं, वह हज़ार-हज़ार गुण होनेपर भी निकम्मा है। जिसके स्वभावमें "शील" है, वह सब गुणियोंका सर्दार है। शीलवान् ही जगत्की सम्पत्तियोंका स्वामी होता है। कार्यनिपुण पुरुष सम्पत्ति पाता है, पथ्य-सेवी मङ्गल, सुख और निरोगता पाता है, उद्योगी विद्याकी सीमा पा जाता है; पर विनयी (शीलवान्) पुरुष धन, धर्म और यश—तीनोंको पाता है।

हमें एक शीलवान्की कहानी याद आ गई है। पाठक उसे सुनें :—"एक गाँवमें दो भाई रहते थे। उनमेंसे एक अत्यन्त विद्वान्, मधुरभाषी, शान्त और सबकी सह लेनेवाला था। उसपर कोई क्रोध करता, तो वह दब जाता और हमेशा ऐसी जगह बैठता था, जहाँसे उसे कोई उठा न सके। दूसरा भाई एकदम निरक्षर भट्टाचार्य्य और अत्यन्त कड़वा बोलने-वाला था। अगर उसपर कोई क्रोध करता, तो वह उसका सिर फोड़नेको तैयार हो जाता। विद्वान्-भाईसे गाँवके

सब लोग खुश रहते थे। उसके कामके लिये तन-मनसे तैयार हो जाते थे। अगर वह किसीसे कुछ मदद माँगता तो लोग फौरन ही उसे मदद देते। किन्तु दूसरे भाईसे कोई बात भी नहीं करता था। एक दिन उसने अपने भाईसे पूछा—"भाई! तुम्हारे पास ऐसी कौनसी तरकीब है, जिसके कारण तुमसे सब लोग राज़ी रहते हैं और तुम चाहते हो सो फौरन कर देते हैं; मुझसे तो कोई बात भी नहीं करता।" उसने कहा "मेरे पास शील है; तेरे पास वह नहीं है।" कहा है—

गिरि ते गिरि परिबो भलो, भलो पकरिबो नाग।
अग्नि माँहि जरिबो भलो, बुरो 'शील' को त्याग॥

सारांश—यदि इहलोक और परलोकमें सुख चाहो, तो शील व्रत धारण करो। शील सब गुणोंका राजा है। शीलवान्‌को जगत् मस्तक झुकाता है। शीलवान्‌के लिये अग्नि शीतल हो जाती है, समुद्रमें टखनों-टखनों पानी हो जाता है, बड़ा भारी सुमेरु पर्वत ज़रासे बालूके दाने बराबर हो जाता है, सिंह बकरीसा हो जाता है, जङ्गल शहर हो जाता है, विष अमृत हो जाता है, त्रिलोकीकी सम्पदा चरणोंमें आप-से-आप आ जाती है, स्वर्ग उसकी बाट देखता है; बहुत क्या—शीलवान्‌को जगदीश भी मिल जाते हैं। हम तो क्या चीज़ हैं; शीलकी महिमाका शायद गणेश और सरस्वती भी कठिनतासे बखान कर सकें।

कुण्डलिया—मण्डन है ऐश्वर्य को, सज्जनता सनमान।
बाणी सज्जन शूरता, मण्डन धन को दान॥
मण्डन धन को दान, ज्ञान मण्डन इन्द्रीदम।
तपमण्डन अक्रोध, विनय मण्डन सोहत सम॥
प्रभुतामण्डन क्षमा, धर्म मण्डन छल खण्डन।
सबहिन में सरदार, शीलता सबको मण्डन॥८३॥

83. Gentlemanliness is the ornament of wealth and power, a softened speech that of bravery, self-control that of knowledge, humility that of a study of the scriptures, appropriate spending that of riches, checking of anger that of penance, mercy that of kings and straight-forwardness that of Dharma. (But) good manners, which are necessary above all, are the best ornament of everything.

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥८४॥

नीतिनिपुण लोग निन्दा करें चाहे स्तुति, लक्ष्मी आवे और चाहे चली जाय, प्राण अभी नाश हो जायँ और चाहे कल्पान्तमें हों—पर धीर पुरुष न्यायमार्गसे ज़रा भी इधर-उधर नहीं होते।

धीर-वीर पुरुष किसी प्रकारके लालच या भयसे अपने निश्चित किये हुए नीतिमार्गसे ज़रा भी विचलित नहीं होते, जबकि नीच पुरुष ज़रासा लालच या भय दिखानेसे ही नीति-मार्गसे फिसल पड़ते हैं। महाराणा प्रतापको अकबरकी ओरसे अनेक प्रकारके प्रलोभन और भय दिखाये गये, पर वे ज़रा भी न डिगे—अपने निश्चित किये हुए नीतिमार्गपर अटल होकर जमे रहे। महात्मा प्रह्लादको उनके पिता हिरण्य-कश्यपने अनेक तरहके लालच दिये, भय दिखाये और शेषमें उन्हें पर्वत-शिखरसे समुद्रमें गिराया, अग्निमें जलाया; पर वे अपने निश्चित किये नीति या धर्म-मार्गसे ज़रा भी विचलित न हुए। सच्चा मर्द वही है, जो सर्व्वस्व नाश होने या फाँसी चढ़ाये जानेके भयसे भी, न्यायमार्गको न छोड़े। कहा है:—

चलन्ति गिरयः कामं, युगान्तपवनाहताः।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव, धीराणां निश्चलं मनः॥

प्रलय-कालकी पवनसे पर्वत चलायमान हो जाते हैं; पर घोर कष्ट पड़नेपर भी, धीर पुरुषोंका निश्चल चित्त चलायमान् नहीं होता।

और भी—

अकृत्यं नैव कर्त्तव्यं, प्राणत्यागेऽपि संस्थिते।
न च कृत्यं परित्याज्यं, धर्म एव सनातनः॥

प्राणनाशका समय आनेपर भी, न करने योग्य कामको न करना चाहिये और करने योग्यको बिना किये न छोड़ना चाहिये; यही सनातन धर्म है।

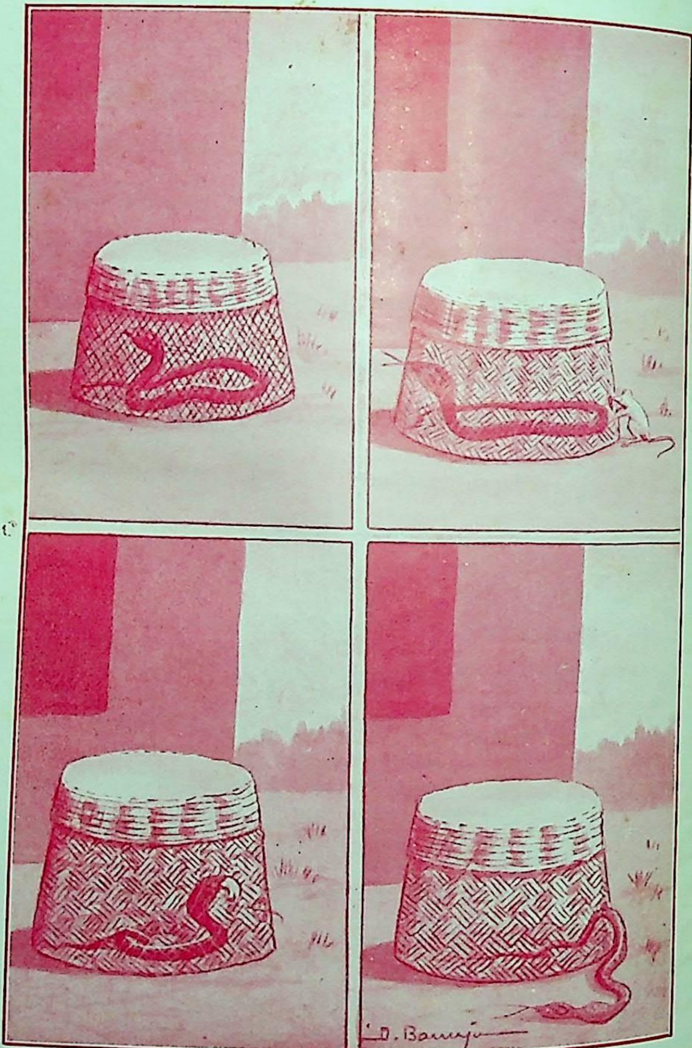
पण्डितराज जगन्नाथने कहा है—

सपदि विलयमेतु राज्यलक्ष्मीरुपरि पतंत्वथवा कृपाणधाराः।
"अपहरतुतरां शिरः कृतान्तो, मम तु मतिर्नमनागपैतुधर्मात्॥"

चाहे शीघ्र ही राज्यलक्ष्मी नष्ट हो जाय, चाहे कृपाणधारा ऊपरसे गिरे, चाहे कृतान्त शिरश्छेदन करे; परन्तु मेरा मन धर्मसे ज़रा भी न डिगे !

सारांश—किसी दशामें भी न्यायमार्गसे विचलित न होना चाहिये। वशिष्ठजी कहते हैं—"विन्ध्याचल पर्वत भी हवा या प्रलयाग्निसे विदीर्ण हो जाता है; पर बुद्धिमान् शास्त्रानुमोदित मार्गको नहीं त्यागते।

छप्पय—*नीति निपुण नर धीर बीर, कुछ सुयश करो किन।*
अथवा निन्दा कोटिं कहौ, दुर्वचन छिनहि छिन॥
सम्पतहू चलि जाउ, रहौ अथवा अगणित धन।
अबहि मृतक किन होहु, होउ अथवा निश्चल तन॥
पर न्याय-पंथको तजत नहिं, बुद्धि बिबेक गुण ज्ञान निधि।
वै संग सहायक रहत नित, देत लोक परलोक सिधि॥८५॥



इस चित्रके सर्पको देखनेसे ज्ञात होता है, कि मनुष्योंकी क्षय-वृद्धि दैवाधीन है। (पृष्ठ ३५७) Kanti Press, Agra.

84. The wise do not go astray even a single step from the path of justice, whether they are upbraided or praised by politicians, whether riches come to them or leave them of their own free will and whether they have to die to-day or after a Yuga.

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा
कृत्वाखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः ॥
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा
लोकाःपश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् ॥८५॥

एक सर्प पिटारीमें बन्द पड़ा हुआ, जीवनसे निराश, शरीरसे शिथिल और भूखसे व्याकुल हो रहा था। उसी समय, एक चूहा, रातके वक्त, कुछ खानेकी चीज़ पानेकी आशासे, पिटारीमें छेद करके घुसा और सर्पके मुँहमें गिरा। सर्प उसे खाकर तृप्त हो गया और उसी चूहेके किये हुए छेदकी राहसे बाहर निकलकर स्वतन्त्र—आज़ाद हो गया। इस घटनाको देखकर, मनुष्योंको अपनी वृद्धि और क्षयका एक-मात्र कारण दैवको ही समझना चाहिये।

यही बात वृन्द कविने अपनी कवितामें इस भाँति कही है:—

दुख सुख दीबे को दई, है आतुर इहि ठाट।
अहि करण्ड मूसा परयौ, भखि निकस्यौ वुहि वाट ॥

प्राणी दैवाधीन है।

——::०::——

मनुष्यका बुरा और भला सब दैव या प्रारब्धके अधीन हैं; मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है, प्रारब्धके वशमें है; प्रारब्ध जो खेल खिलाती है, वही खेल खेलता है। मनुष्यके पूर्वजन्मके शुभाशुभ कर्मोंको ही प्रारब्ध कहते हैं; यानी पहले जन्मके बुरे-भले कर्मोंसे ही प्रारब्ध या अदृष्ट बनता है। अगर समयपर पुण्योंका उदय होता है, तो मनुष्य सुख पाता है और यदि पापोंका उदय होता है, तो दुःख-भोग करता है। दुःखका उद्यम न करनेपर भी मनुष्य दुःख पाता है, यही इस बातका पक्का प्रमाण है।

कहा है—

अन उद्यम सुख पाइये, जो पूरबकृत होय।
दुःख को उद्यम को करत ? पावत है नर सोय॥
को सुख को दुख देत है ? देत करम झकझोर।
उरझै-सुरझै आप ही, ध्वजा पवन के जोर॥

और भी—

स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद् विमुच्यते॥

जीव आप ही कर्म करता है; आप ही उसका फल भोगता है; आप ही संसारमें भ्रमता है और आप ही उससे छुटकारा पाता है।

और भी—

आत्मापराधवृक्षस्य, फलान्येतानि देहिनाम् ।
दारिद्रय रोग दुःखानि, बन्धनव्यसनानि च ॥

दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन और विपत्ति—ये सब मनुष्यके अपराध-रूपी वृक्षके फल होते हैं।

और भी—

यस्माच्च येन च यदा च यथाच यच्च
यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म ।
तस्माच्च तेन च तदा च तथा च तच्च
तावच्च तत्र च कृतान्तवशादुपैति ॥

जिसने, जिस वजहसे, जब, जैसा, जो, जितना और जहाँ शुभ और अशुभ कर्म किया है; उसे, उसीसे, तभी, तैसाही, सो, उतना ही और वहाँ ही, कालकी प्रेरणासे, फल मिलता है।

इन प्रमाणोंसे स्पष्ट समझमें आ सकता है कि, मनुष्य अपने ही कर्मोंके बन्धनमें फँसकर दुःख और सुख भोगता है। जो लोग दुःख या सुखको मनुष्य या परमात्माकृत समझते हैं, वे बड़ी भारी ग़लती करते हैं। जिस समय पिटारीवाले सर्पके पापोंका उदय हुआ, वह पिटारीमें बन्द हुआ। जब तक पापोंका अन्त न हुआ, वह भूख-प्यासमे कष्ट पाता रहा। ज्योंही पुण्योंका उदय हुआ, दैवकी

प्रेरणासे, चूहा उसके पिटारेमें छेद करके घुसा। उससे सर्पकी क्षुधा शान्त हुई और वह उसी छेदकी राहसे निकलकर स्वतन्त्र भी हो गया। इसी तरह मनुष्य भी दैवके अधीन होकर सुख-दुःख भोगते हैं।

सारांश—मनुष्योंकी क्षय और वृद्धि, सुख और दुःख, सम्पद और विपद्, सफलता और असफलता प्रभृतिका एकमात्र कारण दैव या प्रारब्ध है। दैव जो नाच नचाता है, प्राणी वही नाच नाचता है।

कुण्डलिया—जैसे काहू सरप कों, छबरें पकर धर्‍यौ सु।
सबकी आशा छोड़ के, दै सिर कूद पर्‍यौ सु॥
दै शिर कूद पर्‍यौ सु, भयौ पीड़ित अति कैदी।
इन्द्री विहृवल भूख, पिटारी मूसें छेदी॥
वाही को भखि मांस, छेद ह्वै निकस्यौ कैसे।
तैसे क्षय अरु वृद्धि, दैव-वस ऐसे-जैसे॥८५॥

85. There was a snake which had lost all hope, its body all aching owing to its having been imprisoned in a cage and its senses made feeble by hunger. A mouse having made hole into the cage at night entered into its mouth of itself. The snake, its hunger satisfied with flesh of the mouse, speedily went out of that very hole and was free. Thus see, O men, Fate is the only cause of people's prosperity and loss.

पतितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः ।
प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः ॥८६॥

जिस तरह हाथसे गिरानेपर भी गेंद ऊँची ही उठती है, उसी तरह साधु-वृत्तिपर चलनेवालोंकी विपत्ति भी सदा नहीं रहती है ।

सदा किसीके भी दिन समान नहीं रहते। सदा न कोई सुखी ही रहता है और न सदा कोई दुःखी ही रहता है। इस परिवर्त्तनशील संसारमें दुःख और सुख गाड़ीके पहियेकी तरह चक्कर काटते हैं। समयके साथ मनुष्योंकी अवस्थाएँ बदलती हैं। सूर्यकी जिस तरह एक दिनमें तीन अवस्थाएँ हो जाती हैं; उसी तरह मनुष्यकी अवस्थाएँ भी बदला करती हैं। इन बातोंको समझकर, धीर पुरुष अपनी विपद्में नहीं घबराते ।

जो लोग, भारी-से-भारी विपद् पड़नेपर, धनहीन होनेपर, शत्रुओंके जालमें फँसनेपर, अपने आचरणको अच्छा रखते हैं, धीरज और धर्मको नहीं त्यागते हैं और प्राचीन कालके महापुरुषोंकी राहपर चलते हैं,—उनकी विपत्ति, निश्चय ही, उसी तरह शीघ्र ही नाश हो जाती है, जिस तरह ज़मीनपर फैंकी हुई गेंद शीघ्र ही ऊपर उठ आती है। महाराजा रामचन्द्र, हरिश्चन्द्र, नल और पाण्डुपुत्रोंने

धर्मात्माओंकी चालपर चलकर शीघ्र ही अपनी-अपनी विपत्तियोंसे छुटकारा पाया। जो मनुष्य अपनी विपत्तिमें सब्र नहीं करता, धैर्य्य और धर्मको छोड़ देता है, उसकी विपत्ति उसे बड़े-बड़े कष्ट भुगाती और शीघ्र नहीं जाती।

शिक्षा—विपत्तिमें धीरज और धर्मको न छोड़ो; धर्मात्माओंकी चालपर चलो; परमात्माकी दयासे शीघ्र ही विपत्ति नष्ट हो जायगी।

दोहा—कर को मार्‌यो गैंद ज्यों, लागि भूमि उठि ज़ात।
साधु जनन को त्यों विपति, छिन ही माहिं नशात॥८६॥

86. A ball dashed against the ground with the stroke of a hand rebounds up-wards. (Similarly) as a general rule, the downfall of good-natured men does not last long.

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति॥८७॥

आलस्य मनुष्योंके शरीरमें रहनेवाला घोर शत्रु है और उद्योगके समान उनका कोई बन्धु नहीं है; क्योंकि उद्योग करनेसे मनुष्यके पास दुःख नहीं आते।

इसमें ज़रा भी शक नहीं, कि आलस्य मनुष्यका परम शत्रु और उद्योग उसका परम बन्धु है। आलस्यसे मनुष्य रोगी, दुःखी और दरिद्री होता है; जबकि उद्योगसे

निरोग, सुखी और धनी होता है। आलस्य असफलताका भाण्डार और उद्योग सफलताकी कुञ्जी है। आलस्य मृत्यु और उद्योग जीवन है। आलसी सदा मुहताज रहता है और उद्योगी सदा आनन्द करता है। आलसीकी ज़िन्दगी दिन-दिन छीजती है, पर उद्योगीकी ज़िन्दगी बढ़ती है। रोसो महोदय कहते हैं—"Temperance and labour are the two best physicians of man." परहेज़गारी और मिहनत मनुष्यके दो सर्वोत्तम हकीम हैं; विण्डिल फिलिप्स महोदय कहते हैं—"Health lies in labour and there is no royal road to it, but through toil. तन्दुरुस्ती मिहनतमें है। मिहनतके सिवा तन्दुरुस्ती तक पहुँचनेकी और कोई शाहीराह नहीं है। हिलर्ड महाशय कहते हैं—"Life is but another name for action; and he who is without opportunity exists but does not live—"कर्म या कामका ही दूसरा नाम जीवन है; निकम्मेका अस्तित्व है, पर वह जीवित नहीं। शंकराचार्य्य महाराजने कहा है.—

कोवा दरिद्रोहिविशाल तृष्णा।
श्रीमांश्च को यस्य समस्त तोषः॥
जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः।
कोवाऽमृतस्स्यात्सुखदा निराशा॥

दरिद्री कौन है? जिसे तृष्णा बहुत है। धनवान् कौन है? जिसे सब तरह सन्तोष है। जीता हुआ ही मृतक कौन है? जो उद्यम-रहित या आलसी है। अमृत क्या है? सुखदायी निराशा।

आलस्यसे ही सब आपदाओंकी मूल निर्धनता आती है। डच लोगोंमें एक कहावत है—"Poverty is the reward of idleness." दरिद्र आलस्यका पुरस्कार है। दरिद्रतासे मनुष्यके मनमें लाज सी आने लगती है; लज्जासे मनुष्यमें कमज़ोरी आती है; कमज़ोरकी सभी बेइज्जती करते हैं; बेइज्जती होनेसे मनमें दुःख और शोक पैदा होते हैं; जो दिन-रात शोकमें ग़र्क़ रहता है, उसकी अक्ल मारी जाती है; जब अक्ल ही नहीं रहती, तब मनुष्य बहुधा आत्महत्या करके प्राण विसर्जन कर देता है। बेंजामिन फ्रैंकलिन महोदय कहते हैं—"Poverty often deprives a man of all spirit and virtue." दरिद्रता बहुधा मनुष्यको सम्पूर्ण साहस और धर्मसे हीन कर देती है। जिसमें साहस और धर्म नहीं, वह तो जीता हुआ ही मरा है; वह चाहे अपघात करके मरे, चाहे न मरे। जिस आलस्यसे इतने उपद्रव या घोर सङ्कट पैदा होते हैं, वह मनुष्यका घोर शत्रु नहीं तो क्या है? और तो और; जिस सुयशकी मनुष्यको प्राण देकर भी परिपालना करनी चाहिये, वह भी आलस्यसे नष्ट हो जाता है। कहा है:—

स्तब्धस्य नश्यति यशो विषमस्य मैत्री।
नष्टेन्द्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्मः॥
विद्याफलं व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यं।
राज्यं प्रमत्त सचिवस्य नराधिपस्य॥

आलसीका यश नाश हो जाता है, दुष्टोंकी मैत्री नष्ट हो जाती है, नष्टेन्द्रिय पुरुषका कुल नहीं चलता, व्यसनीकी विद्या नष्ट हो जाती है, कंजूसका सुख नष्ट हो जाता है और मतवाले मन्त्रीवाले राजाका राज्य नष्ट हो जाता है।

आलस्यमें संसारके सारे ही दोष हैं। आलसीको न इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें। आलसी इस लोकमें निर्धनता प्रभृति नाना प्रकारके दुःखोंको भोगकर मरता है और मरनेपर फिर इसी लोकमें आता और नाना प्रकारके दुःख भोगता है। आलसीका जन्म-मरणके बन्धनोंसे छुटकारा नहीं हो सकता। इसलिये मनुष्यो! यदि तुम सुख-सम्पत्ति और ऐश्वर्य्य चाहो, यदि तुम संसार-बन्धनसे मुक्त होना चाहो, तो "आलस्यशत्रु" से सदा अलग रहो; इस शत्रुसे मैत्री न करो। जो आलस्यसे मैत्री रखता है, उससे संसारकी सम्पत्तियाँ दूर भागती हैं और लक्ष्मी उसकी सूरतसे नफ़रत करती है। नीति-ग्रन्थोंमें कहा है—

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घसूत्रता॥
आलस्यं स्त्रीसेवा सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम्।
सन्तोषो भीरुत्वं षड् व्याघाता महत्त्वस्य॥
अव्यवसायिनमलसं दैवपरं साहसाच्चपरिहीनम्।
प्रमदेव हि वृद्धपतिं नेच्छत्युपगृहितुं लक्ष्मीः॥
क्लेशस्याङ्गमदत्वा सुखमेव सुखानि नेह लभन्ते।
मधुभिन्मथनायस्तैराश्लिस्यति बाहुभिर्लक्ष्मीम्॥

जिन्हें धनकी इच्छा हो, उन्हें निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता—ये दोष त्याग देने चाहिएँ।

आलस्य, स्त्री-सेवा, अस्वस्थता, जन्म-भूमिसे प्रेम, सन्तोष और भय—ये छै बड़प्पनको नाश करनेवाले हैं।

जिस तरह जवान स्त्री बूढ़े पतिको आलिङ्गन करना नहीं चाहती; उसी तरह लक्ष्मी उद्योगहीन, आलसी, तक़दीरको बड़ी समझनेवाले और साहसहीन—पस्तहिम्मत मनुष्यको नहीं चाहती।

इस जगत्में बिना शरीरको दुःख दिये सुख नहीं मिलता। मधुसूदन भगवान्ने समुद्र-मथनसे थकी हुई भुजाओं द्वारा ही लक्ष्मी पाई थी।

आशा है, हमारे पाठक अब आलस्यके घोर शत्रु होनेकी बात अच्छी तरह समझ गये होंगे; आगे चलकर

हम उद्योगके परमबन्धु होनेकी बात इसी तरह समझायेंगे; पर बीचमें आलसियों एक उज्रका जवाब और देंगे।

आलसी और काहिलोंको भाग्य या तक़दीरपर बड़ा भरोसा होता है। वे लोग पुरुषार्थ या तदबीरके मुक़ाबलेमें भाग्य या तक़दीरको बड़ी समझते हैं और अक्सर कहा करते हैं—"अगर हमारे भाग्यमें होगा, हमारी तक़दीर अच्छी होगी, हमने पूर्वजन्ममें शुभ कर्म किये होंगे, तो हमारे बिना उद्योग किये ही, बिना हाथ-पाँव हिलाये ही, पलँगपर पड़े-पड़े ही, हमें सब कुछ मिल जायगा—लक्ष्मी हमारे क़दमोंमें लोटेगी। हाँ, यदि हमारा भाग्य ही अच्छा न होगा, हमने पहले जन्ममें पुण्यकर्म किये न होंगे; तो हमारे हज़ार कोशिश करनेपर भी, हमें कुछ न मिलेगा। फलकी प्राप्तिका हेतु प्रत्यक्ष नहीं दीखता; फलकी प्राप्ति पूर्वकर्मानुसार होती है, अन्यथा नहीं। देखते हैं, किसीको थोड़ी ही मिहनतसे बड़ा फल मिलता है और किसीको घोर परिश्रम करनेपर भी खानेको नहीं मिलता; और कोई बिना ज़रा-सा भी उद्योग किये, करोड़ोंका मालिक बन बैठता है।" बस, आलसी अपने इसी विश्वाससे घरोंमें पड़े रहते हैं। माता-पिता यदि कुछ छोड़ जाते हैं; तो जब तक वह रहता है, बेच-बेचकर खाया करते हैं। आलसियोंसे उठकर पानी नहीं पिया जाता; कुत्ता मुँहमें मूतता हो, तो उसे भगाया नहीं जाता। हमें

इस मौक़ेपर आलसियोंका एक क़िस्सा याद आया है, उसे हम अपने पाठकोंके लिये यहाँ लिखते हैं:—

एक बार एक मनुष्यने कहा—"पोस्ती ने पी पोस्त, नौ दिन चला अढ़ाई कोस।"

दूसरेने कहा—"अबे! पोस्ती न होगा, वह कोई डाकका हरकारा होगा। पोस्ती ने पी पोस्त, तो कूँड़ाके इस पार या उस पार।"

और सुनिये—

एक बाग़में दो आलसी एक आमके पेड़के नीचे लेट रहे थे; उनमेंसे एककी छातीपर एक आम पड़ा हुआ था, पर वह उसे उठाकर खा नहीं सकता था। इतनेमें उधरसे एक सवार निकला। आमवाला आलसी बोला—"ओ भाई सवार! मेरी छातीपर एक आम पड़ा है, कृपया इसे मेरे मुँहमें निचोड़ते जाइये।" सवारने कहा—"तू बड़ा ही आलसी है, जो अपनी छातीपर पड़ा हुआ आम भी उठाकर नहीं चूस सकता; दूसरेसे आम निचोड़नेको कहता है।" यह सुनते ही दूसरे आलसीने कहा—"बेशक साहब! यह बड़ा ही आलसी है। रात-भर मेरे मुँहको कुत्ता चाटता रहा, मैंने इससे कहा ज़रा दुतकार दे, पर इसने "दुत" भी न किया।" यह सुनकर सवार उन्हें लानत-मलामत करता हुआ चला गया। आलसियोंकी यह दशा होती है, तभी तो वे संसारमें नरकसे भी बढ़कर दुःख भोगते हैं।

आलसियोंपर महाकवि "मीर" ने खूब ही कहा है:—

दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाना, पर उठके कहीं जाना नहीं अच्छा॥
बिस्तर पै मिस्ल लोथ, पड़े रहना है अच्छा।
बन्दर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा॥
रहने दो ज़मीं पै मुझे, आराम यहीं है।
छेड़ो न नक़शे-पा है, मिटाना नहीं अच्छा॥
उठ करके घर से कौन चले, यार के घर तक।
मौत अच्छी है, पर दिलका लगाना नहीं अच्छा॥
धोती भी पहनें जब, कि कोई ग़ैर पिन्हाये।
उमरा को हाथ पैर चलाना नहीं अच्छा॥
सिर भारी चीज़ है, इसे तकलीफ हो तो हो।
पर जीभ बिचारी को सताना नहीं अच्छा॥
फाक़ों से मरिये, पर कोई काम न कीजिये।
दुनिया नहीं अच्छी है, ज़माना नहीं अच्छा॥
सिज़दे से गर बहिश्त मिले, दूर कीजिये।
दोज़ख़ ही सही, सर का झुकाना नहीं अच्छा॥
मिल जाय, हिन्द ख़ाक में, हम काहिलों को क्या।
ऐ 'मीर'! फ़र्स रंज मिटाना नहीं अच्छा॥

आलसी हाथ-पैर नहीं हिला सकते ; इसीसे भाग्यकी आड़ लेते हैं। शुक्राचार्य्य महाराजने बहुत ठीक कहा है:—

२४

धीमन्तो वंद्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत्।
अशक्तं पौरुषं कर्त्तुं क्लीवा दैवमुपासते॥

बुद्धिमान् और माननीय लोग पुरुषार्थको बड़ा मानते हैं, परन्तु नपुंसक—हिजड़े, जो पुरुषार्थ नहीं कर सकते—दैव या प्रारब्धकी उपासना करते हैं।

प्रारब्ध कोई चीज़ न हो, यह बात नहीं। यह जगत् प्रारब्ध और पुरुषार्थमें ही विद्यमान् है। पूर्वजन्मके कर्मको "प्रारब्ध" और इस जन्मके कर्मको "पुरुषार्थ" कहते हैं। एक ही कर्मके दो नाम हैं। प्रारब्ध और पुरुषार्थ,—गाड़ीके दो पहियोंके समान हैं। जिस तरह एक पहियेसे गाड़ी नहीं चल सकती ; उसी तरह बिना पुरुषार्थ—ख़ाली भाग्यसे फलकी प्राप्ति नहीं हो सकती—बिना पुरुषार्थ, प्रारब्ध फल नहीं मिल सकता। जिस तरह कुम्हार मिट्टीके ढेलेसे अपनी इच्छानुसार चीजें बनाता है ; उसी तरह मनुष्य अपने पूर्व-जन्मके किये हुए कर्मोंका फल आप ही प्राप्त करता है। अचानक सामने आये हुए ख़ज़ानेके लेनेके लिये भी, पुरुषार्थकी दरकार होती है। सोते सिंहके मुखमें बिना उद्योग किये ही, हाथी या हिरन घुस नहीं जाते। तिलोंमें तेल होनेपर भी बिना पेरे नहीं निकलता। तात्पर्य्य यह,—बिना पुरुषार्थ ; हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहनेसे, प्रारब्धका फल मिल नहीं सकता।

उद्योगकी सर्वत्र ज़रूरत है। उद्योग करना मनुष्यका धर्म है ; फल मनुष्यके हाथ नहीं ; फल देना विधाताका

काम है। महात्मा कारलाइल कहते हैं—"Let a man do his work, the fruit of it is the care of another than he." मनुष्य परिश्रम करे; फलकी प्राप्ति करना उसके हाथकी बात नहीं, फल देनेवाला दूसरा ही है। नीतिमें लिखा है:—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषाः॥
निपानमिव मण्डूकाः सरः पूर्णमिवाण्डजाः।
सोद्योगं नरमायान्ति विवशाः सर्व सम्पदः॥

उत्साहसम्पन्नम दीर्घसूत्रम्
क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़ सौहृदं च
लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः॥

उद्योगी पुरुषसिंहके पास लक्ष्मी आती है;* "प्रारब्धसे लक्ष्मी आती है"—ऐसी बात कायर लोग कहते हैं। दैव या प्रारब्धको त्यागकर, अपनी सामर्थ्य-भर उद्योग करो; उद्योग करनेपर भी यदि सिद्धि न हो, तो किसका दोष है?

जिस प्रकार कूएँके पासके छोटे जलाशय—पोखरेमें मैंढक और भरे सरोवरमें पक्षी आप-से-आप आते हैं; उसी

* He that labours and perseveres spins gold.—Sp. Pr.

तरह उद्योगी पुरुषके पास सारी सम्पत्तियाँ आप-से-आप आती हैं।

उत्साही, काम करनेमें निरालसी, कामकी विधिको जाननेवाला, किसी प्रकारके व्यसनके वशीभूत न रहनेवाला, शूरवीर, पराया ऐहसान माननेवाला और मित्रतामें दृढ़ रहनेवाला— ऐसे पुरुषके पास लक्ष्मी स्वयं बसनेके लिये आती है।

संसारमें सारे काम लक्ष्मीसे ही होते हैं। और तो क्या— लक्ष्मीसे स्वर्गमें भी सीढ़ी लग जाती है। जिसके पास धन है, वही जीता हुआ है; जिसके पास धन नहीं, वह जीवित रहनेपर भी मृतक है। यह सर्व्वगुण सम्पन्ना लक्ष्मी एकमात्र "उद्योग"से मिलती है; इसलिये "उद्योग" ही मनुष्यका परम बन्धु है। उद्योग-बिना दरिद्र और दुःख पीछा नहीं छोड़ते; अतः मनुष्यको उद्योगसे घनिष्ट मैत्री करनी चाहिये। कहा है—

सहि संकट उद्योग को, लहै सम्पदा प्रानि।
सिन्धु-मथन-दुःख सुर सह्यौ, लह्यौ अमृत ज्यों पानि॥
फल विडाल-सम लहत जन, उद्यम तजिये न भूल।
गाय नहीं जिमि जन्म सों, दूध पीय भो स्थूल॥

हो सचेत श्रम करो सदा तुम
चाहे कुछ भी हो परिणाम।
सदा उद्यमी होकर सीखो
धीरज धरना, करना काम॥

धन कमानेकी तरकीबें ।

——::०::——

मनुष्यको धन प्रायः ६ उपायोंसे मिलता है;—(१) भीख माँगना, (२) राजा या किसी धनीकी चाकरी करना, (३) खेती करना, (४) लेन-देन करना, (५) विद्या पढ़ना, और (६) वाणिज्य-व्यापार करना ।

इन छहों उपायोंसे धन आता है; पर इन सबमें वाणिज्य या व्यापार सर्वश्रेष्ठ है । भिक्षासे कोई धनी नहीं हुआ; पराई चाकरीसे यथेष्ट धन नहीं मिलता; खेतीमें धन है, पर कष्ट बहुत, काम बेशक उत्तम है; ब्याजपर रुपया उधार देनेसे रक़मके मारे जानेका भय रहता है; इसलिये वाणिज्य ही रुपया कमानेका सर्वोत्तम उपाय है । सस्ते भावमें अनाज या कपड़ा प्रभृति ख़रीदकर रख छोड़ने और महँगीके समय बेच देनेसे, सहजमें, अच्छा लाभ हो सकता है । इसके सिवा आजकलके समयमें, गोधन बढ़ानेसे भी अच्छे लाभकी आशा है । थोड़ी पूँजी लगे और खूब नफा हो—एक-एकके सौ-सौ हों, ऐसा व्यापार इत्र, फुलेल, तेल और दवाओंका बेचना है । पर सभी कामोंमें सचाई और ईमान्दारीकी बड़ी जरूरत है । व्यापारी लोग बहुधा कहा करते हैं, कि बिना मिथ्या और कपटके व्यापार चल नहीं सकता, पर हमारी राय इसके ख़िलाफ़ है । ईमान्दारीसे धन आता है और खूब आता है, पर पहले कुछ कठिनाइयोंका सामना जरूर करना पड़ता

हैं। आशा है, हमारे आलसी पाठक, अबसे आलस्यको त्यागकर, कुछ-न-कुछ उद्योग अवश्य करेंगे *।

दोहा—आलस तन में रिपु बड़ो, सब सुख को हर लेत।
त्योंही उद्यम बन्धुसम, किये सकल सुख देत ॥८७॥

87. Idleness is the great enemy of mankind. There is no friend like activity, finding which nobody ever sustains a loss.

छिन्नोऽपिरोहत तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः।
इति विमृशंतः सन्तः संतप्यन्ते न बिप्लुता लोके ॥८८॥

कटा हुआ वृक्ष फिर बढ़कर फैल जाता है, क्षीण हुआ चन्द्रमा भी फिर आहिस्ते-आहिस्ते बढ़कर पूरा हो जाता है, इस बातको समझकर, सन्तपुरुष अपनी विपत्तिमें नहीं घबराते।

संसारकी परिवर्तनशीलता।

——::o::——

यह संसार परिवर्त्तनशील है; गाड़ीके पहियेकी तरह घूमता रहता है। हर क्षण और हर घड़ी इसमें परिवर्त्तन होते रहते हैं। वर्षमें ६ ऋतुएँ बदल जाती हैं। ग्रीष्मके बाद प्रावृट्, प्रावृट्के बाद वर्षा, वर्षाके बाद शरद्, शरद्के बाद हेमन्त, हेमन्तके बाद शिशिर और शिशिरके बाद वसन्त आता है। वसन्त ऋतुमें वृक्षोंके पुराने पत्ते झड़ जाते हैं

* अगर पास पूँजी न हो, तो हमारी 'स्वास्थ्यरक्षा' मँगाकर उसमेंसे हमारी परीक्षित चीज़ें बना, धन पैदा कीजिये। अनेक लोग उसकी बदौलत मालामाल हो रहे हैं।

और नये उनका स्थान ग्रहण करते हैं। सूर्य्यकी भी दिनभरमें तीन अवस्थाएँ बदल जाती हैं। सवेरे ही उसका बचपन, दोपहरके समय जवानी और साँझको उसका बुढ़ापा आकर वह अस्त हो जाता है; इसी तरह मनुष्यकी भी दशाएँ बदलती रहती हैं। समयकी गतिके साथ मनुष्य भी रंग बदलनेको मजबूर होता है। कैसर लोथर प्रथमने ठीक ही कहा है—"Times change and we change with them." समय बदलते हैं और समयके साथ हम भी बदलते हैं। महात्मा गोथेने भी कहा है—"ज़िन्दगीका सम्बन्ध ज़िन्दोंसे है और जो ज़िन्दा हैं, उन्हें ज़िन्दगीकी तब्दीलियोंके लिये तैयार रहना चाहिये।" कभी मनुष्य सुखी होता है, कभी दुःखी; कभी रोगी होता है, कभी नीरोग; कभी धनी या राजा होता है और कभी दर-दरका भिखारी! कभी एकसी अवस्था रह ही नहीं सकती‡। मनुष्यका धर्म है, कि वह हर हालतमें खुश रहे। कहा है—

सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा।
चक्रवत्परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च॥

मनुष्यको चाहिये, सुखके समय सुखको और दुःखके समय दुःखको सेवन करे। दुःख और सुख चाककी तरह घूमा करते हैं।

‡ Empires and nations flourish and decay.
By turns command, and in their turns obey.-Ovid

शेख़ सादीने कहा है—

शगूफ़ा गाह शगुफ़तस्तो गाह ख़ोशीदह ।
दरख़्त वक्त बिरहनस्तो वक्त पोशीदह ॥

संसार परिवर्त्तनशील है। फूल कभी मुर्झाता है और कभी खिलता है। वृक्षके पत्ते कभी गिर जाते हैं और कभी हरे-हरे पत्तोंसे उसकी शोभा हो जाती है।

जिस तरह काटा हुआ वृक्ष फिर हरा-भरा होकर फैल जाता है, क्षीण चन्द्र फिर पूर्ण हो जाता है, सूर्य्य और चन्द्रमा ग्रहण लगनेपर भी, फिर ग्रहणमुक्त हो जाते हैं; पत्रहीन सूखे वृक्ष फिर सपत्र हो जाते हैं, मेघाच्छन्न आकाश फिर निर्मल और निर्मेघ हो जाता है, वर्षा और तूफ़ान सदा नहीं बने रहते; उसी तरह ही मनुष्य भी एक-न-एक दिन विपत्तिसे छुटकारा पाकर सुखी और स्वतन्त्र होता है; इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं।

विपद्से लाभ।

—::o::—

लोग विपद्को जैसी भयावनी समझते हैं, वह वैसी नहीं है। विपद्के फूल कड़वे होते हैं, पर उसके फल मीठे होते हैं। जिसपर ईश्वरकी पूर्ण कृपा होती है, जिसके धैर्य्य और धर्मकी वह परीक्षा करना चाहता है, उसपर ही वह विपद् डालता है। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, महाराजा नल और महाराजा रामचन्द्र तथा पञ्च पाण्डव इसके सच्चे दृष्टान्त हैं*।

दैवी विपत्तियाँ कुछ-न-कुछ उत्तम फल देनेवाली होती हैं, तब क्या मानवीय विपत्तियोंसे लाभ न होते होंगे ? नदीकी बाढ़को लोग बुरी कहते हैं, पर जब वह चली जाती है तब खेतीको उपजाऊ करके छोड़ जाती है। ज्वालामुखी

---

* एक ज़मानेमें हम स्वयं घोर विपत्तिमें फँसे हुए थे। सभी इस जन्ममें हमारा विपत्तिसे छुटकारा पाना असम्भव कहते थे। हम भी ऐसा ही समझते थे। आत्मगोपन किये हम अपने दिन काटते थे; पर शत्रुओंसे हमारा ज्यों-त्यों दिन काटना भी देखा न गया। वे हमारे पीछे हाथ धोकर पड़ गये। श्रीकृष्णकी पूर्ण कृपा और श्रीमान् लार्ड चेम्सफर्डकी दयासे हमारा छुटकारा हो गया। २५ वर्ष बाद असम्भव सम्भव हो गया। आज हम स्वतन्त्र और सुखी हैं। जिस तरह हमें विपत्तिसे निजात मिली, उसी तरह औरोंको भी निश्चय ही मिलेगी। विपत्तिसे हमें बड़े लाभ हुए। विद्याकी वृद्धि हुई, संसारकी असलियतका ज्ञान हुआ, नास्तिकता गई, परमात्मासे प्रीति हुई, देश-भ्रमणका आनन्द आया और संसारका अनुभव हुआ। हम चाहते हैं, हमारे और भाई हमारे अनुभवसे फायदा उठावें और हमारी तरह ग़लतियाँ न करके कष्टसे बचें। अकेले इस लाभको ही हम सबसे बड़ा लाभ समझते हैं। यदि कर्म्मानुसार हमारी बुद्धि वैसी न हो जाती, तो हम या तो हाईकोर्टके वकील होते या सरकारकी सेवा करते होते। पर हमें विपद्‌से जो मज़ा आया और आ रहा है, वह हमें वकालत करने या किसी उच्च पदपर होनेसे हरगिज़ न आता। आरम्भमें, हमें विपद् बहुत बुरी मालूम होती थी; पर अब नतीजा देखकर हमें कहना पड़ता है, कि परमात्माने हमें विपद् देकर हमारा बड़ा उपकार किया। दीनबन्धु, अनाथनाथ भगवान् कृष्णको हमारा बारम्बार धन्यवाद है।

पर्वतोंके फटनेकी बातोंसे ही लोगोंकी आत्माएँ काँप उठती हैं; पर अनेक ज्वालामुखी पहाड़ोंने फटकर अनेक देशोंको धन-दौलतसे निहाल कर दिया है। भूकम्पके नामसे प्राणिमात्र घबरा उठते हैं, पर यह भूचाल भी फायदेसे ख़ाली नहीं। इनके आनेसे कोसों नयी ज़मीन निकल आती है और समुद्र अपनी सीमाके भीतर बना रहता है। इसी तरह मानवी विपत्तियोंसे भी बड़े-बड़े लाभ होते हैं। विपत्ति यद्यपि काल-सर्पसी भयङ्कर मालूम होती है, पर उसके फल काल-सर्पकी मणिसे कम क़ीमती नहीं होते। विपत्ति मित्रोंकी सच्ची कसौटी है। स्त्री, पुत्र, सेवक, सचिव, मित्र और नाते-रिश्ते-दारोंकी सच्ची परीक्षा इसी समय होती है। विपत्तिमें ही बहुधा मनुष्य देश-देशान्तरोंमें भ्रमण करता, भाँति-भाँतिके मनुष्योंकी संगतिसे लाभ उठाता और नाना प्रकारके कला-कौशल और भाषाएँ तथा रीति-रिवाज सीखकर अनुभवी और जहाँदीदा होता है। जिस तरह बादलके बिना बिजलीका प्रकाश नहीं होता; उसी तरह विपत्ति बिना मनुष्यके गुणोंका प्रकाश नहीं होता।* विपत्ति हर पहलूसे अच्छी है, बशर्ते कि वह सदा न रहे।

कहा है—

विपत बरोबर सुख नहीं, जो थोड़े दिन होय।
इष्ट मित्र और बन्धु सब, जान पड़े सब कोय॥

* Disasters are wont to reveal the abilities of a general, good fortune to conceal them.—Hor.

और भी कहा है—

बन्धु स्त्री भृत्यवर्गस्य बुद्धेः सत्त्वस्य चात्मनः।
आपन्निकषपाषाणे नरो जानाति सारताम्॥

कसौटीपर कसकर सर्राफ जिस तरह सोनेके गुण-दोषोंकी परीक्षा करते हैं; उसी तरह विपत्ति-रूपी कसौटीपर पुरुष अपने मित्र, स्त्री, दासगण, बुद्धि, बल और शरीरके सारकी परीक्षा करते हैं।

कहिये पाठक, अब भी क्या आप विपत्तिको बुरी ही कहेंगे? परमात्मा जो कुछ करता है, वह मनुष्यके भलेके लिये ही करता है; पर मनुष्य अपनी बुद्धिकी संकीर्णताके कारण, उसके मतलबको समझ नहीं सकता; इसीसे दुःखमें ईश्वर और भाग्यको दोष देता और हाय-हाय करता है। इस मौक़ेका एक क़िस्सा हमें याद आया है। पाठकोंको उसे सुनाये बिना हमारी तबीयत नहीं मानतीः—

ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है।

——::०::——

एक राजाके मन्त्रीका यह सच्चा विश्वास था, कि "ईश्वर जो कुछ करता है, वह अच्छा ही करता है।" एक दिन राजा और मन्त्री शिकारके लिये एक भयानक बनमें निकल गये। शिकार खेलते समय किसी हथियारसे राजाकी उँगली कट गयी। राजाने मन्त्रीसे कहा—"मन्त्री जी! हमारी उँगली कट गयी।" मन्त्रीने जवाब दिया—"महाराज! ईश्वर जो

करता है, मनुष्यके अच्छेके लिये ही करता है।" राजा इस बातसे चिढ़ गया और मन्त्रीको अपने यहाँसे निकाल दिया। दूसरे दिन राजा फिर शिकारको गया और हिरनके पीछे घोड़ा फैंकता हुआ, एक और राजाके राज्यमें पहुँच गया। वहाँके राजाको बलि देनेके लिये एक मनुष्यकी दरकार थी। लोग इसे बलिदानकी वेदीके पास ले गये। पण्डितोंने इसकी उँगली कटी हुई देखकर, राजासे कहा—"महाराज! यह तो अङ्ग-भङ्ग है; अङ्ग-भङ्गकी बलि दी नहीं जाती।" पण्डितोंके कहनेसे राजाने उस राजाको छोड़ दिया। वह अपने राज्यमें आ गया। आते ही मन्त्रीको बुलाया और उससे कहा—"मन्त्री! तुम्हारी वह बात राई-रत्ती सच है, कि ईश्वर जो कुछ करता है, मनुष्यकी भलाईके लिये ही करता है। अगर मेरी उँगली कट न जाती, तो मेरे प्राण न बचते।" मन्त्रीने कहा—"महाराज! आपने मुझे निकाल दिया, यह भी अच्छा ही हुआ। अगर आप मुझे निकाल न देते, तो मैं आपके साथ वहाँ होता ही। वे लोग आपको तो अङ्ग-भङ्ग समझकर छोड़ देते, पर मेरा तो बलिदान कर ही देते।" राजा मन्त्रीसे बहुत प्रसन्न हुआ और उसे इनाम देकर, फिर उसकी जगहपर बहाल कर दिया।

महात्मा बेकनने कहा है—"कौन जानता है, जिस मृत्युसे लोग इतना डरते और घबराते हैं और जिसे सबसे बड़ी बुराई समझते हैं, वही सबसे बड़ी भलाई करनेवाली

न हो ‡ ? बात ऐसी ही है। मृत्यु हमारे दुःखोंका अन्त करके हमें नया चोला देनेवाली है। मि० वेवर महोदय कहते हैं—'Life is a disease, sleep a palliative, death the radical cure.' जीवन एक व्याधि है, निद्रा उस व्याधिको कम करनेवाली और मृत्यु उसे समूल नाश करनेवाली या जड़से चंगा करनेवाली है। मिस्टर लोवेल महोदय कहते हैं—"ज़िन्दगी, दारोग़ा-जेल है और मौत वह फरिश्ता है, जो जेलख़ानेके कपाट खोलकर हमें आज़ाद करनेके लिये भेजा जाता है।"

जबकि मृत्यु तक हमारे सुखके लिये है, तब विपत्ति प्रभृतिसे सुख क्यों न होगा ? परमात्मा कोई भी काम ऐसा नहीं करता, जिससे मनुष्यका अनिष्ट हो। दुःख है, कि मनुष्य परमात्माकी लीलाओंको समझनेकी सामर्थ्य नहीं रखता। इसीलिये विद्वानोंने कहा है, कि मनुष्य परमात्मापर पूरा भरोसा करके अपने तईं उसपर छोड़ दे और वह जिस हालतमें रक्खे, अपने तईं उसी हालतमें सुखी माने।

राज़ी हूँ उसीमें जिसमें तेरी रज़ा है।

विपत्तिका सामना करनेके लिये, मनुष्यको महात्मा मिल्टनकी यह बात याद रखनी चाहिये,—"मैं परमात्माकी इच्छाके प्रतिकूल आपत्ति नहीं करता। हे ईश्वर ! राज़ी हूँ उसीमें, जिसमें तेरी रज़ा है। मैं अपना काम करता हूँ, तू अपना काम कर।"

‡ Out of a great evil there springs a great good—It. Pr.

महाकवि दाग़ भी कहते हैं:—

आपकी जिस में हो मरज़ी, मुसीबत बेहतर।
आपकी जिसमें खुशी हो, वह मलाल अच्छा है॥

प्लूटार्च नामक एक यूरोपीय विद्वान् कहते हैं—"हर हालतमें प्रसन्न रहना सीखो; यदि तुम्हारे धनसे दूसरोंका उपकार होता हो, तो धनावस्थासे सुख मानो; अगर दरिद्रता हो तो इसलिये सुखी रहो, कि तुमपर हज़ारों तरहकी चिन्ताओंका भार नहीं। अगर तुम अप्रसिद्ध हो, तो इसलिये सुख मानो कि तुम लोगोंके ईर्षा-द्वेषसे बचोगे।"

कर्मफल भोगने ही पड़ते हैं।

——:०:——

सुख और दुःख पूर्वजन्मके पुण्य और पापोंके अवश्यम्भावी कर्म-फल हैं। पूर्वजन्ममें बुरा या भला जैसा कर्म किया जाता है, उसका फल प्रारब्धमें लिख दिया जाता है। उस प्रारब्धके लिखेको कोई मिटा नहीं सकता। नाना प्रकारकी तपस्या और देवताओंकी उपासना करनेसे भी कोई फल नहीं होता। देवता तो देवता—स्वयं शिव और विष्णु भी भाग्यके लिखेको मिटा नहीं सकते। समुद्र चन्द्रमाका पिता है, पर ऐसा बलवान् समुद्र भी अपने पुत्रके कलङ्कको मिटा नहीं सकता। शिवजी महेश्वर हैं, सर्वशक्तिमान हैं, पर वे भी अपने सिरपर रहनेवाले चन्द्रमाको पूर्ण नहीं कर सकते—उसके घटने-बढ़नेके दोषको हरण कर नहीं सकते। शिवजी स्वयं महे-

श्वर हैं, उनके पुत्र गणेश सर्व सिद्धियोंके दाता हैं, उनके दूसरे पुत्र स्वामीकार्तिकेय देवसेनाके सेनापति हैं, स्वयं महाशक्ति उनकी अर्द्धाङ्गिनी हैं, स्वयं धनके स्वामी कुबेर उनके घनिष्ट मित्र हैं; तिसपर भी शिवजीका खप्पर लेकर भीख माँगना नहीं छुटता। मतलब यह, कि कर्मके लिखेको कोई भी मिटा नहीं सकता।

कहा है:—

अवश्यं भाविनो भावा भवन्ति महतामपि।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहि शयनं हरेः॥

जो होनहार है, वह अवश्य होता है; उससे बड़े भी बच नहीं सकते। देखिये, शिवजी नंगे रहते हैं और विष्णु भगवान् महासर्पके ऊपर सोते हैं।

और भी—

अभद्रं भद्रं वा विधिलिखितमुन्मूलयति कः।

बुरा या भला जो कुछ विधाताने लिख दिया है, उसे मिटानेमें कौन समर्थ है ?

वृन्द कविने कहा है—

"निहचै भावीको कहुँ, प्रतीकार जो होय।
तो नलसे हरचन्दसे, विपत न भरते कोय॥"

गाल भाषामें भी एक कहावत है—"The fated will happen." जो भाग्यमें लिखा है, वह होगा।

पूर्वजन्मके कर्म-फलोंसे प्रारब्ध बनता है। प्रारब्धका लिखा अवश्य होता है। उसके भोगनेसे मनुष्य क्या—देवता तक नहीं बच सकते। भोगनेवाला चाहे रो-रोकर और हाय-हाय करके भोगे और चाहे शान्तिसे भोगे ‡।

गिरधर कविराय कहते हैं:—

अवश्यमेव भोक्तव्य है, कृत कर्म शुभाशुभ जोय।
ज्ञानी हँसि करि भोगि है, अज्ञानी भोगे रोय॥
अज्ञानी भोगे रोय, पुनः पुनि मस्तक कूटे।
प्रारब्ध जो होय, बिना भोगे नहिं छूटे॥
कह गिरिधर कविराय, न दीरघ होत रहस्य।
जैसे जैसे भाग पुरुषको फलै अवश्य॥

विपद्में मान-अपमान।

विपद्में मान-अपमान और निन्दा-स्तुतिका ख़याल करना दुःखदायी है। विपद्में तो जो मनुष्य गूँगा, बहरा, अन्धा, लँगड़ा या लूला हो जाता है, अपने तईं पत्थर या मिट्टी समझ लेता है, उसकी विपद् सुखसे कटती है—उसे शारीरिक और मानसिक दोनों ही कष्ट कम होते हैं। किन्तु जो मान-अपमानका ख़याल रखते हैं, उनकी आत्माएँ जल-जलकर ख़ाक हुआ करती हैं—उनको क्षण-भर भी सुखकी नींद नहीं आती। विपद्में बड़े-बड़ोंको नीचा देखना पड़ा है,

‡ The life of man is a journey; a journey that must be travelled; however bad the roads or the accomodation—Goldsmith.

पद-पदपर अपमानित और लांछित होना पड़ा है। साधारण मनुष्य उनके सामने कौन खेतकी मूली है? ऐसा कौन है, जिसे विपद्‌में नीचा देखना नहीं पड़ा?

जिन अर्जुनने अपनी भुजाओंके द्वारा समस्त पृथ्वीको जीत-कर विपुल धन सञ्चय किया था, जिन्होंने सदेह स्वर्गमें जाकर इन्द्रके शत्रु—राक्षसोंका संहार किया था, जिन्होंने कृष्णके साथ खाण्डव वनमें अग्निको तृप्त किया था; जिनके समान धनुर्धर उस समय भूतलपर दूसरा नहीं था, उन्हीं धनञ्जयको, हाथमें स्त्रियोंका-सा कङ्गन और कमरमें कर्द्धनी पहनकर, विराट्‌राजकी कन्याओंको नाचना-गाना सिखाना पड़ा था।

जिन भीमसेनमें अपार बल-वीर्य था, जो बड़े-बड़े वृक्षोंको सहजमें समूल उखाड़-उखाड़कर शत्रुओंपर फैंक मारते थे, जिन्होंने कीचक और बकासुर प्रभृति राक्षसोंको हँसते-हँसते मार डाला था, जिनसे सारे ही कौरव-भाई सशंक रहते थे, उन्ही भीमको, विराट्‌राजके रसोईघरमें, रसोइयेका काम करके, अपने दिनोंको धक्का देना पड़ा था। जब विराट्‌के गर्वित कुटुम्बी उन्हें "भो रसोइया" कहकर पुकारते थे, तब द्रौपदीका आत्मा जलकर भस्म हो जाता था। पर कर्मफल अवश्य भोगने होंगे, यह समझकर पाण्डव सब सहते थे।

जिन धर्मराज युधिष्ठिरके अर्जुन-भीम और नकुल-सहदेव सरीखे त्रिभुवन-बिजयी भाई मौजूद थे, जिनके पाञ्चालपति

ध्रष्टद्युम्न जैसे महा बलवान योद्धा नातेदार थे, जिनके ऊपर स्वयं त्रिलोकीनाथ कृष्णकी पूर्ण कृपा थी, उन धर्मराजको भी अपना तेज, बल और उत्साह छिपाकर बनवासमें दिन काटने पड़े और विराट्राजकी सभामें राजाको जूआ खिलाना पड़ा! एकबार विराट्ने क्रोधमें आकर, उनके पासा फैंक मारा। उससे रक्तकी धार बह निकली। एक सार्व्वभौम चक्रवर्ती राजाका यह अपमान क्या कम था? पर बेचारोंने समय देखकर सब सहा। क्या करते? विधाता वाम था। प्रारब्धमें यह जिल्लत भी लिखी थी।

इस जगत्में जो अनुपम रूपवती थीं, जिनका यौवन स्थिर था, जो गुणोंकी आगार थीं, जो महाबली पाञ्चालस्वामी ध्रष्टद्युम्नकी सगी बहिन थीं, जो जगत्-विजयी पाण्डवोंकी धर्मपत्नी और पटरानी थीं, जो त्रिभुवनपति कृष्णकी प्यारी सखी थीं, उन्हीं कृष्णा या द्रौपदीको, महारानी होनेपर भी, मत्स्यराजके रनवासमें, सैरन्ध्री—नायनका काम करना पड़ा। रनवासकी गर्वीली स्त्रियां जब उन्हें सैरन्ध्री—नायन कहकर पुकारती होंगी; तब महारानी द्रौपदीको क्या कष्ट न होता होगा? उनका दिल इस तरह अपमानित होनेसे क्या जल-जलकर छार-खार न होता होगा? पर वे बुद्धिमती थीं; जानती थीं, कि पूर्व-जन्मके कर्मफल अवश्य ही भोगने होंगे; इसलिये सब सहती थीं।

जो महाराजा नल अस्त्र-विद्या और पाक-क्रियामें जगत्‌में अद्वितीय थे, जो मन्त्र-बलसे बिना आगके आग जला लेते थे, जिनके अनुपम गुणोंके कारण देवता भी उनसे डाह रखते थे,—उनको भी वन-वनकी ख़ाक छाननी पड़ी ; और अपनी प्राणप्यारी, अनुपम सुन्दरी, त्रिलोक-मोहिनी सहधर्म्मिणी महारानी दमयन्तीको वनमें अकेली सोती छोड़कर, अयोध्याके राजा ऋतुपर्णकी कोचवानगीरी करके दिन काटने पड़े।

जिन्होंने श्रेष्ठ सूर्य्यवंशमें जन्म लिया था, जिनके पिता महेन्द्र-मित्र महाराजा दशरथ थे, जिनके गुरु स्वयं महामुनि वशिष्ठजी जैसे महात्मा थे, जिनके श्वसुर जगत्‌के ज्ञानियोंमें अग्रगण्य महाराज विदेह—जनक थे, जिनकी सहधर्म्मिणी स्वयं जनकतनया जानकीजी थीं, जो स्वयं विष्णु भगवान्‌के अवतार थे,—उन भगवान् रामचन्द्रजीको भी अपनी प्राण-प्यारी लक्ष्मीस्वरूपा महासुकुमारी सीताको साथ लेकर वन-वन डोलना पड़ा।

दिल्लीश्वर शाहन्शाह सम्राट् हुमायूँको शेरशाहसे पराजित होनेपर, सिन्धके निर्जल और निर्जन रेगिस्तानोंमें अपनी गर्भवती बेगमको साथ लिये-लिये महाकष्ट भोगने पड़े।

बादशाहोंके बादशाह, यूरोप-विजयी महावीर नेपोलियनको भी अनेक बार कारागार प्रभृतिके सैकड़ों असहनीय कष्ट झेलने पड़े।

भूतपूर्व जर्मन-सम्राट् कैसर विलियम, जिनके समान कूटनीतिज्ञ और राजनीतिकी बारीकियोंको जाननेवाला इस भूतलपर, इस ज़मानेमें, दूसरा समझा नहीं जाता, जिन्होंने अपनी राजनीतिकी चालोंसे अच्छे-अच्छे चतुर राजनीतिज्ञोंकी बुद्धिके दिवाले निकलवा दिये, जिन्होंने अपनी शक्ति और बुद्धिसे चार साल तक पृथ्वीके प्रायः सभी नरपालोंसे लोहा लिया और पृथ्वीको अपनी उँगलीपर नचाया, जिनकी युद्धचातुरीके कारण पृथ्वीके कई सर्वश्रेष्ठ महाप्रतापी राज्योंको अपने अस्तित्व तकमें सन्देह हो गया था, उन्हीं महाबली महापराक्रमी अद्वितीय राजनीतिज्ञ सम्राट्के कर्मोंमें क्या लिखा था, सो पाँच साल पहले कौन जानता था ? जिनकी हुङ्कारसे महीके प्रायः सभी महीपाल काँप उठते थे, आज वे ही सम्राट्—अपने जीतेजी भूतपूर्व सम्राट् कहलाते हुए, एक छोटेसे राज्य हॉलेण्डकी शरणमें रहकर अपना समय काट रहे हैं। *

बहुत कहनेसे क्या ? कर्मफल सभीको भोगने पड़ते हैं। कोई भी बच नहीं सकता। बुद्धिमानोंको ऐसे-ऐसे महात्मा और महाबलियोंकी विपद्-कहानियाँ याद करके, अपने चित्तको

* जगत जानता है, कि भू० पू० जर्मन-सम्राट् कैसर विलियम अतिका अभिमान करने और अधर्मका पक्ष लेनेसे ही हारे ; पर अदृष्टवादी यही कहेंगे, कि उनके पूर्वजन्मके पुण्य क्षीण होगये थे, इसीसे हारे और दुःख भोग रहे हैं।

शान्त रखना चाहिये और जिस राहसे प्राचीन कालके महापुरुष गये हैं, उसी राहपर चलकर, उनके पदचिह्नोंका सहारा लेकर, उनको आदर्श मानकर, अपने दुःखके दिन काटने चाहियें। प्राचीन कालके महापुरुषोंके पदचिह्नोंका अनुसरण करनेसे विपद् उसी तरह सहजमें कट जाती है; जिस तरह रेगिस्तानोंमें अपनेसे पहले राह तय करनेवालोंके पद-चिह्नोंको देख-देखकर चलनेसे यात्री अपनी-अपनी मञ्जिल मक़सूदपर आरामसे पहुँच जाते हैं*। किसी कविने कहा है:—

सज्जन-चरित्र सिखाते हम भी
कर सकते हैं निज उज्ज्वल।
जग से जाते समय रेत पर
छोड़ें चरण-चिह्न निर्मल॥
चरण-चिह्न ये देख कदाचित्
उत्साहित हों वे भाई।
भवसागर की चट्टानों पर
नौका जिनकी टकराई॥

विपद् अकेली नहीं आती।

——::०::——

सर्व्वस्व नाश हो जाना या छिन जाना एक विपद् है। राजापर दूसरे राजाका चढ़ आना एक विपद् है। रोज़-

* A noble example makes difficult enterprises easy.—Goethe.

गारमें एकदमसे घाटा लग जाना और उस समय धनका घरमें अभाव होना और बाज़ारसे उधार न मिलना एक घोर विपद् है।† स्त्री-पुत्र प्रभृति प्यारोंका मर जाना या किसी तरह वियोग हो जाना भी एक विपद् है। इसी तरह मनुष्यपर अनेक प्रकारकी मुसीबतें आया करती हैं। एक विपद्के आते ही, फिर और भी अनेक उपद्रव होने लगते हैं। इधर रोज़गारमें घाटा लगता है, उधर साहूकार नालिश करते हैं, साथ ही घरमें आग लग जाती है और बाल-बच्चे बीमार हो जाते हैं इत्यादि। अँगरेज़ीमें एक कहावत है—"Misfortunes never come singly." विपत्तियाँ अकेली नहीं आया करतीं। नीति-शास्त्रमें भी कहा है—

क्षते प्रहारा विपतन्त्यभीक्ष्णा,
अन्नक्षये वर्द्धति जठराग्निः॥
आपत्सु वैराणि समुद्भवन्ति,
वामे विधौ सर्वमिदं नराणां॥

घावमें बारम्बार चोट लगती है; अन्न न होनेपर भूख बढ़ जाती है; आफ़तमें बैरी बढ़ जाते हैं; विधाताके प्रतिकूल होनेसे मनुष्योंको ये सब होते हैं।

---

† Poverty is the greatest calamity, riches the highest good.—"Goethe"

‡ इटालीमें एक कहावत है—"Blessed is the misfortune that comes alone." स्पेनमें भी एक कहावत है—"Welcome, misfortune, if thou comest alone."

विपद्में कोई संगी नहीं ।

——::o::——

विपद्में भाई-बन्धु भाईबन्दीका नाता तोड़ देते हैं। अपने नातेदारको नातेदार कहनेमें भी उन्हें कहीं लज्जा और कहीं भय होता है। अपने मुसीबतज़दा रिश्तेदारको दो चार दिनके लिये अपने घर ठहराना भी वे बुरा समझते हैं और काम पड़नेसे, जेल होता हो तो भी, फाँसी होती हो तो भी, पैसा होते हुए भी, पैसेसे सहायता नहीं देते। रात-दिन पास बैठनेवाले, हर तरह गुलछर्रे उड़ानेवाले, विपद्में साथ रहनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा करनेवाले और समयपर जान तक दे देनेकी डींग मारनेवाले दुर्दिनमें मुँहसे भी नहीं बोलते‡। बोलते हैं, तो ऐसी बातें कहते हैं, जिनसे दुखियाके दिलमें हज़ारों बिच्छुओंके डङ्क मारनेकी सी घोर वेदना होने लगती है। गँवार और निर्बुद्धि लोग चतुरचूड़ामणिको भी गँवार और बे-अक्ल कहने लगते हैं—गधे घोड़ोंके लात मारने लगते हैं। और तो क्या—बाज़-बाज़ पिता भी पुत्रसे वैरभाव रखने लगते हैं; उसके दुःखोंपर हँसते हैं और उसका अनिष्ट चिन्तन करते हैं। बाज़-बाज़ अग्निकी साक्षी देकर, वेदमन्त्रों द्वारा परिणीता, सुख-दुःखमें हिस्सा बँटानेवाली धर्मपत्नियाँ तक विपद्में फँसे

‡ So long as you are prosperous you will reckon many friends, if fortune frowns on you, you will be alone.—Ovid.

हुए पतियोंसे नफ़रत करने लगती हैं और वाक्यवाणोंसे उनके हृदयको चलनी बना डालती हैं। बहुत कहाँ तक कहें? हर समय जी हुजूर, जी हाँ, जो आज्ञा सरकार, कहनेवाले, ज़रा भृकुटी टेढ़ी करनेसे काँप उठनेवाले नौकर और दास-दासी तक विपद्ग्रस्तके शत्रु हो जाते हैं। स्वामीकी विपद्की ख़बर पाते ही, सब एक हो जाते हैं। रात-दिन सिर जोड़-जोड़कर मालिकके छिद्र ढूँढ़ा करते हैं और स्वामीके शत्रुओंको स्वामीके अनिष्ट साधनमें साहाय्य किया करते हैं। किसीने बहुत ही ठीक कहा है—"So many servants, so many enemies" जितने नौकर, उतने दुश्मन। बात एकदम सच है। हम कई बार स्वयं ऐसा भोग चुके हैं। नौकर-चाकर सबसे बुरे शत्रु होते हैं। इन्हें नमकका ज़रा भी ख़याल नहीं आता। और शत्रुओंको चाहे दया आ जाय, पर इन्हें दया नहीं आती। ये लोग स्वामीके सभी पुराने उपकारोंपर पानी फेरकर स्वामीके शत्रुओंमें जा मिलते हैं। उन्हें अपने स्वामीकी सच्ची झूठी निन्दायें सुना-सुनाकर रिझाते हैं और फिर अपने स्वामीका महासंकटमें परित्याग करके शत्रुओंमेंसे किसीके यहाँ लग जाते हैं। हाय! विपद्में सिवा ईश्वरके कोई भी साथी नहीं रहता। अपने तनके कपड़े भी अपने दुश्मन हो जाते हैं। महाकवि दाग़ने कहा है और राई-रत्ती सच कहा है:—

होता नहीं है कोई, बुरे वक्त में शरीक।
पत्ते भी भागते हैं, ख़िज़ाँ में शजरसे दूर॥

पुतलियाँ तक भी तो फिर जाती हैं, देखो दमनिज़ा।
वक़्त पड़ता है, तो सब आँख चुरा जाते हैं॥

मनुष्य जब सब तरहसे निराश हो जाता है, आँख पसारकर देखनेपर जब उसे कोई भी मददगार नज़र नहीं आता, तब उसे दीनबन्धु, दयासिन्धु, अनाथनाथ भगवान्‌की याद आती है। ज्योंही वह आर्त्त होकर प्रभुको पुकारता है, आशुतोष भगवान्‌का आसन तत्काल हिलने लगता है। वे संकटभञ्जन भक्तमनरञ्जन, फौरन ही नंगे पैर भक्तको विपद्‌से बचानेके लिये दौड़ते और उसकी रक्षा करते हैं ‡। नीचेकी ग़ज़लमें इसका चित्र खूब खींचा गया है:—

ग़ज़ल।

दुःख दूर कर हमारा, संसार के रचैया।
जल्दी से दो सहारा, मँझधार में है नैया॥ १॥
तुम बिना कोई हमारा, रक्षक नहीं यहाँ पर।
ढूंढ़ा जहान सारा, तुमसा नहीं रखैया॥ २॥
दुनिया में खूब देखा, आँखें पसार करके।
साथी नहीं हमारा, मा बाप और भैया॥ ३॥
सुखके हैं सब सँगाती, दुनिया के यार सारे।
तेरा ही नाम प्यारा, दुःख दर्द से बचैया॥ ४॥

‡ Ask, and it shall be given you; seek, and you shall find; knock, and it shall be opened to you.—Bible.

दुनियामें फँसके हमको, हाँसिल हुआ न कुछ फल।
तेरे बिना हमारा, कोई नहीं सुनैया ॥ ५ ॥
चारों तरफ़ से हम पर, ग़म की घटा है छाई।
सुख का करो उजेरा, परकाश के करैया ॥ ६ ॥
अच्छा बुरा है जैसा, राजी में राम रहता।
चेरा है यह तुम्हारा, सुध लेउ सुध लिवैया ॥ ७ ॥

विपद् आनेसे पहले ही घबराना ठीक नहीं।

——::०::——

बहुतसे निर्बुद्धि विपद्की आशङ्का-ही-आशङ्कामें चिन्ता-ग्रस्त होकर अपने रूप, बल और बुद्धिको खो देते हैं; असमयमें ही हमारी तरह बालोंको पका लेते ‡ हैं और चालीस बरसकी उम्रमें सत्तर वर्षकेसे हो जाते हैं। निर्बुद्धि अपनी निर्बुद्धिताका फल आप ही नहीं भोगते; अपने नन्हें-नन्हें बच्चों और अपनी स्त्री तकको भुगाते हैं। उनके हर समय मनहूसकीसी सूरत बनाये रहनेसे, उनकी स्त्री और छोटे बच्चे भी चिन्तामग्न या उदास रहनेसे पीले पड़ जाते हैं।

कहते हैं,—चिन्तासे चिता भली। चिता एक बार ही मनुष्यको जला-बलाकर ख़ाक कर देती है, पर चिन्ता पिशाचिन बड़े-बड़े दुःख देकर बुरी तरहसे जलाती है। जिसपर चिन्ताकी कृपा होती है, उसका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता और आयु भी

‡ Care brings grey hairs.

कम हो जाती है। किसीने सच कहा है—"Anxiety is the poison of life." चिन्ता जीवन का विष है §। अतः भूलकर भी चिन्ता न करनी चाहिये। विपद् आये पहले, तूम्बीका तूफ़ान करना महामूर्खता है; क्योंकि अनेक बार जिस विपद्की आशंका-ही-आशंकामें लोग उसके आनेके पहले ही पूरे हो लेते हैं; और वह आती भी है और नहीं भी आती है। इसी-लिये किसी विद्वान्ने ठीक ही कहा है—Never trouble yourself with troubles, till trouble troubles you. जब तक दुःख न आवे, तब तक अपने तईं दुःखसे दुःखी न करो।

इसमें दोनों ही तरह हानि है। अगर विपद् न आई, तो शरीरका ख़ून-मांस जलाना, घरवालोंको कष्ट देना और धन्धे-रोज़गारको सत्यानाशमें मिलाना वृथा ही हुआ। मान लो; विपद् आई; तो आपका पहलेसे ही अपने बुद्धि, बल, साहस प्रभृतिको क्षय कर लेना भला न हुआ; क्योंकि विपद्में मनुष्य इनके बलसे ही तो छुटकारा पाता है। जो हर हालतमें हँसता रहता है, उसके बल और बुद्धि नष्ट नहीं होते—उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता है ‡। यदि दैवात् विपद् आ भी जाती है,

---

§ Care's an enemy to life.—Twelfth Night, i, 3.

‡ Cheerfulness is health; the opposite melancholy, is disease.—Haliburton.

Cheerfulness is the very flower of health;—Schopenhaur.

तो वह आसानीसे उसके पार हो जाता है। इसलिये दुःखमें भी खुश ही रहना अच्छा है। महाकवि दाग़ने ख़ूब कहा है—

दिल दे तो इस मिज़ाज का पर्वरदिगार दे।
जो रंज की घड़ी भी ख़ुशी में गुज़ार दे॥

विपद्में क्या करना चाहिये ?

——::०::——

जब तक विपद् न आवे, उससे घबराना न चाहिये। हाँ, उसका ख़याल ज़रूर रखना चाहिये। जब विपद् आजाय, तब उसके नाशका यथोचित उपाय करना चाहिये। जो विपद्में फँसकर मोहसे केवल रोता है, हर समय चिन्तित और शोकाकुल रहता है, उसका मन बीमार हो जाता है ‖। मनके बीमार होनेसे, हाथ-पैरोंका बल निकल जाता है; क्योंकि बलका सारा दारमदार मनपर ही है; इसलिये विपद्में रोना, घबराना और चिन्तित रहना, अपनी विपद्को बढ़ाना है। घबरानेवालेकी विपद्का अन्त नहीं आता। विपद्में मनुष्यको "विचार" बचाता है; इसलिये विपद्में विचारसे काम लेना ही चतुराई है। अविचारवानोंको विपद् पद-पदपर सताती है। पण्डितोंने कहा है:—

‖ Cheerfulness is the best promoter of health and is as friendly to the mind as to the body.—Addison.

केवलं व्यसनस्योक्तं भेषजं नयपण्डितैः।
तस्योच्छेद समारम्भो विषाद परिवर्जनम्॥

नीतिकुशल पण्डितोंने विपद्की एक ही मुख्य औषधि कही है—"दुःखके नाश करनेका उपाय करना और विषाद् त्यागना।"

विपद्में धैर्य्य ही सच्चा रक्षक है।

——::०::——

विपद्में अच्छे-अच्छे साहसिकोंके साहसके दिवाले हो जाते हैं; बड़े-बड़े बहादुर घबरा उठते हैं। पर जो विपद्में घबरा जाते हैं और सब्रको हाथसे छोड़ देते हैं, वे शीघ्र ही मारे जाते हैं। विपद्में न घबरानेवाले और धैर्य्यावलम्बन करनेवाले बहुधा बच जाते हैं§। इसलिये विपद्में धैर्य्यको हरगिज़ न त्यागना चाहिये। कहा है—

त्याज्यं न धैर्य्यं बिधुरेऽपि दैवे,
धैर्य्यात् कदाचित् स्थितिमाप्नुयात्सः।
याते समुद्रेऽपि हि पोतभंगे,
सांयात्रिको वाञ्छति कर्म्म एव॥

§ The man who in wavering times is inclined to be wavering only increases the evil, and spreads it wider and wider but the man of firm decision fashions the universe.—Goethe.

Whoso despises death escapes it, while it overtakes him who is afraid of it.—Curt.

दैवके नाराज़ होनेपर भी धीरज न छोड़ना चाहिये; क्योंकि धीरजसे कदाचित् स्थिति सुधर जाय; जहाज़के डूबनेपर भी, पोत-वणिक् उद्यम करनेकी ही इच्छा करता है।

सारांश—विपद्में घबराओ मत, धीरज रक्खो; चित्तको चिन्ताओंसे शुद्ध करके, शीतल दिमाग़से विपद्से छुटकारा पानेके उपाय सोचो। परमात्माकी कृपा हुई, पुण्यबल हुआ; तो निश्चय ही, आपकी बुद्धि द्वारा ही, घोर विपद्से आपकी मुक्ति हो जायगी। विपत्तिमें बुद्धि ही बचाती है,—इसपर हमें एक क़िस्सा याद आया है। सुनियेः—

एक दिन एक बन्दर यमुना नदीमें तैर रहा था। किसी घड़ियालने उसका पैर पकड़ लिया। बन्दरने बहुत कुछ कोशिश की, पर घड़ियालने बन्दरका पैर न छोड़ा। इतनेमें एक बन्दर किनारेसे बोला—"अरे क्या हुआ? क्यों रह गया?" उसने जवाब दिया—"यार! क्या बतावें, घड़ियालने एक लकड़ी अपने मुँहमें दबा रक्खी है और समझता है कि, उसको हाथसे पकड़ रक्खा है।" यह सुनते ही घड़ियालने बन्दरका पैर छोड़ दिया। बन्दरकी जान बच गई। अगर बन्दर घबड़ा जाता और होश भूल जाता, तो क्या बचता? विपत्तिमें जिसकी बुद्धि नष्ट नहीं होती, वह निश्चय ही बच जाता है। कहा है—

उत्पन्नेषु विपत्तेषु बुद्धिर्यस्य न हीयते।
स एव दुर्गं तरति, जलस्थो वानरो यथा॥

दोहा—छीन पत्र पल्लवित तरु, छीन चन्द्र बढ़वार ।
यह लखि सज्जन दुःखहू, पाय न लहहिं विकार ॥८८॥

88. A tree being pruned expands (anew). The moon after having lost her brightness is sure to regain it. Considering this the holy men do not feel much sorrow when they are beset by calamities in this world.

नेता यस्य वृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः किल हरेरैरावतो वारणः ॥
इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलिभिद्भग्नः परैः संगरे
तद्युक्तं वरमेव दैवशरणं धिग्धिग्वृथा पौरुषम् ॥८९

जिसके वृहस्पतिके समान मंत्री, वज्र-सदृश शस्त्र, देवताओंकी सेना, स्वर्ग-जैसा क़िला, ऐरावत-जैसा वाहन और स्वयं विष्णु भगवान्की जिसपर कृपा है—ऐसे अनुपम ऐश्वर्य्य-वाला इन्द्र भी शत्रुओंसे युद्धमें हारता ही रहा; इससे सिद्ध होता है, कि पुरुषार्थ वृथा और धिक्कार-योग्य है । एकमात्र दैव ही सबकी शरण है ।

मतलब यही है, कि प्रारब्ध या दैवके मुक़ाबलेमें पुरुषार्थ कोई चीज़ नहीं । जिस इन्द्रका इतना वैभव है और जिसके सिरपर स्वयं जगदीश्वरका हाथ है, वह इन्द्र भी युद्धमें सदा हारता ही रहा—इस घटनाको देखकर "पुरुषार्थ"को तुच्छ और दैवको सर्वोपरि मानना ही पड़ता है । और भी दृष्टान्त लीजिये;—

दुर्गस्त्रिकूटः परिखा समुद्रो,
रक्षांसि योधा धनदाच्चवित्तम्।
शास्त्रञ्च यस्योशनसा प्रणीतं,
स रावणो दैववशाद्विपन्नः॥

जिसका क़िला त्रिकूट पर्वत, समुद्र खाई, राक्षस योद्धा, कुवेरसे धनकी प्राप्ति और जिसके यहाँ शुक्राचार्य्य-प्रणीत शास्त्र था, वह रावण भी दैववश नष्ट हो गया।

शुक्रनीतिमें लिखा है—

कालानुकूल्यं विस्पष्टं राघवस्यार्जुनस्य च।
अनुकूले यदा दैवे क्रियाल्पा सुफला भवेत्॥
महती सत्क्रिया अनिष्टफलास्यात्प्रतिकूलके।
बलिर्दानेन संबद्धो हरिश्चन्द्रस्तथैव च॥

रामचन्द्र और अर्जुनकी काल-सम्बन्धी अनुकूलता संसार-प्रसिद्ध है। जब दैव अनुकूल होता है, तब स्वल्प क्रिया भी सफल होती है, किन्तु जब प्रारब्ध प्रतिकूल होता है, तब बड़े भारी सत्कर्मका फल भी अनिष्ट ही होता है। देखिये, बलि और राजा हरिश्चन्द्र दान करनेसे भी बन्धनमें पड़े।

जो भीष्म वसुओंके अवतार थे, जो भीष्म देवताओंसे भी अजेय थे, जिन भीष्मने क्षत्रिय-कुलनाशक परशुरामजीको भी युद्धमें नीचा दिखाया था, जिनके जोड़का योधा उस समय पृथ्वीपर दूसरा न था,—उन्हीं भीष्मकी, गोहरणके समय,

विराट् नगरीमें अर्जुन द्वारा पराजय हुई। जिस अर्जुनने स्वर्गमें जाकर इन्द्रका कार्य्य साधन किया, जिस अर्जुनने अपने बाहुवलसे पृथ्वीके समस्त राजाओंको पराजित करके धनदण्ड लिया, जिस अर्जुनने भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य्यके भी छक्के छुड़ा दिये, जिस अर्जुनने महातेजस्वी सूर्य्यपुत्र कर्णको युद्धक्षेत्रमें परास्त कर दिया, जिस अर्जुनने गन्धर्व्वोंको भी अपनी युद्ध-कला-कुशलतासे नीचा दिखा दिया, वही अर्जुन, प्रभासतीर्थमें, यादव-स्त्रियोंकी भीलोंसे रक्षा न कर सका! क्या यह कम आश्चर्यकी बात है? परमात्माकी विचित्र गति है! उस लीलामयकी लीलाओंको समझना मनुष्यकी सामर्थ्यके बाहर है। सूरदासजीने क्या खूब कहा है:—

भजन।

दयानिधि! तोरी गति लखि ना परे॥ टेक॥
गुरु वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी, रुचि रुचि लगन धरे।
सीता-हरण मरण दशरथ को, विपति में विपति परे॥ १॥
एक गऊ जो देत विप्र कों, सो सुरलोक तरे।
कोटि गऊ राजा नृग दीनीं, सो भव-कूप परे॥ २॥
पिता-वचन पलटे सो पापी, सो प्रहलाद करे।
जिनकी रक्षा कारण तुम प्रभु, नरसिंह-रूप धरे॥ ३॥
पाण्डवजन के आप सारथी, तिन पर विपत परे।
दुर्योधन को मान घटायो, यदुकुल नाश करे॥ ४॥

तीन लोक इस विपत के वश में, विपता वश ना परे।
सूरदास या को सोच न कीजे, होनी तो होके रहे॥५॥

सारांश यही है कि, दैवकी अनुकूलतासे न-कुछ आदमी भी सिद्धि प्राप्त करता है और दैवकी प्रतिकूलतासे महाबली और महाबुद्धिमान भी पराजित होते और मुँहकी खाते हैं। दैवकी कृपा होनेसे बिगड़े काम बन जाते हैं और उसकी अकृपा होनेसे बने हुए काम भी बिगड़ जाते हैं। दैव नामर्दको मर्द और मर्दको नामर्द, मूर्खको बुद्धिमान और बुद्धिमानको मूर्ख, धनीको निर्धन और निर्धनको धनी बना देता है। सारी शक्तियाँ दैवके ही हाथमें हैं; इसलिये दैव ही मुख्य है। गिरिधर कविराय भी यही कहते हैं :—

अदृष्ट समान बलिष्ट नहिं, देख्यौ जगमें मीत।
करै भगोड़ा शूर को, पुनि कायर की जीत॥
पुनि कायर की जीत, धनी को करै है कंगला।
निर्धन को करै धनी, शहर करि डारे जंगला॥
कहैं गिरिधर कविराय, इष्ट कों करे अनिष्ट।
पुनि अनिष्ट को इष्ट, ऐसो कौन अदृष्ट॥

छप्पय—सुरगुरु सेनाधीश सुरन की सेना जाके।
शस्त्र हाथ लिये वज्र स्वर्ग सो दृढ़ गढ़ ताके॥
ऐरावत-असवार प्रभू की परम अनुग्रह।
ऐसी सम्पति सौज सहित सोहत बासव यह॥

सो युद्ध माहिं दानवनसों लहत पराजय खोय पाति।
शोभा समाज सबही वृथा, सबसों अद्भुत दैवगाति ॥८६॥

89. The god Indra, who has Vrihaspati for his councillor, a thunderbolt for his weapon, the other gods for his soldiers, the paradise for his fortress, Vishnu for his ally and the Airavata elephant to ride upon, is (often) defeated in battle by his powerful enemies (the Asuras) despite all this power and strength. (This proves that) one should take shelter in Fate alone. (Dependance on) one's own energies is worthless.

कर्मायत्तं फलं पुंसां, बुद्धि कर्मानुसारिणी।
तथापि सुधिया भाव्यं, सुविचार्यैव कुर्वता ॥९०॥

यद्यपि मनुष्योंको कर्मानुसार फल मिलते हैं और बुद्धि भी कर्मानुसार हो जाती है; तथापि बुद्धिमानोंको ख़ूब सोच-विचार कर ही काम करने चाहियें।

बुद्धि कर्मानुसार कैसे हो जाती है ?

——::o::——

मनुष्योंको पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार ही बुरे या भले फल मिलते हैं। जैसे फल मिलनेवाले होते हैं, वैसी ही होनहार होती है; जैसी होनी होती है, वैसी ही मनुष्यकी बुद्धि हो जाती है। अगर भली होनी होती है, तो बुद्धि भली हो जाती है और अगर बुरी होनी होती है, तो बुद्धि बुरी हो

जाती है। होनहारके आगे बड़े-से-बड़े बुद्धिमानोंकी नहीं चलती। वृन्द कवि महाशय कहते हैं:—

जैसी हो होतव्यता, तैसी उपजे बुद्ध।
होनहार हिरदे बसे, बिसर जाय सब सुद्ध॥
जैसी हो भवितव्यता, तैसी बुद्धि प्रकाश।
सीता हरवे तें भयो, रावण-कुल को नाश॥
सब की समै विनाश में, उपजत मति बिपरीत।
रघुपति मारयो लंकपति, जो हर लेगयो सीत॥
मति फिर जाय विपत्ति में, राव रंक इक रीत।
हेमहिरन पाछे गये, राम गँवाई सीत॥

जब मनुष्यकी होनहार बुरी होती है, जब उसपर विपद् आनेवाली होती है; तब वह जान-बूझकर ऐसे काम करता है, जिससे विपद् न आती हो तो आवे। मनुष्य जानता है, कि असुक वनमें रातके समय अकेला जाऊँगा, तो डाकुओं-द्वारा मारा जाऊँगा। और लोग भी यही बात समझाते हैं; उसे जानेको मना करते हैं, पर वह होनीके वश, अपने अन्तःकरणकी और अपने मित्रोंकी न मानकर जाता है और मारा जाता है। रावण नीतिका अद्वितीय विद्वान् था। क्या वह जानता न था, कि परस्त्री-हरणका परिणाम अच्छा नहीं? जानता तो था, पर होनी उसके सिरपर सवार थी, इससे उसकी बुद्धिमें सीताको चुपचाप हर ले जाना ही ठीक जँचता था। राजा नल क्या जूएकी बुराइयोंको न जानते थे?

रामचन्द्र क्या नहीं जानते थे कि, सोनेका हिरन नहीं होता ? पर वे उसके पीछे सीताको छोड़कर भागे। लक्ष्मण और सीता क्या न जानते थे, कि रामको मारनेवाला त्रिलोकीमें नहीं ? फिर भी; लक्ष्मण सीताको कुटियामें सूनी छोड़ भागे। इन बातोंसे साफ़ मालूम होता है, कि मनुष्य प्रारब्धके वश हो, जान-बूझकर भी, बुरे काम करता है। नीतिमें कहा है—

जानन्नपि नरो दैवात, प्रकरोति विगर्हितम्।
कर्म किं कस्यचिल्लोके गर्हितं रोचते कथम्॥

असंभवं हेममृगस्य जन्म
तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्न विपत्तिकाले
धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति॥

मनुष्य जानकर भी, प्रारब्धके वश हो, निन्दित कर्म करता है; नहीं तो संसारमें निन्दित कर्म किसे अच्छा लगता है ?

सोनेके हिरनका होना असम्भव है; तो भी रामचन्द्रजीको माया-मृगका लालच आ गया। बहुधा, विपत्तिके समय, बुद्धिमानोंकी बुद्धि भी मलीन हो जाती है।

इन दृष्टान्तोंसे अच्छी तरह समझमें आ जाता है, कि कर्मफलोंके अनुसार जैसी होनहार होती है, वैसी ही बुद्धि हो जाती है। विनाशकाल उपस्थित होनेपर बुद्धिमान्-से-बुद्धिमानकी बुद्धि मारी जाती है। अगर यह बात न होती,

तो पण्डित-शिरोमणि रावण और विष्णुके अवतार जगदीश रामचन्द्रजी क्यों विपद् भोगते ? जब स्वयं राम और रावणसे ही भूलें हुईं; तब और मनुष्योंकी क्या गिनती है ?

फिर भी विचारकर काम करना चाहिये।

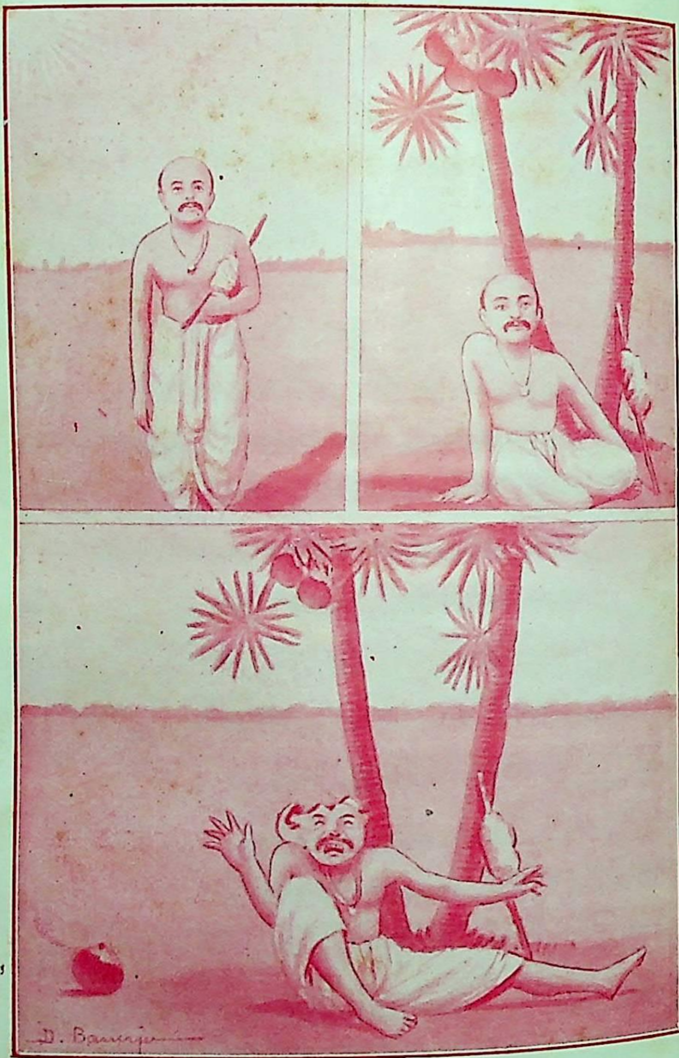
——:०:——

कर्म-फलोंके अनुसार बुद्धि हो जाती है, इसमें ज़रा भी शक नहीं; फिर भी नीतिज्ञ पण्डित विचारकर काम करनेकी सलाह देते हैं। विचारपूर्व्वक काम करनेसे मनुष्य दोषका भागी नहीं होता और स्वयं उसके दिलमें खटक नहीं रहती। किरातार्ज्जुनीय महाकाव्यके दूसरे सर्गमें कहा है—

सहसा बिदधीत न क्रिया—
मविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुतेहि विमृष्य कारिणं
गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥

हठात् किसी कामको न करना चाहिये। बिना विचारे काम करनेसे बड़ी भारी विपत्तिकी सम्भावना रहती है। विचारपूर्व्वक काम करनेवालेके पास गुणलोभी सम्पत्तियाँ आप-से-आप आ जाती हैं।

सारांश—यह सच है, कि बुद्धि होनहारके अनुसार हो जाती है। फिर भी; बुद्धिमानोंका कर्त्तव्य है, कि वे खूब सोच-विचारकर काम करें। कहा है:—



इस चित्रके गंजेकी दशा देखनेसे ज्ञात होता है, कि भाग्यहीनोंकी विपत्ति भी उसके साथ ही साथ रहती है। (पृष्ठ ४०७)

Kanti Press, Agra.

दोहा—फलहू पावत कर्म तें, बुद्धिहु कर्म-अधीन।
तदपि बुद्धि विचार के, कारज करो प्रवीन ॥९०॥

90. (Although) fruits are dependent upon actions and one's reason also follows the same, yet a wise man should do everything after considering it well.

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ॥
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यांत्यापदः ॥९१

किसी गंजे आदमीका सिर धूपसे जलने लगा। वह छायाकी इच्छासे दैवात् एक ताड़के वृक्षके नीचे जाकर खड़ा हो गया। उसके वहाँ पहुँचते ही, एक बड़ा ताड़-फल उसके सिरपर बड़े ज़ोरसे गिरा। उससे उसकी खोपड़ी फट गई। इससे सिद्ध होता है, कि भाग्यहीन मनुष्य जहाँ जाता है, उसकी विपत्ति भी प्रायः उसके साथ-ही-साथ जाती है।

किसी विद्वान्ने ठीक ही कहा है:—

अकृतेऽप्युद्यमे पुंसामन्यजन्मकृतं फलम्।
शुभाशुभं समभ्येति विधिना सन्नियोजितम् ॥
यस्मिन् देशे च काले च वयसा यादृशेन च।
कृतं शुभाशुभं कर्म तत्तथा तेन भुज्यते ॥

बिना उद्योग किये भी, पुरुषोंको दूसरे जन्मका शुभाशुभ फल, विधिके नियोगसे, मिलता ही है। जिस देश, काल और अवस्थामें, जिसने जैसा बुरा या भला कर्म किया है, उसका वैसा ही फल उसे भोगना होता है।

सारांश—अभागेकी रक्षा कहीं भी नहीं; अभागेकी विपत्ति अभागेके पीछे-पीछे रहती है। वह अपनी विपत्तिसे बचनेके लिये चाहे जितनी कोशिश क्यों न करे, बच नहीं सकता। कहते हैं, किसी मनुष्यको डाकुओंने घेर लिया; प्राण बचानेके लिये, वह सामनेके वनमें भागा। वहाँ सिंह और हाथी उसके पीछे पड़ गये; तब प्राणरक्षाके लिये वह एक कूपमें कूद पड़ा। वहाँ उसे सर्प भक्षण कर गये।

छप्पय—*टाँट उघारे मूढ़, बारह्व सिर पर नाहीं।*
तप्यो जेठ की घाम, ताल की पकरी छाहीं॥
तहाँ तालफल एक, शीश पर पर्‍यो धड़ाके।
फूटि गयो करि शोर, पीर बाढ़ी तनु ताके॥
सुख ठौर जानि बिरम्यो सुवस, तहाँ इतै दुखको सहत।
निर्भाग्य पुरुष जित जात तित, बैर विपति पीछहिं रहत॥९१॥

91. A bald-headed man, his head being scorched by the rays of the sun desirous of finding a shady place, by ill-luck went under a Tala (palm) tree. There his head was broken by a big fruit falling on it with a great noise. Often wheresoever an unlucky person may go he is pursued by misfortunes.

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम्
मतिमतांचविलोक्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः ॥ ६२ ॥

हाथी और सर्पको बन्धनमें देखकर, सूर्य्य और चन्द्रमामें ग्रहण लगते देखकर और बुद्धिमानोंको दरिद्री देखकर—मेरी समझमें यही आता है, कि विधाता ही सबसे बलवान् है ।

निस्सन्देह विधाता सबसे बलवान् है । वह जो कुछ भाग्यमें लिख देता है, उसे कोई बड़े-से-बड़ा नहीं मिटा सकता । कपालके दोषसे ही शिवजी नंगे रहते हैं और कपालके दोषसे ही विष्णु सर्प-शय्यापर सोते हैं । कुवेरके मित्र होनेपर भी, महादेवजी चर्मवस्त्र पहनते और भिक्षा माँगते फिरते हैं। जो पक्षी सौ योजनकी उँचाईसे भी अधिक दूरसे अपने भक्ष्य—मांसको देख लेता है, वही जब प्रारब्ध खोटी होती है, जालके फन्देको पाससे भी नहीं देख सकता; क्योंकि भाग्यका लिखा होकर रहता है । कहा है—

स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी ।
दशशत करधारी ज्योतिषां मध्यचारी ॥
विधुरपि विधियोगात ग्रस्यते राहुणासौ ।
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थ ॥

वह आकाशमें विहार करनेवाला, अन्धकारको नाशकरनेवाला, सहस्र किरणोंवाला, प्रकाशमान, तारागणोंके बीचमें

घूमनेवाला चन्द्रमा भी भाग्य-वश, राहुसे ग्रसा जाता है। इससे सिद्धि है, कि माथेपर लिखेको कोई मेट नहीं सकता।

छप्पय—रवि शशि निशादिन फिरें, ग्रहण सों पीड़ा पावें।
वृहत्काय गज तुरत, तन्तु लघु सो बँध जावें॥
महा भयंकर सर्प, मंत्र-बस रहैं मौन गह।
योगी अटल अकाम, होय कामी इक क्षण महँ॥
मतिमान पुरुष दारिद्र-बस, या जग बिच घूमत रहैं।
बलवान दैवगति है बड़ी, यह आश्चर्य सुकवि कहैं॥९२॥

92. Seeing the sun and the moon being attacked by an eclipse, the elephant and the serpent being made captive and the wise falling a pray to poverty, I conclude that Fate is a powerful thing.

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभंगिकरोति चेदहह कष्टमपण्डितता विधेः॥९३॥

बड़े ही दुःखकी बात है, कि विधाता सब गुणोंकी खान और पृथ्वीके भूषण पुरुषरत्नको सिरज कर भी, उसकी देहको क्षण-भंगुर कर देता है। इससे विधाताकी मूर्खता ही प्रकट होती है।

मनुष्य, अशरफुल मख़लूक़ात—ईश्वरकी सृष्टिकी शोभा और पृथ्वीका भूषण होनेपर भी, क्षणभंगुर है—उसकी आयु कुछ नहीं! वह पानीके बुलबुलेकी तरह क्षण-भरमें ही नाश हो जाता है। ब्रह्मा गुणोंकी खान—पृथ्वीकी शोभा

रूप पुरुषको बनाता है, यह तो अच्छी बात है; पर उसे पलक मारते नाश कर देता है, यह दुःखकी बात है! यह विधाताकी मूर्खता नहीं तो क्या है? यदि वह पुरुषको सदा स्थिर रहनेवाला अजर और अमर बनाता, तो अच्छा होता। इसमें उसकी बुद्धिमत्ता दीखती; क्योंकि अपने बाग़में आप ही वृक्ष लगाकर, आप ही जल सींचकर और बढ़ाकर, अपने ही हाथोंसे उसे कोई नहीं काटता। जो ऐसा करता है वह मूर्ख ही समझा जाता है।

सार—मनुष्य क्षणभंगुर है; पलक मारते नाश होता है। और चीज़ोंकी उम्र है, पर मनुष्यकी कुछ भी उम्र नहीं; इसलिये इस चपलाकी चमकके समान चञ्चल धन, यौवन और जीवनपर अभिमान न करके, दिन-रात परोपकार करना चाहिये। अपना एक दिन और एक क्षण भी परोपकार और परमात्माके नाम बिना न गँवाना चाहिये। नीचेके भजन और ग़ज़ल प्रभृतिसे ग़फ़लतकी नींदमें पड़े हुए पाठकोंको होश हो जायगा:—

भजन।

राग काफी।

सुखड़ा क्या देखे दर्पण में, तेरे दया धरम ना मनमें ॥ टेक ॥
हरी-हरी पाग केसरिया जामा, सोहत गोरे तनमें।
वा दिन की तोहि खबर नहीं, जब आग लगेगी तनमें ॥ १ ॥

कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, सुरत लगी है धन में।
जब यमदूत पकड़ ले जायें, रह जाय मनकी मनमें ॥ २ ॥
अम्ब की डाली तोता राज़ी, कोयल राज़ी बाग़न में।
घरबारी तो घरमें ही राज़ी, साधु हैं राज़ी बन में ॥ ३ ॥
ऐंठत चलत मरोड़त मूँछें, तेल चुवे जुलफ़न में।
कहें कबीर भाई ऐसा हिंजड़ा, कैसे लड़ेगा रण में ? ॥ ४ ॥

ग़ज़ल ।

रहेगी मुखपर ये आब कबतक, रहेगा साहब शबाब कबतक।
यह नींद ग़फ़लतका ख़्वाब कबतक, बचोगे आख़िर जनाब कबतक॥१॥
यह शानशौकत ग़ज़ब नज़ाकत, ये नाज़नख़रे अजब क़यामत।
यह ज़ुल्म ज़ोरो सितम शरारत, बने रहोगे नवाब कबतक ॥२॥
है चन्दरोज़ा बहार गुलशन, न ये हमेशा रहे जवानी
फ़रेब दे-दे पुलाब ज़र्दा, पकेगा क़ीमाँ कबाब कबतक ॥३॥
सताते हो बेगुनाह नाहक, किस घमंड में फिरो हो भूले।
डरो न यारो गज़ब खुदासे, करोगे लाखों अज़ाब कबतक ॥४॥
रोते चले गये यहाँसे कितने, तुम्हीं अनोखे नहीं सितमगर।
खेलोगे छुपछुपके दाव कबतक, चलेगी पटपर ये नाव कबतक ॥५॥
झूँठी हज़ारों बातें बनाते, बदी से अब तक न बाज़ आते।
लाखों गलेपर छुरी चलाते, रहे यह क़ातिल ख़िताब कबतक ॥६॥
ग़रीबों का जब गला दबाते, तरस न दिलमें ज़रा भी खाते।
हरामज़ादों को ज़र लुटाते, उड़े यह गुलगूँ शराब कबतक ॥७॥

क़ज़ाका पैग़ाम है आनेवाला, चलोगे आख़िर मुँह करके काला।
पूछेगा हाकिम इसका हवाला, न दोगे आख़िर जवाब कब तक ॥८॥
दुनियाँमें है ये दो दिनका मेला, हिलमिलके रहना है सबको लाज़िम।
इस चार दिनकी ही चाँदनीमें, करोगे हमसे हिजाब कबतक ॥९॥
यह उमदा मौक़ा मिले न हरदम, ऐ सोनेवाले विचार देखो।
अब खोल आँखें दुनियाँको देखो, रहेगा मुँहपर नक़ाब कबतक ॥१०॥
बेदार होकर बलदेव जल्दी, अब याद हकमें लगाके दिलको।
पड़ा रहेगा बुतोंके दर पर, बता दे ख़ाना ख़राब कबतक ॥११॥

भजन सोरठ।

जोबन धन पाँवना दिन चारा, याको गर्व करे सो गँवारा ॥टेक॥
हाड़ माँसका बना पींजरा, भीतर भरा भँडारा।
रंग पतङ्ग लगायो ऊपर, कारीगर कर्तारा ॥ १ ॥
पशू चाम की बनत पन्हैयाँ, नौबत और नक़ारा।
या देहीको कुछ न बनैगो, समझत नाहिं गँवारा ॥ २ ॥
एक लख पुत्र सवा लख नाती, पुत्र-पौत्र परिवारा।
ऐसा मर्द गर्द में मिल गया, लंका का रखवारा ॥ ३ ॥
यह संसार हाट का मेला, वणिज करो व्यौपारा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हरि भज उतरो पारा ॥ ४ ॥

ग़ज़ल।

उठ जागरे मुसाफ़िर, किस नींद सो रहा है।
जीवन अमूल्य प्यारे, क्यों मुफ़्त खो रहा है ॥ १ ॥

रहना न यहाँ पै होगा, दुनियाँ सराय फ़ानी।
फँसकर बदी में प्यारे, क्यों मस्त हो रहा है॥२॥
ले ले धरम का तोषा, मत भूल ऐ दिवाने।
नेकी की खेती करले, क्यों पाप बो रहा है?॥३॥
माता पिता वो भाई, होंगे न कोई साथी।
क्यों मोहरूपी बोझा, नाहक़को ढो रहा है॥४॥
किश्ती तेरी पुरानी, हिकमत से पार करले।
ऐ दिल! अथाह जल में, तू क्यों डुबो रहा है॥५॥

ग़ज़ल।

नरतन को पाके मूरख, खोता फ़िज़ूल क्यों है॥ टेक॥
सुत मित्र बन्धु दारा, समझे तू किसको प्यारा।
मतलब की है ये दुनियाँ, रोता फिज़ूल क्यों है॥१॥
किससे तू यारी करता, कुर्बान हो हो मरता।
अश्कों से अपने मुँहको, धोता फिज़ूल क्यों है॥२॥
यहाँ यार हैं बहुरंगे, दो दिनके तेरे संगी।
उलफ़त का बीज दिलमें, बोता फ़िज़ूल क्यों है॥३॥
क्यों बनता है दीवाना, जग है मुसाफ़िरखाना।
बेदार हो बेहूदे, सोता फ़िज़ूल क्यों है॥४॥
बलदेव समझ सौदाई, सुध-बुध कहाँ गँवाई।
रुसवा बुतोंके पीछे, होता फ़िज़ूल क्यों है॥५॥

दोहा—पुरुष रत्न महि भूषणै, सर्व गुणाकर कीन्ह।
पै लागत मोहिं मन्द विधि, क्षणभंगुर तन दीन्ह॥६३॥

93. Alas ! pitiable is the unwisdom of the god Brahma, who creates man as a depository of all the good qualities and a gem fit for adorning the whole world, yet makes him (a thing) perishable in a moment.

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ॥
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥९४

अगर करीलके पेड़में पत्ते नहीं लगते, तो इसमें बसन्तका क्या दोष है ? अगर उल्लूको दिनमें नहीं सूझता, तो इसमें सूर्यका क्या दोष है ? अगर पपहियेके मुखमें जलधारा नहीं गिरती, तो इसमें मेघका क्या दोष है ? विधाताने जो कुछ भाग्यमें लिख दिया है, उसे कोई भी मिटा नहीं सकता ।

कहा है—

कोउ दूर ना कर सकै, विधि के उल्टे अंक ।
उदधि पिता तउ चन्द्रको, धोय न सक्यो कलंक ॥

और भी कहा है—

यद्दैवेन ललाटपट्टलिखितं, तत्प्रोज्झितं कः क्षमः ॥

छप्पय—कहा बसन्तहिं दोष, करीरहि पात न आहीं ।
उल्लुहि लगे अँध्यार दिवस, रवि दूषण नाहीं ॥

ज्यों चातक मुख माहिं, पड़ै नहिं जलकी धारा।
दूषण दैवै जोग नहीं, घन देख बिचारा॥
यह सत्य जानुरे जीव जो, लिखे भालमें अंक विधि।
कह हरिजन इहि जग ताहि, कोउ मेटनहार न कोय विधि॥९४॥

94. If no leaves sprout from a Karira tree, where is the fault of the Spring? If an owl can not see in the day, is the sun to blame? If the drops of rain do not fall into the mouth of a Chataka bird, surely the cloud is not responsible for it. Whatever the god Brahma has destined to be the fate of a man (has written on his fore-head) can not be effaced by any one.

कर्म-प्रशंसा।

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेपि वशगा।
विधिर्वन्द्यः सोपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः॥
फलं कर्मायत्तं किममरगणैः किं च विधिना।
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति॥९५॥

देवताओंकी हम बन्दना करते हैं, पर वे सब विधाताके अधीन दीखते हैं; इसलिये हम विधाताकी बन्दना करते हैं, पर विधाता भी हमारे पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार ही फल देता है। जब फल और विधाता दोनों ही कर्मके बशमें हैं, तब देवताओं और विधातासे क्या मतलब? "कर्म" ही

सर्वोपरि है; इसलिये हम कर्मको ही नमस्कार करते हैं, जिसके ख़िलाफ़ विधाता भी कुछ नहीं कर सकता।

असलमें, कर्म ही सर्वप्रधान है। मनुष्य जैसा कर्म करता है, विधाता उसे वैसा ही फल देता है। इसमें विधाता न तो किसी तरहकी रिआयत ही कर सकता है और न कर्मके विपरीत ही फल दे सकता है। मतलब यह है, हमने जो कर्म किये हैं, उनके अनुसार ही फल हमें मिलेंगे। हम लाख देवताओंकी खुशामद करें; वे कर्मके ख़िलाफ़ कुछ भी कर नहीं सकते। वे तो क्या, स्वयं विधाता भी रेखपर मेख नहीं मार सकता। जो लोग दुःखके समय परमात्माको बुरा-भला कहा करते हैं, वे बड़े ही नासमझ हैं। परमात्मा न किसीको सुख देता है और न दुःख। सुख-दुःख मनुष्यके प्रारब्धाधीन हैं। प्रारब्ध मनुष्यके किये हुए कर्मोंसे बनती है; इसलिये मुख्य "कर्म" है।

सार—कर्म प्रधान हैं; विधाता भी कर्मके अधीन है।

दोहा—बन्दहुँ सुर ते जानिवश, विधि के बन्दो ताहि।
देत विरञ्चिहु कर्म-फल, बन्दौं कर्म सदाहि ॥६५॥

95. We salute the gods, but really they are under the authority of Brahma. We salute Brahma, but He only awards the natural fruits of our various actions. The fruits follow the actions, hence what have we to do with either Brahma or the host of gods? Let us then salute the actions which even Brahma can not do against.

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे।
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः।
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे॥९६॥

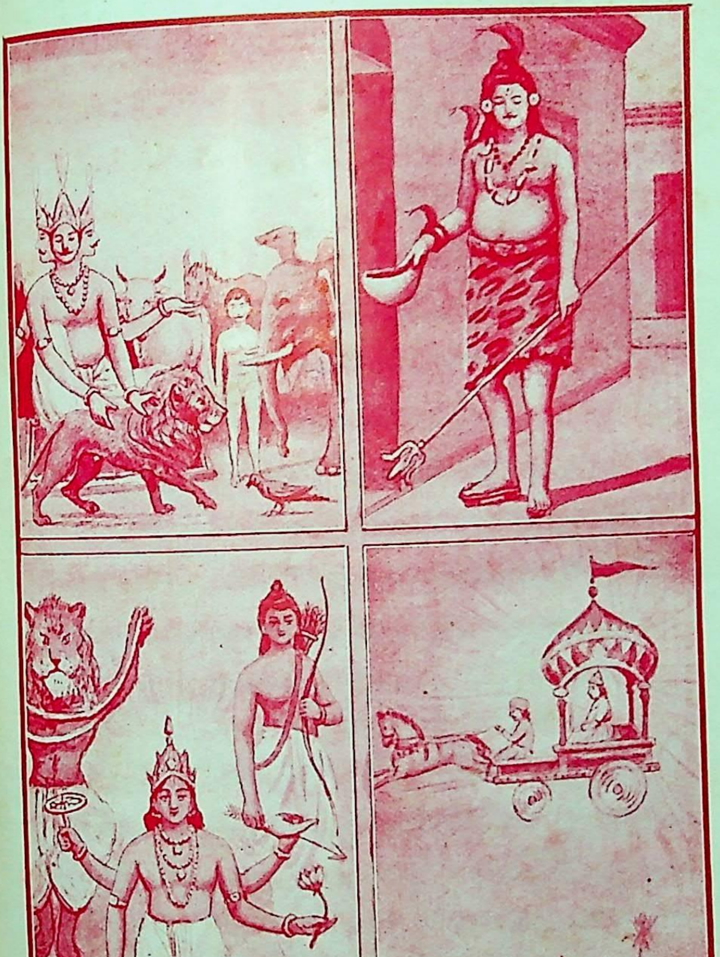
जिस कर्मके बलसे ब्रह्मा इस ब्रह्माण्डभाण्डोदरमें सदा कुम्हारका काम कर रहा है, विष्णु भगवान् दश अवतार लेनेके महासंकटमें पड़े हुए हैं, रुद्र हाथमें कपाल लेकर भीख माँगते रहते हैं और सूर्य्य आकाशमें चक्कर लगाता रहता है, उस कर्मको हम नमस्कार करते हैं।

किसी कविने और भी कहा है—

रामो येन विडम्बितो, मृदुमयश्चन्द्रः कलंकीकृतः।
क्षाराम्बु सरितांपतिश्च नहुषः सर्पः कपाली हरः॥
माण्डव्यो मुनि शूलपीड़िततनुर्भिक्षाभुजः पाण्डवाः।
नीतो येन रसातलं बलिरसौ तस्मै नमः कर्मणे॥

रामको जिसने वन-वन फिराया, सुन्दर चन्द्रमामें कलङ्क लगाया, समुद्रको खारी किया, नहुषको सर्प बनाया, महादेवको कापालिक बनाया, माण्डव्य मुनिको शूलीपर चढ़ाया, पाण्डवोंसे भीख मँगाई और राजा बलिको जिसने पाताल पठाया, उस कर्मको नमस्कार है।

सारांश यही है, कि ब्रह्मा, विष्णु महेश और भास्कर भगवान्—ये सभी कर्मके अधीन हैं। इनके कर्मानुसार, इनकी



देखिये, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सूर्य्य सभी कर्म्माधीन हैं।

Kanti Press, Agra.

(पृष्ठ ४१८)

प्रारब्धमें जो लिखा है, वही ये करते हैं। ये भी स्वाधीन नहीं, कर्मके अधीन हैं; इसलिये "कर्म" इनसे बड़ा है।

दोहा—विधिको कियो कुम्हार जिन, हरिको दश अवतार।
भीख मँगावत ईशकों, ऐसो कर्म उदार ॥९६॥

96. Let us salute the actions that have given Brahma the duty of creating (the different objects in) the world like a potter making (all sorts of) earthen vessels, that have thrown Vishnu into the great inconvenience of undergoing the ten incarnations, that have made Shiva go a-begging with a mendicant's cup in his hand and that cause the Sun to be always wandering in the sky.

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं।
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा॥
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि।
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः॥९७॥

मनुष्यकी सुन्दर आकृति, उत्तम कुल, शील, विद्या और खूब अच्छी तरह की हुई सेवा—ये सब कुछ फल नहीं देते; किन्तु पूर्वजन्मके कर्म ही, समयपर, वृक्षकी तरह फल देते हैं।

वृक्ष जिस तरह, समयपर, अनेक फल देता है; उसी तरह पहले जन्मके किये हुए कर्म भी, अपने समयपर, अपना बुरा या भला फल देते हैं। सुन्दर सूरत-शकल, शील, विद्या और उत्तम सेवासे कुछ भी लाभ नहीं होता। किसी कविने खूब कहा है:—

भाग्यं फलति सर्वत्र, न च विद्या न च पौरुषम्।
समुद्रमथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मी हरो विषम्॥

सब जगह भाग्य फलता है; विद्या और पौरुष नहीं फलते। हरि और हर दोनोंने मिलकर समुद्र मथा; पर हरिको लक्ष्मी मिली और महादेवको विष।

शेख़ सादी भी कहते हैं:—

हुनरवर चो बख़्तश न बाशद बकाम।
बजाये रवद् केश न दानन्द नाम॥

जब भाग्य अनुकूल नहीं होता, तब हुनरमन्द जहाँ जाता है, वहीं उसको कोई नहीं पूछता—अथवा वह जाता ही ऐसी जगह है, जहाँ उसका कोई नाम तक नहीं लेता।

गिरिधर कविराय कहते हैं:—

कुण्डलिया।

भाग्य सर्वत्र फलत है, न च विद्या पौरुष सरल।
हरि हर सागर मथ्यो, हर को मिल्यो गरल॥
हर को मिल्यो गरल, हरी ने लक्ष्मी पाई।
षट भाग दो सम्पन्न, भाग की कही न जाई॥
कह गिरिधर कविराय, कोऊ मिल खेलें फाग।
कोउ हमेशा रोवें, आयो अपने भाग॥

उस्ताद ज़ौक़ने भी कहा है:—

क़िस्मत से ही लाचार हूँ, ऐ ज़ौक़ वगर्ना।
सब फन में हूँ मैं ताक़, मुझे क्या नहीं आता॥

भाग्यसे ही लाचार हूँ, वर्ना कौनसा फन है, जिसको मैं अच्छी तरह नहीं जानता ? मुझे क्या नहीं आता ?

योगिराजने बहुत ही ठीक बात कही है। रोज़ आँखोंसे देखते हैं, कि बड़े-बड़े विद्वान् और उद्योगी मारे-मारे फिरते हैं, पूरा-सा खाना-कपड़ा भी नसीब नहीं होता। दूसरी ओर ऐसे लोग भी नज़र आते हैं, जो एक अक्षर भी पढ़े-लिखे नहीं; जिन्हें धोती बाँधना और बात करना भी नहीं आता; पर वे, सहजमें ही, मामूलीसे उद्योगसे, लाखों-करोड़ोंके स्वामी हो जाते हैं। इन बातोंसे साफ मालूम होता है, कि सभी अपने-अपने कर्मानुसार फल पाते हैं।

जिन्होंने पूर्वजन्ममें अच्छे कर्म नहीं किये हैं, जिन्होंने कुछ भी नहीं बोया है, वे इस जन्ममें कैसे काट सकते हैं ? जिसने आम बोये हैं, वह आम खाता है; पर जिसने बबूल बोये हैं, वह आम कैसे पा सकता है ? पूर्वजन्मके अच्छे या बुरे कर्मोंका फल मिलता है, पर समयपर ही मिलता है; क्योंकि वृक्ष अपने मौसममें ही फल देता है। कहा है—

काल पाय ह्वै फलत हैं, शुभ रु अशुभ निज कर्म।
ग्रीषम बोये धान ज्यों, फलत शरद यों मर्म॥

मनुष्य ख़ूब याद रखे, कि इल्म, अक़्ल, ख़ूबसूरती और की हुई ख़िदमतसे कोई फ़ायदा नहीं—इनसे सुख नहीं मिलता। सुख मिलता है, पहले जन्मके किये हुए पुण्योंसे। यदि पुण्य होते हैं, तो उत्तम फल मिलता है, पर समयपर; इसलिये

उसे अधीर और निराश न होना चाहिये । कर्मको मुख्य समझकर सन्तोष करना चाहिये ।

सार—सुख एकमात्र पूर्वजन्मके पुण्योंसे मिलता है।

भजन

(राग देश)

जब टेढ़े दिन आवें, ऊधो जब टेढ़े दिन आवें ॥ टेक॥
कञ्चन छूत होत कर माटी, माँगे भीख न पावें ॥ १॥
यार दोस्त मुख से ना बोलें, ढिंग बैठत सकुचावें ॥ २॥
पढ़ा-लिखा कुछ काम न आवे, मूरख ज्ञान सिखावें ॥ ३॥
टेढ़ी लौंडी बनी कूबरी, जाको कंठ लगावें ॥ ४॥
चन्द्रकलासी बनी राधिका, ताकूँ जोग पठावें ॥ ५॥
अपना-अपना भाग सखी री, काकूँ दोष लगावें ॥ ६॥
सूरदास बिधनाके अच्छर, तिल भर घटन न पावें ॥ ७॥

दोहा—विद्या आकृति शील कुल, सेवा फल नहिं देत ।
फलत कर्महु समय में, ज्यों तरु फलन समेत ॥९७॥

97. A fine shape, a high family, good manners, knowledge or willing service are of no avail. Only the good actions done in a previous birth bear fruit at the proper time just as trees do.

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥ ९८ ॥

वनमें, रणमें, शत्रुओंमें, जलमें, आगमें, समुद्र अथवा पर्वतकी चोटीपर, सोते हुए, ग़ाफ़िल या आफ़तमें पड़े हुए मनुष्यकी रक्षा, पूर्वजन्मके पुण्य ही करते हैं।

मनुष्य चाहे गहन वनमें हो, चाहे भीषण रणक्षेत्रमें हो, चाहे शत्रुओंके जालमें हो, चाहे अग्निके बीचमें हो, चाहे अगाध जलमें हो, चाहे पहाड़की चोटीपर बेहोश पड़ा हो और चाहे और किसी भयङ्कर आफ़तमें हो—अगर उसके पूर्वजन्मके शुभ कर्म होते हैं, तो वह सब ख़तरोंसे बच जाता है; अगर पूर्व-जन्मके शुभ कर्म नहीं होते, तो वह मर जाता है या कष्ट भोगता है। नीतिमें कहा है;—

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं,
सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः,
कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति॥

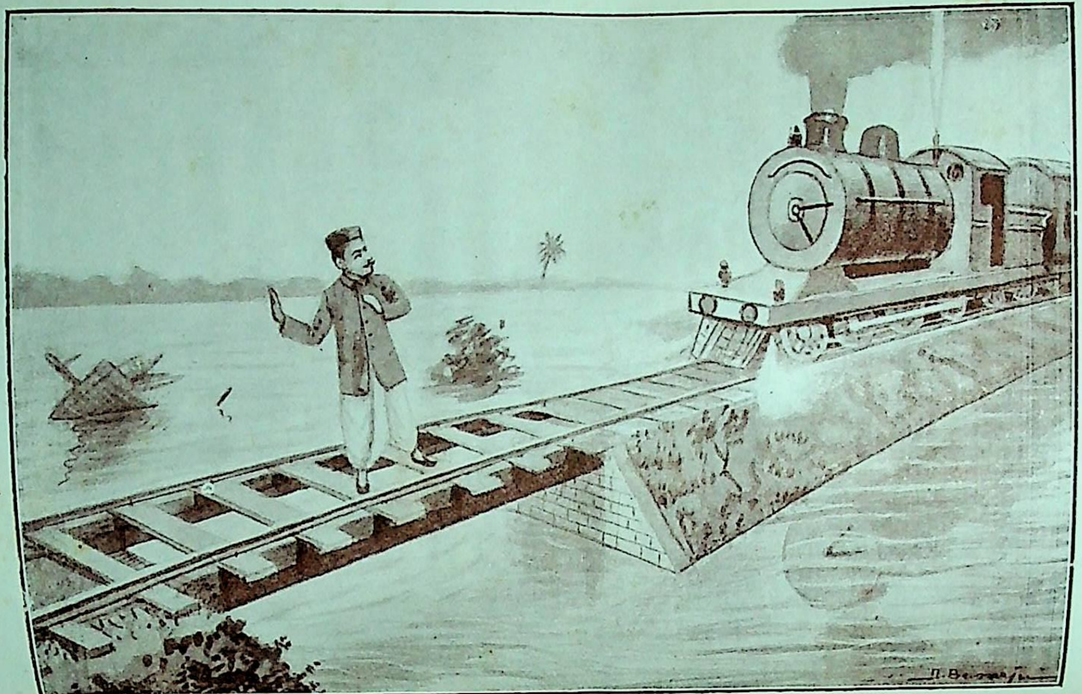
जिसकी रक्षा करनेवाला कोई न हो; किन्तु दैव (प्रारब्ध) उसकी रक्षा करे, तो वह जीवित रहता है। वनमें त्यागा हुआ अनाथ भी जीता रहता है; पर घरमें, यत्नसे रक्षा करनेपर भी, नहीं जीता।

मतलब यह है, कि जिसके पूर्वजन्मके शुभ कर्म होते हैं, वह हर विपद्से बच जाता है। अगर वह सिंहकी माँदमें भी चला जाय, तो सिंह उसे नहीं खाता। ऐसी ख़तरनाक जगहमें

कौन रक्षा करता है? दैव। दैव किसे कहते हैं? प्रारब्ध या भाग्यको। प्रारब्ध काहेसे बनती है? पूर्वजन्मके कर्मोंसे।

मेनका, हालकी पैदा हुई कन्याको विश्वामित्रकी गोदमें छोड़, स्वर्गको उड़ गई। मुनिने उस नवजात कन्याको एक निर्जन स्थानमें राहके किनारे रख दिया। कन्याके पूर्वजन्मके शुभ कर्म थे, इसलिये शकुन नामक एक पक्षी अपने पंखोंसे छाया करके, उसकी पालना करने लगा। दैवयोगसे, कण्व ऋषि तीर्थाटन करके, उसी राहसे आ रहे थे। उन्होंने नन्हेंसे बच्चेको हाथ-पैर हिलाते देख उठा लिया और आश्रममें लाकर, उसकी परवरिशके लिये एक स्त्री मुक़र्रर कर दी। इसी बच्चेका नाम आगे चलकर शकुन्तला रक्खा गया। अगर शकुन्तलाके पूर्वजन्मके शुभ कर्म न होते, तो शकुन पक्षी उसकी रक्षा क्यों करता? वह धूपमें ही भूख-प्याससे मर जाती अथवा कोई जंगली जानवर आकर उसकी चटनी कर जाता।

दिल्लीश्वर जहाँगीरकी जगत्-प्रसिद्ध बेगम नूरजहाँ सिन्धके जङ्गलोंमें पैदा हुई थी। माता-पिता घोर विपदावस्थामें अपना देश—ईरान छोड़कर भागे थे। राहमें ही, जेठकी तपती धूपमें, कन्या पैदा हो गई। प्रसूताके लिये न कुछ खानेको था, न पीनेको। ऊपर आस्मान जल रहा था और नीचे रेगिस्तानकी बालू जलकर अङ्गारवत् हो रही थी। उस समय कन्याको लेकर राह चलनेसे माताके भी मर जानेका भय था; इसलिये पतिके बारम्बार समझानेसे माता अपनी आँखोंकी



दो ओर अगम जल; सामने धड़धड़ाती मेलट्रेन; ऐसे संकट समयमें, पूर्वजन्मके पुण्योंने ही इस ग्रन्थके अनुवादककी प्राण रक्षा की।
(पृष्ठ ५२३)

पुतलीको वहाँ ही छोड़ देनेपर राज़ी हो गई। पिताने कन्याको एक जगह लिटा दिया और दोनों राह चलने लगे। थोड़ी दूर चलकर ही माताने कहा—"मैं मर भले ही जाऊँ, पर अपनी बच्चीको यहाँ न छोड़ूँगी!" लाचार होकर, पति फिर कन्याको लाने गया। पर वहाँ पहुँचते ही देखता क्या है, कि एक बड़ा भारी कालसर्प कन्याके ऊपर अपने फनसे छाया किये हुए बैठा है। पिताकी हिम्मत कन्याको वहाँसे उठानेकी न पड़ी। वह लौटने लगा। इतनेमें सर्प उसका मतलब समझकर वहीं लोप होगया और पिता अपनी पुत्रीको छातीसे लगाकर ले आया। अगर उस नवजात कन्याके पूर्वजन्मके शुभ कर्म न होते; तो वह क्षण-भरमें ही उस अङ्गार-समान तपती रेतीपर जलकर प्राणत्याग कर देती। पूर्वजन्मके शुभ कर्मोंने ही उसकी सर्प बनकर रक्षा की।

एक बार स्वयं हमपर ही बीत चुकी है। मुसीबतके मारे, एक दिन हम जङ्गलमें रेलकी सड़क-सड़क चल रहे थे। सिन्ध नदीके फट जाने या बाढ़ आनेसे सैकड़ों कोस तक जल-ही-जल हो गया था। कहीं किनारा या वृक्ष इत्यादि दिखाई न देते थे। चलते-चलते हम एक रेलवे-पुलपर पहुँचे। पुलके नीचे अथाह जल, दोनों ओर दाहने बायें अगम्य जल। ऊपर आकाश और नीचे जल-ही-जल था। उस अनन्त जलराशिके बीचमें पाँच सात फुट चौड़ी रेलकी लाइन मात्र दीखती थी। जलकी भयङ्कर गर्जनासे हृदय काँपता था। अगर पुलपर मनुष्य हो और रेल-

गाड़ी आ जाय, तो उसकी रक्षाका कोई उपाय न था। हम डरते हुए जा रहे थे, कि कहीं पुलपर हमारे रहते हुए ट्रेन आगई तो हमारे प्राण न बचेंगे। आख़िरकार, जिस बातकी आशङ्का थी, वही हुई। हम पुलके बीचमें पहुँचे और पुलके उस कोनेपर हमें रेलगाड़ीका इञ्जन दीखा। हमारे प्राण काँप उठे, पर हमने उस नाज़ुक समयमें घबराना उचित न समझा; तत्काल बचनेका उपाय सोचा। पीछेकी एक कोठीमें, हम एक ज़रा गहरासा खड्डा देख आये थे। पलक मारते-मारते हम उस गड्ढेमें जा, ज़मीन पकड़ चिपट गये। एक क्षणमें ही यह सब काम हुए। रेल धड़धड़ाती हुई हमारे सिरके ऊपर होकर निकल गई। पूर्वजन्मके शुभ कर्मोंसे हमारी जीवन-रक्षा हो गई। किसीने ठीक ही कहा है:—

निमग्नस्य पयोराशौ, पर्वतात् पतितस्य च।
तक्षकेनापि दंष्टस्य त्वायुर्मर्माणि रक्षति॥

अगाध जलमें डूबे हुए की, पर्वतसे गिरे हुए की और साँपसे काटे हुए की पूर्वजन्मके पुण्यबल या आयुर्बलसे ही रक्षा होती है। और भी कहा है—

नाकालेम्रियते जन्तुर्विद्धः शरशतैरपि।
कुशाग्रेणैव संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति॥

सौ बाणोंसे बिँधा हुआ शरीरधारी भी बिना समय नहीं मरता; काल आनेपर कुशाकी नोक छू जानेपर ही मर जाता है। किसी हिन्दी कविने भी ख़ूब कहा है—



जाको राखे साँइयाँ, मारि सके नहिं कोय।
बाल न बाँका कर सके, जो जग बैरी होय॥

(पृष्ठ ४२७)

जाको राखे साँइयां, मार सके नहिं कोय।
बाल न बाँका कर सके, जो जग वैरी होय॥

हमें दो दृष्टान्त और याद आये हैं; उन्हें अपने प्यारे पाठकोंकी भेट किये बिना हमारा जी नहीं मानता। सुनियेः—

शिकारी और हिरनी।

——::०::——

एक शिकारीने दो ओर, दाहने बायें, जाल लगा दिया। सामनेकी तरफ जङ्गलमें आग लगा दी और चौथी ओर अपना कुत्ता लेकर आप खड़ा हो गया। उस जाल के बीचमें एक हिरनी मय अपने बच्चेके घिर गई। जब हिरनी घिर गई, तब शिकारीने अपना कुत्ता छोड़ा और आप तीर-कमान लेकर तीर छोड़ने लगा। हिरनी न दाहने जा सकती थी, न बायें और न सामने ही; क्योंकि दो ओर जाल और तीसरी ओर आग जल रही थी। पीछेकी ओर शिकारी और उसका कुत्ता था। हिरनीने अनाथनाथ जगन्नाथको याद किया। आकाशमें फौरन ही बदली छाई और बिजली चमकने लगी। शिकारीका पैर एक सर्पने पकड़ लिया और कुत्तेपर बिजली गिरी। इस तरह जगदीशने हिरनी और उसके बच्चेकी प्राणरक्षा की। परमात्माकी विचित्र लीला है। जिसे वह बचाना चाहता है, उसे कौन मार सकता है* ?

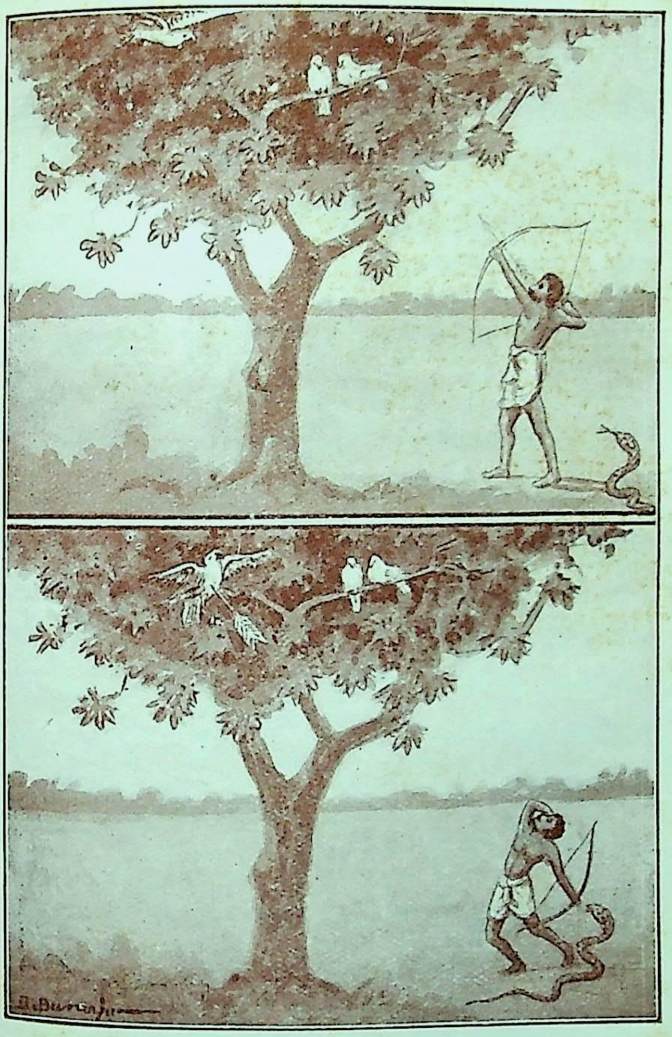
---

*If God is our defence, who is against us? Motto.

कबूतर और शिकारी

——::०::——

एक वृक्षपर एक कबूतर और कबूतरीका जोड़ा बैठा हुआ था। इतनेमें एक शिकारी वहाँ पहुँचा। उसने इनके मारनेको निशाना लगाया। इतनेमें एक बाज़ भी कहींसे उड़ता हुआ वहीं आ पहुँचा। उसने भी अपनी घात लगाई। नीचे शिकारी और ऊपर बाज़—इन दोनोंके बीच में वह कबूतरका जोड़ा पड़ गया। मृत्युमुखमें जानेमें कोई कसर न रही। यह हालत देखकर, कबूतरीने अपने पतिसे घबराकर कहा—"हे नाथ! काल सिरपर आगया! देखिये, नीचे शिकारी कमानपर तीर चढ़ाये खड़ा है और क्षणमात्रमें तीर छोड़ा ही चाहता है; ऊपर बाज़ इसी घातमें उड़ रहा है और झपट्टा मारना ही चाहता है! अब प्राणरक्षा कैसे हो?" मारने-वालोंसे बचानेवाला बड़ा ज़बर्दस्त है। शिकारीने ज्योंही कमानसे तीर छोड़ना चाहा, कि एक सर्प कहींसे आकर उसके पैरोंमें चिपट गया और उसे डस लिया। इससे शिकारीका निशाना कबूतरके जोड़ेकी सीधसे हटकर बाज़की ओर हो गया और तीर छुटते ही बाज़के जा लगा। इस तरह बाज़ और शिकारी दोनों कालके गालमें समा गये और कबूतरका जोड़ा, जिसके प्राणनाशमें ज़रा भी देर नहीं थी, अपने पूर्व-जन्मके पुण्यबल अथवा जगदीशकी दयासे बाल-बाल बच गया। दैवकी गति बड़ी विचित्र है!



यद्यपि इस चित्रके कबूतरके जोड़ेकी मृत्यु होनेमें तनिक भी कसर नहीं थी; तथापि ईश्वरकी दया और अपने पूर्वजन्मके कर्मोंके फलोंसे वह बाल-बाल बच गया। (पृष्ठ ४२८)

दोहा—वन रण जल अरु अग्नि में, गिरि समुद्रके मध्य ।
निद्रा मद अरु कठिन थल, पूरब पुण्यहि सध्य ॥६८॥

98. Virtuous deeds done in a previous birth guard a person in the forest, in a battle, from an enemy, in the midst of water or fire, on the ocean and on the top of a mountain. Whether he is asleep, unconscious or fallen into an awkward position.

**या साधूंश्च खलान्करोति विदुषो मूर्खान्हितान्द्वेषिणः
प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात् ।
तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाञ्छितं
हे साधो व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा मा कृथाः ॥६६॥**

हे सज्जनो ! अगर आप मनोवाञ्छित फल चाहते हैं, तो आप और गुणोंमें कष्ट और हठसे वृथा परिश्रम न करके, केवल सत्क्रिया रूपी भगवतीकी आराधना कीजिये । वह दुष्टोंको सज्जन, मूर्खोंको पण्डित, शत्रुओंको मित्र, गुप्त विषयोंको प्रकट और हलाहल विषको तत्काल अमृत कर सकती है ।

खुलासा—अगर आप इस जगत्में अपनी इच्छानुसार सुख भोगनेकी अभिलाषा रखते हैं; तो आप और गुणोंके संग्रह करनेमें वृथा परिश्रम न करें। इसके लिये आप केवल "सदाचरण"की सच्ची आराधना कीजिये। सदाचरण

(Good conduct) में दुष्टको सज्जन, मूर्खको पण्डित, शत्रुको मित्र, परोक्षको प्रत्यक्ष और हलाहल विषको तत्काल अमृत कर देनेकी सामर्थ्य है। शुक्रनीतिमें कहा है—

भवतीष्टं सत्क्रिययानिष्टं तद्विपरीतया।
शास्त्रतः सदसज्ज्ञात्वा त्यक्त्वाऽसत्सत्समाचरेत्॥

अच्छे कामोंसे अच्छा और बुरे कामोंसे बुरा फल मिलता है; इसलिये शास्त्र-द्वारा अच्छे और बुरेका ज्ञान प्राप्त करके बुरे कामोंको त्याग दो और अच्छे काम करो।

संसारमें जितने ऋषि-मुनि और अवतार तथा पैग़म्बर हुए हैं, सभीने जगत्के प्राणियोंको सदाचार करनेका उपदेश दिया है; इसलिये सदाचारकी ज़रा लम्बी-चौड़ी व्याख्या करना आवश्यक प्रतीत होता है।

सदाचार इस जगत्का व्यवस्थापक नियम है। सदाचार-रूपी स्तम्भोंपर ही यह जगत् ठहरा हुआ है। अगर पृथ्वीसे सदाचार उठ जाय, तो शायद प्रलय ही हो जाय।

सदाचारी सारे संसारको अपना ही समझता है; सबके दुःखोंमें सहानुभूति प्रकट करता है; सत्यपरायणता, क्षमा, दया प्रभृति सद्गुणोंको धारण करता है और प्राण संकटमें आनेपर भी, न्यायमार्गसे विचलित नहीं होता। सदाचारी सब प्राणियोंको प्रेमकी नज़रसे देखता हुआ मधुर भाषण करता है; किसीसे भी कठोर वचन नहीं कहता और परोप-

कारको अपने जीवनका मुख्य उद्देश्य समझता है। सदाचारीके जो मनमें होता है, वही कहता है और जो कहता है, वही करता है तथा प्राणनाशकी सम्भावना होनेपर भी अपनी प्रतिज्ञाको भंग नहीं करता। सदाचारीकी हँसीमें कही हुई बात भी पत्थरकी लकीर होती है। सदाचारी मिथ्या, कपट, अन्याय, अनीति, अत्याचार, कठोर भाषण, प्रतिज्ञाभंग, विषयासक्ति, क्रोध, लोभ, मोह, मद और अभिमान प्रभृति दुर्गुणोंसे हज़ार कोस दूर भागता है। सदाचारी कर्त्तव्य-पालनको हरदम तैयार रहता है; क्योंकि कर्त्तव्य परायणता ही सदाचारका उच्च स्वरूप है।

सदाचारी अपने विशुद्ध और निर्मल चरित्र तथा अपनी प्रामाणिकता और शुद्ध वासनासे जगत्को अपने वशमें कर लेता है। संसार उसका विश्वास करता है और उसके इशारोंपर नाचता है। नाचता ही नहीं—उसकी आज्ञासे प्राण तक देनेको तैयार रहता है। जगत्के प्राणिमात्र उसकी बन्दना करते हैं। सदाचारी, अपनी कठिन तपस्याके कारण, सबका पूजनीय होता है। सदाचारी ऊँची-से-ऊँची पदवी पाता और संसारके सभी सुख भोगता है। सदाचारीका शत्रु कोई नहीं; सभी उसके हितैषी मित्र होते हैं।

आजतक इस धराधामपर जितने ऋषि-मुनि और अवतार-औलिया हुए हैं, उन सबकी उतनी प्रतिष्ठा और इज्जत केवल उनके सदाचारके कारणसे ही हुई है। सदाचारी होनेकी

वजहसे ही, उनकी ईश्वरके समान पूजा और आराधना होती है । महात्मा बुद्ध, हज़रत ईसा और हज़रत मुहम्मद साहबके करोड़ों अनुयायी उनके सदाचारके कारणसे ही हुए हैं। सदाचारके कारण ही राम और कृष्ण भगवान् माने जाते हैं।

सदाचारियोंके सिरपर तलवार रख दी जाय, उन्हें फाँसीका भय दिखाया जाय, उन्हें आगमें जलाया जाय अथवा उन्हें दुनियाकी बड़ी-से-बड़ी न्यामतका लालच दिखाया जाय; पर वे अपना आचरण कभी ख़राब नहीं करते । रावणने सीता माताको बहुत डराया, धमकाया और लालच भी दिखाया; पर वह सती अपने सतपर डटी रही; उसने अपने चरित्रमें ज़रा भी धब्बा नहीं लगाया और अपना शील नहीं छोड़ा; इसीलिये आजतक उनका नाम है और यावत् चन्द्र-दिवाकर इसी तरह रहेगा । देखिये, जगज्जननी रावणसे क्या कहती हैं:—

भजन ।

(राग कव्वाली)

रावण! तू धमकी दिखाता किसे ?
मुझे मरने का ख़ौफ़ो ख़तर ही नहीं ।
मुझे मारेगा क्या ? अपनी ख़ैर मना,
तुझे होनी की अपनी ख़बर ही नहीं ॥ १ ॥
क्या तू सोने की लंका का मान करे ?
मेरे आगे यह मिट्टी का घर भी नहीं ।

मेरे मन का सुमेरु हिलेगा नहीं,
मेरे मनमें किसी का भी डर ही नहीं ॥ २ ॥
क्यों न जीत स्वयंबर में लाया मुझे,
मेरी चाह जो मन में थी तेरे बसी।
था तू कौन से देश में ये तो बता,
क्या स्वयंबर की पहुँची ख़बर ही नहीं ॥ ३ ॥
तू ने सहस्र अट्ठारह जो रानी बरीं,
हाय! उनपर भी तुझको सबर ही नहीं।
परत्रिया पै तू ने जो ध्यान दिया,
क्या निगोद नरक का ख़तर ही नहीं ॥ ४ ॥
चल हुआ सो हुआ, अब तो मान कहा,
मुझे राम पै जल्दी से दे तू पठा।
हैगा ताज्जुब यह, बरना तू देखेगा फिर,
तेरे सरकी क़सम, तेरा सर ही नहीं ॥ ५ ॥
आवें इन्द्र नरेन्द्र जो मिलके सभी,
क्या मजाल जो शील को मेरे हतें।
तेरी हस्ती ही क्या सिवा राम पिया,
मेरी नज़रों में कोई बशर ही नहीं ॥ ६ ॥

सार—जिन मनुष्योंको संसारमें उच्च-से-उच्च पद प्राप्त करना हो, वे सदाचारी बनें। सदाचारसे उनके सभी मनोरथ सफल होंगे; ऋद्धि-सिद्धियाँ उनके द्वारोंपर

२८

हाथ बाँधे खड़ी रहेंगी † और उनके दुश्मन उनके क़दमोंमें गिरेंगे।

छप्पय—करत दुष्ट को साधु, मूढ़ पण्डित कहलावत।
करत शत्रु को मित्र, विषहिं अमृत ठहरावत॥
नृपति सभा को नाँव, शक्ति या देवी कहिये।
ताकी सेवा किये, सकल सुख सम्पति लहिये॥
यह जो प्रसन्न ह्वैहै नहीं, तौ गुण विद्या सब अफल।
सुन बात चतुर नर तू यहै, वाहीसों ह्वै है सफल॥९९॥

99. O good men, if you want to enjoy the fruits desired by you, you should worship the Goddess of Righteous Deeds who makes evil persons virtuous, changes the ignorant into learned men, transforms enemies into friends, makes the hidden apparent and changes poison into nectar in a moment. Do not depend in vain on the acquirement of various qualifications (alone) by (making all sorts of) endeavours.

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन॥
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः॥१००॥

कोई काम कैसा ही अच्छा या बुरा क्यों न हो, काम करनेवाले बुद्धिमानको पहले उसके परिणामका विचार करके तब काममें हाथ लगाना चाहिये; क्योंकि बिना विचारे, अति

† If I keep my character, I shall be rich enough.—Plant.

शीघ्रतासे, किये हुए कामका फल, मरणकाल तक, हृदयको जलाता और काँटेकी तरह खटकता रहता है।

बुद्धिमानको किसी कामके आरम्भ करनेमें जल्दी न करनी चाहिये। काम करनेसे पहले, कामके गुण-दोष और परिणामका ख़ूब अच्छी तरह विचार करना चाहिये। अगर उस कामका फल या नतीजा अच्छा दीखे, तो उसे करना चाहिये*। अगर उस कामके करनेसे परिणाममें दुःखकी सम्भावना हो, तो उसे भूलकर भी न करना चाहिये§। जल्दबाज़ीका नतीजा सदा बुरा होता है। ज़रासी चूक मनुष्यको युगों दुःख देती है और खान-पान छुड़ा, नींदको हराम कर देती है। किसीने ठीक ही कहा है—"एक क़दम चूकनेसे मनुष्यका बड़ी बुरी तरह पतन होता है‡। ज़रासी ग़लतीसे मनुष्य ऐसी ठोकर खाता है, कि सम्हाले नहीं सम्हलता। अपनी ज़रासी चूकके प्रायश्चित्त स्वरूप उसे बड़े-बड़े कष्ट भोगने पड़ते हैं। इन पंक्तियोंके लेखकने, अपनी एक ज़रासी चूकके कारण दो युगों तक, नाना प्रकारके शारीरिक और मानसिक कष्ट भोगे। जबतक उस भूलका संशोधन न हुआ, वह हृदयमें काँटेकी तरह चुभती रही। सच तो यह है, उस

---

* Before you begin, consider well; and when you have considered, act.

§ Even in the moment of action there is room for consideration.—Goethe.

‡ One wrong step may give you a great fall.

ज़रासी भूलने असमयमें ही इसकी जवानीको नष्ट कर बुढ़ापा बुला दिया, बाल पका दिये, दांत गिरा दिये, शरीर निकम्मा कर दिया और दिलको तो चलनी ही बना दिया। अगर यह ज़रा भी बिचारसे काम लेता, तो शायद इसे घोर मर्मभेदी वेदनायें न सहनी पड़तीं। यदि पूर्वजन्मके अशुभ कर्मोंकी वजहसे वह विपद् टल ही न सकती; तोभी हृदयमें यह जलन तो न रहती, कि मैंने यह काम विचारपूर्वक नहीं किया। ख़ैर, बहुत लिखनेसे क्या ? जिसने मनुष्य-योनिमें जन्म लिया है, जो मनुष्य कहलाता है,—उसे प्रत्येक काम, चाहे वह छोटा हो-चाहे बड़ा, ख़ूब सोच-विचारकर और अपने अन्तरात्मा कौनशेन्स की सलाह लेकर करना चाहिये। यदि फिर भी नतीजा बद हो तो हर्ज नहीं; मनमें खटक तो न रहेगी। गिरिधर कविराय कहते हैं:—

बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछताय।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय॥
जग में होत हँसाय, चित्त में चैन न पावे।
खान पान सन्मान, राग रंग मनहि न भावे॥
कह गिरिधर कविराय, दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माहिं, कियौ जो बिना विचारे॥

जो मनुष्य बिना विचारे काम करता है, वह पीछे पछताता है; अपना काम बिगाड़ता है और लोक-हँसाई कराता है। उसका चित्त हर समय बेचैन रहता है और उसे खाना-पीना आदर-सन्मान एवं राग-रंग कुछ भी अच्छे नहीं लगते।

गिरिधर कविराय कहते हैं, दुःख कुछ टालनेसे टल नहीं जाता, होनहार होकर रहती है, पूर्वजन्मके कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है। फिर भी ; जो काम विना विचारे किया जाता है, वह दिलमें काँटेकी तरह खटका करता है। पाठक ! अविचार-वानोंकी ठीक यही दशा होती है। वृन्द कविने भी कहा है :—

फिर पीछे पछताय सो, जो न कर मति सूध।
बदन जीभ हिय जरत है, पीवत तातो दूध॥

मूढ़ ! ऐसा काम न कर, जिससे पीछे पछताना पड़े। जो गरम दूध पीता है, उसके मुँह, जीभ और हृदय जलते हैं। सहसा कोई काम करनेका फल बुरा ही होता है।

"पञ्चतन्त्र" में भी लिखा है:—

सुहृद्भिराप्तैर सकृद्विचारितं,
स्वयञ्च बुद्धया प्रविचारिताश्रयम्।
करोति कार्य्यं खलु यः स बुद्धिमान्,
स एव लक्ष्म्यां यशसाञ्च भाजनम्॥

जो मित्र और आप्त पुरुषोंसे सलाह लेकर और अपनी बुद्धिसे विचारकर काम करता है, वह लक्ष्मी और यशका पात्र होता है।

सारांश—काम छोटा हो चाहे बड़ा, बुद्धिमान को ख़ूब सोच-समझकर करना चाहिये। जल्दबाज़ीका नतीजा सदा बुरा होता है।

दोहा—कारज अच्छो अरु बुरो, कीजै बहुत विचार।
बिना विचारे करत ही, होत रार अरु हार ॥१००॥

100. A wise man when about to act should carefully meditate beforehand on the results of that action whether it be good or bad. The fruit of actions done without pre-meditation burns the heart till death like a thorn.

स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां पचति च लशुनं चांदनैरिन्धनौघैः
सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैर्विलिखति वसुधामर्कमूलस्य हेतोः।
छित्त्वा कर्पूरखंडान्वृतिमिह कुरुते कोद्रवाणां समंता-
त्प्राप्येमां कर्मभूमिं न चरति मनुजो त्यस्तपो मंदभाग्यः
॥१०१॥

जो मन्दभागी इस कर्मभूमि—संसार—में आकर तप नहीं करता, वह निस्सन्देह उस मूर्खकी तरह है, जो लहसनको मरकतमणिके बासनमें चन्दनके ईंधनसे पकाता है अथवा खेतमें सोनेका हल जोतकर आककी जड़ प्राप्त करना चाहता है अथवा कोदोंके खेतके चारों तरफ कपूरके वृक्षोंको काटकर उनकी बाढ़ लगाता है।

यह संसार कर्मभूमि है। मनुष्य-देह बड़ी कठिनाईसे मिलती है। जो मनुष्य दुर्लभ मानव-जन्मको विषरूपी विषयोंमें वृथा गँवाता है, तपश्चरण नहीं करता, परमात्माकी आराधना-उपासना नहीं करता, वह परीक्षामें फेल होता और भयानक भूल करता है। मरकतमणिके बासनमें

चन्दनकी लकड़ियाँ जलाकर लहसन पकाना, जिस तरह मूर्खता है; उसी तरह मानव-देह पाकर विषय-वासनामें फँसा रहना भी मूर्खता है। जिस तरह कोदोंके खेतके चारों ओर कपूरके वृक्षोंकी बाढ़ लगाना नादानी है; उसी तरह मिथ्या जगत्‌के झूठे जंजालोंमें उम्र गँवाना भी नादानी है।

यदि मनुष्यको सब कामनाओंके पूर्ण करनेवाली अटूट लक्ष्मी मिल जाय तो क्या? यदि उदय अस्त तक साम्राज्य हो जाय तो क्या? अगर मनुष्य अपने सभी शत्रुओंको पदानत करले तो क्या? अगर धनसे मित्र और नातेदारोंकी प्रतिपालन और आदर सन्मान करले तो क्या? अगर सैकड़ों चन्द्रानना स्त्रियाँ हो जायँ तो क्या? अगर वह इस देहसे कल्प-भर भी जी ले तो क्या? अगर भवभयहारिणी ब्रह्मकी ज्योति हृदयमें न जगी, तो इन सब विभवोंसे क्या? तात्पर्य्य यह, ब्रह्मज्ञान या ईश्वरकी सच्ची भक्ति बिना ये सब व्यर्थ हैं। "भामिनी-विलास" में .खूब ही कहा है :—

पातालं व्रज या हि वा सुरपुरीमारोह मेरोः शिरः
पारावार परंपरा तर तथाप्याशा न शान्तास्तव।
आधिव्याधि पराहतो यदि सदा क्षेमं निजं वांछसि
श्रीकृष्णेति रसायनं-रसय! शून्यैः किमन्यैः श्रमैः॥

चाहे पातालमें जा, चाहे इन्द्रपुरीमें जा; चाहे सुमेरु पर्वतपर चढ़, चाहे सात समुन्दरोंके पार जा; तेरी आशा शान्त न होगी; इसलिये आधि-व्याधिसे पराहत हुए मन! यदि तू

अपना सदा भला चाहता है, तो श्रीकृष्ण रूपी रसायनको सेवन कर, वृथा और परिश्रमसे कोई लाभ नहीं।

महात्माओंने कहा है :—

भरमत भरमत आइया, पाई मानुष-देह।
ऐसो अवसर फिर कहाँ, नामहि जल्दी लेह॥
तुलसी बिलम न कीजिये, भजि लीजे रघुवीर।
तन तरकस ते जात है, श्वास सार सों तीर॥
धन यौवन यों जायगा, जा बिधि उड़त कपूर।
नारायण गोपाल भज, क्यों चाटे जग धूर॥
श्वास श्वास पै नाम भज, श्वास न विरथा खोय।
न जाने इस श्वास का, आवन होय न होय॥नानक॥

संसारमें आकर मनुष्यको अपना एक क्षण भी विना परोपकार और परमात्माके भजनके गँवाना गहरी नादानी है। जो अपने बनानेवालेको, जो अपने सब सुख देनेवालेको और क्षण-क्षण रक्षा करनेवाले स्वामीको ही भूलते हैं, वे बड़े कृतघ्न हैं। परमात्माकी भक्ति बिना जीवन वृथा खोनेवाले कृतघ्न कल्प-कल्पान्त तक नरकमें रहेंगे। कर्त्तव्य न पालन करनेवालोंके लिये ही नरकोंकी सृष्टि की गई हैं। इसलिये जिन्हें नरकोंसे बचना हो, जिन्हें जन्म-मरणके झगड़ेसे बचकर सदा-सर्वदा सुख भोगना हो, वे सब चिन्ताओंको छोड़कर परमात्माकी भक्ति और परोपकार करें; क्योंकि इस लोकमें मनुष्यके यही कर्त्तव्य हैं। मनुष्य इस कर्मभूमिमें



इस चित्रके देखनेसे मालूम होता है, कि मनुष्य कहीं जावे, शुभाशुभ कर्मोंके फल उसके साथ ही रहेंगे। (पृष्ठ ४४१)

उत्तमोत्तम कर्त्तव्य-कर्म करनेको ही भेजा गया है। स्वामी शंकराचार्य्य कहते हैं :—

कोवा ज्वरः प्राणभृतां हि चिन्ता।
मूर्खोऽस्ति को यस्तु विवेकहीनः॥
कार्य्या प्रिया का शिवविष्णुभक्तिः।
किं जीवनं दोषविवर्ज्जितं यत्॥

संसारमें जीवोंको ज्वर क्या है? चिन्ता। मूर्ख कौन है? विवेकहीन। कर्त्तव्य क्या है? शिव और विष्णु भगवान्की भक्ति। उत्तम जीवन कौनसा है? जो दूषण-रहित है।

सारांश—जिस आयुका एक क्षण भी मृत्युके समयसे नहीं बढ़ सकता, उस अमूल्य आयुको विषय-भोगोंमें नष्ट करना और अपना कर्त्तव्य पालन न करना, अपनी आयुको वृथा गँवाना है। नीचे हम चन्द उत्तमोत्तम उपदेशप्रद भजन और ग़ज़ल प्रभृति पाठकोंके उपकारार्थ लिखते हैं। पाठक उन्हें कण्ठाग्र करलें और अवकाशके समय गाया करें।

भजन। (नाटक की लय)

सुधार मन मेरे, बिगड़ी हुई को सुधार॥ टेक॥
खाने में सोने में खेलों में मेलों में, भूला फिरे क्यों गँवार॥१॥
खेलों तमाशों की यारों की बातों की, थोड़े दिनों की बहार॥२॥
दमड़ी पै चमड़ी पै मरता है गिरता है, बनता है क्यों तू चमार॥३॥
तुलसी हटाकर बोवे बबूरी, समझे ना सार और आर॥४॥
पावे तभी शान्ती राधेश्याम तू, सूझे जब सच्चा बिचार॥५॥

ग़ज़ल (राग सोरठ)।

किसे देख दिल, तू हुआ है दिवाना।
नहीं तेरी, इस ज़िन्दगी का ठिकाना॥ १॥
हज़ारों शहनशाह, हुए इस ज़मीं पर।
गये कूँच कर, जिन को जाते न जाना॥ २॥
जो पैदा है, ना-पैद होगा वह इक दिन।
फरा सो झरा, और बरा सो बुताना॥ ३॥
धरम एक हमराह, केवल चलेगा।
रहेगा पड़ा सब, यहीं पर ख़ज़ाना॥ ४॥
है धोखे की टट्टी, जहाँ में पुलन्दर।
समझ के चलो, मुल्क है ये बिगाना॥ ५॥
करो याद उसकी, जो मालिक जहाँका।
उसी की दया से, मिटै आना जाना॥ ६॥

भजन (लावनी)

पड़ लोभ मोह के जाल में, नर आयू क्यों खोता है॥ टेक॥
यह जग जान रैन का सुपना, जिसको कहता अपना-अपना,
भूल गया ईश्वर का जपना, फँसा हुआ धन-माल में,
क्या सुख की नींद सोता है॥१॥
चलै अकड़ बन छैल छबीला, अन्त समय सब हो जाय ढीला,
काम न आये कुटुम्ब कबीला, भूला जिनके ख्याल में,
कोई साथी नहीं होता है॥ २॥

अब क्यों सिर धुनि-धुनि पछितावे, रुदन करे और रौल मचावे,
कुछ नहिं तेरी पार बसावे, चूका पहिली चाल में,
क्या खड़ा-खड़ा रोता है ॥ ३ ॥

समझ सोच कर क़दम उठाना, मुशकिल है मानुषतन पाना,
कहै मुरारी जो हो दाना, भज हर को हर हाल में,
क्यों पाप-बीज बोता है ॥ ४ ॥

ग़ज़ल ।

जो मोहन में मन को लगाये हुए हैं।
वह फल मुक्त जीवन का पाये हुए हैं ॥ १ ॥
जो बन्दे हैं दुनियां के, गन्दे सरासर।
वह फन्दे में खुद को, फँसाये हुए हैं ॥ २ ॥
जो सोते हैं ग़फ़लत में, रोते हैं आख़िर।
वह खोते रतन, हाथ आये हुए हैं ॥ ३ ॥
पकड़ पाया, सतगुरुके दामनको जिसने।
वही है मगन, सब सताये हुए हैं ॥ ४ ॥

भजन ।

(राग सोरठ)

जीवन दिन चार का रे! ये मन मूरख फिरे मस्ताना ॥ टेक ॥
मन्दिर महल अटारी बँगले, नकदी माल खज़ाना।
जिस दिन कूँच करेगा मूरख, सब कुछ हो बेगाना ॥ १ ॥

कौड़ी-कौड़ी माया जोड़ी, बन बैठा धनवाना।
साथ न जाये फूटी कौड़ी, निकल जाय जब प्राना ॥ २ ॥
अपने आपको बड़ा जान के, क्यों करता अभिमाना।
तेरे जैसे तो लाखों चले गये, तू किस का महमाना ॥ ३ ॥
मान ले शिक्षा खन्नादास की, जो चाहे कल्याना।
परमारथ और नित्य कर्म कर, दे दीनों को दाना ॥ ४ ॥

भजन।

(राग ज़िला)

तुम देखो रे लोगो, भूल-भूलैयाँ का तमाशा ॥ टेक ॥
ना कोई आता ना कोई जाता, यही जगत का नाता।
कौन किसी की बहन भानजी, कौन किसी का भ्राता ॥ १ ॥
देह तलक तिरिया का नाता, पौली तक की माता।
मरघट तक के लोग बराती, हंस अकेला जाता ॥ २ ॥
लट्ठा पहने बुक भी पहने, पहने मलमल ख़ासा।
शाल-दुशाले सब ही ओढ़े, अन्त ख़ाक में बासा ॥ ३ ॥
कौड़ी-कौड़ी माया जोड़ी, जोड़े पाँच-पचासा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, संग चले नहिं मासा ॥ ४ ॥

भजन।

क्या देख दिवाना हुआ रे ॥ टेक ॥
माया बनी सार की सूली, नारी नरक का कूआ रे ॥ १ ॥
हाड़ चाम का बना पींजरा, तामें मनुआँ सूआ रे ॥ २ ॥

भाई-बन्धु और कुटुम्ब घनेरा, तिनमें पच-पच मूआ रे ॥ ३ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हार चला जग जूआ रे ॥ ४ ॥

दोहा—ज्यों हाँडी वैडूर्यकी, तामें लहसुन डारि ।
पकवत ताको बैठिकै, चन्दन लकड़ी जारि ॥
जोतत महि लै हेम हल, आक बपन के हेत ।
काटत वृक्ष कपूरके, रूँधत कोदव खेत ॥
तिमि मानुष तन पाइके, त्यागत है तप जौन ।
विषय भोग सेवत सदा, महामूढ़ है तौन ॥१०१॥

101. The wretched fellow who being born in this world, which is a field fit for (good) actions only does not perform penances is like a man who cooks garlick in a kettle set with precious Vaidurya gems with fuel made of sandal sticks, or tills the land with a plough fitted with the golden ploughshare for the sake of sowing the roots of Arka plants or cutting a Camphor tree into lags makes a fencing of them round the Kodrava plants (an inferior sort of vegetable).

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रुञ्जयत्वाहवे ।
वाणिज्यं कृषिसेवनादिसकला विद्याः कलाः शिक्षतु ॥
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं
नाभाव्यं भवतहि कर्म वशतोभाव्यस्यनाशःकुतः॥१०२

चाहे समुद्रमें ग़ोते लगाओ; चाहे सुमेरुके सिरपर चढ़ जाओ; चाहे घोर युद्धमें शत्रुओंको जीतो; चाहे खेती वाणिज्य-व्यापार और सेवा प्रभृति सारी विद्या और कलाओंको

सीखो; चाहे बड़े प्रयत्नसे पखेरुओंकी तरह आकाशमें उड़ते फिरो; परन्तु प्रारब्धके वशसे अनहोनी नहीं होती और होनहार नहीं टलती।

यही बात एक और कवि महाशयने भी कही है:—

आकाशमुत्पततु गच्छतु वा दिगन्त—
मम्भोनिधिं विशतु तिष्ठतु वा यथेच्छम्।
जन्मान्तरार्जित शुभाशुभ कृन्नराणां
छायेव न त्यजति कर्मफलानुबन्धः॥

चाहे आकाशमें जाओ, चाहे दिशाओंके छोर तक जाओ, चाहे समुद्रमें घुसो, अथवा मनमें आवे जहाँ जाओ और रहो—जन्मजन्मान्तरके किये कर्म मनुष्यका पीछा इस तरह नहीं छोड़ते, जिस तरह छाया मनुष्यका पीछा नहीं छोड़ती।

और भी किसीने .खूब कहा है—

नहि भवति यन्न भाव्यं, भवति च भाव्यं प्रयत्नत्।
करतल गतमपि नश्यति, यस्य हि भवितव्यता नास्ति॥

जो होनहार नहीं है, वह नहीं होती और जो होनहार है, वह हर तरहसे होकर रहती है; जिसकी होनहार नहीं होती, वह हाथमें आया हुआ भी नष्ट हो जाता है।

महात्मा शेख़ सादीने भी गुलिस्ताँमें कहा है:—

"संसारमें दो बातें असम्भव हैं:—

(१) भाग्यमें लिखा है, उससे अधिक सुख भोगना।

(२) नियत समयसे पहले मरना।

"ऐ रोज़ी—जीविका चाहनेवाले! भरोसा रख, तुझे बैठे-बैठे खानेको मिलेगा और तू, जिसको यम-मन्दिरसे बुलावा आगया है, भाग मत; तू कहीं क्यों न जाय, भाग कर बच न सकेगा। हाँ, अगर तेरे मरनेका दिन अभी नहीं आया है, तो तू शेरोंके मुँहमें ही क्यों न चला जाय, वे तुझे हरगिज़ न खायँगे।"

बलिहारी है इस उपदेशकी! क्या ही ख़ूब नसीहत दी है! मनुष्य समझे तो समझ सकता है, कि उसे अपने भले-बुरे कर्मोंके फल तो भोगने ही होंगे। उनसे वह किसी तरह पीछा नहीं छुड़ा सकता। अगर भाग्यमें राज्य लिखा है, तो राज्यकी इच्छा त्यागकर बनमें भागनेसे भी राज्य करना ही होगा। यदि मनुष्य निर्जन बनमें भी अकेला बैठा रहे, तो वहाँ भी उसे खानेको पहुँचेगा; बशर्त्ते कि उसके पूर्वजन्मके पुण्य हों और पुण्योंके कारणसे आयु हो। अगर मनुष्यको शत्रु शेरके पिंजरेमें भी डाल दे, पर यदि उसके पूर्वजन्मके पुण्य होंगे, तो शेर उसे न खायगा; चाहे शेरको वह दीखे नहीं; चाहे शेर अन्धा हो जाय और चाहे शेरके उदर-शूल प्रभृति कोई व्याधि ही खड़ी हो जाय। अगर मनुष्यके पुण्य क्षीण हो गये हैं और इससे उसकी आयु शेष हो गई है, तो वह चाहे जहाँ छिपता फिरे, चाहे सात तालोंके भीतर बन्द होकर, लाखों फौज-पल्टन पहरेपर खड़ी करले;

पर उसके प्राण नहीं बचेंगे। उसकी मौत उसकी छायाकी तरह हर जगह उसके साथ रहेगी*। इस मौक़ेका एक क़िस्सा हमें याद आया है, उसे हम पाठकोंके ज्ञान-लाभार्थ नीचे लिखते हैं:—

राजा और मस्त हाथी।

जीवात्मा और कर्म्म।

—::०::—

एक राजा एक हाथीपर सवार होकर कहीं जा रहा था। हाथी बदमाश था। किसी कामसे राजा नीचे उतरा, तो हाथी अपनी सूँड़से राजापर आक्रमण करने लगा। भयके मारे राजा भागा और भागते-भागते एक अन्धे कूएँमें जा गिरा। उस कूएँकी एक बग़लमें एक पीपलका वृक्ष खड़ा था। उस वृक्षकी जड़ें कूएँके भीतर थीं और उसने आधा कूँआ घेर रखा था। घबराहटमें भागते-भागते राजा जो कूएँमें गिरा, तो उसका सिर नीचे और पैर ऊपरको हो गये। क्योंकि वह उस पीपलके पेड़की जड़ोंमें उलझ गया। राजा न नीचे ही जा सकता था और न ऊपर ही आ सकता था। वह हाथी भी राजाका पीछा करता हुआ उसी कूएँपर आगया और राजाके बाहर निकलनेकी राह देखने लगा। राजाकी नज़र नीचे गई, तो उसने क्या देखा, कि

* While we flee from our fate, we like fool rush on it—Buchanan.

भयङ्कर कालसर्प, विसखपरे, बिच्छू, कनखजूरे प्रभृति भयानक-भयानक जानवर ऊपर की तरफ मुँह किये हुए खुश हो रहे हैं, कि हमारा भक्ष्य आया। राजा उन्हें देखते ही काँप उठा। राजाने ऊपर की ओर देखा, तो क्या देखता है, कि दो चूहे, जिनमेंसे एक काला और एक सफेद था, जिस जड़ में राजाके पैर उलझे हुए थे, उसे काट रहे हैं। राजा घबरा गया, कि थोड़ी ही देरमें इनके जड़ काट देते ही, मैं नीचे गिरूँगा और सर्प तथा अजगर प्रभृति जीवोंका भोजन बनूँगा। उसने, फिर किसी तरह ऊपर चढ़कर, निकल भागनेका विचार किया और कूएँके धुर ऊपर दृष्टि फेंकी, तो क्या देखा, कि वही दुष्ट हाथी खड़ा है। उसने सोचा, कि मेरे ऊपर जाते ही हाथी मुझे चीर डालेगा। राजा सब ओर आफ़त देखकर बहुत ही घबराया। उस पीपलके वृक्षमें मधु-मक्खियोंका एक छत्ता था। उससे मधुकी बूँदें टपकती थीं। उनमेंसे कोई-कोई बूँद राजाके मुँहमें भी जा गिरती थी। उसी शहदके चाटनेमें राजा सारी आफ़तोंको भूला हुआ था। बाज़-बाज़ वक्त तो वह शहदके मज़ेमें ऐसा ग़र्क़ हो जाता था, कि उसे इस बातका भी ख़याल न रहता था, कि चूहोंके जड़ काट देते ही मेरी क्या दुर्दशा होगी। किसीने ख़ूब कहा है :—

ग़ज़ल।

तू क्या उम्र की शाख़ पर सो रहा है।
तुझे कुछ ख़बर है, कि क्या हो रहा है॥ १॥

कतरते हैं जिसको, चूहे रात-दिन दो।
तू इस पर पड़ा, बेख़बर सो रहा है ॥ २ ॥
खड़ा नीचे है, मौत का मस्त हाथी।
तेरे गिरने का, मुन्तज़िर हो रहा है ॥ ३ ॥
ऐ न्यामत ! ये टहनी, गिरा चाहती है।
विषय-बूँद पर, क्यों तू जाँ खो रहा है ॥ ४ ॥

इस दृष्टान्तका बड़ा गहरा मतलब है ❀। इसके समझनेसे आँखें खुल जाती हैं। आयुकी अस्थिरता—चंचलता आँखोंके

❀ इसमें राजा = जीवात्मा, हाथी = कर्म, सफेद चूहा = दिन, काला चूहा = रात, पीपलका वृक्ष = आयु, अन्धा कूआँ = गर्भाशय; बिच्छू प्रभृति = काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ प्रभृति और मधु = विषय।

जब जीवात्मा-रूपी राजा कर्मरूप हाथीसे उतरना चाहता है, तब कर्मरूप हाथी उसे खेदकर गर्भाशय-रूपी अन्धे कूएं में डाल देता है। आयु-रूपी वृक्षकी जड़में राजा-रूपी आत्माका पैर उलझा रहता है। गर्भाशयमें बच्चा नीचे सिर और ऊपर पैर करके उसी तरह रहता है ; जिस तरह राजा वृक्षकी जड़में उलझकर लटक रहा था। राजा-रूपी जीव नीचेकी ओर देखता है; तो काम क्रोधरूपी सर्प, बिच्छू वग़ैरः खानेकी इच्छासे मुंह बाये दीखते हैं; ऊपर देखता है, तो आयु-रूपी जड़को दिन-रात रूपी चूहे काटते मालूम होते हैं ; कूएँके बाहर सूँड़से धकेलनेको हाथी-रूपी कर्म दीखता है। पर राजा-रूपी जीवात्मा पेड़में लगे छत्तेके विषय-रूपी शहदकी बूँदोंकी चाटमें सब दुःखोंको भूलकर लटका रहता है। जब चूहे जड़ काट देते हैं, तब पछताता और गर्भाशय-रूपी कूएँ में जा गिरता है ; यानी फिर जन्म लेता है। तात्पर्य्य यह कि किये हुए कर्मका फल भोगे बिना कोई बच नहीं सकता। जो किसी तरह बच जाते हैं या आत्महत्या कर लेते हैं, उन्हें कर्मरूपी हाथी गर्भाशय-रूपी कूएँ में फिर गिरा देता है। वे फिर जन्म लेते और कर्मफल भोगते हैं।

सामने आ जाती है, पर हम यहाँ इससे इतना ही समझावेंगे, कि मनुष्य कहीं क्यों न जावे; उसके शुभाशुभ कर्मोंके फल उसके साथ ही रहेंगे। राजाने प्राणरक्षाकी भरसक चेष्टा की, पर कर्मवश उसे कूएँ में भी हर तरफ मौत-ही-मौत दीखने लगी। मतलब यह कि, कर्म अपना फल भुगाये बिना हरगिज़ पीछा नहीं छोड़ता। इसीलिये किसीने ठीक ही कहा है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतकर्म शुभाशुभम्।
नाभुंक्ते क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतरपि॥

अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल अवश्य भोगना होता है; बिना भोगे कर्मका फल सौ करोड़ कल्पमें भी क्षय नहीं होता।

सारांश—जो होनी है, वह होकर रहेगी और अनहोनी होगी नहीं।

दोहा—जलधि डूब चह मेरु चढ़, विद्या रिपु व्यौपार।
अनहोनी होवे न कहुँ, होनी अमिट विचार॥१०२॥

102. Let a man dive into the Ocean or let him ascend the top of the (golden) Meru mountain. Let him conquer his enemies in the battlefield or let him learn all sorts of arts and sciences such as commerce and agriculture etc. Let him fly up into the sky like a bird after making strenuous efforts. (But in spite of all this) what is not to be never happens in this world, because everything is subject to actions (done previously). Moreover whatever is to be can not be prevented.

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं
सर्वो जनः सुजनतामुपयातितस्य ।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा
यस्यास्ति पूर्व सुकृतं विपुलं नरस्य ॥ १०३॥

जिस मनुष्यके पूर्वजन्मके उत्तम कर्म—पुण्य—अधिक होते हैं, उसके लिये भयानक वन नगर हो जाता है, सभी मनुष्य उसके हितचिन्तक मित्र हो जाते हैं और सारी पृथ्वी उसके लिये रत्नपूर्ण हो जाती है।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं :—

गरल सुधा रिपु करै मिताई, गोपद सिन्धु अनल सितलाई।
गरुअ सुमेरु रेणु-सम ताही, राम कृपा करि चितवहिं जाही॥

सच है ; जिसके पूर्वजन्मके पुण्य होते हैं, उसके लिए जङ्गलमें मङ्गल होता है, उसके कट्टर शत्रु भी उसके पक्के मित्र हो जाते हैं और उसकी रात-दिन हितचिन्तना और खुशामद करते हैं, वह जहां नजर डालता है, वहीं उसे धन-ही-धन दिखाई देता है और वह मिट्टी छूता है तो सोना हो जाता है। जब तक पुण्यका ओर नहीं आता, तब तक सुन्दर भवन, विलासवती युवतियाँ, दासदासी और छत्र-चामर आदि विभूति सभी कुछ स्थिर रहते हैं ; पर पुण्योंका क्षय होते ही ; वे सब वैभव रस-केलिकी कलहमें टूटी हुई मोतियोंकी लड़ीकी तरह विलायमान हो जाते हैं। तात्पर्य्य यह है, पुण्यवान्‌का

सर्वत्र मङ्गल है। उसका न कोई शत्रु होता है और न उसे किसी प्रकारका कष्ट या अभाव ही होता है।

दोहा—वन पुर ह्वै, जग मित्र ह्वै, कष्ट भूमि ह्वै यत्न।
पूरबपुण्यहि पुरुषके, होत इते बिन यत्न ॥१०३॥

103. A dreary forest becomes a great city and all men become friendly and the whole world is filled with near lying precious gems to him who has a store of previously done good deeds.

को लाभो गुणिसङ्गमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रतिः॥
कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा कानुव्रता किं धनं
विद्या किंसुखमप्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाफलम् ॥१०

लाभ क्या है? गुणियोंकी संगति। दुःख क्या है? मूर्खोंका संसर्ग। हानि क्या है? समयपर चूकना। निपुणता क्या है? धर्मानुराग। शूर कौन है? इन्द्रिय-विजयी। स्त्री कैसी अच्छी है? जो अनुकूल और पतिव्रता है। धन क्या है? विद्या। सुख क्या है? प्रवासमें न रहना। राज्य क्या है? अपनी आज्ञाका चलना।

प्रश्नोत्तरके रूपमें, योगिराज कैसी अमूल्य-अमूल्य शिक्षाएँ दे रहे हैं! हम प्रायः इन्हींके जोड़के दो श्लोक, स्वामि शंकराचार्य महाराजकी "प्रश्नोत्तरमाला"से, पाठकोंके लाभार्थ, नीचे देते हैं:—

विद्याहि का, ब्रह्मगतिप्रदाया।
बोधोहि को, यस्तु विमुक्ति हेतुः॥

को लाभः, आत्मावगमोहि यो वै।
जितं जगत्केन, मनोहि येन॥
किं दुर्लभः सदगुरुस्ति लोके।
सत्संगतिर्ब्रह्मविचारणा च॥
त्यागो हि सर्व्वस्य शिवात्मबोधः।
को दुर्जयस्सर्वजनैर्मनोजः॥

विद्या क्या है? ब्रह्मगति देनेवाली। बोध क्या है? विमुक्तिका कारण। लाभ क्या है? आत्मप्राप्ति या अपने स्वरूपको पहचानना। जगत्को जीतनेवाला—जगत्-विजेता कौन है? जिसने मनको जीता है।

संसारमें दुर्लभ क्या है? सद्गुण, सत्संग और ब्रह्मविचार। सब कुछ त्याग देनेवाला कौन है? कल्याणरूप ज्ञान (शिवात्मबोध)। दुर्जय कौन है? कामदेव।

पाठक! समझे? कैसी अनमोल शिक्षा हैं! आप इनको कई कई बार पढ़ें और इनपर विचार करें। एकान्तमें, तर्क-वितर्कके साथ, इनको समझनेकी चेष्टा करनेसे अपूर्व आनन्द आवेगा।

अगर आप चाहते हैं, कि हम संसारमें रहकर सुख पावें, जन्म-मरणके फन्देसे बचें, परमात्माकी भक्ति करें; तो आप इनपर अमल करें, पढ़कर यदि अमल न किया, तो वृथा समय नष्ट किया। पढ़कर, पढ़े हुये पर जो अमल करता है और उसके अनुसार चलता है, वही वास्तविक विद्वान् है।

छप्पय—कहा लाभ ? सतसंग, कहा दुख ? मूरख-संगत ।
समय नाश बड़ हानि, सुघड़ रंग धर्म की रंगत ॥
सुख का ? रहै स्वदेश, शूर को ? इन्द्रीजित नर ।
धन का ? विद्या, प्रियतमा को ? नारि आज्ञातत्पर ॥
शुठि राज वही सुखमूल, जो आज्ञाकारी प्रजाजन ।
अरु जन्म सुफल सोइ जानिये, जो गिरिधर मँह रहाहि मन॥१०४॥

104. what is the gain ? The society of the meritorious. Wherein lies the harm ? In keeping company with the ignorant. What is loss ? Missing an opportunity. What is wisdom ? Love for what is right. Who is a brave man ? One who controls his senses. What is dearest ? A faithful wife. What is wealth ? Knowledge. What is comfortable ? Living at home. What is a kingdom ? A place where one's orders are obeyed.

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः ।
परपरिवादनिवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मंडिता बसुधा ॥१०५

जो अप्रिय बचनोंके दरिद्री हैं, प्रिय बचनोंके घनी हैं, अपनी ही स्त्रीसे सन्तुष्ट रहते हैं और पराई निन्दासे बचते हैं,—ऐसे पुरुषोंसे कहीं-कहींकी ही पृथ्वी शोभायमान् है ।

खुलासा—जिसके यहाँ कड़वे बचनोंका घाटा है, पर प्रिय बचनोंका घाटा नहीं है ; जो अपनी ही स्त्रीसे खुश रहते हैं और पराई निन्दासे नफ़रत करते हैं,—ऐसे पुरुष-रत्न इस जगत्में कहीं-कहीं ही हैं, अर्थात् विरले हैं ।

मधुर-भाषण।

—::०::—

सत्पुरुषोंके यहां चाहे और संसारी चीज़ोंका अभाव हो, पर मीठे बचनोंका अभाव नहीं होता। सत्पुरुष धनके दरिद्री हों तो हों, पर मीठे बचनोंके दरिद्री नहीं होते। जो उनके पास जाता है, जो उनसे मिलता है, उसे वे अपने अमृत-समान प्रिय बचनोंसे अपने वशमें कर लेते हैं। कहा है—

तृणानिभूमिरुदकं वाक चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

चटाई, ज़मीन, जल और सत्य-सहित प्रिय वाक्य,—इनसे भले आदमियोंका घर कभी ख़ाली नहीं होता; यानी सज्जनोंके घरमें दरिद्र होनेपर भी ये तो अवश्य ही होते हैं।

प्राणिमात्रपर दया, मित्रता, दान और मधुर वाणी—इनके समान वशीकरण जगत्में और नहीं है। कहा है—

तुलसी मीठे वचन तें, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण यह मंत्र है, परिहर वचन कठोर॥
कोऽतिभारः समर्थानां, किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सविद्यानां, कः परः प्रियवादिनाम्॥

समर्थ पुरुषोंको बड़ा भार क्या है? व्यवसायियोंको दूर कौनसी जगह है? विद्वानोंके लिये विदेश कौनसा है? प्रिय बोलनेवालोंको ग़ैर कौन है?

मधुर-भाषणसे पराये भी अपने हो जाते हैं और वज्रहृदय भी मोम हो जाते हैं। अँगरेज़ीमें एक कहावत है—"Soft words win hard hearts." नर्म लफ़्ज़ सख्त दिलोंको जीत लेते हैं। और भी एक कहावत है—"Kind words are as a physician to an afflicted spirit." दुखियाके लिये दयापूर्ण शब्द चिकित्सकके समान होते हैं।

कठोर-भाषण।

—:o:—

मधुर भाषणकी जगत्के सभी विद्वानों और महापुरुषोंने बड़ी महिमा लिखी है, इसलिये सभी समझदारोंको भूलकर भी किसीसे कड़वी बात न कहनी चाहिये। कठोर वचनसे घनिष्ट मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। कठोर बचन बोलनेवालेकी सभी अहित कामना करते हैं। कटुवादीको कोई साहाय्य नहीं करता। कटुवादीसे सफलता दूर भागती है और लक्ष्मी उससे घृणा करती है। कठोर बचनका शल्य हृदयमें लगकर उखड़ता नहीं, वरन् सदा खटका करता है। तीरका ज़ख़्म अच्छा हो जाता है; पर ज़बानका ज़ख़्म जीवन-भर अच्छा नहीं होता। कहा है:—

रोहते शायकैर्विद्धं, वनं परशुनाहतम्।
वाचादुरुक्तं वीभत्सं, नापि रोहति वाक्क्षतम्॥

वाणका घाव भर जाता है, कुल्हाड़ेसे काटा वृक्ष फिर हरा हो जाता है; पर कठोर वाणीसे हुआ घाव कभी नहीं भरता।

बाक्यबाण नहिं छोड़िये, तीक्ष्णतायुत जोय।
कटुबचन कुरुकुल हन्यों, भीम क्रोधवश होय॥
नहिं विवाद मदान्ध हो, करै न पर पै खीस।
परुषवचन सों कृष्णने, काटो चेदिप सीस॥

महापुरुष, भूलमें भी, किसीका दिल दुखानेवाली बात नहीं कहते ; क्योंकि ये पराया दिल दुखानेको ही सबसे बड़ा पाप समझते हैं। इतना ही नहीं, महापुरुष अपने तईं गाली देनेवालेको भी गाली नहीं देते, क्योंकि उनके पास कठोर वचन या गाली होती ही नहीं, दें कहाँ से? जिसके पास जिस चीज़का अभाव होगा, वह उसे कहाँसे देगा ?

एक महात्माको दुष्ट लोग वृथा ही सताया करते थे। उनके ऊपर शल्यसम कठोर बचनों और गालियोंकी बौछार किया करते थे; पर वे बदलेमें मीठी-मीठी बातें ही कहा करते थे। एक बार तंग होकर वे कहने लगे—

"ददतु ददतु गालिर्गालिवन्तो भवन्तो।
वयमिह तदभावाद गालिदानेप्यशक्तः॥
जगति विदितमेतद् दीयते विद्यते तत्।
नहि शशकविषाणं कोपि कस्मै ददाति॥

दो, दो, आप गालिवन्त हैं ; कोई धनवान् होता है, कोई बलवान् होता है, आप गालीवान् हैं। पर मेरे पास तो कठोर बचन और गालियोंका दरिद्र है; मैं गाली कहाँसे

लाऊँ? संसार जानता है, जिसके पास जो चीज़ होती है, उसे ही वह दूसरेको दे सकता है। ख़रगोश अपने सींग क्यों नहीं देता? भैया! मैं तो पण्डितराज जगन्नाथके इस क़ौलपर चलता हूँ :—

'अपि बहलदहनजालं मूर्ध्नि
रिपुर्मे निरन्तरं घमतु।
पातयतु वासिधारामहमणुमात्रं
न किंचिदपभाषे॥'

दुश्मन चाहे मेरे सिरपर लगातार आग जलाते रहें, चाहे मुझपर तलवारकी चोटें करें; पर मैं ज़रा भी अप-भाषण न करूँ; यानी मेरे मुँहसे कोई ख़राव शब्द न निकले।"

सज्जनोंका स्वभाव ही होता है, कि वे अपने हानि पहुँचानेवालेका भी भला ही करते हैं; गाली देनेवालेका मधुर बचनोंसे समादर करते हैं और मारनेवालेके सामने अपना सिर कर देते हैं *। आमके वृक्षपर लोग पत्थर मारते हैं, मगर वह उत्तम फल प्रदान करता है। दूधको लोग चाहे कितना ही तपावें, चाहे कितना ही विकृत करें और कितना ही मथें; पर वह प्रहार—चोट सहता हुआ भी, अपने प्रहारकर्त्ताओंके लिये चिकनाई—घी ही देता है। जो लोग सज्जनोंका

* "Love is to be won by affectionate words." Pr.
"Yield to your opponent; by so doing you will come off victor in the end."—Ovid.

अनुकरण करते हैं ; सज्जन और दुर्जन, मित्र और शत्रु सबसे मीठा बोलते हैं ; वे मधुरवाणीवाले मोरकी तरह सबके प्यारे होते हैं। जो प्रिय बोलते हैं, प्रियके सत्कारकी इच्छा करते हैं, वे श्रीमान् सबके वन्दनीय हैं; वे मनुष्य-शरीरमें होते हुए भी देवता हैं। गोस्वामीजी कहते हैं :—

ज्ञान गरीबी गुण धरम, नरम बचन निरमोष।
तुलसी कबहुँ न छाँड़िये, शील सत्य सन्तोष॥

स्त्री—दुःख और नरककी मूल है।

——::०::——

स्त्री वास्तवमें विष है, पर वह अमृतसी दीखती है। अथाह जलमें डूबनेसे आदमी बच सकता है ; पर स्त्रीमें डूबनेसे नहीं बच सकता। भक्ति, मुक्ति और ज्ञानकी स्त्री दुश्मन है और परमात्माके मिलनेकी राहमें दुर्गम घाटी है। स्त्री अपने तीखे नयन-बाणोंसे पुरुषको मदिराकी तरह मतवाला कर देती है और उसे अपनी इच्छानुसार चलाती है। स्त्री दीपक है और पुरुष पतंग है। पुरुष अज्ञानसे, उसके मिथ्या रूपपर मुग्ध होकर, अपना लोक-परलोक गँवाता है। स्त्री संसार-बन्धनमें बाँधनेवाली, दुःखोंकी मूल—ममताकी जड़, नरकका द्वार और हर तरह अविश्वास-योग्य है—उसकी प्रीतिका कुछ भी भरोसा नहीं; वह करवट बदलते-बदलते पराई हो जाती है। अपने सुख और स्वार्थके लिये वह

पुरुषको मतवाला करके, उससे कौन-कौनसे नीच कर्म नहीं कराती ? उसीके कारण पुरुष जने-जनेके कठोर वचन सहता, अपमानित होता, आदमी-आदमीकी खुशामद करता और नाना प्रकारके दुःख भोगा करता है। ऐसी दुःखोंकी खान और नरककी नसैनी—स्त्रीके पीछे जो मरे मिटते हैं, वे क्या बुद्धिमान हैं ? जो ऐसी एक स्त्रीके घरमें होनेपर भी सन्तुष्ट नहीं रहते—और भी स्त्रियोंको चाहते हैं; यहाँ तक कि पराई स्त्रियोंपर भी नीयत डिगाते हैं,—उन अधर्म्मियोंको क्या कहें ? पूर्वजन्मके पापोंसे उनकी बुद्धि मारी गई है।

संसारीको स्त्री बिना सुख नहीं।

———::०::———

बारीक नज़रसे देखनेपर स्त्री महा गन्दी और लोक-परलोक नशानेवाली मालूम होती है ; पर उसके बिना संसार चल ही नहीं सकता। स्त्री न हो ; तो परमात्माकी सृष्टि ही लोप हो जाय—उस खिलाड़ीका सारा खेल ही बिगड़ जाय, संसार मनुष्यशून्य हो जाय ; स्त्री ही पुरुषोंकी खान है। उसीसे ध्रुव, प्रह्लाद, भागीरथ, रामचन्द्र, कृष्ण, अर्जुन, भीम, मान्धाता और हरिश्चन्द्र जैसे महापुरुष पैदा हुए हैं। वह हज़ारों दोष होनेपर भी अच्छी है, पत्थर होनेपर भी रत्न है, विष होनेपर भी अमृत है। स्त्री ही घरकी शोभा और लक्ष्मी है। बिना स्त्री घर, घर नहीं, बन है। जिस तरह बिना मित्रके पुरुष—

निर्जीव देह है$; उसी तरह बिना स्त्रीके भी पुरुष जीव-रहित शरीर है। स्त्री और पुरुष दोनोंसे एक देह बनती है। अतः बिना स्त्री पुरुष अधूरा है †। स्वास्थ्य और अच्छी स्त्री—ये ही दो संसारके सच्चे सुख हैं। अपना निजका घर और अपनी पतिव्रता स्त्री सुवर्ण और मोतियोंके समान मूल्यवान् हैं §। बिना स्त्रीके हमें हमारे जीवनके आरम्भमें साहाय्य करनेवाला नहीं; जीवनके दौरानमें सुखी करनेवाला नहीं और जीवनके अन्तिम दिनोंमें तसल्ली और तशफ़्फ़ी करनेवाला नहीं ‡। अत्यागियोंको संसारमें स्त्री बिना ज़रा भी सुख नहीं। इतना ही नहीं, बिना स्त्री धर्मकार्य्य भी उचित रूपसे सम्पादित नहीं हो सकते। इसीसे अनेक ऋषि-मुनि, बनवास करते हुए भी, स्त्रियोंको रखते थे और परमात्माकी सृष्टिको बढ़ाते थे। अतएव कट्टर त्यागियों या योगी-संन्यासियोंके सिवा, पुरुषमात्रको स्त्री त्याग देना उचित नहीं।

अपनी ही स्त्रीसे सन्तुष्ट रहो।

अपनी स्त्री कैसी ही बुरी-बावली हो, पुरुषको उसे ही अप्सरा समझकर, उसीसे अपना चित्त सन्तुष्ट करना चाहिये। अपनी

$ He who is without a friend is like a body without a soul. It Pr.

† Either sex alone is half itself.—Tennyson.

§ A hearth of one's own and a good wife are worth gold and pearls.—Goethe.

‡ But for women, our life would be without help at the outset, without pleasure in its course, and without consolation at the end.—Jony.

स्त्रीके कुरूपा या बदशकल होनेपर भी पराई स्त्रीपर मन न डिगाना चाहिये,—पर-स्त्रियोंको अपनी माताके समान समझना चाहिये। जैसी ही अपनी स्त्री, वैसी ही पराई। पराई स्त्रीमें हीरे नहीं लटकते; पर नादानोंको अपनी अच्छी चीज़ भी अच्छी नहीं मालूम होती और पराई बुरी भी अच्छी मालूम होती है। इसका कारण ? कारण अपनी स्त्री हर समय नेत्रोंके सामने रहती है। मनुष्यका स्वभाव है कि उसे सुलभ वस्तु बुरी और दुर्लभ अच्छी लगती है ❀। कहा है:—

"सुलभ वस्तु सब जनन सों, ह्वै जग आदरहीन।
परिहरि ज्यों निज नारि जन, ह्वैं परनारी लीन॥

एक पाश्चात्य विद्वान्ने भी प्रायः यही बात कही है—दूसरोंकी चीज़ हमें बहुत प्यारी लगती है और हमारी चीज़ दूसरोंको प्यारी लगती है †।" मनुष्यका स्वभाव ही कुछ ऐसा है, कि उसे पराई थालीका भोजन अपनी थालीके भोजनसे अच्छा मालूम होता है।

पर-स्त्री सब तरह हानिकर है।

जो लोग कहा करते हैं, कि अपनी व्याहता स्त्रीमें दोष नहीं; उन्हें समझना चाहिये, कि प्रायः अपनी और पराई सभी स्त्रियाँ

❀ We disregard the things which lie under our eyes ; indifferent to what is close at hand, we inquire after things that are far away—Pliny.

† That which belongs to others pleases us most; that which belongs to us pleases others more.

नागिन हैं, सभी पुरुषोंका बलवीर्य हरण करतीं और अन्तमें नरकमें ले जाती हैं। अपने कूएँ में गिरनेवाला क्या बच जाता है? अपने कूएँ और पराये कूएँ दोनोंमें ही गिरनेवाला मरता है। अपना विष और पराया विष दोनों ही खानेसे प्राण-नाश करते हैं; अपनी आग और पराई आग दोनों ही से शरीर जलता है। तात्पर्य यह, कि अपनी और पराई सभी स्त्रियाँ हानिकारक हैं। फिर भी; अपनी स्त्रीसे उतनी हानि नहीं; जितनी पराईसे है। अपनी स्त्री पतिव्रता हो, तो चतुर पुरुष, गृहस्थाश्रममें रहकर भी, स्वर्ग और मोक्ष लाभ कर सकता है; पर पराई स्त्रीसे सिवा हानिके कोई भी लाभ नहीं। पराई स्त्री धन और यौवनको नाश करनेवाली और अन्तमें नरकमें ले जानेवाली है। परनारियोंके सम्बन्धमें अनुभवी पुरुष कहते हैं—

पर नारी पैनी छुरी, तीन ठौरतें खाय।
धन छीजे जोवन हरे, मुए नरक ले जाय॥

जिस तरह कठोर भाषण बुरा है, जिस तरह परस्त्रियोंपर मन चलाना बुरा है, उसी तरह परनिन्दा करना भी बुरा है। निन्दकसे बढ़कर पापी नहीं; अतः बुद्धिमानको सच्ची और झूठी कैसी भी निन्दा न करनी चाहिये।

शिक्षा—सदा मीठा बोलो, अपनी ही स्त्रीसे प्रसन्न रहो और परनिन्दासे काल-सर्पकी तरह डरो। सत्पुरुष इसी राहपर चलते हैं। इस राहपर चलनेवालोंका सदा कल्याण

होता है। पाठक! हम आपके गानेके लिये, इन्हीं उपदेशोंसे भरे हुये, चन्द गाने आपकी नज़र करते हैं:—

भजन।

बचन तू मीठा बोलरे, वाणी का बाण बुरा है॥ टेर॥
जिसकी वाणीमें मीठापन है, उसको सबही जगह अमन है।
दिल चाहे जहाँ डोल॥ १॥ वाणी का बाण बुरा है॥
इसी बाणीसे मीत गहरी, हा! हा! येही बना दे वैरी; कलेजा डाले छोल॥२॥ बाणी का बाण बुरा है॥ इसको मित्र शत्रु सब जानें; कोयल और काक पहचानें, देत जब मुखड़ा खोल॥३॥ बाणी का बाण बुरा है॥ बाणी ने हव्वा बताया, बच्चोंको लू लू बनाया; बैठ गई सुन कर हौल॥४॥ बाणी का बाण बुरा है। सबकी क़ीमत होती है, हीरा माणिक मोती है; नहिं बाणीका मोल॥५॥ बाणीका बाण बुरा है॥ कहैं तेजसिंह सच बोलो, मत असत्य का मुँह खोलो; है जिसकी कच्ची तोल॥६॥ बाणी का बाण बुरा है॥

भजन (राग सोरठ)

राज़ी हों उससे सन्तजन, जो शुद्धचित्त उदार हो॥ टेर॥
मद मोह ममता काम लालच, त्याग बुद्धि विचार हो।
तन मन वचन निष्पाप निशि दिन, शौच और आचार हो॥ १॥
मिथ्या वचन बोलो नहीं, और सत्य सब व्यवहार हो।
तज के कपट छल बल सभी, प्रभु के जनों से प्यार हो॥ २॥

कहनी बो करनी एकसी, नहिं जिसके मनमें विकार हो।
परदारा परधन से डरै, सोई जीव जग से पार हो॥३॥
संसार जाने स्वप्न-सम, जागृत में नित होशियार हो।
राखे दया उर जीव की, हिंसा तजै सुख सार हो॥४॥
बोले रस बानी मधुर, और चित्त में पर उपकार हो।
जग जीत पावे परम पद, उसकी कहीं न हार हो॥५॥

दोहा—*अप्रिय वचन दरिद्र तजि, प्रीति वचन धनपूर।*
निज तियरति निन्दारहित, वे महिमण्डल शूर॥१०६॥

106. The earth is very scantily peopled with men who are sparing in speaking harsh words, who are lavish of pleasing speech, who are contented with their own wives and who never speak ill of others.

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्ते-
र्न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम्।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्ने-
र्नाधः शिखा याति कदाचिदेव॥१०७॥

धैर्य्यवान् पुरुष घोर दुःख पड़नेपर भी अपने धैर्य्यको नहीं छोड़ता; क्योंकि प्रज्वलित अग्निके उल्टी कर देनेपर भी, उसकी शिखा ऊपर ही को रहती है, नीचेकी ओर नहीं जाती।

विपद्में निरादर या अपमानसे मनुष्यकी बुद्धि नष्ट हो जाती है; पर जो स्वभावसे ही धैर्य्यवान् होते हैं, उनकी बुद्धि निरादरसे भी नष्ट नहीं होती। बुद्धिके नष्ट न होनेसे, मनुष्य

अपने बुद्धि-बलसे ही घोर विपद्के पार हो जाता है। अतः मनुष्यपर कैसी भी विपत्ति पड़े, उसे धैर्य्य न त्यागना चाहिये; क्योंकि धैर्य्यके बिना बुद्धि रह नहीं सकती और बिना बुद्धिका मनुष्य बिना पतवारकी नावके समान है। जिस तरह पतवारहीन नाव समुद्रमें शीघ्र ही डूब जाती है; उसी तरह धैर्य्यहीन मनुष्य विपद्में शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

सारांश—धैर्य्यवानोंका स्वभाव है, कि घोर विपद्में भी अपने धैर्य्यको नहीं त्यागते।

दोहा—धैर्यवान नहि धैर्य तजि, यदपि दुःख विकराल।
जैसे नीचो अग्निमुख, ऊँची निकसत ज्वाल ॥१०७॥

107. The patience of a persevering person, even if he is afflicted with calamity, can never be broken. The flame of a burning fire never goes downwards even if it is held upside down.

कान्ताकटाक्षविशिखा न दहन्ति यस्य-
चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः ॥
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशै-
र्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः ॥ १०७ ॥

स्त्रियोंके कटाक्ष रूपी बाण जिसके हृदयको नहीं बेधते, क्रोध रूपी अग्निकी ज्वाला जिसके अन्तःकरणको नहीं जलाती और इन्द्रियोंके विषय-भोग जिसके चित्तको लोभ-पाशमें बाँध कर नहीं खींचते, वह धीर पुरुष तीनों लोकको अपने वशमें कर लेता है।

स्त्री, क्रोध और विषय—ये तीनों ही आफ़त की जड़ और नाशकी निशानी हैं। जो इनके क़ाबूमें नहीं आता, वह सचमुच बहादुर है! शंकराचार्य्यकृत "प्रश्नोत्तर माला" में लिखा है—

शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वा ?
मनोज बाणैर्व्यथितो न यस्तु।
प्राज्ञोऽति धीरश्च शमोऽस्ति को वा ?
प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षैः॥

संसारमें सबसे बड़ा बहादुर कौन है ? जो कामबाणोंसे पीड़ित न हो। प्राज्ञ, धीर और समदर्शी कौन है ? जिसे स्त्रीके कटाक्षसे मोह न हो।

क्या ख़ूब कहा है ! जो स्त्रीके कटाक्षोंसे मोहको प्राप्त हो जाता है, जिसको स्त्रीके नयन-बाणोंसे घायल होनेके कारण होश नहीं रहता है, उस बेहोश और विवेकहीनको काम, क्रोध, मद और लोभ प्रभृति सभी शत्रु मार लेते हैं। इसके विपरीत जिसपर स्त्रीके कटाक्ष-बाण असर नहीं करते, उसे मोह नहीं होता;—उसके होश-हवास ठीक रहते हैं, उसका विवेक-ज्ञान बना रहता है; इसीलिये उसके परम शत्रु काम, क्रोध, मद और लोभ प्रभृतिका उसपर वश नहीं चलता। काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ आदिकके परमात्माकी राहमें बाधक न हो सकनेकी वजहसे, वह स्वाधीन महापुरुष, बिना किसी अड़चनके, परमात्माके

कमल-चरणोंमें पहुँच जाता है और परमात्माकी दयासे ध्रुवकी तरह सबके सिरपर आसन जमाता है।

निस्सन्देह, स्त्रीके नयनबाणोंसे घायल न होनेवाला ध्रुवकी तरह ध्रुव-पद पाता है; पर यह काम सहज नहीं है। यह बड़ी टेढ़ी खीर है। कदाचित् मनुष्य और सबसे पीछा छुटा ले, पर कामिनीसे पीछा छुटा लेना बड़ा कठिन है। बड़े-बड़े मुनिराजोंने यहाँ गोते खाये हैं। और तो क्या—स्वयं योगेश्वर कामारि कामिनीके पीछे पागल हो गये हैं। पण्डितेन्द्र जगन्नाथ महाराजने ठीक ही कहा है:—

सर्वेऽपि विस्मृतिपथं विषयाः प्रयाता,
विद्याऽपि खेदकलिता विमुखी बभूव।
सा केवलं हरिणशावकलोचना मे,
नैवापयाति हृदयादधिदेवतेव॥

सारे विषयोंको भी मैं भूल गया और विद्या भी मुझे याद न रही; पर वह मृगकेसे बच्चेकी आँखोंवाली, इष्ट देवताकी तरह, मेरे हृदयसे दूर नहीं होती। (मर गई है, तो भी याद नहीं भूलती)

अज्ञानी कामी ही स्त्रीको नहीं भूल सकते; किन्तु जो ज्ञानी हैं, जिनकी विवेक-बुद्धि नष्ट नहीं हुई है, वे स्त्रीके मोह-जालमें नहीं फँसते और यदि फँस भी जाते हैं, तो उसकी असलियत को समझकर उसे त्याग देते हैं। सभी

ज्ञानी पुरुष जानते हैं, कि स्त्री महा गन्दी, अनेक दुखोंकी खान और आत्माको नरकमें ले जानेवाली है। एक पाश्चात्य विद्वान् भी कहते हैं:—"सुन्दरी कामिनी आत्माका दोज़ख, थैलीका जहन्नुम और आँखोंकी जन्नत है *।" और भी किसीने ख़ूब कहा है—

भजन ।

(राग सोरठ)

अनाड़ी मन ! नारी नरक का मूल ॥ टेक ॥

रंग रूप पर भया लुभाना, क्यों भूल गया हरिनाम दिवाना।
इस धन यौवन का नाहिं ठिकाना, दो दिनमें होजाय धूल ॥ १ ॥
कंचन भरे दो कलस बतावे, ताहि पकड़-पकड़ आनन्द मनावे।
यह तो चमड़ेकी थैली हैं मूरख, जिन पै रह्यो तू फूल ॥ २ ॥
जा मुख को तू चन्दा कर माने, थूक राल वामें लिपटाने।
धिक-धिक धिक तेरे या मुख पै, भिष्टा में रह्यो तू भूल ॥ ३ ॥
कैसा भारी धोखा खाया, तन पर कामिन के ललचाया।
कहैं कबीर आँख से देखा, यह तो माटी का स्थूल ॥ ४ ॥

क्रोध—शत्रु ।

स्त्रीके कटाक्षवाणोंसे ही अपनी रक्षा कर लेनेसे मनुष्य त्रिलोक-विजयी नहीं हो सकता। इस भारी विजयके लिये

* A beautiful woman is the 'hell' of the soul, the "purgatory" of the purse and the "paradise" of the eyes.

उसे अपने ही शरीरमें रहनेवाले गुप्त शत्रु "क्रोध" को भी अपने अधीन करना परमावश्यक है, क्योंकि क्रोध मनुष्यके बल, बुद्धि और विवेकको सदा क्षीण करता है और उसकी मौतको सदा सिरपर रखता है। कहा है :—

क्रोधोहि शत्रुः प्रथमो नराणां, देहस्थितो देह विनाशनाय।
यथा स्थितः काष्ठगतोहि वह्नि्नः स एव वह्नि्नर्दहते च काष्ठम् ॥

मनुष्यके शरीरमें छिपा हुआ क्रोध इस प्रकार देहको नाश कर देता है; जिस तरह काठके भीतर छिपी हुई अग्नि प्रज्वलित होनेपर, काठको नाश कर देती है।

संसारमें ऐसा कोई पुत्र चण्डाल न होगा, जो अपनी जननीको ही खा जाय; पर यह चण्डाल क्रोध जिस हृदय-भूमि रूपी जननीसे पैदा होता है, पहले उसे ही खाता है, दूसरेको पीछे। इसके सिवा; यह जिसमें रहता है, उसीके धर्म-ज्ञानको नाश करता और उसे सदा दुःखी रखता है। तात्पर्य्य यह, कि क्रोधी पुरुष धर्म-अधर्मको नहीं समझता। कहा है—

मत्तः प्रमत्तश्चोन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो वुभुक्षितः।
लुब्धोः भीरुस्त्वरायुक्तः कामुकश्च न धर्मवित् ॥

मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, लोभी, डरपोक, जल्दबाज़, कामातुर, रोगार्त्त या शोकार्त्त—इनको धर्मज्ञान नहीं रहता।

ऐसोंके दिलोंमें दया-धर्म नहीं होता; इसलिये ये लोग सब तरहके दुष्कर्म्म कर सकते हैं। सब तरहके दुष्कर्म्म कर सकनेकी वजहसे ये सदा दुःखी रहते हैं। कहा है:—

ईर्ष्याघृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः ॥
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः ॥

ईर्ष्या करनेवाला, घृणा करनेवाला, सदा असन्तुष्ट रहनेवाला, सदा कोप करनेवाला, सदा वहममें डूबा रहनेवाला और दूसरोंके भाग्य-भरोसे जीनेवाला—ये छः सदा दुःख भोगते हैं।

बाईबिलमें लिखा है—"क्रोध मूर्खोंकी छातीमें रहता है" यह बहुत ठीक बात है। जो अज्ञानी होते हैं, जिन्हें संसारका अनुभव नहीं होता, जिन्हें शास्त्र-ज्ञान नहीं होता, जो महात्माओंकी संगति नहीं करते, प्रायः उन्हींमें क्रोध पाया जाता है। ज्ञानी और अनुभवी पुरुष काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मात्सर्य्य—इन छै वर्गोंको त्यागे रहते हैं और ऐसे ही नररत्न त्रिलोक-विजयी हो सकते हैं।

विषयोंकी फाँसी।

—::०::—

अब रही विषयोंके लोभ-पाशमें न फँसनेकी बात। सुनिये, विषयोंका ध्यान ही आफ़तकी जड़ है। विषयोंका ध्यान करनेवाले मनुष्यके मनमें पहले विषयोंसे प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीतिसे इच्छा पैदा होती है। इच्छासे क्रोध पैदा

होता है। क्रोधसे भ्रम होता है। भ्रमसे स्मृति नाश होती है। स्मृतिके नष्ट हो जानेसे बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धिके नष्ट होनेसे मनुष्य बिल्कुल नष्ट हो जाता है। यही बात भगवान् कृष्णने गीताके दूसरे अध्यायमें कही है। जब विषयोंके ध्यानमात्रसे यह गति होती है; तब विषयोंके भोगनेसे क्या न होता होगा ? ख़याल तो कीजिये।

असलमें विषयोंका ध्यान ही पहले किया जाता है। अगर मनुष्य विषयोंका ध्यान ही न करे; तो विषयोंमें प्रीति क्यों हो—उनके भोगनेकी इच्छा क्यों हो ? इच्छा न हो, तो मनुष्य बुद्धि खोकर नष्ट-भ्रष्ट क्यों हो ?

अब यह सोचना चाहिये, कि विषयोंका ध्यान काहेसे होता है ? ध्यान मनसे होता है। मनमें ध्यान होनेके बाद इन्द्रियाँ अपना काम करती हैं। अगर मन वशमें हो, तो इन्द्रियाँ कुछ न कर सकें। अगर मन वशमें न किया जाय, केवल इन्द्रियाँ वशमें कर ली जायँ, तो कोई लाभ नहीं। अगर इन्द्रियाँ वशमें न भी की जायँ, पर मन वशमें किया जाय, तो इन्द्रियाँ कुछ भी न कर सकेंगी। मन सारथी है और इन्द्रियाँ घोड़े हैं। घोड़े सारथीके वशमें रहते हैं। वह उन्हें जिधर ले जाता है, वे उधर ही जाते हैं। जो मनुष्य अपने मनको वशमें कर लेता है, उसकी इन्द्रियाँ भी, मनके वशमें होनेके कारण, वशमें हो जाती हैं। जिसका मन वशमें नहीं, वह मनसे भाँति-भाँतिके विषयोंका ध्यान करता हुआ नष्ट हो

जाता है। इसलिये बुद्धिमान्‌को चाहिये, कि अपने मनको वशमें करे, ताकि विषयोंका ध्यान ही न हो। विषयोंका ध्यान ही न होगा, तब भय क्या ? जिस मनमें विषय-वासना नहीं; वही मन शुद्ध है, उसी मनकी शोभा है। कहा है:—

पंकर्व्विना सरो भाति, सभा खलजनैर्व्विना।
कटूवर्णैर्व्विना काव्यं मनसं विषयैर्विना॥

कीचड़-रहित तालाबकी शोभा है, दुर्जन-रहित सभाकी शोभा है; कठोर वर्ण-रहित काव्यकी शोभा है और विषय-वासना-रहित मनकी शोभा है।

सारा दारमदार मनके वश करनेमें ही है। जिसने अपना मन वशमें कर लिया, उसने आत्मविजय करली। जिसने अपने तईं जीत लिया, उसने जगत्‌को जीत लिया। टामस कैम्प साहब कहते हैं—"जिसने अपने-आपपर पूर्ण विजय प्राप्त करली है, उसे अन्यान्य विपत्तियोंके पराजय करनेमें बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ पेश न आयेंगी। जे० जी० हार्डर महोदय कहते हैं—"सिंहको पराजित करनेवाला वीर पुरुष है, संसारको परास्त करनेवाला भी वीर है; पर जिसने अपने तईं पराजित किया है, वह उनसे भी बड़ा वीर है।" निश्चय ही बहादुरी अपने तईं जीतनेमें ही है; पर अपने तईं जीतना, है बड़ा कठिन काम। मनको वश करना लड़कोंका खेल नहीं। अगर कोई हवाको वशमें कर सकता है, तो मनको भी वशमें कर सकता है। किसी कविने कहा है:—

देखिबे को दौरे तो सटकि जाय वाही ओर।
सुनिबे को दौरे तो रसिक सिरताज है॥
सूँघिबे को दौरे तो अघाय ना सुगन्ध करि।
खाइबे को दौरे तो न धापे महाराज है॥
भोगिबे को दोरे तो तृपति हु न काहु होय।
हनुमत कहे याको नेकहू न लाज है॥
काहू को न कह्यो करे, अपनी ही टेक धरे।
मन सों न कोऊ हम, देख्यो दग़ाबाज़ है॥

कबीर साहब कहते हैं—

मनके मते न चालिये, मनका मता अनेक।
जो मन पर असवार है, ते साधु कोई एक॥
मन-पंछी जब लग उड़ै, विषय-बासना माहिं।
ज्ञान-बाज़ की झपट में, तब लग आया नाहिं॥

मनको वश करनेकी तरकीब।

——::०::——

मन केवल ज्ञान या वैराग्यसे वशमें होता है। जब मनुष्यको संसारकी असारता मालूम हो जाती है, और वह धन यौवन प्रभृतिकी अनित्यताको जान जाता है, तब उसको वैराग्य होता है; यानी संसारसे विरक्ति हो जाती है। उस समय मन फौरन वशमें हो जाता है।

हमें एक दृष्टान्त याद आया है। पाठक उसे पढ़ें और शिक्षा लाभ करें।

विषयोंकी असलियत।

——::०::——

कोई राजकुमार सैर करता हुआ जा रहा था। उसने एक मकानपर एक सेठकी कन्याको बाल सुखाते हुए देख लिया। कन्या परमसुन्दरी, रतिमानमर्दिनी और मुनिमनमोहिनी थी। देखते ही राजकुमार मुग्ध हो गया। घरमें आकर पलँगपर पड़ रहा और खाना-पीना सब त्याग दिया। राजाको खबर हुई। शीघ्र ही राजाने उसके पास जाकर पूछा—"पुत्र! भोजन क्यों नहीं करते? जो तुम्हारी इच्छा हो, वही किया जाय।" राजकुमारने राजासे सेठकी कन्याके साथ शादी करा देनेकी प्रार्थना की। राजाने फौरन सेठजीको बुलाया और उनसे कहा, कि आप अपनी कन्याकी शादी हमारे राजकुमारसे करदें। सेठजीने कहा—"महाराज! बड़ी खुशीकी बात है, मेरा परम सौभाग्य है; पर मैं ज़रा कन्यासे भी पूछ लूँ।"

सेठजीने अपनी कन्याको यह माजरा कह सुनाया। कन्याने कहा—"पिताजी! आप राजकुमारसे कह आइये, कि मेरी लड़की आपसे सोमवारको मिलेगी; आप खाना-पीना कीजिये।" सेठजी यह बात राजकुमारसे कह आये। उधर कन्याने किसी नौकरसे जमालगोटा मँगाकर उसका जुल्लाब ले लिया। अब क्या था, दस्त-पर-दस्त होने लगे। जो दस्त होता, उसे वह एक सुन्दर

पीतलकी बाल्टीमें रखवा, ऊपरसे रेशमी कपड़ा ढकवा देती। इस तरह कोई ४०।५० बाल्टियाँ तैयार हो गईं। सेठकी कन्याके गाल बैठ गये, चेहरा भूतनीका-सा हो गया। देखनेसे नफ़रत होती थी। एक काम उसने और भी किया, वह एक टूटीसी चारपाईपर गूदड़े बिछवाकर लेट गई। गूदड़ोंपर और अपने पहननेके कपड़ोंपर, उसने थोड़ासा पाख़ाना छिड़कवा लिया। जब इस तरह सब काम हो गया, तब उसने सेठजीसे कहा— "पिताजी! आजका वादा है। आप राजकुमारको लिवा लाइये।"

सेठजी राजकुमारके पास पहुँचे और उनसे अपने घर चलनेकी प्रार्थना की। राजकुमार तो तैयार ही बैठे थे, फ़ौरन साथ हो लिये। घरमें घुसते ही बदबूके मारे उनका दिमाग़ सड़ने लगा, पर उन्हें तो कन्यासे प्रेम था, इसलिए नाकको रूमालसे दबाकर उसके पलँगके पास पहुँचे। कन्याने पड़े-पड़े ही कहा,—"राजकुमार! अगर आपको मुझसे मुहब्बत है, तो मैं आपकी सेवामें मौजूद हूँ। आपकी इच्छा हो सो कीजिये और अगर आपको मेरी ख़ूबसूरतीसे मुहब्बत है, तो वह उन बाल्टियोंमें भरी रक्खी है।" राजकुमार कुछ मूढ़ था। उसने पीतलकी चमकदार बाल्टियोंपर रेशमी कपड़े ढके देख मनमें समझा, कि शायद ख़ूबसूरती ही ढकी हो। उसने अपने ही हाथसे जो रेशमी रूमाल हटाया, तो सड़ा हुआ पाख़ाना नज़र आया। देखते ही राजकुमार नाक दबाकर वहाँसे भाग पड़ा। अब उसे होश हो गया। संसारकी

और ख़ासकर विषयोंकी असलियत उसे मालूम हो गई। उसने कहा—"ओह ! संसारमें कुछ भी नहीं है; जैसा यह दीखता है वैसा नहीं हैं।" उसी समय उसे संसारसे विरक्ति हो गई। वह राजको परित्याग कर, अङ्गमें भस्म लगा, मृगछाला और तूम्बी ले, वनको चला गया और परमात्माकी भक्तिमें लीन हो गया।

स्त्री ऊपरसे ही सुन्दरी मालूम होती है,—भीतरसे वैसी नहीं है। स्त्रीके भीतर क्या है ? राध, लोहू, थूक, खखार और मल मूत्र इत्यादि। जब तक मनुष्य असलियतकी तरफ ध्यान नहीं देता, धोखा खाता है। परीक्षा करनेसे ही उसे मालूम होता है—संसार जैसा चमकदार दीखता है, वैसा नहीं है§। संसार केलेके खम्भ या प्याज़की तरह है। उन्हें जितना ही छीलते जाइयेगा, केवल छिलके-ही-छिलके निकलते आयेंगे।

सारांश—हरगिज़ न भूलिये, कि स्त्री अमृत-सी दीखनेपर भी विष है और बेटे-पोते-दोहिते प्रभृति मित्रवत् दीखनेपर भी स्वार्थी शत्रु हैं। सब जीते जी की मुहब्बत है। मरते ही ये सब आपसे डरने लगेंगे और मरनेके बाद आपको याद भी न करेंगे। इसलिये अगर चिरस्थायी कल्याण चाहते हो, दुःखोंसे पीछा छुटाया चाहते हो, जन्म-मरणके बन्धनसे बचना चाहते हो, अनन्त सुख भोगनेकी इच्छा रखते हो; तो स्त्री-

§ All is not gold that glitters.

That is not in the mirror which you see in the mirror.—Gr. Pr.

जातिसे घृणा करो, क्रोधको जीतो, सब दुःखोंके मूल अभिमान† को त्यागो, अपने मनको वैराग्यसे वशमें करके विषरूपी विषयोंके फन्देमें फँसनेसे बचो और आत्मज्ञान लाभ करो; यानी अपने तईं जानो‡। जब आप इन सब कामोंको कर सकेंगे, तब आप निश्चय ही त्रिलोक-विजयी हो सकेंगे और परम पद पा सकेंगे।

हमारे पाठकोंके चित्तपर योगिराज महाराज भर्तृहरिके अमूल्य उपदेशोंका असर पूर्ण रूपसे हो जाय, इसलिये हम एक भजन भी नीचे देते हैं :—

मूरख छाँड़ वृथा अभिमान ॥ टेक ॥

औसर बीत चल्यो है तेरो, तू दो दिन को महमान।
भूप अनेक भये पृथ्वी पर, रूप-तेज-बलखान।
कौन बच्यो या काल बली से, मिट गये नाम निशान ॥ १ ॥
धवल धाम धन गज रथ सेना, नारी चन्द्र-समान।
अन्त समय सबही कौ तजके, जाय बसै समसान ॥२॥
तज सतसंग भ्रमत विषयनमें, जा विधि मर्घट स्वान।
क्षण भर बैठ न सुमिरन कीनो, जासों होत कल्यान ॥३॥

---

† Egoism is the source and summary of all faults and miseries what-so-ever—Carlyle.

Earthly pride is like a passing flower, that springs to fall and blossoms to die.—Kirke White.

‡ From heaven came down the precept, "Know thyself"—Jno.

रे मन मूढ़ ! अन्त मत भटके, मेरो कह्यो अब मान।
"नारायण" ब्रजराज कुँवर से, बेग करो पहचान ॥ ४ ॥

दोहा—तिय-कटाक्षशर विधत नहिं, दहत न कोप-कृशानु।
लोभपाश खेंचत न ते, तिहुँपुर वश किये जानु ॥ १०८ ॥

108. The wise man whom the arrows of beautiful women's glances do no affect, whose heart is not disturbed by the heat of anger and who does not fall into the snare of evil passions conquers all the three worlds.

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम् ।
क्रियते भास्करेणेव परिस्फुरिततेजसा ॥ १०९ ॥

जिस तरह एक ही तेजस्वी सूर्य सारे जगत्को प्रकाशित करता है; उसी तरह एक ही शूरवीर सारी पृथ्वीको पाँव तले दबाकर अपने वशमें कर लेता है।

दोहा—बड़ौ साहसी होत जो, काम करत झुकझूम।
शूरवीर अरु सूर यह, लाँघ जात रणभूम ॥ १०९ ॥

109. A single brave man can subdue the whole world as the Sun spreads his shining light everywhere.

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणा-
न्मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरंगायते ॥
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते
यस्यांगेऽखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति ॥ ११०

जिस पुरुषमें समस्त जगत्को मोहनेवाला शील है, उसके लिये अग्नि जल-सी जान पड़ती है; समुद्र छोटी नदी-सा दीखता है, सुमेरु पर्वत छोटी-सी शिला-सा मालूम होता है, सिंह शीघ्र ही उसके आगे हिरन-सा हो जाता है, सर्प उसके लिये फूलोंकी माला-सा वन जाता है और विष अमृतके गुणोंवाला हो जाता है।

महात्माओंने कहा है:—

शीलवन्त सबसे बड़ा, सब रतनों की खानि।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आनि॥
ज्ञानी ध्यानी संयमी, दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं, शीलवन्त कोई एक॥
शीलवन्त निर्मल दशा, पा परिहै चहुँ खूँट।
कहै कबीर ता दास की, आस करै बैकूँठ॥

महाकवि दाग़ने भी कहा है:—

बशरने ख़ाक पाया, लाल पाया या गुहर पाया।
मिज़ाज अच्छा अगर पाया, तो सब कुछ उसने भर पाया॥

सच है, जिसका स्वभाव अच्छा है, जिसके स्वभावमें शील है, उसे जगत् प्यार करता है और सभी प्राणी उसके क़दमोंमें गिरते हैं। पर खेदका विषय है कि, सच्चे शीलवान् विरले ही होते हैं।

छप्पय—अग्नि होत जल रूप, सिन्धु लघु नदी दिखावत।
होत सुमेरहु सेर, सिंह को हरिण जनावत॥
पुहुपमाल-सम व्याल, होत विषहू अमृत-सम।
बनहू नगर-समान, होत सब भाँति अनूपम॥
सब शत्रु आय पाँयन परत, मित्रहु करत प्रसन्न चित।
जिनके सुपुन्य प्रचार शुभ, तिनके मंगल मोद नित॥१११॥

111. Fire becomes (as cold) as water, the Ocean itself at once becomes like a little stream, the Meru mountain becomes a small rock, a lion immediately becomes (as timid) as a deer, a serpent becomes like a garland of flowers and a poisonous juice becomes like a rain of nectar to him in whose possession the most pleasant thing in the whole world, i. e. good manners, are found.

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-
मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम्॥
तेजस्विनः सुखमसूनपि संत्यजन्ति
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनःप्रतिज्ञाम्॥११२॥

सत्यव्रत तेजस्वी पुरुष अपनी प्रतिज्ञा भंग करनेकी अपेक्षा अपना प्राण-त्याग करना अच्छा समझते हैं; क्योंकि प्रतिज्ञा लज्जा प्रभृति गुणोंके समूहकी जननी और अपनी जननीकी तरह शुद्ध हृदय और स्वाधीन रहनेवाली है।

प्रतिज्ञा-पालन मनुष्यका परम कर्त्तव्य है। जो प्रतिज्ञा-पालन नहीं करते, वे मनुष्य कहलानेके अधिकारी नहीं; लोग अपने स्वार्थके लिये प्रतिज्ञा भङ्ग कर बैठते हैं, यह बहुत ही बुरी बात है। मनुष्यको अपने जीवनकी अपेक्षा अपने शब्दोंका अधिक ध्यान रखना चाहिये। जब कारथेनियन लोगोंने रेग्यूलस नामक मनुष्यको क़ैद किया, तब उन्होंने उसे इस प्रतिज्ञापर छोड़ा, कि वह जाकर रोमनोंसे सुलह करा दे और यदि उसके भाग्यसे वे सुलह न करें, तो वह स्वयं क़ैदी बनकर लौट आवे। वह प्रतिज्ञा करके चला गया। रोमन लोगोंने उससे कहा कि, तू अब लौटकर न जा; क्योंकि तू स्वयं प्रतिज्ञामें नहीं बँधा है। उन्होंने ज़ोर-ज़बरदस्तीसे तुझसे वैसी प्रतिज्ञा करा ली है। रेग्यूलसने कहा,—"तुम सब मुझे क्षुद्र बनाना चाहते हो। मैं जानता हूँ, मेरे लौटकर जाते ही वे मुझे मार डालेंगे। पर प्रतिज्ञा पूरी न करने—झूठा और दग़ाबाज़ बननेकी अपेक्षा मरना हज़ार गुना अच्छा है। मैंने वापस लौट जानेकी प्रतिज्ञा की है, इसी लिये जाऊँगा और ज़रूर जाऊँगा। निदान वह कारथेज गया और वहाँ उसे प्राणदण्ड दिया गया। धन्य वीर ! धन्य !!

महाराज हरिश्चन्द्रने ख़ाली प्रतिज्ञा-रक्षाके लिये ही अपना राज-पाट गँवाया, रानी और पुत्रका वियोग सहा। दोनों स्त्री-पुरुषोंने पराई चाकरी की। यहाँ तक कि भंगीका काम किया, पर अपनी प्रतिज्ञा रक्खी। सत्यपालनका ऐसा

आदर्श जगत्में और कहाँ है ? महाराज दशरथने, सर्व्वनाशका समय उपस्थित होनेपर भी, यही गर्वीले वचन कहे—"रघुकुल रीति सदा चलि आयी, प्राण जायँ वरु वचन न जायी"। आपने जो कहा वही किया। प्राणप्यारे रामकी जुदाईमें प्राण त्याग दिये, पर सत्यकी रक्षा की। रामचन्द्रसे भरतने अयोध्यामें चलकर राज करनेके लिये बारम्बार कहा; तब रामने कहा—"सुनो भरत ! चन्द्रमाकी शीतलता जाती रहे, हिमालय अपना अचलभाव छोड़ दे, सूर्य शीतल हो जाय, सागर अपनी मर्य्यादा तोड़ दे, तोभी पिताके निकट मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे मैं तोड़ नहीं सकता।" धन्य राम ! धन्य !!

महत् पुरुष अगर कोई बात हँसीमें भी कह देते हैं, तो वह पत्थरकी लकीर हो जाती है; पर नीचोंकी बात पानीकी लकीरकी तरह होती है, जो ज़रा देरमें ही मिट जाती है। महत् पुरुष प्राण-त्याग कर देते हैं; पर वचन-भंग नहीं करते। सूरज पच्छिममें उदय हो तो हो, सुमेरु चलायमान हो तो हो, अग्नि शीतल हो तो हो, कमल पर्वतोंपर पैदा हों तो हों, चन्द्रमा सूर्यकी तरह अग्नि उगले तो उगले,—किन्तु सत्पुरुषोंकी प्रतिज्ञा पूरी हुए बिना नहीं रह सकती। कवियोंने कहा है—

रनसन्मुख पग सूरके, बचन कहे ते सन्त।
निकस न पीछे होत हैं, ज्यों गयन्दके दन्त॥

बड़े बचन पलटें नहीं, कहि निरबाहें धीर।
कियौ बिभीखन लंकपति, पाय विजय रघुबीर॥

बातहिं से दशरत्थ मरे, अरु बातहिं राम फिरे वन जाई।
बातहिं से हरिचन्द सहे दुख, बातहिं राज्य दियौ मुनिराई॥
रे मन ! बात बिचारि सदा कहु, बातकी गातमें राख सचाई।
बात ठिकान नहीं जिनकी, तिन बाप ठिकान न जानेहु भाई॥

और भी—

हस्तिदन्त समानं हि, निसृतं महतां वचः।
कूर्मग्रीवेव नीचानां, पुनरायाति याति च॥

बड़ोंके वाक्य हाथीके दाँतोंके समान होते हैं; यानी निकले सो निकले; निकलकर फिर भीतर नहीं जाते; पर नीचोंके वाक्य कछुएकी गर्दनके समान होते हैं, जो कभी भीतर जाती है और कभी बाहर आती है।

पण्डित शिरोमणि जगन्नाथ महोदय भी कहते हैं—

विदुषा वदनाद्वाचः सहसा यान्ति नो बहिः।
याताश्चेन्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव॥

विद्वानोंके मुँहसे सहसा कोई बात नहीं निकलती और यदि निकली, तो हाथीके दाँतकी तरह निकलकर फिर भीतर नहीं जाती।

मनुष्यमात्रको, यदि वह मनुष्यत्त्वका दावा करे, प्रतिज्ञा-रक्षाके मुक़ाबलेमें, प्राणोंको भी तुच्छ समझना चाहिये।

कुण्डलिया—मैय्या लज्जा गुणन की, निज मैय्या सम जान।
तेजवन्त तनको तजत, याको तजत न जान॥
याको तजत न जान, सत्यव्रत वारेहु नर।
करत प्राण को त्याग, तजत नहिं नेक वचनवर॥
शरत आपनी राख रह्यो, वह दशरथ रैया।
राखो बल हरचन्द, टेक यह यश की मैया॥११२॥

112. Honourable men, true to their word, would rather give up their lives than break their vows which produce in their hearts a host of good qualities as modesty etc., and which are to them like a mother, extremely pure-hearted and faithful.

समाप्त

वैराग्य शतक

दूसरा संस्करण

महाराजा भर्तृहरिके नीति, शृङ्गार और वैराग्य,—ये तीनों शतक बहुत ही प्रसिद्ध हैं। इनका एक-एक श्लोक लाख-लाख रुपयोंके लिए भी क़ीमती है। इन तीनों शतकोंमें "नीति-शतक" का अनुवाद पाठक देख ही रहे हैं। "वैराग्य-शतक"का अनुवाद भी दूसरी बार छपकर तैयार है। क़दरदान पाठकोंने उसे खूब पसन्द किया, तभी तो वह ७।८ महीनोंमें ही हाथों-हाथ बिक गया।

इस अनुवादमें पहले मूल संस्कृत श्लोक, उसके नीचे श्लोकका हिन्दीमें सरल अर्थ, उसके नीचे उसकी खुलासा व्याख्या और उसके नीचे उसका अँगरेज़ी अनुवाद दिया गया है। अनुवाद ऐसा सरल किया गया है, कि बालक और स्त्रियाँ तक समझ सकें। व्याख्यामें वैराग्य-सम्बन्धी दूसरे ग्रन्थोंकी कवितायें भी मौक़े-मौक़ेसे सजा दी गई हैं, जिससे पढ़नेवालेपर असर हुए बिना न रहेगा। इस एक ही पुस्तकमें आपको गोस्वामि तुलसीदास, महात्मा कबीर और सुन्दरदास तथा महाकवि ग़ालिब, महाकवि दाग़ और उस्ताद ज़ौक़ प्रभृति विद्वानोंकी वैराग्यपूर्ण कविताओंका आनन्द भी उपलब्ध होगा। वैराग्य ऐसा विषय है कि, संसारी मनुष्य इससे दूर भागते हैं, वैराग्य-

सम्बन्धी पुस्तकें पढ़नेमें उनका दिल नहीं लगता ; पर इस पुस्तकमें ऐसी कारीगरी की गई है, कि कैसा ही विषयी मनुष्य क्यों न हो, एक बार पढ़ना आरम्भ करके सारी पुस्तक खतम किये बिना न रहेगा। पढ़ते-पढ़ते उपन्यासका-सा आनन्द आवेगा, साथ ही झूठे संसारसे घृणा हुए बिना न रहेगी। पढ़ते-पढ़ते शोक और दुःख हवा हो जायँगे।

यह जगत् बिलकुल मिथ्या—धोखेकी टट्टी और स्वप्नकीसी माया है। इसमें प्राणी उसी तरह नाश होते हैं; जिस तरह दीपकपर पतङ्ग और जाल तथा कँटियामें फँसकर मछलियाँ, किन्तु किसीको भी चेत नहीं होता ! सभी रिश्तेदार अपने स्वार्थ से चाहते हैं। माता-पिता, बहिन-भाई,स्त्री-पुत्र प्रभृति सच्ची प्रीति कोई भी नहीं रखते; किन्तु मनुष्यकी समझमें यह बात नहीं आती। इस जगत्में सुखका नाम भी नहीं है ; फिर भी मनुष्य इसमें सुख मानता है, यह महा अज्ञानता है। विषयोंके भोगनेमें रोगोंका भय है, कुलमें दोषोंका भय है, धनमें राजाका भय है, चुप रहनेमें दीनताका भय है, बलमें शत्रुओंका भय है, सौन्दर्यमें बुढ़ापेका भय है, गुणोंमें दुष्टोंका भय है, शरीरमें मौतका भय है। बहुत कहाँ तक कहें, संसारके सभी पदार्थोंमें मनुष्योंको भय है, पर आश्चर्यकी बात है, कि इतनेपर भी मनुष्य संसारसे मुँह नहीं मोड़ता। जिस दिन माँके पेटमें आता है, उस दिनसे नौ मास तक अँधेरी जगहमें हाथ-पैर बँधा पड़ा रहता है, बाहर आनेपर पराधीन रहता है, जवानीमें

अनेक चिन्ताओंसे जर्ज्जरित होता है; बुढ़ापेमें नाना प्रकारकी व्याधियों, स्त्री-पुत्रोंके अनादर-अपमानसे दुखी रहता है, एक क्षण भी सुख नहीं पाता; फिर भी संसारके रहस्यको नहीं समझता, कि यहाँ सुख नहीं है। महाराजा भर्तृहरिने ठीक ही कहा है—"सुख केवल वैराग्यमें है।" इसलिये जो लोग अपना लोक-परलोक बनाना चाहते हैं, बारम्बार जन्म-मरणके कष्ट उठाना नहीं चाहते, उन्हें "वैराग्य-शतक" पढ़कर अपनी नींद त्यागनी चाहिये। संसारकी असलियत समझकर कुछ उपाय करना चाहिये, जिससे आगेकी लम्बी सफरमें कष्ट न हो। जो लोग "योगवशिष्ठ" जैसे बड़े-बड़े ग्रन्थ नहीं पढ़ सकते, वे इस "वैराग्यशतक" को पढ़ें और अपनी आत्माको दुःखों तथा जञ्जालोंसे अलग कर सुखी करें। इसमें जो ५) रुपया खर्च किया जायगा, वह हज़ार रुपयेकी पुस्तकें ख़रीदनेसे अच्छा होगा। उपन्यास वग़ैरः पढ़नेसे कोई लाभ नहीं, इससे स्वार्थ और परमार्थकी सिद्धि होगी।

कथा-सम्बन्धी ७ चित्रोंके सिवा २२ चित्र और भी ऐसे दिये हैं, जैसे आज तक किसीने नहीं दिये। श्लोकोंका भाव अजीव ढंगसे चित्रोंमें चित्रित किया गया है। जो देखता है, कारीगरकी कारीगरीपर मोहित हो जाता है। उन चित्रोंसे ही, बिना पुस्तक पढ़े, मनुष्यपर संसारकी असारता, देहकी क्षणभंगुरताका बड़ा प्रभाव पड़ता है, अभिमान चूरचूर हो जाता है और बुढ़ापेका दृश्य सामने नाचने लगता है।

हम ज़ोर देकर कहते हैं, आज तक ऐसी पुस्तक हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी प्रभृति किसी भाषामें नहीं छपी। हज़ार जगहसे रुपया बचाकर इसे ख़रीदिये। इसके लिये ख़र्च किया गया रुपया सचमुच ही सार्थक होगा। ४७० सफ़ोंसे अधिककी सुन्दर छपी पुस्तक है। कागज़ सुन्दर ऐन्टीक है, भाषा सरल सबके समझने योग्य है। तस्वीरें एक-से-एक बढ़कर हैं। केवल २६ चित्र ख़रीदियेगा तो ४) में भी नहीं मिलेंगे। इतनेपर भी जो सुस्ती करेंगे, वे पछतायेंगे।

प्रत्येक हिन्दी जाननेवाले स्त्री-पुरुषको इसे अपने पाकेटमें रखना चाहिये। सेठ-साहूकार, मुनीम, गुमाश्ते, माष्टर, प्रोफेसर, विद्यार्थी, राजा, महाराजा, केवल हिन्दी जाननेवाले, अँगरेज़ी हिन्दी जाननेवाले, हिन्दू और मुसलमान, जैनी और ईसाई सभीको इसे ख़रीदना चाहिये। इसमें धर्म-सम्बन्धी कोई झगड़ा नहीं, इसमें तो संसार-सागरसे पार होनेकी राह संक्षेपमें बताई हैं, जो सभीको जाननी चाहिये।

मूल्य बिना जिल्दवालीका ४) डाक महसूल पैकिंग ॥=) मूल्य बढ़िया सुनहरी अक्षरोंकी मनोमोहक और खूब मज़बूत जिल्ददारका ५) डाक महसूल ॥≡)

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी,

गंगा-भवन—मथुरा सिटी (यू० पी०)।

समाचार-पत्रोंकी सम्मतियाँ।

कलकत्तेका सुप्रसिद्ध "हिन्दी वंगवासी"

१४—३—२१ को लिखता है :—

वैराग्य शतक । यह बतानेका प्रयोजन नहीं, कि पूर्व-कालमें इस भारत-भूमिमें एक-से-एक पुरुष रत्न हो गये हैं। उन्हीं पुरुष रत्नोंमें इस पुस्तकके रचयिता नरेन्द्र-शिरोमणि विक्रमादित्यके ज्येष्ठभ्राता महाराजा भर्तृहरिजी भी एक थे। अपने जीवनके प्रथमांश में धर्म-पूर्वक प्रजाका पालन कर, महा-राज भर्तृहरिने जगत्के उदारचेता नरेशोंमें जो कीर्ति अर्जित की है,उसकी ज्योतिसे अब तक शासन-इतिहास जगमगा रहा है, फिर इस संसारको सदा त्रयतापोंसे सन्तप्त देख, आपने देव-राज इन्द्रके सदृश भोग-विलासोंपर लात मार, वैराग्य धारण कर लिया और संसारी मनुष्योंके प्रति सदय हो, उनके हृदयको शान्त एवं अमर करनेके लिये, इस "वैराग्य-शतक" द्वारा सुधावृष्टि कर अपनी कीर्त्ति-कौमुदीको और अचल कर दिया है। प्रस्तुत पुस्तकमें उन्हीं प्रातःस्मरणीय भर्तृहरिजी

रचित वैराग्य-शतकके श्लोकोंकी व्याख्या की गई है। इसके अनुवादक हैं, हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक तथा अत्युत्तम ग्रन्थ प्रकाशक श्रीयुक्त हरिदासजी वैद्य महाशय। यों तो वैराग्य-शतकके बहुतेरे हिन्दी अनुवाद हो चुके है, किन्तु जैसी विशेषतायें इसमें हैं, वैसी विशेषतायें और कहीं नहीं देखी जातीं। इसमें आरम्भमें मूल श्लोक हैं, उसके नीचे भाषार्थ, फिर खूब सरल हिन्दीमें सुविस्तृत व्याख्या की गई है, बादको मनोहारिणी हिन्दी कविताओंमें संस्कृत श्लोकके भाव दर्शा, सोनेमें सुगन्धका संचार कर दिया है और साथ ही प्रत्येक पद्यका अँगरेज़ी अनुवाद भी दिया गया है। सारांश यह है, कि वैराग्य-शतक जैसे गहन विषयको भी वैद्य महाशयने हिन्दी-भाषियोंके लिये भी सुबोध तथा रुचिकर बनानेमें भरसक कोई कोर-कसर नहीं रखी है और साथ ही महाराज भर्तृहरिकी जीवनी लिख कर इसकी उपयोगिता और बढ़ा दी है। यह तो हुईं भीतरी बातें; बाहरी सजावटोंमें तो सचमुच आपने कमाल ही कर दिया है। प्रथमतः इसकी सुनहली जिल्द ऐसी मनोहारिणी हुई है कि पुस्तक हाथमें लेते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है, काग़ज भी खूब मोटा है और छपाई-सफाईके सम्बन्धमें इतना ही कहना पर्य्याप्त है, कि यह हरिदास एण्ड कम्पनीकी चीज़ है। पुस्तकमें कोई सत्रह (अब २६ हैं) चित्र दिये गये हैं और सभी भर्तृहरिजीके जीवनकी विविधावस्थाओंसे सम्बन्ध रखते हुए नयनाभिराम तथा भावपूर्ण हुए हैं। पुस्तकका नाम ही विषयका द्योतक है।

यदि कोई सचमुच इस जगत्‌के उत्तापसे परित्राण चाहता हो तो उसे अवश्य ही "वैराग्य शतक" की शरण लेना चाहिए। मनमें कैसी ही भीषण चिन्ताकी चिता क्यों न जलती हो, किन्तु "वैराग्य शतक" को उलटकर देखते ही वह शान्त हो जाती है; हृदय शीतल हो जाता है। इसके पद-पदमें अक्षर-अक्षरमें अमृत भरा हुआ है। फिर; जिसने इसे पीया वह अवश्य ही अमर हो जायगा। स्वयं भर्तृहरिजी कहते हैं,—"भोगे रोगभयं कुलेच्युतिभयं वित्तेनृपालाद्भयं। मौन्येदैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जरायाः भयं। शास्त्रेवादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं। सर्व्वं वस्तु भयान्विता भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्।" निःसन्देह इस सन्तप्त संसारसे परित्राण पानेके लिये वैराग्य ही कल्पवृक्ष है। इसलिए प्रत्येक मनुष्यको वैराग्य-शतकका नित्य कुछ पाठ करना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि श्रीयुक्त हरिदासजी भी इस ग्रन्थरत्नको इस सज-धजके साथ प्रकाशित कर हिन्दी-संसारके बड़े ही प्रशंसनीय धन्यवादार्ह हुए हैं। पुस्तकमें एक यह भी विशेषता देखी जाती है कि सुन्दर रेशमी बुकमार्क लगा दिया गया है, जिससे पढ़नेवालोंको निशान करनेमें सुविधा हो, सुनहली जिल्ददार ऐसी सुन्दर पुस्तकका दाम पाँच रुपये मात्र है।

———

"धर्माभ्युदय" सम्पादक, पण्डितवर नारायणदत्तजी शर्म्मा, आगरा ७—२० को लिखते हैं:—

यह महाराजा भर्तृहरि कृत "वैराग्यशतक" संस्कृत पुस्तकका हिन्दी-अँग्रेज़ी अनुवाद है। अनुवाद गद्य और पद्य दोनों ही में किया गया है। अनुवादक महाशयने इस अनुवादको बड़े परिश्रमसे किया है। गोसाईं तुलसीदासजी आदि आदि हिन्दीके अनेक कवियोंके पद्य भी यत्र-तत्र रख दिये हैं। साथ ही उर्दू साहित्यके सिरमौर महाकवि दाग़, ग़ालिब और ज़ौक़के काव्य भी दिये हैं। इससे हिन्दी-साहित्यके नवयुवा और युवतियाँ भी इस वैराग्य-शतकके साथ २ ही उर्दू साहित्यका भी कुछ रसास्वादन कर लेंगे। अनुवादकजी ने "भोगे रोगभयं कुलेच्युतिभयं वित्तेनृपालाद्भयम्" इस श्लोकका अनुवाद कर महात्मा सुन्दरदासका निम्न पद्य दिया है—

"सर्प डसै सु नहीं कछु तालक, बीछु लगे सु भलो करि मानौ।
सिंह खाय तु नाहिं कछु डर, जो गज मारन तो नहिं हानौ॥
आग जरौ जल बूड़ि मरो, गिरि जाय गिरो कछु भै मत आनौ।
सुन्दर और भले सब ही यह, दुर्जन संग भलौ जिन जानौ॥

इसके पश्चात् महाशय ग़ालिबका निम्न वाक्य है :—

रहिए अब ऐसी जगह चलकर, जहाँ कोई न हो।
हमसखुन कोई न हो, और हमज़बाँ कोई न हो॥
बे दरो दीवार सा, इक घर बनाना चाहिए।
कोई हमसाया न हो, और पासबाँ कोई न हो॥

पड़िए गर बीमार, तो कोई न हो तीमारदार।
और अगर मर जाइए, तो नोहाखां कोई न हो॥

इत्यादि काव्योंसे पुस्तककी शोभा बहुत ही बढ़ गई है। पुस्तकमें ३८ चित्र दिये हुए हैं। इन चित्रोंसे पुस्तककी शोभा दुवाला हो गई है। ऐसे भावपूर्ण, भड़कदार चित्रोंकी पुस्तकके लिये हम श्रीयुत बाबू हरिदासजी वैद्य महोदयको अनेकशः अन्यवाद देते हैं। छपाई-सफ़ाईके लिए कलकत्ताकी हरिदास कम्पनी स्वयं ही बहुत प्रसिद्ध है। उसके लिये कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं। उन्हींके प्रेसमें यह अमूल्य पुस्तक छपी है। पुस्तकको एकबार हाथमें लेकर फिर छोड़नेको चित्त नहीं चाहता। जिस "अमरफल" के कारण महाराजा भर्तृहरि वैरागी हुए और यह वैराग्य-शतक लिखा है, उसी कथाको अनुवादक महोदयने बड़ी ही सरस और सरल भाषामें लिखा है। प्रत्येक हिन्दी और अँग्रेज़ी साहित्यके प्रेमीको इस पुस्तकको मँगाना चाहिए।

"गृहलक्ष्मी" "निर्बल-सेवक" और "दारोग़ा दफ्तर" प्रभृति पत्रोंके सम्पादक और अनेक ग्रन्थोंके रचयिता पण्डितवर नरोत्तमजी व्यास महोदय श्रावण ७७ को लिखते हैं—

भारत-सम्राट् विक्रमादित्यके ज्येष्ठ सहोदर, वांधवेश, महाराजा श्रीभर्तृहरिका नाम देशके पठित-समाजमें यथेष्ठ परिचित है। आप भारतके उन पहुँचे हुए, त्यागी-वैरागी योगियोंमें एक थे, जो आज-दिन अमर पुरुष कहलाते हैं एवं जिन्होंने

अपनी विलासप्रिय प्रियतमा पटरानी पिङ्गलाका पापाचरण देख, एक अभूतपूर्व ज्योतिका दर्शन कर, क्षण भरमें ही संसारकी निरर्थकता उपलब्ध कर ली थी। आलोच्य 'वैराग्य-शतक' आप ही की रचना है। रचना संस्कृतमें की गयी है एवं वह अति सुन्दर है। संस्कृतज्ञोंमें युगोंसे उसका यथेष्ट सम्मान होता चला आया है। अतएव चीज़ पुरानी है। किन्तु आज इस पुरानी चीज़का स्वरूप हम एक नये आइनेमें देख रहे हैं, कि जिसने क़ीमत पहलेकी अपेक्षा सौगुनी बढ़ा दी है। वह आइना है, इसकी टीका या अनुवाद। फिर वह अनुवाद कोरा हिन्दीमें गुणहीन, स्वाद-शून्य, शब्दानुवाद ही नहीं है, वरन् उसमें भी एक भारी विशेषता है; और वह विशेषता यह है, कि अनुवादकने अपने पाठकोंको विषयकी सत्यता सिद्ध करनेके लिये पहले महाराजा भर्तृहरिका इतिहास और प्रवादसम्मत विस्तृत जीवन-चरित दिया है। बादको ग्रन्थारम्भ कर, प्रत्येक श्लोकके नीचे अतिशय सरल हिन्दीमें उसका अर्थ, अर्थके नीचे विस्तृत व्याख्या, व्याख्याके अन्तमें महाराजा प्रतापसिंह, जो कि हिन्दीके एक अच्छे, किन्तु अप्रसिद्ध कवि मालूम होते हैं, उनकी हृदयको अपूर्व शान्ति देनेवाली कवितायें और बादको अँग्रेज़ी अनुवाद दिया गया है, जिससे अँग्रेज़ी शिक्षित-समाज भी भारतीय भाषा-काव्योंके उच्च भावोंका भावुक बन जाय। इसके सिवा अनेक स्थानोंपर श्लोकोंके भावोंसे टक्कर खाती हुई "तुलसी सतसई, सुन्दर विलास, कबीर

की साखी" की हिन्दी कविताओंके अलावा, उर्दू कवि दाग़, ज़ौक़ और ग़ालिबके रसीले 'अशआर' भी दिये गये हैं, जिससे पुस्तक की क़ीमत नहीं, वरन् अनुवादका मूल्य बहुत कुछ बढ़ गया है। फिर हैं—प्रत्येक श्लोकका भाव उक्त विविध प्रकारोंसे हृदयस्थ करा देने वाली सामग्रीके बाद भी—बढ़िया चित्र, कि जिन्हें देख कर ही फिर पुस्तक पढ़नेकी आवश्यकता नहीं रहती। रही छपाई और सफाई, सो उसके लिये हरिदास कम्पनीका नाम ले देना ही काफ़ी है। अतः जो लोग विरागवादी हैं अथवा जिन्हें स्त्रियों और संसारसे घृणा है, वे तो इस पुस्तकको अवश्य पढ़ें; किन्तु जो लोग संसारको सारवान् समझते हैं, वे भी यदि इसे पढ़ें तो कुछ हानि नहीं।

संस्कृतके धुरन्धर विद्वान्, वेद-व्याख्याता-स्वर्गवासी पण्डित-वर भीमसेनजीके सुयोग्य पुत्र "ब्राह्मण-सर्वस्व" सम्पादक पं० ब्रह्मदेवजी मिश्र, शास्त्री, काव्यतीर्थ महोदय लिखते हैं:—

हरिदास कम्पनीने लोकप्रिय पुस्तकोंके प्रकाशित करनेमें अच्छा नाम कमाया है। रूप-रंग और छपाईमें इस कम्पनीकी पुस्तकें अनिन्द्य हैं। पुस्तक हाथमें लेकर पढ़नेको जी चाहता है। इस कम्पनीकी पुस्तकोंकी एक विशेषता यह भी है कि, प्रायः सब पुस्तकोंमें चित्र भी होते हैं। इस "वैराग्यशतक"में भी ऊपर कही हुई, सब विशेषताओंकी रक्षा की गई है।"

महाराजा भर्तृहरिके तीनों शतक, विशेषतः संस्कृत-

साहित्य सेवियोंमें और साधारणतः हिन्दी-प्रेमी पाठकोंमें खूब प्रसिद्धि पाचुके हैं। भर्तृहरिजीकी रचना सरस, सरल और हृदयग्राहिणी है; उन्होंने जो कुछ कहा है, वह खूब अनुभव-पूर्वक कहा है; इसीलिये उनकी कविताका आदर है और उसमें बनावट नहीं मालूम पड़ती। उनके बनाये तीनों शतकोंके हिन्दी अनुवाद अबतक अनेक स्थानोंसे निकल चुके हैं। पर इस अनुवादने युगान्तर उपस्थित कर दिया है। ऐसा सचित्र अनुवाद निकालना तो दूर रहा; इसके होने की कल्पना भी किसीने न की होगी। श्लोकोंके आधार पर जो चित्र इसमें छपे हैं, वे श्लोकोंको अच्छी तरह व्यक्त करते हैं। फिर इस अनुवादकी भाषा इतनी सरल है; कि थोड़े पढ़े-लिखे भी वैराग्य जैसे कठिन और रुक्ष विषयको अच्छी तरह हृदयङ्गम कर सकते हैं। इसका क्रम इस प्रकार का है:—आरम्भमें मूल श्लोक, उसके नीचे भावार्थ, भावार्थके नीचे व्याख्या, व्याख्याके अन्तमें हिन्दी कवितामें श्लोकानुवाद और अन्तमें अँगरेजी अनुवाद दिया गया है। बीच-बीचमें तुलसी सतसई, सुन्दर विलास, कबीरकी साखी आदि हिन्दी कविता-पुस्तकोंके सिवाय उस्ताद ज़ौक़, महाकवि दाग़ और महाकवि ग़ालिबकी भी कवितायें इसमें उद्धृतकी गई हैं। इस तरह पुस्तकको अच्छी और सर्वोपयोगी बनानेमें कुछ उठा नहीं रक्खा गया है। पुस्तकके प्रारम्भमें वैराग्यशतककी उत्पत्तिका तथा महाराजा भर्तृहरिके वैराग्यका कारणभूत उपाख्यान विस्तृत रूपसे लिखा गया है।

आश्विन कृष्णा ५ सं० १६७७ को 'पाटलीपुत्र' लिखता है—

योगिराज भर्तृहरिका नाम कौन भारतवासी नहीं जानता? आपकी धनवितृष्णा, संसार-विरक्ति और राजत्याग के लिये भारतमाता गर्व के साथ संसार के सामने खड़ी होती है। प्रस्तुत पुस्तक में आपके रचित वैराग्य-विषय पर सौ संस्कृत के पद्यरत्न हैं। भर्तृहरिजी महाराजकी ये कविताएँ बता रही हैं, कि आप एक पहुँचे हुए संसार-त्यागी ही नहीं थे; पर आप संस्कृत के कवियों में अपना एक उच्च स्थान भी रखते हैं। आपकी इन संस्कृत कविताओं के अब तक कई अनुवाद निकल चुके हैं; पर वैसे अनुवादों का निकलना, नहीं निकलने के बराबर है; क्योंकि उन अनुवादों से न कुछ भाव ही खुलता है और न भर्तृहरिकी चमत्कार पूर्ण कविताओं की चमत्कारिता ही मालूम होती है; पर हर्ष की बात है, कि प्रस्तुत अनुवाद को प्रकाशित कर अनुवादक महाशय ने एक बड़े भारी अभाव की पूर्त्ति की है। पुस्तक में ३८ दर्शनीय चित्र हैं, जो प्रसंगानुसार सन्निवेशित किये गये हैं। भूमिका के बाद महाराज भर्तृहरि का सचित्र जीवन-चरित्र दिया गया है, जो विषयीजनों के लिये शिक्षाजनक है। मूल श्लोक, उसका सरल हिन्दी में अर्थ, फिर भावार्थ, तब कवितावद्ध अनुवाद, फिर अँगरेज़ी अनुवाद और अन्त में उसी श्लोक के भावकी अन्य हिन्दी उर्दू कविताएँ देकर पुस्तकको सर्वाङ्गसुन्दर बनाने की पूरी चेष्टा की गई है। लेखक ने भर्तृहरिजी के संस्कृत श्लोकवद्ध भावों को समझाने की पूरी चेष्टा की है और इसमें

सन्देह नहीं, कि उन्हें पूरी सफलता भी मिली है। सुनहरी जिल्द नयनाभिराम और मज़बूत है। हम इस पुस्तकका समादर चाहते हैं।

"समालोचक" सागर लिखता है:—वैराग्यशतक:—महाराजा भर्तृहरिकृत वैराग्यशतकका हिन्दी अनुवाद। अनुवादक पं० हरीदासजी वैद्य। पृष्ठ संख्या ३६+२६२ छपाई और कागज़ बढ़िया।

पं० हरीदासजी वैद्य हिन्दी-ग्रन्थोंके नामी प्रकाशक ही नहीं है—उच्चकोटिके सुलेखक भी हैं। आपने आज तक सैकड़ों सुन्दर ग्रन्थोंका प्रकाशन किया है और बीसों बहुमूल्य तथा उपयोगी ग्रन्थोंकी रचना की है। आप हीने वैराग्यशतकका यह सुन्दर अनुवाद किया है। महाराजा भर्तृहरिके 'नीतिशतक, शृंगारशतक तथा वैराग्यशतक', संस्कृतसाहित्य ही के नहीं—विश्व-साहित्यके अमूल्य रत्न हैं। उनका उपयोग और उनकी शिक्षा प्रत्येक समाजके लिये समान भावसे लाभदायक है।

इसमें संदेह नहीं कि "आपके पदोंका मनुष्यके दिल पर जैसी जल्दी असर होता है, औरोंके पदोंका वैसा नहीं होता। पढ़ने और समझनेवालेको जो मज़ा आता है, वह कहकर और लिखकर बताया जा नहीं सकता। उस मज़ेको दिल ही जानता है, दुःख है, कि दिलके ज़बान नहीं और ज़बानके दिल नहीं।"

पहिले मूल श्लोक और उसके नीचे भावार्थ दिया गया है। भावार्थ अच्छी तरह समझानेके लिये उसकी मनोहर व्याख्या कर दी गई है। व्याख्यामें मौक़े-मौक़ेसे 'तुलसी-सतसई', 'सुन्दर विलास', 'कबीरकी साखी' आदि ग्रन्थोंके सिवा उस्ताद ज़ौक, महाकवि दाग़ और ग़ालिबकी भावपूर्ण कविताएँ दी गई हैं, जो सोनेमें सुगन्धका काम देकर व्याख्याको और भी रोचक तथा शिक्षाप्रद कर देती हैं। इसके बाद महाराज श्रीप्रतापसिंहजू की चित्ताकर्षिणी कविताएँ दी गई हैं। अन्तमें अङ्गरेज़ी भावार्थ दिया गया है, जिससे ग्रन्थ अङ्गरेजी पढ़े-लिखे लोगोंके कामका भी हो गया है। पुस्तकके आरम्भमें महाराज भर्तृ-हरिका संक्षिप्त तथा रोचक इतिहास भी जोड़ दिया गया है। मौक़े-मौक़े पर बीस भावपूर्ण तथा नेत्ररञ्जक चित्र देकर पुस्तक की सजावट भी काफी कर दी गई है।

पुस्तककी लेखन-शैली बड़ी मनोहर है। भाषा इतनी सरल रखी गई है कि थोड़े-पढ़े लिखे आदमी भी उसे बखूबी समझ सकते हैं। पुस्तकको उपयोगी और रोचक बनाने के लिये अनुवादकने पूरी कोशिश की है और उसकी कोशिश कामयाब हुई है। ऐसी अच्छी पुस्तक लिखनेके कारण पं० हरिदास जी हिंदी-प्रेमियोंके धन्यवादके पात्र हैं। सुनते हैं, आपने भर्तृहरिके और भी कई ग्रन्थोंके अनुवाद प्रकाशित किये हैं, पर वे हमारे देखने में नहीं आये।

यह तो कोई बात ही नहीं; कि किसी लेखककी रचना सर्वथा शुद्ध हो। नामीसे नामी लेखककी रचनाओंमें दोष निकाले जा सकते हैं। यदि 'समालोचक' को वैराग्यशतक में भी कुछ त्रुटियाँ मिल जायँ, तो इससे पुस्तकका महत्व नहीं घट सकता। हमारी तो दिली राय यह है कि "प्रत्येक पढ़े-लिखे सज्जन वैराग्यशतकको रोज़ रोज़ या हफ्तेमें एक बार अवश्य देखा करें, ताकि इस मिथ्या जगतकी असारताको समझें, विषय-वासनाओंको त्यागें, परोपकार में मन लगावें और अपनी आगेकी लम्बी सफ़रका सामान करें, अथवा परमात्माकी निष्काम भक्ति करते हुए परमपद—मोक्ष-प्राप्ति की चेष्टा करें।"

"समालोचक", सागर की वैराग्यशतकके दूसरे संस्करण पर सम्मतिः—

वैराग्यशतक—गत १६ जनवरीके "समालोचक" में हम पं० हरिदास जी की अनुवाद की हुई "वैराग्यशतक" नामक पुस्तककी आलोचना प्रकाशित कर चुके हैं। परन्तु वह आलोचना पुराने संस्करणकी थी। द्वितीय संस्करणमें वैराग्य-शतककी बिलकुल ही कायापलट हो गई है। पुस्तकका कलेवर अब पहलेसे दूना—लगभग ५२५ पृष्ठोंका हो गया है! विषय का प्रतिपादन पहलेकी अपेक्षा अब और भी मनोहरता तथा उत्तमतासे किया गया है। विषयको और भी स्पष्ट करनेके लिये स्थल-स्थल पर रोचक तथा शिक्षाप्रद

कथाएं और उल्लेख जोड़ दिये गये हैं। पहले संस्करणमें यह बात न थी। अब पुस्तकका विषय और भी हृदयग्राही हो गया है।

यथार्थमें 'वैराग्यशतक' का यह नूतन संस्करण हिन्दी संसारका अद्वितीय तथा अमूल्य रत्न हो गया है। चित्रोंकी संख्या भी अब लगभग ३० है। चित्र बहुत ही सुन्दर, साफ़, भावपूर्ण और नयनाभिराम हैं। मूल्य सादी जिल्दका ४) और पक्की रेशमी जिल्दका ५) है। विशेष लिखनेकी यहां आवश्यकता नहीं जान पड़ती, क्योंकि पिछले अङ्कमें हम इस पुस्तकके सम्बन्धमें अपनी सम्मति लिख ही चुके हैं। हमारी सम्मति ही नहीं, प्रार्थना है कि हिन्दी पाठक कम-से-कम एक बार इस पुस्तकका अवलोकन करें—उनकी तबियत खुश हो जायगी। मिलनेका पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, २०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

"खण्डेलवाल-हितैषी" के विद्वान् सम्पादक बाबू राधावल्लभजी जसोरिया, वकील, महोदय "वैराग्यशतक" पर लिखते हैं:—

"कुछ ही मास हुए कि, बाबू हरिदासजी वैद्यके अनुवाद किये हुए "वैराग्य-शतक" की समालोचना "हितैषी" में भी प्रकाशित हुई थी। उसकी क़दर हिन्दी-संसारमें इस जोर के साथ हुई कि, कुछ ही महीनों में उसके दूसरे संस्करण की

आवश्यकता उपस्थित हो गई और अनुवादक महोदय ने भी विशेष परिश्रम करके जो दूसरा संस्करण निकाला है, उसमें बहुतसी नवीनता बढ़ाकर पुस्तक को पहले से भी अधिक उपयोगी और चित्ताकर्षक बना दिया है। इस पुस्तकमें अनेक विद्वानों, महात्माओं और कवियोंके हृदयस्पर्शी मार्मिक वाक्योंको मौक़े-मौक़ेसे बड़ी ही उत्तमताके साथ संग्रह करके अँगूठीमें नगीनेकी तरह जड़ दिया है। पुस्तक क्या है, उपदेशामृतका स्रोत बहा दिया है। पढ़नेसे मनमें पवित्रता और आत्म-शक्तिका सञ्चार होता है। संसारके अनुचित विषय-भोगोंसे, दुःखदाई मलीन वासनाओंसे चित्त शुद्ध होकर, सच्चे शान्ति-सुखके मार्गको खोज पाता है। मनुष्य-जन्म सार्थक करनेकी शिक्षा मिलती है। यह बात बराबर लक्ष्य में रखी गई है कि, साधारण हिन्दी पढ़े भी पुस्तकसे पूरा लाभ उठा सकें, इसीलिये इसकी भाषा बड़ी ही सरल रखी गई है और गूढ़ प्रश्नोंका आशय बड़ी सुगमतासे समझाया गया है। पुस्तकमें बहुतसे नेत्ररञ्जक चित्र स्थान-स्थान पर ऐसे सजा दिये गये हैं, जो स्वयं अपने भावको हृदय पर अङ्कित करते हुए एक निराली दिलचस्पी पैदा करते हैं। आरम्भमें महात्मा भर्तृहरिका जीवन-चरित्र मय चित्रोंके दिया गया है। दूसरे संस्करणकी पृष्ठ-संख्या बढ़ाकर ४७५ हो गई है। जिल्दकी खूबसूरती तो देखने की ही चीज़ है। मूल्य अजिल्दका ४) रु० सजिल्दका ५) रु०।

विहार प्रान्तके प्रमुख नेता श्रीमान् बाबू राजेन्द्र प्रसादजी एम० ए०, एम० एल० महोदय "देश" में लिखते हैं:—

"भर्तृहरिके 'शतक' संस्कृत साहित्यके अनमोल रत्न हैं। भर्तृहरिजी महाराजके तीनों अनमोल रत्न—तीनों शतकोंका कोई अच्छा संस्करण न होनेसे, न तो उसका प्रचार ही वैसा-हो रहा था और न जनताका उनसे कुछ उपकार ही हो रहा था। अब कलकत्तेकी प्रसिद्ध हरिदास कम्पनी ने उन तीनों रत्नोंका हिन्दी अनुवाद नये रङ्ग रूपमें प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्यका बड़ा भारी अभाव दूर कर दिया है। इस समय वैराग्यशतक हमारे सामने है। इसमें प्रत्येक श्लोक का हिन्दी अनुवाद, फिर उसकी विशद सरल व्याख्या, कठिन श्लोकोंके भाव समझाने के लिये छोटी-छोटी कहानियाँ, पद्यानुवाद और अन्तमें अङ्गरेज़ी-अनुवाद दिये गये हैं। संस्कृतके गूढ़ार्थ, श्लोकोंके भाव सुगमताके साथ समझाने के लिये अनुवादकने बड़े परिश्रम के साथ अत्यन्त सफल पयत्न किया है। सांसारिक सुखमें डूबे हुए भारतको, अपने प्राचीन गौरव-पूर्ण स्थान पर पहुँचने के लिये, अपने आदर्श पर संसारको ले चलनेके लिये और दुनियादारीके दुःखनद से संसारका उद्धार करने के लिये, ज़रूरत है, कि प्रत्येक भारतवासी इस पुस्तककी एक-एक कापी अपने घरमें उसी तरह रख कर इसका अध्ययन-मनन करे, जिस तरह वह वेदों, उपनिषदों या गीताकी पुस्तकें रखता है, और उनका अध्य-

यन और मनन करता है। पुस्तकका यह दूसरा संस्करण है और इसमें चित्रों तथा पृष्ठोंकी संख्या पहले संस्करणसे ड्योढ़ी दुगनी कर दी गयी है। भावपूर्ण श्लोकों पर दिये हुए भावमय चित्र, कट्टरसे कट्टर विषयी और संसारी मनुष्योंको भी धर्म-पथ पर खींच लाते हैं। इसके उपदेश विषयकी आगसे जले हुए मनुष्योंके लिये चोटीली-मार का और ईश्वर-विमुख मनुष्योंके लिये धर्मोपदेश का काम देंगे। आशा है, इस पुस्तकका प्रचार देशके पाठक-समाजमें भली भाँति होगा।"

---

(३) शृङ्गारशतक।

शृङ्गारशतककी तारीफ़ करनेकी शक्ति हमारी क़लममें नहीं है। इसमें महाराजाने जो आनन्दका स्रोत बहाया है उसमें मग्न होने से स्वर्गीय आनन्द मिलता है। रसिया और कामी पुरुषोंके लिये "शृङ्गारशतक" अमृत-सरोवर या आबे-हयात है। जिन मुनि-मनमोहिनी कामिनियोंने ब्रह्मा, विष्णु, महेशको भी अपना गुलाम कर रखा है, जिनकी रूप-माधुरी पर पराशर और विश्वामित्र जैसे महामुनि अपना तप भंग कर बैठे, उन्हीं मनमोहिनियोंका इसमें वर्णन है।

अगर आप ललित ललनाओंके हाव-भाव और नाज़-नख़रोंका रहस्य जानना चाहते हैं, अगर आप स्त्रियोंके गूढ़ रहस्योंको जानना चाहते हैं, अगर आप सुन्दरी वाराँगनाओं

अथवा मनमोहिनी वेश्याओंके कपट-जालसे वाकिफ होना चाहते हैं, अगर आप कुलाँगनाओं और वाराँगनाओंका भेद समझना चाहते हैं, तो आप "शृङ्गारशतक" पढ़िये। इसमें भी ऊपर मूल श्लोक, नीचे अर्थ, उसके भी नीचे व्याख्या और शेषमें अङ्गरेज़ी अनुवाद है। रसिक और नौजवानोंके देखने-लायक चीज़ है। चित्र देखकर ही मन मुग्ध हो जाता है। बहुत लिखने को तो हमारे पास स्थानका अभाव है, इतने ही में समझ लीजिये, कि इसके पढ़ने से मनुष्य स्त्रियोंकी सारी चतुराई से वाकिफ हो जाता है; उनके माया जालमें नहीं फँसता; और अगर फँसता है, तो पूरा आनन्द भोगता है। इतनेमें ही समझ लीजिये कि यह नामर्दोंकी सुस्त नसोंमें भी जोश पैदा करनेवाली पुस्तक है। मूल्य अजिल्दका ३) सजिल्द का ३॥)

हिन्दी संसार में एकदम नयी बात !!

बिना उस्ताद के वैद्य-विद्या सिखानेवाला

चिकित्सा-चन्द्रोदय

सात भाग

लेखक

"स्वास्थ्यरक्षा" नामक जगत्प्रसिद्ध ग्रन्थके जन्मदाता

बाबू हरिदास वैद्य ।

—::o::—

मूल्य और पृष्ठ-संख्या ।

भाग	पृष्ठ-संख्या	अजिल्दका मूल्य	सजिल्दका मूल्य
पहला भाग	३४०	३)	३।।।)
दूसरा भाग	६३२	५)	५।।।)
तीसरा भाग	५१२	४।)	५)
चौथा भाग	६६०	४।)	५)
पाँचवां भाग	६७०	५)	५।।।)
छठा भाग	४१७	३।।)	४)
सातवां भाग	१२६८	१०।।)	११)
	४५२९	३५।।)	४०।।)

कमीशन ।

पाँच रुपयों से नीचे के ख़रीदारों को कुछ भी कमीशन नहीं मिलेगा। पाँच से पौने दस तक एक आना रुपया, दस

से चौबीस तक दो आना रुपया और २४।) से ४६।।।) तक अढ़ाई आना रुपया कमीशन मिलेगा।

पेशगी।

दस रुपये से नीचे के आर्डरके लिये पेशगी रुपया भेजने की दरकार नहीं। दशसे ऊपर के ख़रीदारोंको कम-से-कम ५) मनीआर्डर या रजिष्ट्रीसे भेजना होगा। तभी उनके हुक्म की तामील होगी और उसी हालतमें वे पूरे कमीशनके हक़दार होंगे। अजिल्द ७ भागों पर ५।।) और सजिल्द ७ भागों पर ६।) कमीशन मिलेगा।

विषय-सूची।

पहला भाग।

(१) वैद्य के जानने योग्य ३०० उपयोगी परिभाषा। (२) हृदय, फुसफुस और मस्तिष्क आदिका सचित्र वर्णन। (३) शरीरकी नसं, हड्डी, धातु और मर्म आदिका वर्णन। (४) वात, पित्त और कफ—इन तीन दोषोंकी व्याख्या। (५) दोषों और धातुओंकी क्षयवृद्धिका नतीजा। (६) मनुष्यकी प्रकृतियोंकी पूरी-पूरी पहचान। (७) बल, अग्नि अवस्था, देश और कालकी पूरी व्याख्या। (८) निदान पञ्चक या रोग जानने के तरीके। (९) नाक, कान, जीभ, आँख, चमड़े और पूछने वग़ैरः से रोग जाननेकी तरकीबें। (१०) असाध्य रोगोंके लक्षण और छै-छै महीने पहले से मरने वालोंकी पहचान। (११) हित और अहित पदार्थ एवं अच्छी-बुरी दवाओंकी पहचान।

दूसरा भाग।

(१) ज्वरोंकी उत्पत्ति और उनके भेद आदि। (२) ज्वर क्यों और कैसे होते? (३) किसी भी तरहके ज्वर में एक ही दवा देने की विधि। (४) ज्वरमें क्या पथ्य और क्या अपथ्य है। (५) ज्वरमें पानी प्रभृति औटानेकी नई-नई तरकीवें। (६) ज्वरमें किनको और कब लंघन कराने चाहिये। (७) वातज्वर, पित्तज्वर, सन्निपात ज्वर, विषम ज्वर, मलेरिया ज्वर, जीर्ण ज्वर, मोती ज्वर, शीतला ज्वर, न्यूमोनिया, टाईफॉइड ज्वर प्रभृति सभी ज्वरोंके निदान, लक्षण और चिकित्सा। (८) बालकोंके ज्वर, खाँसी, अतिसार, हिचकी प्रभृति सभी रोगोंका इलाज। (९) स्त्रियोंकी गर्भावस्था या प्रसूतावस्थामें होने वाले ज्वर आदि रोगोंका इलाज। (१०) ज्वरके दसों उपद्रवों—श्वास, खाँसी, हिचकी अतिसार, तन्द्रा, मूर्च्छा आदिकी चिकित्सा। (११) पारा गन्धक आदि अनेक तरहकी धातु-उपधातु शोधने की विधि। (१२) पाताल यन्त्र और बालुका यन्त्र आदि यन्त्रोंके बनाने की विधि मय चित्रोंके।

तीसरा भाग।

इस भागमें सब तरहके अतिसार, संग्रहणी, बवासीर, मन्दाग्नि, अजीर्ण, हैजा, कृमिरोग, पाण्डु या पीलिया, उपदंश—गरमी और सोज़ाक आदि रोगोंके कारण, लक्षण और चिकित्सा बड़ी ही खूबीसे लिखी गई है। दूसरे भागकी

तरह ३० बरसके अनेकों परीक्षित योग या आज़मूदा नुसख़े भी हर रोग पर लिखे हैं। इस भाग में लिखे हुए रोग प्रायः हर गृहस्थके घरमें होते ही रहते हैं। कोरी हिन्दी मात्र जानने वाला भी उपरोक्त रोगोंका इलाज बख़ूबी, विना किसीकी मददके, कर सकता है। अतः यह भाग हर वैद्य, हर गृहस्थ और यहाँ तक कि हर संन्यासीके कामका है।

चौथा भाग।

इस भागमें उन दो रोगोंका वर्णन है, जिनके मारे भारतके सौ में ६६ आदमी तवाह हो रहे हैं। वह रोग 'प्रमेह' और 'नपुंसकता' या नामर्दी हैं। हम दावेके साथ कह सकते हैं, इन रोगों पर इससे अच्छी पुस्तक भारतकी किसी भी भाषामें न होगी। हर कोई अपने रोगकी परीक्षा करके स्वयं अपना इलाज कर सकता है। जिनकी धातु पेशावके आगे-पीछे या पाखाना जाते समय काँखने से जाती है, जिनकी इन्द्रिय चैतन्य नहीं होती, जो जल्दी ही स्खलित होनेसे संसारका आनन्द लूट नहीं सकते—वे सब इस किताबको आबेहयात या अमृतका सरोवर समझें। इसमें अमीर और ग़रीब सबके लिए कौड़ियोंसे लेकर सैकड़ों रुपयों तकमें तैयार होने वाले चूर्ण, पाक, लड्डू, माजून और तरह-तरहकी भस्में एवं तिला आदि लिखे हैं। एक-एक तिला और पाक या गोली ऐसी लिखी हैं, जिसके सेवन से बीस-बीस सालके नामर्द भी मर्द हो कर ज़िन्दगीका सुख भोग सकते हैं।

स्तम्भन या रुकावटकी ऐसी-ऐसी तरकीबें लिखी हैं, जिनके सेवन से स्त्री दासी हो जाती है। शेषमें अभ्रक, राँगा, शीशा, लोहा, ताम्बा, सोना, चाँदी आदिकी भस्म बनाने की बड़ी ही आसान तरकीबें लिखी हैं, जिन्हें देख कर कोई भी इन सब भस्मोंको तैयार कर सकता है। ज़ियादा क्या लिखें—यह भाग तो मनुष्य मात्र के काम का है, चाहे वह वैद्यका धन्धा करे या न करे। राजा महाराजा और सेठ-साहूकारसे लेकर झोंपड़ीमें रहने वाले किसान तक के लिये यह भाग गलेका हार बनाने योग्य है।

पाँचवा भाग।

जिस तरह यह तीसरा, और चौथा भाग वैद्योंके सिवा गृहस्थ मात्र के काम के हैं उसी तरह यह भाग भी वैद्य, गृहस्थ और संन्यासी सभी के काम का है। इस भागमें अफीम, संखिया, धतूरा और कुचला प्रभृति हर तरहके स्थावर विषको नाश करनेकी सहल-से-सहल तरकीबें और इन्हीं विषोंसे अनेकों दुःसाध्य रोगोंके आराम करनेकी विधियाँ लिखी गई हैं। आजकल साँप, बिच्छू, कनखजूरे, चूहे, मक्खी, बर्र और मैंढक आदिके काटनेसे भारतके लाखों प्राणी बे-मौत मरते हैं, इससे इस भागमें उन सभीकी चिकित्सा बड़ी खूबीसे लिखी है। इस भागके रखनेवाला साँप आदिसे अनेकोंकी जान बचा सकेगा। इतना ही नहीं, इसमें इन विषैले जानवरोंसे बचने और इनके भगानेकी

तरकीबें भी लिखी हैं। पागल कुत्तेके काटनेका इलाज भी बड़ी खूबीके साथ लिखा है। विष-चिकित्साके सिवा, इस भागमें

स्त्रियोंके प्रायः सभी रोगोंकी

चिकित्सा मय निदान-कारण और लक्षणके बड़ी खूबीसे लिखी है। ऐसा कौन गृहस्थ है, जिसके घरमें स्त्रियाँ न हों और जिसके घरमें स्त्रियाँ हैं, उसे यह भाग पास रखना परमावश्यक है, क्योंकि इसमें (१) प्रदर रोग, (२) सोम रोग, (३) योनि रोग, (४) मासिक धर्म बन्द हो जाने या ठीक न होनेका रोग, (५) गर्भ न रहनेके रोग, (६) कन्या ही कन्या होनेके रोग, (७) गर्भ गिरनेके रोग, (८) पैर जारी होनेके रोग, (९) गर्भिणीके रोग, (१०) प्रसूताके रोग आदि अनेकों रोगोंकी चिकित्सा लिखी है। इनके सिवाय,…………………कठोर करने, बाल उड़ाने, बाल लम्बे करने, बाल काले करने, बाल पैदा करने, मुँह खूबसूरत बनाने, तिल और मस्से आदि नाश करनेके उपाय भी लिखे हैं। इन सबके सिवा भारतके अधिकांश स्त्री-पुरुषोंको होनेवाले भयङ्कर

राजयक्ष्मा रोग

की चिकित्सा भी इस खूबीसे लिखी है, कि अनाड़ी-से-अनाड़ी भी इस रोगसे हज़ारोंको छुड़ा सके। यह रोग अति मैथुन करने, दिशा पेशाब और अधोवायु रोकने तथा अपने बलबूतेसे अधिक साहसके काम करनेसे सौमें नव्वे आदमियोंको

होता है। स्त्रियाँ तो इस रोगमें बहुत ही मरती हैं। असाध्य हो जानेपर, इस रोगवाला ब्रह्माके बचाये भी बच नहीं सकता। जो लोग इस रोगके पैदा होनेके कारण न जाननेसे इसके शिकार होते हैं, इस ग्रन्थके पढ़नेसे अवश्य सावधान हो जायेंगे। अब आप ही सोचिये क्या यह भाग हर मनुष्यके पास रखने योग्य नहीं है? जो ग्रन्थ इतनी आपदाओं, इतने रोगों, इतने विषैले जानवरोंसे बचाता है, उसके लिये पाँच या छै रुपये ख़र्च करना कोई बड़ी बात है?

छठा भाग।

छठे भागमें नीचे लिखे हुए रोगोंके निदान-लक्षण और चिकित्सा अत्यन्त विस्तारसे लिखी गई है:—

(१) खाँसी, (२) जुकाम, (३) श्वास, (४) हिचकी, (५) रक्तपित्त, (६) अम्लपित्त, (७) स्वरभेद, (८) अरुचि, (९) वमन या क़य, (१०) प्यास, और (११) दवाएँ बनाने और सेवन करनेकी तरकीबें।

इस भागमें खाँसी जैसे भयंकर रोगमें ही १३० सफे घेरे गये हैं। अनेक तरहकी खाँसियोंके लक्षण और चिकित्सा लिखी है। इसी तरह जुकाम और श्वास रोग वग़ैरःपर विस्तारसे लिखा है। आजकल खाँसी और जुकामसे करोड़ों मनुष्य दुःख पाते और ज़िन्दगीसे हाथ धोते हैं। साँस या दमा प्राण-नाश करनेमें हैजेसे भी तेज़ है। ये रोग जितनी जल्दी प्राण-

नाश करते हैं और कोई रोग उतनी जल्दी प्राण संहार नहीं करता। इसी तरह आज-कल अन्न न पचने और खट्टी-खट्टी डकारें आनेका अम्लपित्त रोग भी १०० में नव्वे आदमियोंको बना रहता है। अतः यह भाग वैद्य और साधारण गृहस्थ सभीके पास रखने योग्य है। इस भागमें ४१६ सफे हैं। काग़ज़ मलाईके समान चिकना है। दो रङ्गीन और एक सादा चित्र है।

सातवां भाग।

इस भागमें सभी शेष रोगोंकी चिकित्सा समाप्त है-
१२६८ सफे और ४० मनोमोहक चित्र हैं।

इस सातवें भागमें प्रायः सभी शेष रहे हुए अथवा नीचे लिखे हुए रोगोंके निदान, लक्षण और चिकित्सा लिखी गई है,—

(१) मूर्च्छा—बेहोशी, (२) मदात्यय-बहुत नशा, (३) दाह, (४) उन्माद-पागलपन, (५) अपस्मार-मृगी, (६) हिस्टीरिया-योषापस्मार, (७) अस्सी वात रोग—लकवा, फालिज, अर्द्धाङ्ग, शून्यवात वग़ैरः, (८) वातरक्त-खूनकी खराबीके रोग, (९) उरुस्तम्भ-जाँघोंका रह जाना, (१०) आमवात, (११) शूल-पेट वग़ैरःके दर्द, (१२) उदावर्त्त—वेग रोकनेसे पेटके रोग, (१३) गुल्म-गोलेके रोग, (१४) प्लीहा और यकृत-तापतिल्ली और

लिवरकी खराबी, (१५) हृदय-रोग, (१६) मूत्रकृच्छ्र-पेशावका रोग, (१७) मूत्राघात-पेशाबका रोग, (१८) पथरी-अश्मरी, (१६) मेदरोग—शरीरकी मुटाई, (२०) कार्श्यरोग-शरीरका दुबलापन, (२१) शोथरोग-सूजन या वरम, (२२) अण्डवृद्धि-फोतोंका रोग, (२३) उदर रोग—पेटके रोग जलोदर रोग वग़ैरः, (२४) गलगण्ड-घेंघा, (२५) गण्डमाला, (२६) श्लीपद या हाथी-पांव, (२७) विद्रधि या फोड़ा, (२८) व्रण-घाव वग़ैरः। आगसे जले हुए का इलाज और हर तरहके घाव, (२६) नाड़ी व्रण-नासूर, (३०) भग्नरोग, (३१) भगन्दर-गुदाका रोग, (३२) कोढ़ दाद-खुजली वग़ैरः (३३) विसर्प, (३४) स्नायुरोग-नहरू या बाला, (३५) विस्फोट या ज्वरमें फोड़े होना, (३६) शिरोरोग-आधाशीशी वग़ैरः तरह-तरहके सिरके दर्द, (३७) नेत्ररोग-आँखोंके रोग, (३८) कर्णरोग-कानके रोग, बहरापन, कान बहना और कानका दर्द वग़ैरः। (४०) मुँहके रोग—मुँहके छाले, जीभके रोग, दाँतोंके रोग और दाँतोंका दर्द वग़ैरः—

इस तरह इस भागमें चालीस भयङ्कर रोगोंके लक्षण और उनका इलाज खूब ही विस्तारसे लिखा है। इस भागमें एक खूबी की गई है कि, अनेक रोगोंके लक्षण कारण और इलाज हकीमी मतसे भी लिखे गये हैं। क्योंकि कितने ही रोगोंके निदान-लक्षण जिस उत्तमतासे यूनानी या हिकमतमें लिखे हैं—वैद्यकमें नहीं लिखे। प्रत्येक वैद्य और चिकित्सा सीखनेवालेको

रोगोंके सम्बन्धमें जितना ही ज़ियादा मालूम हो उतना ही अच्छा। इसीलिये अँगरेज़ डाक्टर एम० डी० होनेपर भी, जितने ग्रन्थ या मासिकपत्र चिकित्सा-विद्यापर निकलते हैं सभीको खरीदते और अपने ज्ञानकी वृद्धि करते हैं। सुश्रुताचार्य्यने भी कहा है, जो एक ग्रन्थमें है वह दूसरेमें नहीं, अतः वैद्यको जितने भी ग्रन्थ मिलें पढ़ने चाहियें।

चिकित्सा-शास्त्र न पढ़ना पाप है।

चिकित्सा-शास्त्र पढ़ना मनुष्यमात्रका कर्त्तव्य है। और विद्यायें आप पढ़ें या न पढ़ें, पर जिस विद्याके पढ़नेसे आप सदा सुखी और आरोग्य रह सकते हैं, जिसके पढ़नेसे आप अकाल मृत्युसे बचकर पूरी आयु भोग सकते हैं, उसका पढ़ना आपका कर्त्तव्य है और न पढ़ना पाप है। यह हमारे ऋषि- ...का ही कहना नहीं है। पाश्चात्य विद्वान् भी यही बात ...हैं। डाक्टर गन महोदय कहते हैं—"It is, therefore, ...ery individual's duty to study the laws of his ...eing, and to conform to them. Ignorance, or ...nattention on this subject, is sin, and the injurious consequences of such a course make out a case of gradual suicide." जो कुछ हमने ऊपर कहा है, वही अँग्रेज़ीमें लिखा है। इससे अँगरेज़ी पढ़े-लिखोंकी आँख खुल जायँगी ...र उन्हें अपना चिकित्साशास्त्र पढ़नेका कर्त्तव्य मालूम हो जायगा।

चिकित्सा-चन्द्रोदय पढ़नेसे क्या फायदा ?

इस ग्रन्थको, फुरसतके समय, एक या दो घण्टे रोज़, पढ़नेसे उस विद्याका ज्ञान होगा, जिससे शरीर सुखी रहता, मन शान्त रहता, अकाल मृत्यु दूर भागती, परमायु प्राप्त होती, स्त्री-भोगका सच्चा सुख मिलता, स्त्रियाँ दासी होतीं, रूपवान बलवान सन्तान पैदा होती, रोग होने नहीं पाते, जना-जन खुशामद करता और पूजता, लोग ज़बरदस्ती दोस्त बनते, दुश्मन भय खाते, मनमाना धन आता, परोपकार-पुण्य सञ्चय होता, इस लोकमें यश, कीर्ति, मान और धन मिलते तथा मरने पर स्वर्ग और मोक्ष मिलते हैं। संक्षेपमें यह अनमोल ग्रन्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतुर्वर्गदाता है।

बेरोज़गार स्त्री-पुरुष।

अगर अपने दूसरे कामोंसे छुट्टी पाकर, इसे रोज नियमसे पढ़ें तो वे एक या दो सालमें, पराई गुलामी छो... अपने ही घर या गाँवमें, आदर इज्ज़तके साथ कम-से-कम २... दो सौ रुपया महीना पैदा कर सकते हैं। आज-कल हज़ा... लोग, जो पहले नौकरीके पीछे लट्ठ लिये घूमते थे, इसे अप... आप पढ़-पढ़कर मनमाना धन कमा रहे हैं।

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी,
गंगा-भवन, मथुरा सिटी (यू० पी०

(b) A NOTE ON THE ADMINISTRATIVE SET UP

(c) A NOTE ON RESIDENTIAL FACILITIES PROVIDED BY THE VISHWAVIDYALAYA FOR ITS STUDENTS 1

(d) A NOTE ON THE FACILITIES PROVIDED FOR SPORTS/GAMES 1

(e) A DETAILED NOTE ON THE STAFF ASSOCIATIONS 1

(f) A NOTE ON THE NATURE OF DISPUTES AND CONFLICT WITHIN THE MANAGEMENT 1

(g) A NOTE ON THE NATURE OF JOURNALS/PUBLICATIONS 1

~~(h) A NOTE ON THE ARCHAEOLOGICAL MUSEUM~~ 2

(i) INDOLOGICAL STUDIES 2

(j) PROCEDURE FOLLOWED FOR THE ADMISSION OF STUDENTS 3